

सातवा अंग्रेजी संस्करण १९५८

प्रथम हिन्दी संस्करण १९५३

द्वितीय हिन्दी संस्करण १९५४

तृतीय हिन्दी संस्करण १९५७

चतुर्थ हिन्दी संस्करण १९५८

पंचम हिन्दी संस्करण १९६०

अनुवादक
नरोत्तम भागव

सम्पादक
प्रभदयाल मेहरोत्रा

(C) १९६०, द अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
लखनऊ

मुद्रक
द अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
लखनऊ

अनुवादकीय

राजनीति-शास्त्र के शिक्षा और विद्याधियाम डा० आगीवाल्म् के ग्रन्थ 'पोनिटिकल थ्योरी' का बहुत मान है। यह ग्रन्थ लेखक की महान् प्रतिभा और विस्तृत ज्ञान का अच्छा प्रतिबिम्ब है। डा० आगीवाल्म् की विद्वत्ता का लाहा देग और विन्नेगमें सबन सभी साक्षर मानते हैं। अतः त विन्नेग हाने के अतिरिक्त वह एक आत्मा व्यक्ति भी हैं। स्वनम्र चिन्तन और मादाजीवन उनके स्वभाव का अंग हैं। 'पोनिटिकल थ्योरी' में उन्होंने विषय का विश्लेषण किया है विषय पर विज्ञान का मत लेकर उनकी मत्पना को तक की कनौनी पर रखा है और फिर स्वयं अपने निगम किये हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य केवल यही नहीं है कि विद्यार्थी इस पाठ पर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाय प्रतियु यह भी है कि महान् विचारों के सम्पर्क में आकर विद्यार्थी भी स्वतन्त्र चिन्तन में विचार करने लगे और स्वयं सिद्धि के बजाय एक सिद्धि की आदत डालें। मन्तन चिन्तन की शैली का अनवरण करके हम मा महान् हा सकत हैं। मौनिकता ही महान विचारों की शैली है वह हमारी भी हो सकती है।

इसी मुरप्रसिद्ध ग्रन्थ 'पोनिटिकल थ्योरी' का हिन्दी सम्करण राजनीति-शास्त्र पाठ्य के हाथ में है। अनुवाद करना सरल कार्य न था। विश्वविद्यालयों की गिना तथा परीक्षा का माध्यम हिन्दी हो जान के कारण 'पोनिटिकल थ्योरी' का हिन्दी संस्करण का मांग दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी। इसी मांग को पूरा करने के लिए दीर्घ और कठिन परिश्रम के बाद 'राजनीति-शास्त्र' प्रकाशित हुआ। इसके अब तक चार संस्करण हाया-हाय बिक चुके हैं। यह पंचम संस्करण है जो पहले के संस्करणों से कहा अधिक गुड सरल और सुगोप है। हरेक छात्र इस पुस्तक का पाठ कर विषय को अच्छी तरह समझ सकता है। विद्याधियाम के लाभ के लिए टिप्पणियाँ और अनुक्रमिका भी दे दी गयी हैं।

मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक अध्ययनार्थी विद्यार्थियों के लिए तथा राजनीति शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक पाठकों के लिए बड़ा काम की ओर उपयोगी सिद्ध होगी।

१८ जुलाई १९१०

—नरोत्तम भागव

विषय-सूची

अध्याय

पृष्ठ

- * १ राजनीति शास्त्र का स्वरूप विस्तार और पद्धतियाँ
(The Nature Scope and Methods of
Political Science)

पारिभाषिक शब्दावली १ राजनीतिक चिन्तन का महत्त्व ५
राजनीति शास्त्र का विस्तार और अर्थ शास्त्र में सम्बंध ६
राजनीति शास्त्र की पद्धतियाँ १५।

१ २१

- २ राज्य का स्वरूप (The Nature of the State)

राज्य की परिभाषाएँ २३ राज्य समाज सरकार राष्ट्र और
राष्ट्रीयता में भेद २४ राज्य के सम्बन्ध में एकतरफा या द्विपक्षीय
विचार २९ राज्य की स्थापना में व्याख्या ३१ राज्य के मूल
तत्व ३६ राज्य का जैविक सिद्धान्त ५८ महत्त्व और
सीमाएँ ४२।

२२ ४३

- ३ राज्य की उत्पत्ति (The Origin of the State)

राज्य की प्रारम्भिक या प्रागैतिहासीय उत्पत्ति ४४ देवता उत्पत्ति
सिद्धान्त ४५ सामाजिक सविन्य सिद्धान्त ४८ बल-सिद्धान्त
४४ विवृत्तता एक मातृसत्ताक सिद्धान्त ५६ इतिहासीय
या विनासकारी सिद्धान्त ५९ राज्य निमाण क क्षण ६०।

४४ ६४

- ४ राज्य का इतिहासीय विकास (The Historical
Development of the State)

पूर्व का प्रारम्भिक साम्राज्य ६५ मूलतः नगर राज्य ६६
राम का विनाश साम्राज्य ६७ सामान्तिक राज्य ६९ सामान्य
राष्ट्रीयता उदय और उसका अर्थ ७० आधुनिक युग का राष्ट्रीय
राज्य ७१ विनाश ७४ राज्य का विकास की सामान्य रूप
रेखा ७५।

६५ ७७

- ५ हाब्स लॉक और रूसो का सामाजिक सविदा सिद्धांत
(The Social Contract Theory of Hobbes
Locke and Rousseau) ७८ १९
- प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक विधि ७८ सविदा का स्वरूप
८० सम्प्रभुता ८२ राज्य और सरकार के प्रकार ८५
व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकार सिद्धान्त ८८ हाब्स लॉक
और रूसो के सिद्धान्ताम सत्यता अथ ९ लोकसम्मतिक
सिद्धान्त ९२ लोकसम्मतिकी विशेषताएँ ९५ लोकसम्मतिक
सिद्धान्तम सत्यान ९७।
- ६ राज्य का उद्देश्य और औचित्य (The End and
Justification of the State) १०० ११९
- अराजकतावादी दृष्टिकोण १०० धार्मिक दृष्टिकोण १ ३
नवनि सिद्धान्त १०४ सविदा सिद्धांतका दृष्टिकोण १ ६
उपयोगितावादी दृष्टिकोण १०७ समरुतकी आवश्यकता १०९
मनार्थनानिक दृष्टिकोण १ ९ आत्मताकी दृष्टिकोण ११
राज्यका उद्देश्य ११२ राज्य साम्य है या साधन? ११६।
- ७ राज्य का उचित कार्य-क्षेत्र (The Proper Sphere
of State Action) १२० १४७
- व्यक्तिवादी सिद्धान्त १२१ समाजवादी सिद्धान्त १२९
व्यक्तिवादी और समाजवादी सिद्धांतका मूल्यांकन १३१
आदर्शवादी सिद्धान्त १३२ गायोवादी अयनीति १३७ अर्थ
सिद्धान्त १४० सांख्यिक बन्धन १४० राजकीय बायोका
वर्गीकरण १४५।
- भारत में सामाजिक विधान (Social Legislation
in India) १४८ १५३
- समाजका समाजवादी स्वरूप १५२।
- समाजवाद का मूल्यांकन (Appreciation of
Socialism) १५४ १६२
- समाजवादी अर्थ रूपता १५६ परिभाषा १५५ समाजवादी
विचारका विकास १५५ समाजवादी तथा अन्य व्यवस्थाएँ

१२६ समानवाक्का कायक्रम १५ समानवाक्का नाम १५३
समानवाक्का का कर्त्तृत्वात् १५८ समानवाक्का मूल १५०।

८ अधिकार-सम्बन्धी सिद्धान्त Theories of Rights) १६० १८१

नैतिक अधिकार सिद्धान्त १६४ अधिकार सिद्धान्त
१७० अधिकार का द्वािहामीय सिद्धान्त ३४ अधिकार का
सामाजिक कल्याण या सामाजिक कल्याण सिद्धान्त १७५
अधिकार का आत्मिक या व्यक्तिव सिद्धान्त १७३।

९ विविष्ट अधिकार (Particular Rights) १८२ २२८

जावनका अधिकार १८२ जावनक अधिकारम निहित कारण
१८ स्वतन्त्रता अधिकार १९० स्वतन्त्रता का अर्थ १९०
स्वतन्त्रता का विभाग १९२ स्वतन्त्रता और सत्ता १९६
स्वाधीनता और विधि १९३ स्वतन्त्रता और समानता १९९
स्वतन्त्रता का राजकाय नियमन २०१ सन्तति का अधिकार
२२०।

१० सम्प्रभुता (Sovereignty) २२९ २४९

सम्प्रभुता की परिभाषा २२९ सम्प्रभुता का विभाग २३१
सम्प्रभुता के विभिन्न अर्थ २४६ सम्प्रभुता की स्थिति २४९
और जोन्टिन का सम्प्रभुता सम्बन्धी सिद्धान्त २४२।

११ राज्या तथा संविधाना का वर्गीकरण (Classification of States and Constitutions) २५० २६९

राजा का वर्गीकरण २५० संविधान का स्वरूप तथा परिभाषा
२५३ संविधान के भेद २५५ राजा तथा राजा का राज
२६३ प्रधान २६८।

१२ सरकार का संगठन (Organization of Government) २७० २८६

विधायिका २७० सरकार का प्रशासनिक विभाग द्वारा बनाया
गया विधायिका २७१, जनता का विधि नियम २७३
विधायिका का संगठन ३ राजा और राजा का अधिकार ३५,

विधायिका के अधिकार और कृतव्य २७७ विधायिकाकी कार्य प्रणाली २७९ समिति प्रणाली २८१ ससदकी अवधि २८१ विधायकाका वेतन २८२ विधायकोंके विभागाधिकार २८३ विधायिका और नायपालिकाके पारस्परिक सम्बन्ध २८४ निर्वाचक-मण्डल २८४ मताधिकारके सिद्धान्त २८९ राजनीतिक दल २९६ नायपालिका ३ ३ मन्त्रिमण्डलीय सत्तीय अथवा उत्तरदायी कार्यपालिका ३१० अध्यक्षात्मक नायपालिका ३१२ अध्यक्षतात्मक सरकारके गुण ३१७ दोष ३१८ एकात्मक तथा बहुल कार्यपालिका ३१३ कार्यपालिकाकी कार्यविधि २१४ नायपालिकाकी दक्षिण और नाय ३१५ प्रशासकाय सेवा ३२१ नायपालिका ३३४ पारितोषिक पूर्ववर्णना सिद्धान्त २४९।

१३ लोकतन्त्र (Democracy)

३५७ ३९५

लोकतन्त्र पर पुनर्निवार ३५७ लोकतन्त्रका अर्थ ३५९ लोकतन्त्र के प्रत्यक्ष और प्रतिनिधिमूलक स्वरूप ३६० सरकारके प्रकार ३६१ लोकतन्त्रका व्यापक अर्थ २६२ लोकतन्त्र के समर्थनमें शास्त्रीय तर्क ३६३ लोकतन्त्रके विरुद्ध तर्क ३६७ लोकतन्त्रकी आलोचनाओंका मूल्यांकन ३७४ उपचार और निष्कर्ष ३७९ लोकतन्त्रकी मर्यादता के लिए आवश्यक बातें २८४ लोकमत पर दिप्पणी ३८७।

१४ स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government) ३९६ ४०६

स्थानीय स्वशासनका अर्थ २९६ स्थानीय स्वशासनकी व्याख्या ३९८ स्थानीय स्वशासनका महत्त्व ३९८ स्थानीय शासनका ढाँचा ४०१ स्थानीय शासनके नाय ४०४।

१५ लोक-कल्याणकारी राज्य (Welfare State) ४०७ ४१२

कल्याणकारी राज्यका अर्थ ४०७ व्यक्तिवादी राज्य और कल्याणकारी राज्यमें अन्तर ४९ साम्यवाद का राज्य और कल्याणकारी राज्य में अन्तर ४९ व्यक्तिवाद और साम्यवाद में समझौता ४०९ कल्याणकारी राज्यकी विपत्तियाँ ४१०, भारत और कल्याणकारी राज्यकी धारणा ४१२।

राजनीति-शास्त्र का स्वरूप, विस्तार और पद्धतियाँ

(The Nature Scope and Methods of Political Science)

राज्य और सामन्ती समस्याओं का अध्ययन करने वाले विद्वानों को राजनीति-शास्त्र कहते हैं। पाश्चात्य देशों की राजनीतिक विचारधारा का आरम्भ प्राचीन यूनान के नगर राज्यों में हुआ था। वस था उसके साथ यूनानियों भा पहले राज्य और उसकी समस्याओं पर विचार करने लग पड़े पर उनकी विचारधारा में राजनीति के अनिश्चित धर्म बल्कि और अंधविश्वासों का समावेश था इसलिए प्रथम राजनीतिक विचारधारा का विकास विपुल राजनीति-शास्त्र के रूप में नहीं हो सका। राजनीति और धर्म इनके अधिक परस्पर घुल मिल पड़े कि राजनीति का अलग करके उस पर विचार हो नहीं किया गया। तब यह हुआ कि हम एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकसित करने का प्रयत्न न हो पाया। राजनीति ही नहीं समूचे समाज शास्त्र का धर्म-शास्त्र का भग समझा जाता था। यूनानियों ही सबसे पहले राजनीति-शास्त्र का धर्म-शास्त्र अंधविश्वास और काल्पनिक कथाओं से अलग करके उस में गूढ़ और व्यवस्थित विज्ञान के रूप में विकसित किया। अपने युक्तिमय (rational) और सामाजिक दृष्टिकोण के कारण यूनानी इन कामों लिए उपयुक्त भी थे।

प्रथम हिन्दुओं में आरम्भ में ही राजनीति धर्म-शास्त्र के अन्तर्गत आसक और शासिक विषयों में बहुत अधिक साक्षा और विचारों हैं। पर इन सब विषयों का मिलाकर भी सम्पूर्ण राजनीति-शास्त्र नहीं बन पाता। प्रथम प्रसिद्ध विचारों की नींव के अन्तर्गत और मात्र के अन्तर्गत (आणविक) न राज्य-विद्वानों को अपना शासन-विज्ञान के विषय पर कहा अधिक ध्यान दिया है।

पारिभाषिक शब्दावली (Terminology)

राजनीति-शास्त्र का अध्ययन आरम्भ करते ही हमारे सामने राजनीति राजनीति शास्त्र और तुलनात्मक सरकार जैसे शब्दों में गूढ़ सैद्धांतिक अथवा मानकी कठिनाई आता है। इन शब्दों की ठीक अर्थ जान बिना हम राज्य-शास्त्र की समस्याओं का अध्ययन करना नहीं कर सकेंगे। यद्यपि राजनीति विज्ञान का आरम्भ यूनान के प्राचीन इतिहास में है तथापि अपने वर्तमान रूप में यह एक आधुनिक विज्ञान ही है। इनमें

नया हाना चाहिए (A historical investigation of what the State has been an analytical study of what the State is and a politico-ethical discussion of what the State should be)।

सिजविक लिखते हैं कि राजनीति-दशानस असग राजनानि गाम्त्रम हम विविध काटिया या प्रकाराना अध्ययन करत हैं। पर इन कोटियाका आदग रूप होना कुछ जरूरी नहीं है। राजनीति शास्त्र समानताओं और असमानताओंको ध्याना है तथा व्यवस्था वर्गीकरण कार्य या प्रभावकी ध्यानबीन करता है।

वे राजनीति-ज्ञान (Political Philosophy) एक और गम्भीर है राजनीति-ज्ञान (Political Philosophy) जिसमें हम राज्यतत्त्वके अध्ययनमें भ्रम उत्पन्न होता है। कुछ अप्रज विचारक राजनीति-ज्ञानको राजनीति शास्त्र (Political Science) का प्रधान अंग मानते हैं। राजनीति-ज्ञान दर्शन शास्त्रकी एक शाखा है। दर्शन शास्त्र समस्त विषयोंका विवेचन करता है और राजनीति शास्त्र विश्वके एक अंग—राज्य—का। इस दृष्टिकोणका आधार यह विश्वास है कि दर्शन-शास्त्र समस्त ज्ञानका एकिकरण है। अतः राज्यके अध्ययनको उसका एक उप विभाग मानना चाहिए। इस दृष्टिकोण से हमारा मतभ्रम इसपर है कि वर्तमान युग विविध अध्ययन का युग है। इस युग की भाँति यह नहीं है कि समस्त मानवज्ञान का एक मानकर उसका अध्ययन किया जाय। युग की भाँति तो यह है कि मानवज्ञान के विविध विषयों का अलग-अलग विविध अध्ययन कर उनका विकास किया जाय। अन्य विषयों की तरह राजनीतिक चिन्तन के विकास के लिए भी विविध अध्ययन और सीमा निर्धारण की आवश्यकता है।

✓ ज. एच. हेलबेल ने अपने ग्रन्थ वर्तमान राजनीतिक चिन्तनकी प्रमुख धाराएँ (Main Currents in Modern Political Thought) में ठीक ही कहा है कि राजनीति-ज्ञानका सम्बन्ध राजनीतिक सम्प्राप्ति उतना नहीं है जितना उन सम्प्राप्ति निहित विचारों और आकांक्षाओं का। उन्हींके सम्बन्ध में 'राजनीति-ज्ञानकी' निष्कर्षा इसमें कहा है कि तम्य कैसे प्रतिष्ठित हान हैं जितनी इसमें कि क्या घटित होता है और क्या घटित होता है?

मारोपके लक्षकों प्रायः राजनीति-शास्त्र तथा राज्य शास्त्र या राजनीति-ज्ञान में अन्तर किया है यद्यपि इस विभक्तिका स्पष्ट निश्चय कर सकना कठिन है। अपने वर्तमान प्रयोग में राजनीति-ज्ञानकी अपभवा राजनीति-शास्त्र अधिक व्यापक है और उसका अर्थ भी अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित है।

राजनीति-ज्ञान राज्य की मूलभूत समस्याओं का परिचय और अधिक प्रश्नों तथा राजनीतिक आदर्शोंका विवेचन करता है। एक प्रकारसे यह राजनीति-शास्त्रसे प्राचीन भी है क्योंकि इसकी मौलिक भावनाएँ ही राजनीति-शास्त्र की आधार हैं। फिर भी यदि राजनीति-दर्शनका कल्पनामय और अस्पष्ट नही बन जाना है तो इस राजनीति-शास्त्रकी विचार-विभूतिका उपयोग करना ही

होया। राजनीति-शास्त्र और वास्तविक राजनीतिक परिस्थितियोंका पारस्परिक प्रभाव एक दूसरे पर बराबर पड़ता रहता है।

४ राज्य सिद्धान्त (Theory of State) राजनीति-ज्ञानकी अपना राज्य सिद्धान्त नाम अधिक उपयुक्त है यद्यपि ज्ञानका विषय एक ही है। राजनीति ज्ञान का सम्बन्ध सिद्धान्तों विचारों और आकांक्षाओंसे है। यह भावपूर्ण और कल्पनामय (abstract and speculative) होने के कारण स्पष्ट और मुनिचित नहीं है। पर 'राज्य-सिद्धान्त' अथवा 'राजनीति शास्त्र' अधिक स्पष्ट और मुनिचित है। 'राज्य सिद्धान्त' न तो विभिन्न सरकारोंके स्वरूप-भेदों का अध्ययन है और न सरकारोंका तुलनात्मक अध्ययन। यह काम तो राजनीति-शास्त्रकी उम्र गालाका है जिस तुलनात्मक राजनीति कहते हैं। इसी प्रकार राज्य-सिद्धान्त राज्य अथवा विधियोंके इतिहासीय विकासका अध्ययन भी नहीं है। यह आग्य राज्यके चित्रणका प्रयत्न भी नहीं है। यह शासन-कला या प्रशासनका अध्ययन भी नहीं है। यद्यपि राज्य सिद्धान्तका समझनेके लिए इन सब विषयोंका साधारण ज्ञान आवश्यक है पर इसका सम्बन्ध किसी राज्य विभागके स्वरूप-भेदों अथवा कार्योंसे नहीं है। यह शासन मूलभूत तत्त्वोंका अध्ययन करता है और इनका आधार राज्यके अतीत और वर्तमान स्वरूपोंका अध्ययन है।

राजनीतिक चिन्तनका महत्त्व (Value of Political Thought)

आजकल कुछ मात्रा में राजनीति शास्त्रक अध्ययनका महत्त्व कम करनेका प्रवृत्ति है। वे लोग राजनीति-शास्त्रका भावपूर्ण (abstract) और अनुपयोगी विषय मानकर उसका अध्ययन व्यर्थ बताना हैं। राजनीति-शास्त्रके अध्ययनका महत्त्व कम करनेकी इस प्रवृत्ति का कारण सिद्धान्त-शास्त्रका मूलोत्पत्ति ज्ञानकी अज्ञात है। और यह अज्ञान आजके जगत्वासी मानव और औद्योगिक समाजकी विपत्ति है। आइए बातों के इस अध्ययन हम मर्मगत हैं कि सामाजिक जीवनके समस्त महत्त्वक प्रति ध्यावहारिक दृष्टिकोण रखने हुए राजनीति शास्त्रका अध्ययन सत्य और सारपूर्ण ज्ञान ही है।

अपना पुस्तक राजनीतिक चिन्तनका इतिहास (History of Political Thoughts) में प्राथमिक मूल ने इन मर्मोंका उद्घाटन किया है जो राजनीति-शास्त्रक अध्ययनका एक और विषय विषय जाते हैं। इन तर्कोंकी-विरुद्ध हृदय सम्पन्न करेंगे। राजनीति-शास्त्रक अध्ययनके विरुद्ध कहा जाता है कि राजनीति शास्त्रका सम्बन्ध वास्तविकताओं से कम रहता है। व्यवहारमें इसका प्रयोग ही नहीं होता करना यह वही कल्पनाओं और आदर्शों (absolute concepts) का ही विवेचन करता है पर निश्चित और विचारपूर्ण प्रमाणों निश्चित उत्तर देने में असमर्थ और बहुधा ध्यावहारिक राजनीतिक लिए धातक है। राजनीति-शास्त्रके विरुद्ध इसमें

की इस मुश्किलका मसीमांति प्रयोग कर सकते हैं कि इसमें कुछ भी महीन सत्य और सारपूर्ण नहीं है।

ऊपर निम्ने आरोपका खण्डन करनेके लिए राजनीति-शास्त्रके अध्ययनकी कुछ उपयोगिताओंकी चर्चा भी जरूरी है। राजनीति शास्त्रका अध्ययन राजनीतिक गण्डोको सटीक और सुनिश्चित अर्थ देता है और हमारे विचार को स्पष्ट और निश्चित बनाता है। इससे इतिहासकी व्याख्याम सहायता मिलती है। विगत राजनीतिक विचारधाराओंके ज्ञानसे वर्तमान राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंको समझनेमें बहुत बड़ी सहायता मिलती है। रचनात्मक राजनीतिक प्रगति (constructive political progress) का आधार ऐसा व्यापक राजनीति-शास्त्र ही है जिसका प्रयोग वर्तमान परिस्थितियों और आवश्यकताओंमें किया जा सके। राजनीतिक चिंतन उच्च प्रकारकी बौद्धिक सफलताका प्रतीक है। अन्तर्मे यदि मानव कल्पना-शक्तिसे सरकारका संगठन और विकास सम्भव है तो राजनीति-शास्त्रके अध्ययनसे अधिक अन्य कोई भी अध्ययन उपयोगी नहीं है। इस प्रकार राजनीति शास्त्र नितान्त व्यावहारिक और महत्वपूर्ण है। यह ठोस और व्यावहारिक विषयका सैद्धान्तिक अध्ययन है।

यह आरोप सही नहीं है कि राजनीति-शास्त्र वास्तविक परिस्थितियोंसे अत्यधिक परे है। हम शुद्ध सटीक परिभाषा (accurate definition) और गम्भीर विश्लेषणकी आवश्यकता है। विवेकपूर्ण राज्य-मन्यता (statesmanship) को अस्पष्ट और प्रायः परस्पर विरोधी सहज प्रेरणाओं (intuitions) से कुछ और अधिक को जल्दत है। उसे चाहिए गम्भीर ज्ञान (sound philosophy) और नैतिक मूल्योंकी संयोजना (scheme of moral values) और राजनीति शास्त्र हम यही देनेका प्रयास करता है। राज्य-मन्यता मुख्यतः एक नैतिक कार्य (moral task) है। चूँकि राजनीतिमें कुछ सैद्धान्तिक विवेकक विद्या-दम्भी हो गये हैं इस कारण हमें राजनीति-शास्त्रकी निन्दा करना उचित नहीं है। सम्भावित राजनीति-शास्त्र हमें स्पष्ट उत्तर नही दे सकता। इससे राजनीतिक विवादोंमें भ्रम भले ही न हो पर इससे कमसे कम पारस्परिक सम्मान और सहनशीलतामें सहायता तो मिलती ही है। यदि यह सत्य है कि जहाँ व्यवहार-मूल है वहाँ सिद्धान्त-मूल भी होना चाहिए तो व्यावहारिक राजनीतिके लिए राजनीति शास्त्रका अध्ययन नितान्त उपयोगी है।

राजनीति शास्त्रका विस्तार और अन्य शास्त्रोंसे सम्बन्ध (Scope of Political Science and its Relation to Allied Sciences)

ग्रीनसर गुडनाउ का दावा है कि राजनीति शास्त्रके निम्नलिखित तीन स्पष्ट भाग हैं—
(१) राज्येष्टाकी अभिव्यक्ति (The expression of the State will)

(२) अग्रिम्यक्त राज्येन्द्राकी विषय-वस्तु (The contents of the State will as expressed) और

(३) राज्येन्द्राका कार्यान्वय (The execution of the State will)।

यहूँ भागम राज्य सिद्धान्त और व समी विधिक परे राति रिवाज (extra legal customs) और सम्पूर्ण सामिल हैं जो किसी देशकी राजनीतिक पद्धतियों प्रभावित करती हैं। दूसरा भाग वास्तुतः विधिका हा प्रयत्न है। साक्ष्य सम्बन्ध शासन-व्यवस्थाके सहो सिद्धान्तोंके नियारण और उनके व्यावहारिक प्रयोगके हैं।

सुक्ष्म राजनीति शास्त्रके सम्बन्धम प्रोफ़ेसर गढ़नाउ की धारणा कुछ सही है। उनके विवेचनम राज्यके स्वरूप और उसकी विशेषताओं तथा अधिकारों और कृतव्यक्ति पारस्परिक सम्बन्ध जैसे प्रश्नोंके बार्ह स्थान नही है।

राजनीति-शास्त्रके अतिरिक्त अन्य शास्त्र मा मनष्यक सामाजिक जीवनस सम्बन्ध रखत हैं और इसलिए राजनीति-शास्त्र अन्य शास्त्रास निरपेक्ष नही है। मानव-मात्र के पारम्परिक सम्बन्धका विवेचन करनेवाले अनेक शास्त्रास से एक होनेके कारण राजनीति-शास्त्रका सम्बन्ध अन्य सामाजिक शास्त्रासि बन्ध रहता है। इसीलिए पॉलब्रन का कहना है कि 'राजनीति-शास्त्रका गहरा सम्बन्ध है अर्थशास्त्रके साथ विधिक साथ चाहे वह प्राकृतिक विधान हो या संहिताबद्ध विधि (Law either natural or positive) हो या नागरिकके पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन करती है इतिहासके साथ जो इस आशयक सत्य देता है राजन-शास्त्र और विद्यपत नीति शास्त्रके साथ जिससे इसे अपने कुछ सिद्धान्त प्राप्त हात हैं (२३ २९)।

१ राजनीति-शास्त्र और इतिहास राजनीति-शास्त्र और इतिहासका आपस में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसका अन्वय इस एक वाक्यसे लगाया जा सकता है कि 'इतिहास बिना राजनीति है राजनीति वतमान इतिहास है।' साक्ष्य का कहना है 'राजनीति-शास्त्रके बिना इतिहास निष्फल है इतिहासके बिना राजनीति-शास्त्र निरुल है (History without Politics has no fruit, Politics without History has no root)। यही फिर कहते हैं 'इतिहासके उदार प्रभावके बिना राजनीति बर्बर है और इतिहास राजनीतिके साथ अपना सम्बन्ध भूला देनेसे साहित्य मात्र रह जाता है। इतिहास राजनीति-शास्त्रका वह सत्य देता है जिसके आधार पर राजनीति-शास्त्र विनियमित हाता है। सीने के कथनानुसार इतिहास और राजनीति शास्त्र अन्तमें एक सम हो जायगा। पर यह व्यवसम्भव नहीं सो कठिन अवयव जान पड़ता है। यद्यपि दोनों विद्याएँ एक दूसरे पर निर्भर करती हैं और एक दूसरेकी पूरक हैं पर फिर भी दोनों में कुछ मौलिक अन्तर है।

(क) विवेचना-पद्धतिका अन्तर (Method of Treatment) इतिहास वननात्मक (narrative) होता है और उसमें घटनाएँ बाल-वनके अनुसार ही जानी हैं पर राजनीति-शास्त्र केवल उन्हीं घटनाओंको मठा है जिनका सम्बन्ध राजनीतिके विकाससे होता है। राजनीति-शास्त्रकी

पद्धति चिन्तनमूसक है। इतिहास द्वारा दी गयी सामग्रीका उपयोग करते हुए यह सामान्य विधियाँ और सिद्धान्तोंकी खोज करता है।

(ग) विस्तारका अन्तर (Difference in scope) इतिहासका क्षेत्र अधिक व्यापक है क्योंकि यह सामाजिक जीवनके आर्थिक धार्मिक तथा सैनिक पहलुओं पर विचार करता है। पर राजनीति शास्त्रकी इन विषयोंमें वहीं तक रुचि है जहां तक ये विषय राज्यके स्वरूप और राजनीतिक नियंत्रणके विकास (development of political control) पर प्रकाश डालते हैं।

(घ) उद्देश्यका अन्तर (Difference in their end) इतिहास राजनीति शास्त्रकी अपेक्षा बहुत कम दार्शनिक है। इतिहासका सम्बन्ध ठोस तथ्योंमें रहता है। पर राजनीति-शास्त्रका सम्बन्ध आदर्शों और मूल्य प्रकारान्तरों (abstract types) से रहता है। राजनीति-शास्त्र बतलाता है कि राज्यका कैसा होना चाहिए पर इतिहास बतलाना है कि राज्य इस समय कैसा है और पहले कैसा था।

निष्कर्ष यह है कि राजनीति-शास्त्रको इतिहासका उपयोग उसीका अतिक्रमण (to transcend it) कर जानने लिए करना होता है। इतिहासका काम नतिक नियम देना नहीं है।¹ पर राजनीति-शास्त्रके विज्ञानका ऐसे निर्णय देने ही हावे है। यहाँ राजनीति-शास्त्र धर्म-शास्त्रसे मिल जाता है और अर्थ शास्त्र तथा समाज शास्त्रमें अलग हो जाता है।

✓ माइक्राइट्स का कहना है कि राजनीति-शास्त्र इतिहास और राजनीति अतीत और वर्तमानके बीचकी चीज है। एकस तथ्योंको पाकर वह उन तथ्योंका प्रयोग दूसरे पर करता है।

२ राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र (Political Science and Economics) राजनीति-शास्त्र और अर्थ-शास्त्रका सम्बन्ध बड़ा नज़दीक का है। दोनों का एक दूसरे पर काफी प्रभाव पड़ता है। बहुत अर्थों तक दोनोंका विषय क्षेत्र भी एक ही है। संपत्तिका उत्पादन और वितरण राज्यकी विधियोंसे प्रभावित होता है। राज्यके भीतर सारे आर्थिक कार्य उन नियमोंके अनुसार और उन धर्मोंके अनुकूल होते हैं जिन्हें राज्य अपनी विधियाँ द्वारा निश्चित करता है। दूसरी ओर राजनीतिक गतिविधियाँ पर आर्थिक कारणोंका गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे आर्थिक जीवन पर राजनीतिक परिस्थितियाँ और विचारोंका प्रभाव पड़ता है। आजकलकी राजनीतिकी कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नोंका सीधा सम्बन्ध अर्थ शास्त्रमें है—जैसे प्रगल्भ-विधि (tariff

¹ सिज़विक के दार्शनिक राजनीतिक संस्थाओंके अन्तिम उद्देश्य या परिणाम और उनसे सन्तुष्ट मन-बुद्धे और सही-गलतके मानदण्डोंका निर्णय इतिहास नहीं करता।

laws) श्रमिक-विधि (labour legislation) और शासन-स्वामित्व (government ownership) व ग्रन्थ। जेना विद्याभ्यास सम्बन्ध इतना गहरा है कि एक गतात्मने पहलके वैधानिक लेखक अथ-शास्त्रको राजनीति शास्त्रकी शायदा ही मानत थ। अथ शास्त्रका नाम ही राजनीतिक अथ-शास्त्र (Political Economy) रखा गया था। अठारहवा गतात्मने तक अथ-शास्त्रका राजनीतिज्ञता (Statesmanship) का अंग माना जाता था।

यद्यपि दोनों शास्त्रोंका बड़ा नजदीकी सम्बन्ध है तथापि दोनोंमें कुछ मौलिक अन्तर है। इस अन्तरकी खोज करते हुए आइवर वाउन का कहना है कि अथ शास्त्र का सम्बन्ध वस्तुओंमें है और राजनीति-शास्त्रका सम्बन्ध व्यक्तियोंमें है। एक का सम्बन्ध भावों और दामों (prices) में है और दूसरेका सम्बन्ध मान और महत्व (values) में है। यदि अथ शास्त्र व्यक्तियोंमें सम्बन्ध रखता है तो व्यक्तियोंके नाते तथा वस्तु उन वस्तुओंके नाते जिन्हें वे उत्पन्न करते बचन और उपयोगमें लाते हैं। राजनीति-शास्त्र भी वस्तुओं पर विचार करता है पर बस उसका ह्म तक ज़िम हूँ तक वस्तुओंका सम्बन्ध मनुष्य और नस्लगत है। यही कारण है कि राजनीति शास्त्र एक सन्नानिक शास्त्र-परक (normative science) विज्ञान हा जाता है पर अथशास्त्र एक व्याख्यात्मक विज्ञान (descriptive science) ही रह जाता है। किसी ने विनोम ठीक ही कहा है कि अथ-शास्त्री बह व्यक्ति है जो दाम तो सब वस्तुओंका जानता है पर महत्व एक का भी नहा।

इस युगका यह एक गम लक्षण है कि अथ-शास्त्र उमरातर रूपमें एक शास्त्र परक सन्नानिक विज्ञान (normative science) बनता जा रहा है और सम्पत्तिक उत्पादनका ही विवेचन न करके उसके उचित वितरणका भी विवेचन करने लगा है।

३ राजनीति शास्त्र और समाज शास्त्र (Political Science and Sociology) जो स्थान समाज-शास्त्रका मानसिक विभागमें है वही स्थान समाज-शास्त्रका सामाजिक विज्ञाना म है। परस्पर सम्बन्धित विभिन्न विभागों की विषय सामग्री का एकीकरण ही शास्त्र का उद्देश्य है। इस प्रकार सामाजिक व्यापकता जेनोकी विभागता है। राजनीति-शास्त्र समाज-शास्त्रकी अपेक्षा भूतीय है और साधारणतया समाज-शास्त्रका उपाग है। समाज-शास्त्र मौलिक सामाजिक विज्ञान है। समाज-शास्त्रका सब इतना अधिक ध्यान है कि आजकल के लेखक उसका राजनीतिक पक्षका अलग करके उसका सामाजिक सामाजिक जीवनक कुछ पहलुओं तक ही सीमित कर जेना पसन्द करते हैं। आखिर गिडिंग का कहना है कि 'उन सामाजिक सामाजिक विज्ञान विज्ञानों में समाज-शास्त्रक प्राथमिक विज्ञानोंका भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया है वसा ही है जैसे उन सामाजिक विज्ञानों या परमोशास्त्रिक विज्ञानोंका जिनमें जिनमें न्यूटन के गति विज्ञानका ज्ञान न हा।'

- (क) समाज शास्त्र अपने अधिकतम व्यापक अर्थ में समाज के सभी स्वरूपों और पक्षों का अध्ययन है जबकि राजनीति शास्त्र केवल राज्य शासन व सरकार का अध्ययन है। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि समाज शास्त्र मनुष्य के सभी सामाजिक सम्बन्धों का विवेचन करता है जबकि राजनीति-शास्त्र मनुष्य के केवल राजनीतिक सम्बन्धों का ही विवेचन करता है। प्रारम्भिक अवस्था के राज्य के बारे में यह भ्रम ही सच नहीं है पर वर्तमान राज्य के बारे में यह बिल्कुल सच है। राज्य अपनी प्रारम्भिक अवस्थाओं में राजनीतिक संस्थाओं की अपेक्षा सामाजिक संस्था अधिक था। गिन्ट्वास्ट के शब्दों में समाज शास्त्र समाज का विज्ञान है राजनीति-शास्त्र राज्य अथवा राजनीतिक समाज का विज्ञान है। समाज-शास्त्र मनुष्य का एक सामाजिक प्राणी के रूप में अध्ययन करता है और चूंकि राजनीतिक संगठन एक विशेष प्रकार का सामाजिक संगठन है इसलिये राजनीति-शास्त्र समाज-शास्त्र की अपेक्षा अधिक विनिष्ट शास्त्र है। या जैसा कि केनेन बर्ग ने कहा है 'जबकि समाज शास्त्र में विभिन्न वर्गों और समाजों का विवेचन होता है राजनीति-शास्त्र में एक विषय सच अर्थात् राज्य का विवेचन होता है।
- (ख) समाज-शास्त्र समस्त समुदायों अथवा असंगठित समुदायों का भी अध्ययन करता है। पर राजनीति-शास्त्र का सम्बन्ध केवल संगठित समाज से ही रहता है। यह केवल ऐसे समाजों का ही अध्ययन करता है जिन पर राजनीतिक संगठन का प्रभाव पड़ चुका होता है। इस प्रकार राजनीति-शास्त्र का जन्म समाज-शास्त्र के बाद हुआ है।
- (ग) समाज-शास्त्र नागरिकों के अधिक (legal) या दबिब साध्य (coercive) सम्बन्धों के साथ-साथ परम्पराओं आचारों (customs manners) पर तथा आर्थिक जीवन के विकास का भी अध्ययन करता है। राजनीति-शास्त्र में नागरिकों के अधिक सम्बन्धों की ही विवेचना होती है।
- (घ) राजनीति-शास्त्र में मनुष्यों के जानबूझकर किये गये कार्यों का ही अध्ययन होता है। पर समाज-शास्त्र इसके साथ-साथ अनजान में किये गये कार्यों का भी विवेचन करता है।
- (च) राजनीति-शास्त्र का आरम्भ मनुष्य को राजनीतिक प्राणी मानकर होता है। पर समाज-शास्त्र इसके पहले की स्थिति का विवेचन करते बतलाता है कि मनुष्य कैसे और क्यों राजनीतिक प्राणी बन गया।
- (छ) समाज-शास्त्र केवल इस बात का अध्ययन करता है कि क्या हो चुका है और क्या हो रहा है। क्या होना चाहिए इसका अध्ययन यह नहीं करता। राजनीति-शास्त्र हमने हम अपने एक पहलू में इस बात का

विवेचन करता है कि क्या किया जाना चाहिए।^१

४ राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्र या नीति शास्त्र राजनीति शास्त्रम राजनीतिक व्यवस्थाका और नीतिशास्त्र या आचार-शास्त्र (Ethics) में नैतिक व्यवस्थाका विवेचन होता है। दोनों ही में 'याम-अन्याय' उचित और अनुचित का विचार होता है। दोनोंका सम्बन्ध इतना गहरा है कि जिन राजनीति शास्त्रियों आचार या नीति-शास्त्रकी ही एक शाखा मानते थे। उनका विश्वास था कि राज्यको नागरिकोंको मङ्गुणोंकी शिक्षा देना चाहिए। प्लेटो से अरस्तू मुख्यतः इस बातमें आग माने जाते हैं कि उन्होंने राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्रको अलग-अलग कर दिया। पर उन्होंने राजनीति-शास्त्र और नीति-शास्त्र में जो अन्तर किया वह विषय (substance) का न होकर व्याख्या पद्धति या रीति (methodology) का ही है। अरस्तू भी राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्रमें बहुत नज़दीकी पारस्परिक सम्बन्ध मानते हैं। और राजनीतिक प्रश्नों पर मनुष्यके उच्चतम नैतिक निष्पत्ति का प्रभाव पड़ने देते हैं। उनकी सम्मतिमें राज्यका उद्देश्य सावजनिक कल्याण या अच्छा जीवन है। मैकियावेली (Machiavelli) पश्चिमके प्रथम प्रसिद्ध लेखक हैं जिन्होंने राजनीति शास्त्रको स्पष्ट आचार-शास्त्रसे अलग कर दिया। उनके अनुसार धर्म और नैतिकता (religion and morality) राज्यके नियामक (masters) तो किसी प्रकार हैं ही नहीं बल्कि वे विवक्षणीय पथनिर्देशक भी नहीं हैं। वे केवल उपयोगी सेवक और एजेंट हैं।

आधुनिक विचारधारा सामान्यतः राजनीति-शास्त्र और आचार शास्त्रमें धनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखनेके पक्षमें है।^२ लाइ एक्न तो यहाँ तक कहते हैं कि यह पता लगाना महत्वपूर्ण नहीं है कि सरकारें क्या निर्धारित (prescribe) करती हैं बल्कि यह कि सरकारोंको क्या निर्धारित करना चाहिए। एक दूसरेसे लेखकका कहना है कि राजनीति शास्त्र और आचार-शास्त्रको अलग करना दोनोंके लिए ही घातक है। आचार-शास्त्रमें अलग होकर राजनीति-शास्त्र बालूकी अस्थिर नींव पर टिकता है। आचार-शास्त्र राजनीति-शास्त्रसे अलग होकर सजीव और भाव-मूल्य हो जाता है। इसका परिणाम होता है मान मूल्योंका व्यावसायिकरण और उनकी विह्वलता। आइवर ब्राउन का मत है कि राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्रके बीच परिमाणवा अन्तर है गुणवा नहीं। क्योंकि 'राजनीति-शास्त्र आचार-शास्त्रका ही व्यापक रूप है। वह आग

हमस का मत जिनका उद्धरण फ़ननबर्ग ने दिया है इसके विपरीत है। उनका कहना है यह आरोप कि समाज शास्त्र हमें आदर्शोंके स्थान पर कारे तन्म्यों और पूषक महत्व और उपयोगिताके स्थान पर एकरूप सिद्धान्तोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं देता बल्कि एक इस वाक्यसे ही धिन्न-भिन्न किया जा सकता है कि 'एसा नहीं है हमारा मार्ग सामान्य भावसे हमारे भीतर सन्निध रहने हैं।

फ़ॉय के मतानुसार जो बात नैतिक दृष्टिसे अनुचित है वह कभी राजनीतिक दृष्टि से न्याय-संगत हो ही नहीं सकती। पर यह सबदा व्यावहारिक सत्य नहीं है।

कहते हैं आचार-शास्त्र राजनीति शास्त्र के बिना अपूर्ण है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक जीव है और वह एक दम अकेला रह ही नहीं सकता। नीति-शास्त्र के बिना राजनीति शास्त्र व्यर्थ है क्योंकि उसके अध्ययन और उसकी सफलता का मूल आधार हमारी नैतिक मान्यताओं की व्यवस्था 'याय अयाय उचित-अनुचित' की धारणाएँ हैं।

राजनीति-शास्त्र को मर्यादा गांधी की स्थायी देन राजनीति के आध्यात्मिकरण का उनका आग्रह है अर्थात् उनका इस बात पर जोर देना कि सत्य अहिंसा प्रेम और अपरिग्रह जैसे नैतिक और आध्यात्मिक नियमों का मनुष्यक सामाजिक जीवन में पालन हो।

राज्य के औचित्य का निणय अन्तम इस घानम होता है कि राज्य अपन लक्ष्यों और उद्देश्यों का कहा तक सफल होता है। इस प्रकार राजनीति शास्त्र और आचार-शास्त्र के सम्बन्ध में सामंजस्य होना जरूरी है। फिर भी दोनों शास्त्रों की विषय-सामग्री में बहुत अन्तर है। बैटलिन का कहना है कि आचार-शास्त्र में एक राजनीति यह सीखता है कि अनक मार्गों से कौन माग वाछनीय है और राजनीति शास्त्र उसे बनलाता है कि कौन माग अपनाता सुलभ होगा।

५. राजनीति शास्त्र और मनोविज्ञान (Political Science and Psychology) मनोविज्ञान अपन वर्तमान रूप में एक नवीन विज्ञान है। और उसके समर्थक मनुष्य के भ्यक्तित्व और सामाजिक जीवन के हर पहलू में मनोवैज्ञानिक तरीका का इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहे हैं। अर्नेस्ट बार्कर ने ठीक ही कहा है कि 'मनुष्य के क्रिया कलापों की गुंथी मुसझान में मनावज्ञानिक संकेतों का प्रयोग करना आजकल का एक फान हा गया है। यदि हमारे पूवज जविकीय दृष्टिकोण में (biologically) माचते थे तो अब हम मनावज्ञानिक ढंग में माचते हैं। इसमें काई सझ नह। कि आजकल राजनीति में जिम मनावज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग पर इतना जोर दिया जा रहा है वह बहुत उपयोगी है। हा सकता है कि राजनीति-शास्त्र इतना अधिक समय तक दशन-शास्त्र के प्रभाव में रहा है कि उसने मानव व्यवहार के तथ्यों की ओर काफी ध्यान न दिया है। हम अपने मस्तिष्क को अपन निरीक्षण के डरिये ही स्तूति देनी है। जब तक हम यह न समझें कि मनुष्य व्यक्तिगत रूप में और समाज के समूह के रूप में विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार करता है तब तक हम राजनीति-शास्त्र के अध्ययन में बहुत दूर गव नहीं जा सकते। मानव व्यवहार का ठीक-ठीक समझने लिए हम प्रकृति प्रवृत्ति अनुकरण और मुझाव आदि को जानना हागा। किसी भी सरकार का स्थायी और वास्तव में जनप्रिय बनने के लिए यह जरूरी है कि वह जनता के मानसिक बिचारों और नैतिक भावनाओं के प्रतिबिम्बित कर। मैं अपने सरकार का सुवा (Le Bon) के नाम से 'जातिकी मानसिक प्रवृत्ति' अनुरूप होना चाहिए (२२ ३८)। जन मनोविज्ञान जलित वर्ग का मनोविज्ञान तथा ममान की भावना आदि के अध्ययन में यारापम होनेवाली घटनाओं के समझने में सहायता मिलती है।

साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि राजनीति-शास्त्रम मनाविज्ञानक महत्व को बहुत अधिक बढ़ा बढ़ा कर रह जाना आसान है। वाकरन अपनी पुस्तक 'इंग्लैंड का राजनीतिक चिन्तन सस्तरसे आज तक' (Political Thought in England Spencer to Present Day) में मनाविज्ञानिक तरीके की मर्यादाओं का प्रकार बतलायी हैं—

(१) मनाविज्ञानिक विधियों का मूल्यांकन न तो करना है और न कर सकता है। मूल्यांकन तो नीति शास्त्रियों का काम है। मनाविज्ञानता वस्तुओं के वास्तविक रूप में सम्बन्ध रखता है और नीति शास्त्र उनका आदर्श रूप में। इसलिए राजनीति शास्त्र का मनोविज्ञानकी सहायता न लेकर नीति शास्त्रकी सहायता लनी चाहिए।

(२) मनाविज्ञान सम्य जीवनकी व्याख्या असम्य प्रवृत्तियोंकी व्याख्या करना चाहता है—उच्चतरकी निम्नतरमें। यह सही तरीका न तो मालूम पड़ता। निम्नतर की व्याख्या उच्चतर माध्यम में करना सही तरीका है। मनोम बन्दरका चित्रण करता है न कि बन्दर मनुष्यका। सम्य जीवनकी व्याख्या निहासके पहलू के फलस्वरूप जीवनकी परिस्थितियों में करना असम्य है। यह कहना अनुचित है कि बड़ा स्थिति विवक्षित है जिसकी प्रारम्भिक अवस्थाओं में हम पता है। प्रकृति प्रवृत्ति मुझसे और अनुकरणका अस्तित्व मनुष्यकी बुद्धिगत है। कोई भी बात आदि रूप में जानस अन्तिम या सबसे अच्छी नहीं हो जाता।

(३) मैकडूगल जो नामी मनाविज्ञानिक न यह तो बतलाया है कि समाज में काम करनेवाले प्रवृत्तियों के और कम शुरू हुई पर वह यह नहीं बताते कि इन प्रवृत्तियों का संचार समाज में कैसे होता है। वह एक ऐसी यात्रा की तैयारी और शोरम करने हुए दिखाया दत्त है जिसमें वह कभी धुक् नहीं करते (३)। सभी मनाविज्ञानिक तथ्यों का सफल करने का भी एक मौलिक प्रश्न यह रह जाता है कि आखिर इन तथ्यों का क्या किया गया है? इस पर मनाविज्ञान सामोना है।

(४) कर्लिन के अनुसार मनाविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक श्रियाओं में है और उनका अध्ययन व्यक्ति के मन-मस्तिष्क का ध्यान में रखकर उसी के सम्बन्ध में हो सकता है। राजनीति-शास्त्र सामाजिक श्रियाओं की प्रवृत्ति या इच्छा-जनित सम्बन्धों का अध्ययन करता है। अर्थात् मनाविज्ञान में व्यक्ति का व्यक्ति के रूप में और राजनीति शास्त्र में व्यक्ति का सामाजिक जीवन के रूप में अध्ययन होता है।

६ राजनीति-शास्त्र और विधि (Political Science and Law) एक सामाजिक तथ्य (phenomenon) और विधि सम्बन्धी है। राज्य की पूर्ण व्याख्या इन दोनों दृष्टियों का समाज में होती है। विधि दृष्टिकोण से राज्य एक व्यक्ति इस मान में है कि अधिकार और कर्तव्य के बीच समतुल्यता है। राज्य का एक और सामाजिक विधि अन्तर्गत में मूलभूत बताया जा सकता है। परिभाषा के रूप में इसी बात का हम प्रकार से कहा जा सकता है कि 'राज्य किसी निश्चित क्षेत्र में

बसनेवाले मनुष्याका निगम (corporation) है जिस शासनके मौलिक अधिकार प्राप्त है (१९) ।

‘माय-शास्त्रका परिभाषाम विधिकी विद्या कह सकते हैं जोकि शुद्ध अर्थमें राजनीति-शास्त्रका ही भाग है। पर अपनी व्यापकता और ठगनिपले स्वरूपक कारण इसका अध्ययन एक पृथक् शास्त्रकी भाँति किया जाता है।

संविधान शास्त्र (Constitutional Law) राज्यके विभिन्न अंगोंकी परिभाषा करता है उनके आपसी सम्बन्धोंका और राज्य तथा व्यक्ति के सम्बन्धोंको तय करता है। अन्तराष्ट्रीय विधि (International Law) राज्योंके पारस्परिक सम्बन्धोंका विवेचन करता है।

पश्चिमी विधि-शास्त्रक विकासमें स्टोइक^१ सिद्धान्तका और रामक ‘माय-शास्त्र (jurisprudence) का बहुत बड़ा हाथ है। हेसोबस का कहना है कि पाश्चात्य सभ्यताका स्तोइक विचारधाराकी मुख्य देन है विश्व-बन्धुत्व (universal brotherhood) और विवेक-संगत सामंजस्य विधि (universal law of reason) है। उन्हाको राम है कि रामबाबाके विचारोंके अनुसार राज्य एक वैधिक साम्राज्य है पर ईसाई मतके अनुसार यह प्रेमजन्य साम्राज्य है।

७ राजनीति शास्त्र और भूगोल (Political Science and Geography) मनुष्य पर उन भौतिक परिस्थितियाँ और भौगोलिक दशाओंका बड़ी असर पड़ता है जिनके बीच वह रहता है। किसी देशकी जलवायु प्राकृतिक विभागों और भौतिक विपत्तियोंका वहाँकी जनताके चरित्र संस्थाओं और सफलताओं पर पड़नेवाला असर को बढ़ा बढ़ा कर बताता आसान है। यद्यपि मनुष्यके जीवनमें इन बाहरी परिस्थितियों का महत्वपूर्ण हाथ रहता है पर यह याद रखना जरूरी है कि सभ्य मनुष्य प्रकृति के हाथों को ठुलठा नहीं है। जानवरोंकी भाँति वह प्रकृति का अध-अनुकरण नहीं करता। अपनी बुद्धि और दूरदर्शिताके बल पर वह प्रकृति को अपने अनुकूल बनाकर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेता है।

किसी देशकी राजनीतिक संस्थाओं और वहाँकी जनताके राष्ट्रीय चरित्र पर भूगोल का क्या असर पड़ता है इस प्रश्नकी ओर ध्यान देनेवाले प्रारम्भिक लेखकोंमें भरस्त्रू भी एक थे। आपुनिक लेखकाम बोडिन (Bodin) ने सातहवाँ शताब्दीमें इस विषयकी ओर ध्यान दिया। उनके बाद मॉन्टेस्क्ये ने सातहवाँ तक कहा कि जनतायु और सरकारके स्वरूप एक दूसरेसे सम्बन्धित हैं। उनकी राय थी कि गरम जलवायुके लिए साम्राज्यही ठीकी जलवायुके लिए जगतीपन और समशीतोष्ण जलवायुके लिए अच्छी शासन प्रणाली (good polity) बिनाकुल स्वाभाविक है। उनकी यह भी राय थी कि छोटे देशोंके लिए सामंजस्य और बड़े देशोंके लिए राजतन्त्र सर्वोत्तम है।

पश्चिमी राजनीति के मध्यम-कालमें मैकम ने ‘सभ्यताका इतिहास (History of

^१ यूनान की एक दार्शनिक विचार-पद्धति ।

Civilisation) नामक अपनी पुस्तकमें प्राकृतिक परिस्थितियों और राष्ट्रीय चरित्र के बाधने सम्बन्धको बहुत ही बड़ा-बड़ाकर बताया। उन्होंने आरदार शब्दोंमें कहा कि भौगोलिक जातीय चरित्र और सम्प्राप्तिके निमाणमें भूगोलका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने जनजातों भोजन धरती और प्रकृतिक सामान्य स्वरूपोंके प्रभाव पर खास तौरसे ध्यान दिया। उनकी इस उम्र रायसे आजकल बहुत कम साग सहमत है।

अत्युक्ति का बल यह निस्तब्ध नहीं है कि भौगोलिक परिस्थितियोंने नीति निर्धारण पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है। यह प्रभाव कुछ अगो तक राजनीतिक समस्याओंके स्वरूपों पर भी पड़ा है (१२ ४२ ६६)। इसका साथ ही हम निश्चय रूपसे यह कह सकते हैं कि सामाजिक और राजनीतिक समस्याओंके निमाणमें भूगोल का वह स्थान अब नहीं है जहाँ पड़ता था।

राजनीति शास्त्रका पद्धतियाँ (Methods of Political Science)

सभी लम्बे स्वीकार करते हैं कि राजनीति-शास्त्र एक अनिश्चित (inexact) विज्ञान है। यह परम सत्यका बनना लम्बे नहीं बनाता। यह आश्विक सत्यको स्वीकार करता है। इसलिए लगभग सभी राजनीतिक प्रश्नोंके कारण मतभेद होना अवश्य-मावी है। राजनीतिक तौर पर आज का बात ठीक जान पड़ती है मुझमें है कहा बात आज से सौ साल बाद ठीक न लगे। रायके कारण कोई भा सिद्धान्त अंतिम सत्य नहीं माना जा सकता। इन्हीं प्रतिकारके कारण कुछ विचारक राजनीतिक सिद्धान्तोंके अध्ययन का विज्ञान या शास्त्र कहना शुरू कर रहे हैं। यह सही है कि राजनीति-शास्त्र गणित-शास्त्र भौतिक-शास्त्र या रसायन-शास्त्रकी भाँति निश्चित (exact) नहीं है। पाण्डित्यका दावर तुलना भ्रम और सब कहो न और दा मिलकर चार ही होत है। हाइपोथीसिस (Hypothesis) का दा अनु और ऑब्जेक्शन (Objection) का एक अनु जब कभी आश्विन साधयनिक तरीकेसे मिल जात है तब पानी बन जाता है। यह विधि सधार भ्रममें सब कहा और हर समयके लिए है। पर परिवर्तनवात्त मानव स्वभाव और व्यवहारके कारण इस प्रकारकी विधि हम समाज-शास्त्रके अध्ययन में नहीं मिलती। राजनीतिक तथ्योंके गुण निष्कर्ष निकालना और भविष्यके बारे में एक क्षम सही भविष्यवाणी कर सकना यदि असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। फिर भी काफ़ी समय तक राजनीतिक तथ्योंका नवीनतम अध्ययन करनेके बाद हम ऐसे सामान्य विधान और सिद्धान्त निर्धारित कर सकते हैं जिनसे शासनकी व्यावहारिक समस्याओंका सुलझानमें सहायता मिल सकती है।

हम मानव-समाज या राजनीतिक व्यवस्थाके साथ उस प्रकारके प्रयोग नहीं कर सकते जिस प्रकारके प्रयोग एक ब्रह्मानिक भौतिक और रसायनिक द्रव्यके साथ करता है। विभिन्न शासनप्रणालियोंके प्रभावका जायनेके लिए हम मनमाने ढंगसे एक सामान्य साधन और दूसरेमें बुद्धिमानकी रचना नहीं कर सकते। भौतिक

तथ्या और सामाजिक तथ्याम मौनिक अंतर होना है। फिर भी प्रत्येक विधि एक प्रयोग ही है। और एक सतर्क विद्यार्थी विविध तथ्यके आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाल सकता है। राजनीति-शास्त्रके अध्ययनसे हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं वे गणितके समान निश्चित नहीं होते। फिर भी इससे हम सम्भाव्य सत्यों (probable truths) की खोज में सहायता तो मिलती ही है। और सम्भाव्यका ज्ञान' जैसा कि समुल्लेख केवल में कहा है जीवनका मुख्य पक्षप्रमाण है। मौनिक शास्त्रम भविष्यवाणी निश्चयात्मक हो सकती है। राजनीतिम भविष्यवाणी किसी भी हालत में सम्भाव्यम अधिक नहीं हो सकती (७)।

आजकालके बहुतम विचारवाने व्यावहारिक निष्कर्षकी प्राप्ति के लिए उन तरीकों पर विचार किया है जिनके द्वारा राजनीतिक तथ्याका सफल और वर्गीकरण किया जा सके। अगस्त कॉन्ट के मतानुसार प्रधान रीतियाँ हैं—पर्यवेक्षण प्रमाण और तुलना। अरस्तु का मत है कि नायनिक और इतिहासीय पद्धतियाँ सही पद्धतियाँ हैं। अन्य आधुनिक विचारवाने मनन निगमनात्मक रीति (deductive) और स्वतः तुष्ट-सद्धान्तिक पद्धति (dogmatic method) की अपेक्षा आगमनात्मक (inductive) या व्याप्तिमूलक (pragmatic) पद्धतियाँ द्वारा राजनीति-शास्त्रम पर्याय पणिम अधिक यकीनी तौर पर निकाल जा सकने हैं। जिन पद्धतियाँ विचारक सामान्य पक्ष करते हैं वे हैं—

- (१) प्रयोगात्मक पद्धति (experimental method)
- (२) इतिहासीय पद्धति (historical method)
- (३) तुलनात्मक पद्धति (comparative method)
- (४) पर्यवेक्षणात्मक पद्धति (method of observation) और
- (५) नायनिक पद्धति (philosophical method)।

इनमें से प्रथम चार पद्धतियाम बहुत अधिक समानता है और इसलिए वे चारों एक काटिम रखी जा सकती हैं। पाचवी पद्धति की अपनी अलग श्रणी है। इन दोनों प्रकार की पद्धतियाँ मिलनेसे ही महत्वपूर्ण नतीजा निकाल सकता है। आगमनात्मक (inductive) और निगमनात्मक (deductive) पद्धतियाँ एक दूसरे की पूरक हैं।

१ प्रयोगात्मक पद्धति (The experimental Method) जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ऐसे सामान्य जिनका विषय मानव समाज है जानबूझ कर प्रयोग करनेवा मोका बहुत कम रहता है। मानव-प्रेरणाओं और मानवीय महत्वाका एक सामान्य द्रव्यकी तरह न तो साधना-नापा जा सकता है और न संगणित किया जा सकता है। फिर भी सभी विधियाँ नीतियाँ और राजनीतिक पद्धतियाँ प्रयोग के आवश्यक बलक भीतर ही रहनी हैं और इन प्रयोगोंके अध्ययनसे राजनीति-शास्त्र पर्याय मनीने निकाल सता है। अपने चारों ओर सगानार होनेवाली राजनीतिक घटनाओं और नवीन प्रवृत्तियों (innovations) पर ध्यान देकर उनमें नतीजा निकाल

लना उसका काम है। सरकारें हमारा जनसमुदायक साथ प्रयाग कर रही हैं। इतिहास बन्त बंद पमाने पर होनवाना प्रयोग है।

आजकाल हम अनजानम किया गया प्रयाग पर भरासा नहा करते। जब आर जहां परिस्थितिमा मौना दनी है हम अपन पिछन अनुभवक आधार पर जानबूझकर राजनीतिक प्रयाग करते हैं। १८३९ ई० की डरहम रिपोर्टके आधार पर बनावडाका दिया गया उत्तरदायी स्वायत्त शासन अथवा भारतका नियम बधानिय सघार और बधानिक उगस दी गयी पूर्ण स्वतन्त्रता इसक उदाहरण है। इस प्रकार राजनीति शास्त्रम प्रयागात्मक पद्धतिका स्पष्ट और निश्चित स्थान प्राप्त है।

२ इतिहासीय पद्धति (The Historical Method) इतिहासीय पद्धति का प्रयागात्मक पद्धतिका ही एक स्वरूप समझना चाहिए। राजनीति शास्त्रके विद्यार्थी के लिए इतिहासका ठीक तरहस अध्ययन बहुत उपयोगी है। यह हम राजनीतिम जल्द बाजीम किया गया एकतरफा निष्ठासे बधाता है। राजनीतिक संस्थाओं और पद्धतियों के जन्म विकास और उन्धानके अध्ययन का महत्व इस बातम है कि हम इसस भविष्य के पथ प्रदानके लिए निष्काय निष्काय सक्षम हैं। इतिहास हम कवन बीती हुई बातें ही नत्रा स्पष्ट करना बहु भविष्यकी व्यवस्था करनेवा युवा भी है।

इतिहासीय पद्धति प्रमाणन आगमनात्मक (inductive) है। इसका आधार परबोधन और इतिहासीय तथ्योंका अध्ययन है। इस पद्धतिनी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह महत्वा और मूल्याका विचारन तो करती है औरन कर सकती है। हम कभीको दार्शनिक या भविक पद्धतिसे पूरा करना पड़ता है जिनम उद्देश्य और महत्वा का विचारन रहता है। फिर भी अप्रत्यक्ष रूपम इतिहासीय पद्धति हम कार्योकी भलाई व कुगईका फसला करनेक साधक बना दनी है। इतिहासीय पद्धति का प्रयाग करने म निष्पत्तिलिखत साधधानिया बरतना विद्यार्थी के लिए लाभदायक होगा—

(क) उसे ऊपरी समानताओं (superficial resemblances) और सादृश्य (parallels) के भ्रम म न पड़ना चाहिए।

(ख) उसे वर्तमान और भविष्यका निधारण करने अनौत्तम हा न करना चाहिए। इतिहासीय पद्धतिना सहीण स्क्रिप्च न बना देना चाहिए। कोई बात पहले कभी किसी एक सार उगस हा चुकी है सा इसक मान यह नहा है कि वर्तमान कालम भी वह उसी उगसे हो।

(ग) उसे अपने पूरे कल्पित विचाराका इतिहास द्वारा समवन डूडनक प्रभावमय बधना चाहिए। उसका दुष्प्रयोग एकदम बधानिक या निष्पत्त हाता चाहिए।

(घ) उसे मान रखना चाहिए कि 'इतिहासकी पुनरावृत्ति हाता है' वाता कहायत अर्थ-सत्य ही है। सार सत्य यह है कि इतिहासकी पुनरावृत्ति कभी नत्रा हाती। इतिहासीय परिस्थितिया कभी भी ठान उगी प्रकार दुबार नहा उपस्थित

है। हम नदीकी उसी धारामें दो बार डुबकी नहीं लगा सकते (७) ।

३ तुलनात्मक पद्धति (The Comparative Method) तुलनात्मक पद्धति इतिहासीय पद्धतिकी पूर्व है। इस पद्धतिका प्रयोग अरस्तू के युगसे होता आ रहा है और आधुनिक युगमें यह टोकूवीन बादस सया अथ विचारकोने इसका सफल उपयोग किया है। यदि हम विभिन्न घटनाओंकी ठीकसे तुलना नही कर सकते तो इतिहासका अध्ययन व्यर्थ है। तुलनात्मक पद्धतिमें हम घटनाओं का वर्णन करने कारण और प्रभाव निर्दिष्ट करने और सामान्य सिद्धान्तकी स्थापना करनेमें सहायता मिलती है। इसमें हम बड़ी संख्यामें तथ्यों का संग्रह करते हैं उन्हें क्रमबद्ध करते हैं और उन सबमें पाये जानेवाले समान तत्वोंको खोज निकालते हैं।

इस पद्धतिका लाभप्रद उपयोग करनेके लिए हमें समानताओंके साथ ही विभिन्नताओं पर भी ध्यान देना चाहिए। हम निष्कर्ष निकालनेमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। जिन तथ्योंसे हम सामान्य तत्व निकालने हैं उनमें आपसमें बहुत अधिक विभिन्नता नहीं होनी चाहिए। तुलनाएँ बहुत दूर तक नही घसीटी जानी चाहिए और तुलनाएँ खींचतान कर नही करनी चाहिए। अस्पष्ट और अपूर्ण सामग्री पर निर्भर हाथर सामान्य सिद्धान्त नही बनाने चाहिए। यह अधिक लाभप्रद होगा कि हम अपनी छानबीन उही रास्ता तक सीमित रख जिनका विकास समान इतिहासीय पृष्ठ भूमिसे हुआ हो और जो समयके विचारमें नजदीक हो।

सादृश्य पद्धति (analogical method) तुलनात्मक पद्धतिका एक विशेष रूप है। यह राजनीति-शास्त्रमें बहुत उपयोगी है बल्कि कि सादृश्यकी एकरूपता (identity) की सीमा तक न पहुँचा दिया जाय। दो चीजोंमें सादृश्य स्थापित करने का अर्थ उनमें एकरूपता कायम करना नहीं है। सादृश्य प्रमाण नहीं है। यह हम सम्भाव्यता काय कर सकता है निश्चयका नहीं।

४ पर्यवेक्षण पद्धति (The Method of Observation) तुलनात्मक पद्धतिकी तरह पर्यवेक्षण पद्धति भी आगमनात्मक (inductive) है। प्रेसीडेण्ट लीवेन का कहना है कि 'राजनीति एक पर्यवेक्षणात्मक विज्ञान' प्रयोगात्मक नही। और पर्यवेक्षण पद्धति ही अनुसंधानकी सच्ची पद्धति है। उनका कहना है कि एक पुस्तकालय राजनीति शास्त्रकी प्रयोगशाला सीमित अर्थों में है। 'राजनीतिकी वास्तविकीके ज्ञान' के लिए पुस्तकें उपाय-स उपाय उतना ही मौलिक स्रोत हैं जितना कि भूगर्भशास्त्र (Geology) या खगोल शास्त्र (Astronomy) के लिए होती हैं। उनका यह भी कहना है कि राजनीतिक सस्थाओंकी वास्तविकी काय-विधि की प्रयोगशाला पुस्तकालय नहीं बल्कि राजनीतिक जीवनका बाहरी सत्तार है। इसी शाला में खान और पर्यवेक्षणका मौलिक काम होना चाहिए। यह बादस न पर्यवेक्षण पद्धति का

बहुत अधिक अनुसरण किया है। राजनीतिक सत्ताओं का वास्तविक कार्य-कलाप का निष्कर्ष परवेक्षण इसका आधार है। अपने महान् ग्रन्थ *The American Common Health* और *Modern Democracies* के लिखनके पहले लाइब्राइस न सम्बन्धित देशों का अध्ययन किया वहाँ के राष्ट्रीय नेताओं से बातें का सरकारी काम-विधि का निरीक्षण किया और सब निष्कर्ष निकाले। निस्सन्देह इसी पद्धति जो स्वयं अपने परवेक्षण और चिन्तन पर निर्भर हो ग्रहण करने और प्रकाश करने योग्य है। उसका सीधा सम्बन्ध वास्तविकताओं से रहता है और इसके विरुद्ध यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि यह मात्र मूर्ख (abstract) और सिद्धान्तवादी है (*It is in living touch with facts and is free from the charge of being abstract and doctrinaire*)। फिर भी इस पद्धति का प्रयोग सावधानी से साथ किया जाना चाहिए। जब तथ्य बहुत अधिक और परस्पर विरोधी हो तो निर्णित और विवेक-सम्पन्न व्यक्ति ही सही निष्कर्ष निकाल सकता है। सही प्रमाणों का संग्रह और मजबूत-सामग्री का सही मजबूत संग्रह की सामग्री ठसम होनी चाहिए। अपना दृष्टिकोण अनुकूल चीजों को ढूँढ़ ले और अपनी दृष्टिकोण विपरीत चीजों की ओर से ध्यान हटाने की कोशिश करना रहता है। उसी प्रकार सांख्यिक चीजों का न लेने और सब चीजों को सामग्री का छा देने का भी खतरा रहता है। निस्सन्देह तथ्यों का संग्रह करना पहला कर्तव्य है। पर तथ्य स्वयं और अत्यन्त बहुत कम उपयोगी हैं। उनका सही व्याख्या करने के लिए और उन्हें सजीव और वास्तविक बनाने के लिए एक मूर्खदर्शी और समझ दिमाग की जरूरत है।

२. दार्शनिक पद्धति (*The Philosophical Method*) दार्शनिक पद्धति ऊपर बतायी गयी पद्धतियों के विपरीत नियमनात्मक पद्धति है। इसी मूल और विवेकिक इस पद्धति के प्रधान पौष्टिक और विवेकिक हैं। यह पद्धति दार्शनिक और नैतिक आधार पर सम्यक् स्वरूप और उद्देश्य पहले निर्धारित करती है और फिर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वोत्तम ढंग की राजनीतिक सत्ताओं की खोज करती है। यह मूर्ख-कल्पनाओं (abstract concepts) का लेकर चलती है और फिर इतिहासिक वास्तविक तथ्यों से उनका मत मिटाने का प्रयत्न करती है। इस पद्धति मुख्य खतरा यह है कि 'मूर्ख' की 'मूर्खता' और 'मूर्ख' की 'मूर्खता' की भाँति ही राजनीतिक विचारों को कल्पना प्रमाण और स्वप्न-मूर्त बन जाता है। इतिहासीय तथ्यों से दूर होकर साक्षात् आभासी बन जाने का भी खतरा रहता है। यूनानी दार्शनिकों के युग से लेकर मध्य-युग तक शास्त्र प्रमाण और अर्थव्यवस्था के विचारों ने भी एक आभासी प्रकार का राज्य की स्थापना पर अत्यन्त ध्यान दिया है।

निष्कर्ष एक सत्य विचारों इतिहासीय और दार्शनिक पद्धतियों का मिलान का प्रयत्न करेगा। उस विचारों द्वारा प्राप्त सिद्धान्तों का अन्तर्गत शास्त्र वास्तविक तथ्यों की कसौटी पर बमना चाहिए और जीवन के तथ्यों की व्याख्या मूर्ख या सामान्य-मानुष्य के सिद्धान्तों (abstract or a priori principles) आधार पर करनी

चाहिए। उस वास्तविकताकी बढाव भूमि पर प्रयोग जमाये हुए घुड़िया आममाने तक ऊंची उगान भरने देना चाहिए। उसे यथार्थ और आत्मका सुन्दर सन्तुलन करनेका प्रयत्न करना चाहिए। उस पर यथार्थवादको ठुकरा देना चाहिए जो अपनी दृष्टि-परिधिसे बाहर किसी तथ्यको स्वीकार न करे और ऐसे आदमको भी उस बाई स्थान न देना चाहिए जो असाध्य हो। उस अस्तु और धर्म ऐसे विचारका अनुकरण करना चाहिए जिन्होंने अपनी पुस्तकाम इतिहासीय और दार्शनिक पद्धतिया का प्रयोग किया है।

इस निष्कर्षकी दृष्टिसे यह कुछ चिन्ताकी बात है कि आजकाल बहुतसे अमेरिकी लख प्राथमिक सिद्धान्तका छाडकर पद्धतियों (methods) प्रविधिया (techniques) और कौशल (skills) पर अधिक ज़ार दते हैं और महत्वोके मूल्यांकन की परवाह नहीं करने हैं। इसका विपरीत जैसा कि डा० मैक्कसन न अमेरिकन पालिटिकल साइन्स रिव्यू (Vol. XLVIII June 1954) में कहा है कि प्रट प्रिटेनम गुद्ध अभ्यावहारिक प्रयोगोंको कम महत्व दिया जाता है और राजनीतिक सत्याज और पद्धतियोंका परीक्षण इस दृष्टिसे करनेकी प्रवृत्ति अधिक है कि इनसे बौन-सा उद्देश्य सिद्ध होता है और बौन-सा हाना चाहिए। क्रिन्क राजनीति शास्त्री न प्रविधिया (techniques) व पीछे अधिक परेगान नहीं हाते। उस देशम मूल्यांकन प्राप्त निष्कर्षों का मान है और वास्तविकताका अनग शुद्ध प्रयागात्मक गैरी पर स्पष्ट अविश्वास मानता है।

अमेरिकाम भी प्राक्तर ज० एच० हूलावन जैम लख है जा ठीक ही कहन है कि सामाजिक शास्त्राका नयी नोध प्रविधियों (new research techniques) की उतनी ज़रूरत नहा है जसा वृद्ध भोग समझते हैं परन्तु उन्हें ऐसे बिन्वाम की ज़रूरत अवश्य है जा तक-सगत सिद्धान्तों पर आधारित हा। (३१ २ पृष्ठ ४१६)।

SELECT READINGS

BARKER L — *Political Thought in England Spencer to Present Day*—
Chs 5 and 6

BARNES H E — *Sociology and Political Theory*—Ch 2

BROWN I. O R — *English Political Theory*—Ch 1

CATLIN G E G — *The Science and Method of Politics*—Chs 1 3

GARNER J W — *Political Science and Government*—Chs 1 3

GETTELL, R. G — *Introduction to Political Science*—Ch 1

GETTELL, R. G — *Readings in Political Science*—Introduction

GILCHRIST R. N — *Principles of Political Science*—Ch. 1

HALLOWELL, J. H — *Main Currents in Modern Political Thought*—
Chs. 1 3

- LEACOCK E — *Elements of Political Science*—pp 3-12
 MERRIAM C.E. — *New Aspects of Politics*—Chs 3-4
 POLLOCK G — *Introduction to the History of the Science of Politics*—
 Ch 1
 SEELEY J — *Introduction to Politics*—Lectures 1 and 2
 SIDGWICK H — *Elements of Politics*—Ch 1
 WILLOUGHBY W W — *The Nature of the State*—Ch 1

राज्य का स्वरूप (The Nature of the State)

सामाजिक संस्थाओं में स राज्य सबसे अधिक व्यापक (universal) और शक्तिशाली है। जहाँ कहीं भी कुछ समय तक मनुष्य एक साथ रहे हैं वही हम सगठन और सत्ता का प्रयोग देखने का मिलता है और यही दोना राज्यकी नींव हैं। सत्तारम ऐसे लोगों का एक ही उदाहरण है जिनका समाज तो है पर राज्य नहीं और ये लोग एस्किमो है। जिन्हें टॉएबी (Toynbee) ने 'गुठित सम्यतावाले' कहा है (७२)।

जैसा कि यूनानी लेखकों ने हम बताया है राज्य स्वाभाविक तथा आवश्यक दोना है। सिरस स्वाभाविक हो सकता है पर आवश्यक नहीं। राज्य स्वाभाविक इस माने में है कि इसका जन्म मनुष्याकी मूल प्रवृत्तियों और इसका विकास क्रमश हुआ है। अरस्तू का कहना है कि मनुष्य स्वभावतः राजनीतिक प्राणी है। उनकी राय है कि परिवार का विकास होनेसे गाँव बनता है और जब कई गाँव मिल जाने हैं तो नगर या राज्य बन जाता है। प्रत्येक नगर प्रवृत्तियों ही रचना हैं। अरस्तू का कहना है कि राज्यमें रहना और मनुष्य होना एक ही बात है क्योंकि यदि कोई राज्यका सदस्य नहीं है या राज्यका सदस्य होने लायक नहीं है तो वह या तो देवता है या जानवर वह या तो राज्यके ऊपर है या नीचे। आपुनिक लेखक कभी-कभी मनुष्यकी राजनीतिक प्रवृत्तियोंकी खोज करते हैं। इससे उनका मत यह है कि राज्यकी जड़ें मनुष्यकी प्राकृतिक प्ररणाओंमें हैं और उसे आसानीसे निमूल नहीं किया जा सकता। राज्यका विकास होता है वह स्थायी है और एक बार नष्ट कर दिये जाने पर वह फिर प्रगट होता है। यदि यह कहा जाय कि राज्य परिवारकी तरह स्वाभाविक संस्था नहीं बरन् मनुष्यकी कुछ जरूरतोंका कृत्रिम रूप है तो हमारा उत्तर यह है कि मनुष्यके लिए कृत्रिम होना स्वाभाविक है (३७)। पर हमारा विश्वास है कि राज्य कृत्रिम नहीं है। हम राज्यमें ही पैदा होते हैं। यह हमारी दृष्टि पर नहीं है कि हम चाहें तो राज्यमें पैदा हों और न चाहें तो न हा या जिस राज्यमें चाहें पैदा हों। राज्य से सम्बंध तोड़नेका अधिकार भी हमें नहीं है। स्पेंसर का यह कहना समझ है कि व्यक्ति को 'राज्यकी उपयोग करनेका अधिकार है'।

मनुष्यके उत्थान और विकासके लिए राज्य आवश्यक है। इसके बिना मनुष्य पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। अरस्तू का कहना है कि राज्यकी स्थापना हमें शिष्ट

रखनेके लिए हाथी है और जीवनका मुखा बनावक लिए वह कायम रखा जाना है।
उन्हें क समझे जीवनकी साधारण आवश्यकताओंसे तो राज्य का जम जाना है और
किर अच्छे जीवनके लिए उसका अस्तित्व बना रहता है। दूसरे शब्दोंमें अधिक
आवश्यकताओंकी पूर्ति ही राज्यके जन्मका मुख्य कारण है। पर यह कायम इसलिए
रहता है कि इसका बिना मुसीबत सम्य और सुसंयुक्त जीवन सम्भव नहीं है। अरस्तू
क मूल धर्मों की राज्य कायकी आवश्यकता इसलिये है कि कोई भी मनुष्य स्वतः
पूरा नहीं है। मनुष्यों को अपने विरासती मजिदम जिस सामाजिक सहयोग और
प्रशानकी जरूरत पड़े है राज्य उसी सहयोग और प्रशानका प्रकृत रूप है।

राज्य सभी सामाजिक सम्बन्धोंमें सबसे अधिक व्यापक और शक्तिशाली है
यह स्वाभाविक और आवश्यक है। आइये अब देखें कि राज्य है क्या ?

राज्य का परिभाषाएँ (Definitions of the State) राज्यकी परिभाषा
विभिन्न दृष्टिकोणोंसे की गयी है और इस कारण हमकी बहुतसी परिभाषाएँ हैं।
सबसे अधिक संतोषजनक परिभाषाओंमें से हम कुछ का उल्लेख करेंगे। हॉलैंड
(Holland) राज्यकी परिभाषा करते हुए कहते हैं कि राज्य बहुसंख्यक मनुष्योंका
एक समुदाय है जिसके अधिकारोंमें आमतौर पर एक भू प्रदेश रहता है जिसमें बहुमत
की इच्छाका या बहुमतके बल पर कुछ व्यक्तियोंके एक निश्चित बागकी इच्छाका
बातबाला उन लोगोंके ऊपर रहता है जो उस इच्छाका विरोध करते हैं। फिलमोर
(Philmore) ने अन्तराष्ट्रीय विधि का दृष्टिसे विचार करते हुए राज्यकी परिभाषा
इस प्रकार की है 'राज्य वह जन समूह है जिसका एक निश्चित भू भाग पर स्थायी
अधिकार है जो सामान्य विधियों आजा और रीति-रिवाज द्वारा एक राजनीतिक
सूत्रमें बंधा हो जो एक संगठित सरकार के द्वारा स्वतंत्र सम्प्रभुता उपभोग कर रहा
है जिसका नियंत्रण अपनी सीमाके भीतरके सभी व्यक्तियों और वस्तुओं पर हो और
जो कुछ करने के शान्ति स्थापित करने तथा सत्कार सभी समझौतोंसे सब प्रकारके
अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करनेमें समर्थ हो।'

बर्गस (Burgess) राज्य का एक संगठित इकाई के रूपमें माना जानेवाला
मानव जाति का कोई अंग विशेष बताते हैं। यह परिभाषा बही है जो ब्लुन्तशी
(Bluntschli) ने दी है जिसने अनुसार 'राज्य एक निश्चित भू भागमें रहनेवाले
राजनीतिक तौर पर संगठित लोगोंका समुदाय है।' विल्सन (Wilson) की परिभाषा
सूत्रों और सरल दोन है। उनके अनुसार राज्य एक निश्चित भू भागमें विधि
स्थापित करनेके लिए संगठित जनसमुदाय है।

आधुनिक सतर्कों द्वारा दी गयी परिभाषाओंमें गार्नर (Garner) और
मैकडर (MacDyer) की परिभाषाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

गार्नर कहते हैं 'राजनीति-शास्त्र और सांख्यिक विधियों के विचारोंमें राज्य ऐसे
मोहोका समुदाय है जो साधारणतया बड़ी संख्यामें है। जिसका एक निश्चित भू प्रदेश
पर स्थायी अधिकार है जो बाहरी नियंत्रण स्वतंत्र या संप्रभु स्वतंत्र हो और

प्रयोग करता है। सामाजिक कर्तव्योंका उल्लंघन करनेके अपराधम समाज किसी भी व्यक्तिको जतम बाँध नहीं कर सकता। अर्नेस्ट बाकर की भाषणम समाजका क्षेत्र है सहयोग इसकी शक्ति है। सद्भावना और लचीलापन इसकी पद्धति है। राज्यका क्षेत्र है यात्रिव कार्य-शीलता। शक्ति है बल प्रयोग और कठोरता इसकी पद्धति है। मैकाइवर के नाम 'राज्य एक संगठन' है जो न तो समाजका समवयस्क है और न समाजके समान व्यापक। उसका संगठन समाजके भीतर निश्चित उद्देश्योंकी प्राप्ति के लिए किया जाता है (५५, ४०)। समाजके लिए राज्यके महत्वको मार्कर ने इस प्रकार स्पष्ट किया है। समाज राज्य द्वारा कायम रखा जाता है और यदि समाज इस प्रकार कायम न रखा जाय तो इसका अस्तित्व ही न रहे (३११, १९)। इटाली की वारम मार्टे यदि समाज है तो उनके बीचम लगी सीमेंट राज्य जा इसको यथास्थान बनाय रखती है ताकि दीवार ज्यादा लचीली न हो।

मार्कर ने अपनी नयी पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पोलिटिकल थियरी' में राज्य और समाज के भेद को निम्नलिखित तीन शीपकाम साफ-साफ बतलाया है (१) उद्देश्य या कार्य (२) संगठन और बनावट (३) पद्धति। उद्देश्यकी दृष्टिसे राज्य एक अधिक संस्था है। कार्य और व्यवस्थाकी स्थायी ढंगसे निर्माण करने के लिए ही कार्य करती है। और वह अपने इस अधिक उद्देश्योंको पूरा करने के लिए ही कार्य करती है। किन्तु समाज अनेक समस्याओंसे बननेके कारण अधिक उद्देश्यों से भिन्न अथ विविध उद्देश्यों की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। ये विविध उद्देश्य हैं बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक, आर्थिक, कलात्मक और मनोरंजनमय। राज्य और समाजकी सदस्यता विस्तृत एक-सी हो सकती है। पर उनके उद्देश्य भिन्न होते हैं। 'राज्यका अस्तित्व एक ही महान् उद्देश्यके लिए होता है। समाजके उद्देश्य अनेक होते हैं कुछ बड़े और कुछ छोटे पर सब मिलकर व्यापक और गहरे हो जाते हैं।'

संगठनके विचारसे राज्य एक अकेली अधिक संस्था है जबकि समाजके भीतर अनेक संस्थाएँ रहती हैं।

२. राज्य और सरकार (The State and Government) जहाँ तक पद्धतिका सम्बन्ध है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है राज्य बल और दबाव का प्रयोग करता है। समाज ऐच्छिक सहयोगकी पद्धति अपनाता है। जिन उद्देश्योंके लिए समाजका अस्तित्व है वे उद्देश्य समझाने-बुझानेकी पद्धतियोंको आवश्यक बनाते हैं। समाजके भीतर अनेक संगठन होनेके कारण सदस्योंकी मीठा रहता है कि बलका प्रयोग किये जाने पर वे एक संस्था को छोड़कर दूसरीमें शामिल हो जाय।

अपने साधारण कार्यान्वयन हम राज्य और सरकार शब्दोंका प्रयोग एक ही अर्थमें अक्सर-बनामकर किया करते हैं। पर ध्यान-ना विचार करते ही वह स्पष्ट हो

जाता है कि ये दोनों एक ही नहीं हैं। सरकार राज्यका यंत्र या साधन है 'राज्य स्वयं एक मान्य व्यक्ति है जो अस्पष्ट अदृश्य और स्थिर है। सरकार एकाग्र है। सामान्य मीतर यह राज्यकी प्रतिनिधि है। सीमाके बाहर हो जाने पर यह अविविध है।' इसी के नाते में सरकार एक मजीब यंत्र है। सरकार राज्यका व्यावहारिक संगठन है जो राज्यका निवारित करता है उसका प्रकाशन करता है और उस पूरा करता है। सरकार राज्यके उद्देश्य और लक्ष्यकी पूर्तिका साधन है।^१ सरकार बिना राज्य का कोई अस्तित्व नहीं है। राज्य अधिकतर भूमि धारण है पर सरकार वास्तविकतम है। राज्य स्थायी और स्थिर है सरकार अस्थायी और परिवर्तनशील है। सरकारमें परिवर्तन हाउ रहते हैं। पर इन परिवर्तनसे राज्यके व्यापिक्यम कोई अनवर नहीं पड़ता।

राज्योंके अस्तित्व समाप्त हानके मुख्य तरीके ये हैं —

(१) पराजय वाद विजयी राज्यम मिला लिया जाना।

(२) स्वच्छादूक दूसरे राज्यम मिल जाना।

(३) राज्यकी धरती या निवासियाका विनाश।

इनके प्रतिक उदाहरण हैं —

(१) १८१६ में पराजित हनोवर राज्यका प्रयाक राज्यम मिला लिया जाना।

(२) इटलीक छान्छान् राज्यका इंगलिषन राज्यम मिल जाना या निम्न और सीरिया गार सयुक्त अरब एयररज्यका निर्माण (१९५८)।

(३) विलियम ऑरेंज (William of Orange) की यह धमकी कि वे नेदरलैण्डम् (Netherlands) के बाघोंको लाइकर राज्यका विनाश कर देगा पर उस स्न स पराजित न हान देगा।

सरकारके अधिकार सीमित नहीं हैं। ये अधिकार उन राज्यम मिलन हैं। सरकारके कार्य तीन प्रकारके होते हैं। शासन-व्यवस्था सम्बन्धी (executive) विधि-निर्माण सम्बन्धी (legislature) और न्याय-व्यवस्था सम्बन्धी (judicial)। सरकारके किसी राष्ट्रकी प्रतिमाका पता चलता है।

३ राज्य राष्ट्र और राष्ट्रीयता (The State Nation and Nationality) राजनीति शास्त्रम राज्य राष्ट्र या राष्ट्रीयता शब्दोंका प्रयोग बहुधा एक ही अर्थ में हुआ है। आज भी राजनीतिक विचारक माधारणतया 'राष्ट्र' और

^१ मनुष्य राज्य अमेरिका क सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पाईडम्टर बनाम गीनगा क मतदम (१९४८ ८० एस० २७०)।

^२ प्रोफेसर लास्की (Laski) सरकारको राज्यका प्रतिनिधि या एजेंट कहते हैं। उसका अस्तित्व राज्यके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए होता है। सरकार स्वयं दबाव शासनेवाली सर्वोपरि शक्ति नहीं है वह तो केवल शासन-यंत्र है जो उस शक्तके उद्देश्यको कार्य-रूप देता है (१० २३)।

आधार प्रकृत नही इच्छा (will) है।' शक्ति रायका चिह्न है। विवेकशील नागरिक मुख्यवर्षित राज्यकी आज्ञा इसलिए मानते हैं कि वे महसूस करते हैं कि रायकी आज्ञा मानकर वे अपनी अन्धकारियों और स्वार्थरहित व्यक्तिगत इच्छाओं का अनुगमन करते हैं। राज्यकी आज्ञा मानना उस हानितम बहुत ही उचित होता है जब हम आज्ञाका पालन करते समय यह अनुभव करते हैं कि मुख्यवर्षित राज्यके बहुतेरे पर चलकर हम सबकी भलाई करते हैं और सबकी भलाई ही व्यक्तिगत भलाई भी है।

हैलोवेल (Hallowell) ने इस दृष्टिकोणकी ठीक ही आनाचना की है कि राजनैति बचल गतिवे लिए सपर्य है। उनका कहना है कि इस विचारधाराम शक्तिका प्रयोग किया जाना ता माना गया है पर इस पर विचार नही किया गया है कि शक्तिका प्रयोग क्या किया जाता है।

(३) ग्रोशियस (Grotius) और अल्थ्यूसियस (Althusius) जैसे विचारक रायको कल्याणकारी व्यवस्था मानते हैं। इस सिद्धान्तका एक रूप यह है कि राज्य एक सार्वजनिक उपयोगिता कम्पनीकी भांति है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि राज्यके बारे में यह अत्यन्त सकोण दृष्टिकोण है। इसमें सन्देह नही कि सार्वजनिक कल्याण करना राज्यका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। पर राज्यको यू० पी० एलेक्ट्रिक कम्पनी जैसी सार्वजनिक उपयोगिता कम्पनियाँ समान मान लेना विचित्र प्रतीत है। राय किसी भी मानव कम्पनी नहीं है। रायका सदस्य होना या न होना हमारी इच्छा पर निर्भर नही करता। हम जन्मा राज्य के सदस्य होते हैं। हम अब चाहें तब रायमें प्रवेश नही कर सकने और अब चाहें तब इस छोड़ नही सकने। रायका कम्पनी माननेवाला दृष्टिकोण इस कम्पनीकी भूला देता है कि सार्वजनिक-कल्याणकी व्यवस्था हानिके साथ-साथ राज्यका अपना जीवन अपनी इच्छा और अपना व्यक्तित्व होता है और ये चीजें राज्यके व्यक्तिगत सदस्योंके जीवन इच्छा और व्यक्तिगतसे भिन्न होती हैं।

जब एक बार ससारमें बहुतसे लोग 'कल्याणकारी राज्य' या 'मंगलकारी राज्य' को अपना आता मानकर उसका स्वागत करते हैं तब दूसरी ओर समुक्त राज्य अमेरिका के बहुतेरे भाग इस अभिप्राय मानते हैं। इसका कारण यह है कि अमेरिकाम कल्याणकारी राज्यका अर्थ अगर साम्यवाद नही तो समाजवाद जरूर समझा जाता है। और बड़ा व्यक्तिवादी पूंढभूमिके कारण इन दोनोंका तीव्र विरोध है। पर इसका साथ ही अमेरिकी अपनी व्यापक योजना भी हैं जिसमें सामाजिक सुरक्षा कलियुक्त स्तर तब निराला गिरा और टेनसी वेंसी अधोर्टी के नाम से प्रसिद्ध एक विशाल नयी धानी (जलविद्युत्) योजना शामिल है। भारतमें अधिकांश लोग कल्याणकारी राज्यका एक सराहनीय अन्य स्वीकार करते हैं। इस सम्प्रम अनेक दिग्गजोंमें विचारक सामाजिक-धर्मके क्षेत्रमें राज्यके कार्य-क्षेत्रका विस्तार निहित है।

(४) कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिनकी रायमें राज्य एक बीमा कम्पनी जैसी संस्था है जिसका उद्देश्य पारस्परिक सुरक्षा है। नोमान्तेसे ऐसे लोगोंकी संख्या घट रही है।

हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) इस सिद्धान्तक प्रधान पापक थे। उनकी सम्मति में राज्य पारस्परिक आरक्षणके लिए एक समुक्त मुरगा-कम्पनी (Joint stock protection company) है। हम पहले ही देख चुके हैं कि राज्यकी तुलना किसी कम्पनीसे नहीं की जा सकती बीमा कम्पनीसे तो और भी नहीं। इस प्रकारक विचार राज्यके प्रति ग्याय नहीं करते। राज्यमें व्यक्ति और समाजके हितोंमें गहरा सम्बन्ध है और उन्हें एक दूसरेसे स्पष्ट और पर अलग नहीं किया जा सकता। यदि पारस्परिक मुरगा-कम्पनी राज्यक अस्तित्वका उद्गम है तो फिर समूह समाजके विद्व

निष्पन्न बुराई (necessary evil) मानते हैं।

वह राज्यके प्रत्येक

1। स्वाधीनताका अपहरण मानते हैं। इसलिये

कहा जाता है कि राज्य एक बुराई है पर फिर भी मनुष्यकी स्वाधीनता और लाभ के लिये आवश्यक बना लिया है। उनका तर्क है कि यदि प्रत्येक व्यक्तिको स्वच्छन्द छोड़ दिया जाय तो वह दूसरे को हानि पहुँचाकर भी अपना लाभ करने की कोशिश करेगा और तब समाजमें शान्ति और व्यवस्था न रहेगी। इस प्रकार मनुष्यकी बमजोरियोके कारण राज्यकी आवश्यकता पड़ती है। स्पेंसर ही नहीं बेंथम (Bentham) जैसे विवेकज्ञ विचारक भी इस दृष्टिकोणके पोषक हैं। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम राज्यका एक बुराई या आवश्यक बुराई मानना भी भूल समझते हैं। हम उन आदर्शवादिनाम महमन हैं जो राज्यका निश्चित रूपसे एक अच्छाई (positive good) मानते हैं। राज्य मनुष्यका सबसे अच्छा मित्र इसलिए है कि राज्यको महापुरुषके बिना मनुष्यक व्यक्ति बना पूर्ण विनाश अवश्य है।

(७) कुछ नरम-पक्ष अराजकतावादी व्यक्तिवादियों के सिद्धान्त में या इस परिवर्तन करके कहते हैं कि राज्य एक बुराई है पर एक निश्चय इसकी आवश्यकता न रह जायगी। उन्हें मानव-स्वभावकी परिवर्तनशीलता पर ज़रूरतमय दबावा भरसा है। उनका विश्वास है कि ज्यादा-ज्यादा मनुष्यकी नैतिक विकास होना जायगा क्योंकि राज्यकी आवश्यकता कम होती जायगी और अन्ततः अन्ततः राज्य धीरे-धीरे समाप्त हो जायगा। अराजकतावादी साम्यवाद जैसे उच्च अराजकतावादी (extreme anarchists) राज्यका यह प्रतिपादित बुराई मानते हैं और कहते हैं कि जितनी जल्द राज्य छुटकारा मिले उतना ही मनुष्यके नैतिक विकासके लिए अच्छा होगा। यद्यपि इस अराजकतावादी सिद्धान्त में बहुत कुछ आकर्षण है पर हम यह तो मानना ही होगा कि इस सिद्धान्त में इस तथ्यकी उपेक्षा की गयी है कि राज्यका मूल आधार मनुष्यके स्वभाव में है। हमारी प्रवृत्तियाँ (instincts) और हमारी तब-बुद्धि अराजकतावादी के इस दायनकी मानने को तैयार नहीं है कि राज्य एक बुराई है और उसमें भला कुछ भी नहीं है। एक विचार जिसकी पुष्टि एक अगले अध्याय में की गयी है यह है कि सत्ताकी आगामी फलन स्वाभाविक है और सत्ता और स्वतन्त्रता एक दूसरेकी विरोधी न होकर पूरक हैं।

(८) कुछ आधुनिक लेखक राज्यका निगम (corporation) जैसी संस्था मानना पसन्द करते हैं। सामान्यतः यह बहुलवादी दृष्टिकोण (pluralistic point of view) है। इस दृष्टिकोण के अनुसार राज्यको परिवार गिरजाघर ट्रेड यूनियन सामाजिक क्लब आदि एसी स्थायी संस्थाओं के स्तर पर उतारना होगा जिनमें हमारी विभिन्न अभिरुचियोंकी पूर्ति होती है। हम इस विचारको मानने में असमर्थ हैं क्योंकि हमारा विश्वास है कि राज्य अपनी विपरीतताओं में अन्तिम है। अपने स्वभाव में यह अकर्मण्य है। राज्य स्वतः एक वृद्ध है। यह सबको समेट लेनेवाली संस्था है। यह सर्वोत्कृष्ट संस्था है। यह सब कहनेका अर्थ यह नहीं है कि हम रूढ़िवादी अर्थवादी (orthodox monistic point of view) का पुरा-मुरा समर्थन करनेका तैयार हैं। हम यह महसूस करते हैं कि जब वह समय आ गया है कि हम स्वीकार कर सकें कि समाज के विभिन्न स्थायी संघोंका मानव जीवन में एक निश्चित और किण्वित स्थान है और उनको मयासम्भय अधिक-अधिक आन्तरिक स्वाधीनता मिलनी चाहिए ताकि वे अपने उद्देश्योंकी सन्तुष्टिजनक पूर्ति कर सकें। फिर भी विभिन्न छोटी-छोटी संस्थाओं के पारस्परिक सम्बन्धोंको और उनकी सही-सही स्थितियों कायम रखने के लिए एक सर्वोच्च संघटनकी आवश्यकता है। उसी संघटनका नाम राज्य है।

(९) आधुनिक महाधिकारवादी (totalitarians) व्यक्तिगत समस्त जीवनको राज्यकी अधिकार-सीमा में भीतर मानते हैं। मनुष्यके जीवनका कोई भी भाग ऐसा

^१ इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य ही समाज के सब संघों में सर्वोच्च शक्ति-सम्पन्न है। अर्थ समाज अस्तित्व राज्यकी दृष्टि पर है।

नहीं है जिस वह अपना कह सके। वह राज्यके लिए ही जीता है और राज्यके लिए ही मरता है। निसानिनी न सर्वाधिकारवाणी दृष्टिकोणको इन गण्योम व्यक्त किया है। सब कुछ राज्यके भीतर राज्यके बाहर कुछ भी नहीं और राज्यके विरुद्ध कुछ भी नहीं। उन्मन दंगक व्यवस्था सामन आदग रत्ता चा विन्यास करा आगा मानो और युद्धरत हाजा (to believe to obey, to fight) ।

सर्वाधिकारवादो (totalitarian) दृष्टिकोणका मतप्रब है व्यक्तिके जीवन पर राज्यका पूण नियंत्रण (regimentation)। यह व्यक्तिके मूल्य और महत्त्वका स्वीकार नहीं करता जिसका परिणाम यह होना है कि व्यक्ति राज्य रूपी मशीनका एक पुर्जा बनकर रह जाता है।

राज्यकी स्पष्ट ध्याय व्याख्या (A Positive Statement of the State)

१ राज्यकी प्राथमिकता (Priority of the State) राज्य मानवीय सघाका सर्वोच्च रूप है। राज्यके बिना मनुष्यका जीवन अपूण है। व्यक्तिने आत्म वाच (Self realization) और आत्म-विकासके लिए राज्य कातावरण तयार करता है। जमा कि अरस्तू न कहा है परिवार और राज्यका अन्तर मात्राका नग है, किस्मका है। परिवारका अस्तित्व जीवनकी भौतिक आवश्यकताओंका पूरा करनेके लिए और राज्यका अस्तित्व नैतिक और मानसिक आवश्यकताओंकी पूर्ति के लिए है। अरस्तू का कहना है कि नगर (या राज्य) की कल्पना परिवार या व्यक्ति की कल्पना से पहले की है क्योंकि सम्पूर्णके बाग ही उसका अगाकी कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार राज्य व्यक्ति के पूर्वकी चीज है। मनुष्यका स्वभाव साथ मिलकर रहनेका है। अरस्तू के कथनको हम दूसरे ढंगम इस प्रकार कह सकते हैं कि सामाजिक जीवनकी प्रवृत्तिका द्वारा ही मनुष्य सभी प्राणिमा से भिन्न होता है। विधि और न्याय के बिना मनुष्य निरुद्ध प्राणी ही होता है। राज्य ही व्यक्ति कास्तवम मनुष्य बनता है। राज्य के बिना वह मनुष्य बननरी समता रखन हुए भी पशु ही बना रहता है।

अरस्तू न राज्यके कारण जो बात कही है वही बात महात्मा गांधी धाम समुदाय के बारेम कहत है। लेकिन राज्यके जिस आत्मावाणी सिद्धान्तका उपर विवचन किया गया है उससे मुकाबलम महात्मा गांधी की विचारधारा दाननिक अराजकतावादसे अधिक मेल साता है।

२ राज्य इच्छा और बुद्धि-द्वय (The State as Will and Mind) इस प्रकार राज्यकी कल्पना मनुष्यसे पूर्वकी है। इसका मत यह नहीं है कि राज्यका उद्देश्य व्यक्ति के उद्देश्यसे पूर्वका या विपरीत है। सहा मानाम दोनोंका उद्देश्य एक ही है—मानव व्यक्तिताका विकास। उपर जा कर कहा गया है उसका यह अर्थ है कि यह विचारम समग अन्तरे एतान्तम सम्भव नहीं है। बाल भी मनुष्य अपन आप से पूर्ण नहीं है। इसके प्रमाण परिवार विभिन्न सामाजिक मण्डल और राज्य ही

जसा कि लॉर्ड (Lord) ने कहा है राज्य व्यक्तिकी सञ्ज्ञा ही नितान्त आवश्यक स्वरूप और उमीदा सत्य है। राज्य कुछ अंगोंमें एक बाह्य संगठन है जो मनुष्यकी शान्त (universal) और स्थायी आवश्यकताएँ पूरी करता है और कुछ अंगोंमें राज्य व्यक्तिकी ही सामाजिक स्वरूप है। राज्य व्यक्तिकी नतिक और विवेकपूर्ण सञ्ज्ञाशक्त विकास और उनकी पूर्ति है। यह व्यक्ति के विभिन्न हिता और उद्देश्यों का विवेकपूर्ण संगठन है।

३ राज्य के रूपमें शक्ति (The State as force) राज्य व्यक्ति की शक्ति और शान्ति बन दोनोंका प्रतीक है (१४)। राज्य नागरिकोंके शारीरिक बनकी पूर्णता है। राज्यके लिए शक्ति बनका प्रयोग अनिवार्य है। आभिरकार असामाजिक और दुराग्रह पृथक् इच्छाओंको दबाने के लिए राज्यके पास शक्ति होनी ही चाहिए। राज्य व्यक्तिकी उसके सबके स्वयंसेवक परिचित करता है। राज्य द्वारा प्रयोग की गयी शक्ति ही व्यक्तिकी उस निम्न स्तरसँ जिनकी ओर वह विवेक रहित शान्ति साधारणतया प्रेरित होता है ऊपर उठाकर उस उच्च स्तर पर ल जाती है वहाँ व्यक्ति अपने व्यक्तिगत बन्धनको सामाजिक कल्याणका ही स्वाभाविक अंग समझनेमें समर्थ होता है। हीगेल (Hegel) का यह कथन वास्तवमें बहुत सारपूर्ण है कि अपराधको दण्ड देनेका अधिकार है।

४ राज्यकी अद्वितीयता (The uniqueness of the State) राज्य ही एक ऐसा संगठन है जो बगैरे ऊपर उठकर पूरे समाजका प्रतिनिधित्व करता है। सामाजिक धार्मिक राजनीतिक आर्थिक शिक्षा सम्बन्धी या किसी अन्य प्रकारके संगठनमें व्यक्ति संपूर्ण व्यक्ति-बन्धन समावेश नहीं हो सकता। मैसारी फॉलेट (Miss Follett) के प्रभावपूर्ण शब्दोंमें 'समाजको भिन्न देनेमें राज्य नहीं बन सकता क्योंकि वह भी सभ या कुछ सत्रोंका समुदाय में संपूर्ण व्यक्तित्वको समाविष्ट नहीं कर सकता जबकि एक आदर्श राज्य में संपूर्ण व्यक्तित्वकी मांग करता है। एक सच राज्यका सभी हिताका संकलन करना पड़ता है। विभिन्न वफादारियाँ (loyalties) को अपने अधिकारमें लेकर राज्य उन्हें एक बनाता है। मेरी विभिन्न निष्कर्ष हैं। यदि मैं उन्हें एक न बना सकूँ तो मेरा जीवन विभाजित और अव्यक्त होना ही पड़ेगा। एक सच राज्यके प्रति मेरी भक्ति इसलिए है कि वह मेरे विविध स्वयंसेवकों को संकलित करता है वह मेरे बहुमुखी व्यक्तित्वका प्रतीक है वह हमें बहुमुखी व्यक्तित्वका महत्व प्रदान करता है और इससे कारण हम अपनेको पहचानने लगते हैं। यदि आप मुझ में बहुमुखी व्यक्तित्व का साथ राज्यविहीन स्थानमें छोड़ देने हैं तो बड़ा मेरी आत्मा अपने सत्य और आश्रयके लिए सरसती है। मेरी आत्माका निवास राज्यमें है।

५ राज्य मानव सम्बन्धोंका व्यवस्थापक (The State as an Adjuster of Relationships) राज्यके सम्बन्धोंमें ऊपर जा कुछ कहा गया है उसमें एक निष्कर्ष यह निकलता है कि मनुष्यके सामाजिक सम्बन्धोंको व्यवस्थापन रखनेके लिए

हम एक सघोंपरि समग्र अर्थान् राज्यकी आवश्यकता है (५५)। राज्यक बिना हमारा जीवन अस्म-व्यस्म हो जाना है। राज्य हा मनुष्यों को दूर करता है और मनुष्य के बहुमुखी जीवनका एकरूपता और महत्व प्रदान करता है। आजकी दुनियांम जहां निष्ठावाका सघप निरन्तर बढ़ रहा है, मनुष्यक विविध सम्बन्धका आपसम ठाक रखनेक लिए राज्यकी अत्यन्त और अधिकाधिक आवश्यकता है। परिवार घासिक सस्यान दृढ यूनियन सामाजिक कनब आन्तिको यथास्थान बाधम रखना और समाज की शान्ति भग न होने देना, राज्यका काम है।

६ राज्य और सावभौम हित (The State and Universal Interest) राज्य मनुष्यके उन्हीं हितोंको चिन्ता कर सकता है जिनका सम्बन्ध किसी व्यक्ति बिसय या समुदाय बिसयम न होकर सबस हाता है। राज्य नागरिकके जातिगत या बगगत हितोंको पूरा करनेकी जिम्मेदारी नहा म सकता। इस बायके लिए परिवार, घम-सस्यान, दृढ यूनियन और सासुनिक सघ आदि हैं। गार्नर (Garner) के कयनानुसार किसी स्व-ठाज्य सघका उद्देश्य एक या कुछ हितोंकी प्रति तक ही सीमित है। राज्य बिसय हितोंके बजाय सामांय या सावजनिक हितोंके लिए उत्तरदायी हाता है (२३-२४)। यही कारण है कि ब्रिटन में दृढ यूनियनको राजनानिक कर लगानेकी इजाजत नहा है। लास्की (Laski) के ग्याम 'राज्य समाजके सभी सकीष स्वार्थोंसे ऊपर है और वह 'नितिव' प्रयाग उन स्थायी हितोंकी बढ़िके लिए करता है जिनक लिए मनुष्य एक साथ मिलकर रहते हैं (५०-२९)।

७ राज्य और नतिकता (The State and Morality) राज्य मनुष्यके बाहरी आचरणका ही नियमन कर सकता है प्ररका (morals) का नहा। प्ररक एकत्र आन्तरिक होनेके कारण राज्यक कार्यक्षेत्रम नहा मात। राज्य इन प्रश्न पर बिचार कर सकता है कि कोई काम जिस अभिप्रायसे किया गया है। अभिप्राय पर बिचार करते समय यह मामूम किया जाना है कि काम जानबूझ कर किया गया था या समादबग हो गया था। प्ररक पर बिचार करत समय कामके आन्तरिक और नतिक पक्ष पर बिचार करना पड़ता है। यह सही है कि राज्य एक नैतिक और आध्यात्मिक सस्या है तथा व्यक्तिके व्यक्तित्वका ही विस्तृत रूप है। पर उसका साधन तो शक्ति ही है जो इतनी अधिक बाहरी हाती है कि राज्य केवल बाहरी आचरण और अभिप्रायका ही नियमन और नियमन कर सकता है प्ररकाका नहा। फलतः राज्य स्वयं नैतिकता साधू नहा कर सकता। यह तो केवल ऐसी परिस्थितिया पैदा कर सकता है कि मनुष्य नैतिक बन सक। टी० एच० ग्रीन (T. H. Green) ने ठीक ही कहा है कि 'राज्य केवल उन्हीं कार्योंका करने या न करनेका ध्यान दे सकता है जिनका करना या न करना समाजक नैतिक हितम आवश्यक हो—उन कार्योंके करने या न करनेम प्ररक बाह जो भी रह (२९)। सीपी-सानी भाषाम इसका जप यह है कि 'राज्यका कवन उन्हीं कार्योंका करना चाहिए जिनका किया जाना समाजके अग्र जीवनके लिए अनिवार्य है। अथान जिनक बिना अच्छा सामाजिक जीवन सम्भव न

हो। कुछ लोग बुरी नियतसे इन कार्यों का नहीं करेंगे। ऐसी स्थितिमें राज्यको बस प्रयोग द्वारा इन लोगोंको काम करनेके लिए मजबूर करना होगा और ऐसा करनेमें यदि कोई खतरा पैदा होता है तो उसे बुर करना होगा।

उक्त विवेचनका सारांश यह है कि राज्य अपने धायम एवं उद्देश्य नहीं है। वह एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्यकी सामूहिक आवश्यकताएँ एक व्यवस्थित और न्यायपूर्ण तरीकेसे पूरी की जा सकती हैं। राज्यके बिना व्यक्ति तुच्छ और गौरवहीन हो जाता है। राज्य ही सामाजिक व्यवस्थाका कायम रखता है। बस प्रयोग (compulsion) अनुनय (persuasion) और अधिकार आदिक विवेकपूर्ण प्रयोग से राज्य ऐसे सामाजिक कल्याणकी वृद्धि कर सकता है जिसमें व्यक्तिका सच्चा कल्याण निहित है। व्यक्तिके व्यक्तित्वका दवाने या कुचलनेका अधिकार राज्यका नहीं है। प्रत्येक व्यक्तिके अन्तर्जीवनके लिए कुछ परिस्थितियाँ नितान्त आवश्यक होती हैं। जब तक किसी राज्यमें ये न्यूनतम परिस्थितियाँ न पायी जायँ तब तक उस राज्यके अस्तित्वका औचित्य नहीं है।

राज्यके मूल तत्त्व (Essential Elements of the State)

१ जनसंख्या (Population) राज्यके मूल तत्त्व है जनसंख्या भू-खण्ड, सम्प्रभुता और सरकार। यह तो स्पष्ट है कि जब तक लोग एक साथ मिल कर नहीं रहते तब तक राज्य नहीं बन सकता। यद्यपि राज्यके निर्माणके लिए आवश्यक निवासियोंकी संख्याका प्रश्न केवल एक सैद्धान्तिक प्रश्न है फिर भी प्राचीन लेखकोंने इस पर बहुत जोर दिया है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक *लॉज* (Laws) में लिखा है कि एक जादूरा राज्यमें रहनेवालोंकी संख्या ५४० होनी चाहिए। अरस्तू (Aristotle) की रायमें एक राज्यकी संख्या बहुत अधिक थी। बॉनम यूनानी नगर राज्यके महान् प्रशासक रुसा (Rousseau) ने मुसगठित जन-समाजवादी प्राचीन नगर राज्योंका क्रिमे प्रचलित करना चाहा था। वह उस हज़ारकी संख्या आदर्श मानता था। आचार मा निवासियोंकी संख्याके विचारसे आजकलके राज्योंमें इतना अधिक अंतर है कि एक ओर तो भारत इस ओर चीन ऐसे विपरीत राज्य हैं और दूसरी ओर मोनाको (Monaco फ्रांस के दक्षिण) तथा सैन मरिनो (San Marino इटलीके निकट) जैसे विस्फुट छोटे राज्य। मरिनो राज्यकी आबादी १३ ५०० तथा क्षेत्रफल केवल ३६ वर्ग मील है। और मोनाको राज्यकी आबादी २ ००२ तथा क्षेत्रफल ३६८ एकर है।

वर्षिक दृष्टिकोणसे राज्यके निवासियोंमें भूत तत्त्वके रूपमें धार्मिक और धार्मिक दाना शामिल हैं। राज्यके निवासियोंका दोहरा व्यक्तित्व होता है। राज्यधारा निमाण करनेवालोंके रूपमें निवासी नागरिक होते हैं। राज्यधारा माननेवाला के रूपमें वह राज्य की प्रजा होते हैं। नागरिक और प्रजा भेद करनेका धर्म क्रिया

(Rousseau) को है। नागरिकों के रूप में लोगों को अधिकार प्राप्त हैं और प्रजापति रूप में उनके कर्तव्य होने हैं।

२ भू-क्षेत्र (Territory) इसमें कोई सन्देह नहीं कि भू-क्षेत्र के बिना राज्य हा ही न हो सकता। किन्तु भी सभी राजनीतिक विचारक इस पर एकमत नहीं हैं। आधुनिक राज्य के लिए तो निम्नलिखित बातें होती हैं। निश्चित भू-क्षेत्र जरूरी है जिस पर जमीन का एकलव्य अधिकार हो। प्राचीन राज्य के विपरीत आधुनिक राज्य का स्वरूप भिन्न है। साम्राज्यीय साम्राज्य राज्य नहीं बन सकता। भले ही एक नया या मुन्विषा के आधीन उनमें किसी प्रकार का राजनीतिक सम्बन्ध हो। प्रोफ़ेसर इलियट (Prof. Elliott) के अनुसार सत्ता की सम्प्रभुता या अपना सीमाप्राप्त भीतर सर्वोपरि सत्ता तथा बाहरी नियन्त्रण का स्वतन्त्रता आधुनिक राज्यों के जीवन का एक मौलिक सिद्धान्त रहा है (१९)।

एक निश्चित भू-क्षेत्र आधुनिक राज्य के लिए इतना अधिक अनिवार्य है कि कोई भी न पृथक् और असम्बद्ध राज्य एक ही भू-भाग पर अपने अधिकार-क्षेत्र का दावा नहीं कर सकता। कबन एक ही अपना दावा पड़ता है। यह प्रपञ्च है मध्य राज्य (Federal State), जहाँ दो राज्य एक ही प्रदेश पर अधिकार रखते हैं। प्रोफ़ेसर इलियट का कहना है कि यदि दावा चाहिए कि 'व' एक दूसरे से सम्बद्ध राज्य हैं। और 'न' के अधिकार-क्षेत्र एक निश्चित अधिकार क्षेत्रों द्वारा भी सावधानी से तय कर लिया गया है।

३ सम्प्रभुता (Sovereignty) सम्प्रभुता और विधि का कानून राज्य का दो विशेषताएँ (distinguishing characteristics) हैं। सम्प्रभुता का मत है मानसिक-सत्ता—अन्तिम अधिकार क्षेत्र का कोई भी नहीं। राज्य के अतिरिक्त अन्य सत्ता के पास जनता हो सकती है भू-क्षेत्र और किसी प्रकार का कोई दबावपूर्ण सम्बन्ध भी हो सकता है पर उनके पास सम्प्रभुता नहीं होती। अन्तर्गत राज्य के प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को राज्य के अधिकारों का भाग बन जाना पड़ता है। इस हम आन्तरिक सम्प्रभुता कहते हैं। बाहरी सम्बन्धों में भी आधुनिक राज्य अन्तिम अधिकार रखने का दावा करता है। राज्य अन्तराष्ट्रीय परम्परा और समझौते का पालन नहीं ही करे पर जब तक कि वह सरकार एक वास्तविकता नहीं हो जाती तब तक पृथ्वी पर कोई दूसरी शक्ति नहीं है जो राज्य को उससे अधिकारिता जिम्मा सम्बन्धों का आजाकारी बना सके। राज्य की इस विशेषता का हम बाह्य सम्प्रभुता कहते हैं। अपनी ही सम्प्रभुता के कारण आधुनिक राज्य आन्तरिक मामलों में सर्वोच्च तथा बाह्य मामलों में निरन्तर स्वतन्त्रता का दावा करता है। लास्की (Laski) के अनुसार अपनी सम्प्रभुता के कारण ही राज्य अन्य सभी प्रकार के समुदायों द्वारा बनाया गया सत्ता के विपरीत है (२०-२१)।

सम्प्रभुता के बारे में होब्स (Hobbes) बेंथम (Bentham) और ऑस्टिन (Austin) के परम्परागत विचार लुइस (Lewis) ने इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं।

समाजके प्रत्येक सभ्यके जीवन अधिकारों और कर्त्तव्यों पर सम्प्रभुता पूरा अधिकार है। मैकाइवर (MacIver) तथा अन्य अनेक आधुनिक लेखक इस विचारसे महमत नहीं हैं। मैकाइवर की रायमें राज्य एक संघ है, जो अपने ढंगका बेजोड़ और अत्यन्त महत्वपूर्ण है पर फिर भी अत्यन्त संघाकी भाँति यह एक संघ ही है (५५ अध्याय २)। तेईसवें अध्यायमें हम इस दृष्टिकोणकी आलोचना करेंगे।

✶ सरकार (Government) जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं सरकार राज्यकी राजनीतिक संस्था है। यह राज्यकी सम्प्रभुता सम्पन्न इच्छाको कार्यान्वित करनेका साधन है। यदि जनतन्त्रीय राज्यमें अन्तिम सम्प्रभुता जनताके हाथोंमें रहती है तो नैधानिक सम्प्रभु (legislative sovereign) सरकार है। सरकारके बिना राज्यकी कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि सरकारके द्वारा ही राज्य अपनी इच्छा प्रकट करता है और उसे कार्यान्वित करता है। यह जरूरी नहीं कि सरकार किसी खास विस्म की ही हो। सरकारका स्वरूप राज्यके स्वरूप पर निर्भर करता है और राज्यका स्वरूप राज्य निवासियोंके चरित्र और उनकी राजनीतिक विचारधारासे बहुत कुछ निर्माग्न होता है।

राज्यका जड़िक सिद्धांत (The Organic Theory of the State)

प्लेटो के युगसे लेकर आज तक प्रायः सभी राजनीतिक विचारक सामान्यरूपसे समाज और राज्यकी तुलना एक सजीव शरीरसे करते आ रहे हैं। कुछ लोगोंने तो यह तुलना करनेमें बहुत सावधानी बरती है पर कुछ जब लोगोंने यह तुलना इस तरह बिना सोचे समझे की है कि राजनीतिशास्त्रके गम्भीर सख्तोंमें से अधिकतर इस धारणाको व्यर्थ मानकर अस्वाकार कर देनेके पक्षमें हैं।

प्लेटो ने राज्यकी तुलना एक बड़े डीनल्ले बाने मनुष्यसे की थी। उनका कहना था कि राज्य और व्यक्ति के कार्य समान्तर होते हैं। उन्होंने इस विभाजनका आधार मनुष्यकी आत्माके तीन गुणों बुद्धिमत्ता (wisdom) साहस (courage) और इच्छा (appetite) का बनाया था। वह व्यक्तिको राज्यका सूक्ष्म स्वरूप मानते थे—यदि राज्य समस्त विश्व है तो व्यक्ति उसका सूक्ष्मतम अणु है। अरिस्तू ने राज्यके गठनकी तुलना व्यक्ति के शरीरकी गठनसे की है और उनका पक्ष विश्वास था कि व्यक्ति वास्तवमें समाजका एक स्वाभाविक अंग है। सिसरो (Cicero) ने जो अपने अनेक राजनीतिक विचारके लिए यूनानी विचारकों पर निर्भर करते थे राज्यके प्रपानकी तुलना शरीर पर शासन करनेवाली आत्मासे की थी। ईसाई धर्म के प्रसारके प्रारम्भिक दिनोंमें सेंट पॉल (St Paul) गिरजाघरकी ईसागतीह का जीवित शरीर मानते थे। इसी उपमैके आधार पर मध्यकालीन सेनकोंमें आध्यात्मिक (spiritual) और धर्म-निरपेक्ष (secular) भाषणोंमें मनुष्यकी निष्ठा पर जब और राज्य के दावों के बारेमें विवाद उठ खड़ा हुआ था।

आधुनिक युगके प्रारम्भिक समकालीन में हॉब्स (Hobbes) और रूसो (Rousseau) ने राज्यके जबकि स्वरूप पर बहुत ध्यान दिया है। हॉब्स ने राज्यकी तुलना लेवाथान (Leviathan) नामक एक ऐसे दैत्यकी है जो एक व्यक्ति मनुष्य है यद्यपि शक्ति और आकाङ्क्षों साधारण मनुष्यके बहुत बड़ा है। उन्होंने राज्यकी समझोरियाकी तुलना मानव शरीरकी जामारियवि साथ बड़ा माराकीस की है। राज्यको भी फोड़ चर्मगेय और प्यूरिसी जैसी बीमारियाँ होनेकी कल्पना उन्होंने की है। राज्यके संगठनकी व्यक्तिके शरीर-गठनके साथ यह तुलना बहुत ही विनोदपूर्ण है यद्यपि यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा की गयी है जो उस सामाजिक सविदा सिद्धान्त (Social Contract Theory) का पायक है जिसके अनुसार मनुष्यने अपनी इच्छामें जानबूझ कर राज्य का निर्माण किया है। रूसो का कहना है कि राज्य और मानव शरीर दोनों शक्ति और इच्छा से ही संचालित होत हैं। राज्यकी यथार्थ शक्ति की तुलना मनुष्यके हृदयमें और कार्य-कारिणी शक्तिकी तुलना मस्तिष्कमें की गयी है।

उन्नीसवां शताब्दी के राजनीतिक चिन्तनका आरम्भ प्रतिक्रिया स्वरूप इस धारणा के विरोधसे हुआ कि मनुष्यने कृत्रिम तौर पर राज्यका निमाण किया है। इस प्रति क्रियाने इस सत्यको सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि राज्य मनुष्यकी कृति न होकर मानव-प्रकृति का प्रथम अनायास और अवश्यम्भावी विकास है। इस प्रयत्नमें समाज की जिवित्व स्वरूपवाली पुरानी धारणाने फिर बार एकड़ा और यह धारणा बिनापकर जमन आन्दोलनोंके चिन्तनका एक मौलिक अंग बन गयी। फील्डने (Fichte) इस प्रकारके सैद्धान्तिक सिद्धांतों से एवं यह और उन्होंने साफ-भाफ बनाया कि व्यक्ति और समाज हर दूसरे पर आश्रित हैं। उनका कहना था कि समाजस पर व्यक्तिक स्वतन्त्रता और अपने आपमें कोई अंग और महत्त्व नहीं है। वह समूच समाजका प्रतिबिम्ब अंग है। उन्हाके सम्प्रदाय गरीबसे उसका प्रत्यक्ष अंग निर्गन्त समूचे शरीरको कायम रखता है और समूचे शरीरका कायम रखनेमें स्वयं भी कायम रहता है, ठीक वही सम्प्रदाय व्यक्तिक राज्यसे है। इस प्रकार प्रारम्भिक आदर्शवादी राज्यको एक नैतिक गठन (moral organism) मानने थे।

जर्मन वैज्ञानिक छ ब्लन्त्स्ली (Bluntschli) ने राख्यने हस जैविक सिद्धान्त पर अपने पूर्ववर्ती लेखकों से भी अधिक जोर दिया। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला कि व्यवस्थापकी भाँति राख्यम भी सिम भे होता है। उनका कहना था कि राख्य पुर्ण है और घम-सुरखान (घर्म) स्त्रीलिंग और हग आधार पर स्त्रियाको सामुदायिक अधिकार दिए जानका बहु प्रबल विरोध करते थे। इस अत्युक्तिपूर्ण विवेचनक बाद जून राख्यरी जैविक सिद्धान्त सम्प्रदायी जर्मनों का धारणासम सच्चाई भी है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उनका कहना है कि राख्य एक नैतिक और आध्यात्मिक व्यवस्था है। वह कहते हैं कि 'जैसे एक तन बिना तन-विन्दुयारा सज्ज ही नही है उसने कुछ अधिक है जैस पत्थरकी एक मूर्ति पत्थरने टुकड़ोंका सग्रह मात्र न होकर उसका कुछ अधिक है जैस मनुष्य बापा (cells) और रधिर-नापात्रा (blood)

corpuscles) का समुदाय ही न होकर उससे कुछ अधिक है उसी प्रकार राज्य बाहरी विधियाँ (external regulations) का संग्रह-मात्र नहीं है उससे कुछ अधिक है (२२ १*)। राज्य मस्तिष्क और इच्छाका आवीकरण है। यह समाजका सन्निध्य रूप है।

उन्नीसवीं शताब्दीमें हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) एक ऐसे लम्बक हैं जो व्यक्ति और समाजके गठनात्मक मूल समानता बताते हुए भी तुलनाकी मौलिक बातको भूल जाते हैं। उन्होंने जबकि समानताका उपयोग अपनी पूरक निश्चित व्यक्तिवादी धारणाओंका सिद्ध करनेके लिए किया। पहलेके एक निबन्धमें इस सादृश्यका प्रयोग इतना अदरक किया गया है कि रेमके लाइनाकी तुलना जीवित शरीरकी घमनिया और गिराओसे की गयी है। घनकी तुलना रक्तकोषिकाओं (blood corpuscles) से और टनीघाफक तारोंकी तुलना स्नायुओंसे की गयी है। स्पेंसर का मूल यह है एक सजीव सगठनका विकास होता है निमाण नहीं। उनका उपदेश यह है कि 'चूँकि' राज्य एक सजीव सगठन है इसलिए उसे स्वतः अपनी इच्छाक अनुकूल विकसित होने देना चाहिए। उसे कृत्रिम माधनाका आश्रित नहीं बनाना चाहिए। निष्कर्ष गिरा अनिवार्य-स्वच्छता सावजनिक पुस्तकालय सावजनिक उद्यान आदि जीव सगठनके स्वतः विकासमें बाधा डालते हैं और इसलिए अनिष्ट है। स्पेंसर यह भूल जाते हैं कि 'चूँकि' राज्य एक अत्यन्त विकसित और सम्पन्न सगठन (organism) है इसलिए इसकी सही तुलना छत्रिक (Jelly fish) जैसी सरल जीव-सगठन से नहीं की जा सकती। उसकी सही-सही तुलना एक विकसित और सर्वापेक्षित जीव-सगठनके साथ ही हो सकती है—जैसे उद्यानका एक पौधा या पानतू जीव। एक उच्च-स्तरके सगठनका विकास होता है और निर्माण भी। पर स्पेंसर का राज्य सगठन सदा छत्रिक स्तर पर ही रहना चाहता है। इसके अतिरिक्त स्पेंसर की तुलनाका अपरम मान लेना अथवा तो यह होगा कि राज्यमें व्यक्तिकी प्रधानता न होकर समाजवादके सिद्धान्तको अधिक बल मिलेगा और व्यक्तिके जीवनमें राज्यका हस्तक्षेप बढ़ जायगा। पर स्पेंसर अतिवादी व्यक्तिवादीके पोषक हैं और नैसर्गिक अधिकारके सिद्धान्तको मानते हैं। बार्कर (Barker) ने ठीक कहा है कि स्पेंसर राज्य के जबकि स्वरूपवाला सिद्धान्तको जहाँ वह उपयोगी लगता है वहाँ स्वीकार कर लेते हैं और जहाँ वह उपयोगी नहीं होता वहाँ छोड़ देते हैं।

जबकि सिद्धांत में सारणी (Elements of truth in the Organic theory) राज्य की उपर्युक्त धारणाने बारेमें जो पहली बात कहने की है वह यह है कि सादृश्य (analogy) और तर्क (argument) एक ही चीज नहीं हैं। दानों में समानता स्थापित कर देने से मोर्गो में युक्ति-युक्त सम्बन्ध स्थापित हो जाना जरूरी नहीं है। इस साधारण सत्य का स्वीकार न कर सकने के कारण ही जर्मनी स्पेंसर और शैफले (Schäffle) जैसे समर्थकोंने राज्य की जैविक स्वरूप वाली धारणाका राज्य प्रयोग कर 'मजिबा' स्थाने मजिबा की कहावत खरितार्थ की है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि आखिरकार तुलनासे केवल कठिन चीजें आसान और असम्पन्न वानें स्पष्ट ही हो सकती हैं। तुलना प्रमाणका स्थान नही ले सकती।

समाज या राज्य पूर्णरूपण शरीर-सम्मान नही है। वह कुछ बातोंमें गरीर सम्मान जैसा है और कुछ बातोंमें बड़ा नही है।

(१) एक भौतिक जीवकी भाँति राज्यमें भी जीवन विकास और उत्थान का नियम लागू होता है। कुछ नव्यवादी ही म हाँ मिमाकन हम यह कल्पना नपाय नही है कि प्रत्येक राज्य युवावस्था श्रौढावस्था वृद्धावस्था पनन और नाशका अवस्थाओंमें गुजरता है। समाज में ज्ञानवान परिवर्तन प्रायः अनुसृत होते हैं और उनकी सही सही नापतौल नही हो सकती। हमलिए श्रौढावस्था बढ़ावा और मृत्यु जैम शास्त्रोंका प्रयोग हम ठाक तरह समाजक वारंम नही कर सकते। फिर भी हमारा विश्वास है कि सभी समाज और राज्याका अपना जीवन अपनी इच्छा और अपना स्वाधिन्य होता है और यह सब उस समाज या राज्यक किसी भी मध्यमक सम्मान जीवन और इच्छा में भिन्न होता है।

(२) व्यक्तिकी भाँति समाजके सभी अंग एक दूसरेसे सम्बन्धित रहते हैं और एक दूसरे पर निर्भर हैं। अंग एक दूसरे पर निर्भर रहने का साथ ही साथ समूह पर भी निर्भर रहते हैं और समूह समाज अंग पर आश्रित रहता है। प्रत्येकका कल्याण सबके कल्याणमें निहित है। व्यक्तिक कल्याणका समाजक कल्याणक साथ गहरा सम्बन्ध रहता है। जिस ज्ञानम व्यक्तिक सम्बन्ध होता है उस बातमें अप समाजका भी सम्बन्ध होता ही है। यद्यपि समाजमें अनुभूतिकी गहराई नही अधिक नही होनी जितनी व्यक्तिमें होती है। समाज असम्बन्ध और बिगड़ हुए व्यक्तिपारा जन्मदा नही है। वह शारीरिक इकाई और सजीव संगठन है। जीवनके नम क्षयम जितने मिल (Mill) आत्मपरक (self regarding) रहते हैं समाजकी व्यक्तिव प्रति शिथिल होती जाती है। जैसे परिवारका अपने सम्स्तों क व्यक्तिगत हितका ध्यान रखना पड़ता है वम ही समाजका भी व्यक्तिगत हितका ध्यान रखना पड़ता है।

(३) व्यक्ति और समाज दोनों में विभिन्न अंग होते हैं। ये अंग सामान्यतः विभिन्न काम करते हैं। सारा शरीर और आत्म कान या पट नही बन सकता। सन्त पार (St. Paul) का प्रभावशाली शब्दोंमें 'शरीर एक अंग नही है वह अनन्य अंग है। यदि पर यह कहने लगे कि 'यूँकि हम हाथ नहीं हैं इसलिए हम शरीर नही हैं तो क्या वह शरीर न रहेंगे? यदि कान कहने लगे कि 'यूँकि हम आँख नहीं हैं इसलिए हम शरीर नही हैं तो क्या वह शरीर न रहे जायें? यदि सारा शरीर आँसे बन जाय तो मुँह कौन? यदि सारा शरीर कान बन जाय तो सूँघ कौन? वे सब अंग तो अनेक हैं पर शरीर एक है। अतः हाथाम यंत्र नहीं कह सकता कि हम तुम्हारी जरूरत नही है और न फिर भी पंच स पत्र कह सकता है कि मुँह तुम्हारी बाई जरूरत नही है। यदि एक अंग का कष्ट होता है तो सभी अंग उस अंगको हलते हैं। यदि एक अंग का मृत्यु होता है तो सभी अंग इस मृत्यु का आनन्द लेते हैं।

तुलनाको ऊपर बतल गयी सामाज्य सन्ध्यामें आग से जानसे बठिनाइयाँ पना होनी निश्चित है। राज्य एक संगठन सा है पर इसके माने यह नहीं है कि वह एक भौतिक दायीर है। वह एक मानसिक व्यवस्था है—एक सामाज्य उद्देश्यक लिए विभिन्न मस्तिष्कात्मा संगठन है (२)। राज्य मस्तिष्कबोली आत्म निर्णायक व्यवस्था है और मस्तिष्क स्वयं भी आम नियम करनेमें समर्थ होते हैं। राज्य एक मात्र एकता नहीं है।

महत्त्व और सीमाएँ (Value and Limitations)

✓ गटेल (Gottell) नैतिक सिद्धान्तके महत्त्व और सीमाओं के बारेमें नीचे लिखे निष्कर्ष निवाले हैं

(१) यह सिद्धान्त इतिहासीय और विवासवादी दृष्टिकोणाका महत्त्व बताता है।

(२) यह प्राकृतिक और सामाजिक वातावरणके प्रभाव पर जोर देता है।

(३) यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि नागरिक और राजनीतिक संस्थाएँ एक दूसरे पर निर्भर रहती हैं।

(४) यह सामाजिक जीवन की मौलिक एकता और समाजके विभिन्न अंगोंके पारस्परिक सम्बन्धों पर जोर देता है।

(५) यह सिद्धान्त हमें सिखाता है कि समाज बिलकुल हटा सम्बन्धहीन व्यक्तियोंका समूह मात्र नहीं है। यह साफ-साफ बताता है कि एक प्रकारके प्रत्येक व्यक्ति पुरुष-पुरुष रूपसे समाज पर और समूचा समाज प्रत्येक सदस्य पर निर्भर है।

(६) इस सिद्धान्त का विवास है कि मनुष्य स्वभावतः एक राजनीतिक प्राणी है और सभी मनुष्योंमें पायी जानेवाली सामाजिक संगठनकी प्रवृत्ति ही राज्यका निर्माण करती है।

पर इसके साथ ही साथ राज्य और व्यक्तिके बीच बताया गयी अनेक तुलनाएँ बहुत साफ तानकर जुटायी गयी और परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध जान पड़ती हैं। इनमें कुछ हैं

(१) राज्यकी इच्छा हमेशा ही व्यक्तियोंकी इच्छाके समान नहीं होता।

(२) व्यक्तिके दायीरका विनाश अपने आप स्वतः होता है। राज्यके विकास का बहुत अर्थों तक संचालन और नियंत्रण हमें जानबूझ कर करना पड़ता है।

(३) राज्यके दायीर सिद्धान्तमें यह सतरा है कि राज्यका महत्त्वका बढ़ाते बढ़ाते हम राज्यको ही सत्य न मान दें और यह भूल जाय कि राज्यके अस्तित्वका उद्देश्य उससे व्यक्तिगत संस्थानों का क्या है। दूसरे शब्दोंमें कहें यह है कि समाजके लिए व्यक्ति का अस्तित्व न कर लिया जाय।

(४) राज्यमें व्यक्तिके जीवनका उद्देश्य समाजके जीवनको सदा बनाय रखना

ही नहा होता। प्रत्येक व्यक्ति को वांछी हृदय स्वयं अपने जीवनका निमाण करना होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी चतना और अपनी इच्छा होती है। पशुआके शरीरके कोशिकाओं (cells) के बारेमें यह सही नहा है।

(५) एक भौतिक शरीरक अणुओंका यदि काटकर अलग कर लिया जाय तो शरीरका नाग हो जाता है। राज्यका अग यांनी सदस्य जब राज्यस अलग हा जाता है तो राज्यका नाग नही होता।

ऊपर ओ कुछ कहा गया है उससे निष्पत्ति यह निकलना है कि राज्यका जैविक सिद्धान्त बहुत सचीता है अतः इसका प्रयोग बहुत सावधानीसे किया जाना चाहिए। सुलनाको बहुत दूर तक नहा पसीटना चाहिए। सभी जगह इसके प्रयोगसे अवश्य ही बिबेकहीन और हास्यास्पन्न नतीज निकलेंग।

SELECT READINGS

BARKER E — *Political Thought in England Spencer to Present Day*—
pp 175-183

FOLLETT, M. P — *The New State*—Chs 23 28

GARNER, J. W — *Introduction to Political Science*—Ch II

GARNER J. W — *Political Science and Government*—Chs IV VII

GETTELL, R. G — *Introduction to Political Science*—Chs. II IV

GETTELL R. G — *Readings in Political Science*—Chs. II IV

GETTELL, R. G — *Problems in Political Evolution*—Ch III

GETTELL, R. G — *History of Political Thought*

GILCHRIST R. N — *Principles of Political Science*—Ch II

LASKI H. J — *The State in Theory and Practice*—Ch II

LEACOCK, S — *Elements of Political Science*—Ch I

MACIVER R. M — *The Modern State*—Introduction

MACIVER R. M — *The Web of Government*—Ch XIII

ROUSSEAU J. J — *The Social Contract*—Chs II IV and V

SEELY, J — *Introduction to Political Science*—Chs. I II

WILLOUGHBY W. W — *The Nature of the State*—Ch II

राज्य की उत्पत्ति (The Origin of the State)

राज्य की उत्पत्ति पर विचार करते समय राज्य की प्रारम्भिक (प्रागतिहासीय) काल की उत्पत्ति और इतिहासीय काल के विकास के भेद का भली प्रकार समझ लेना आवश्यक है। प्रारम्भिक उत्पत्ति का प्रश्न बहुत कुछ वात्पनिक है। इसको समझने के लिए हमें प्रागतिहासीय युग और आधुनिक मनुष्य का अध्ययन करना होगा। हम इस बात का कार्य प्रामाणिक जान नहीं है कि राज्य का जन्म कैसे हुआ। आधुनिक समाजशास्त्र (sociology) जाति विद्या (ethnology) मानव विज्ञान (anthropology) और विधि शास्त्र (law) के इतिहास के अध्ययन में संघर्ष अतीत पर कुछ प्रकाश पड़ता अथवा है परन्तु उमर हम राज्य की प्रारम्भिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इस अनिश्चित स्थिति के होने हुए भी हम इतना तो निस्संकोच कह ही सकते हैं कि जहाँ कहा भी मनुष्य एक बड़ी समस्या में माघ रह है वही का राज्य अस्तित्व रहा है—चाहे वह प्रारम्भिक रूप में रहा हो या कुछ विकसित रूप में। प्रारम्भिक राजनीतिक संस्थाओं के विषय में कोई निश्चित इतिहासीय प्रमाण न मिलने के कारण इस बात के लिए हम विचार है कि उस धुंधले अतीत का जो कुछ थोड़ा बहुत ज्ञान हम है उसी के आधार पर हम राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनुमान लगायें और उसके सामान्य सिद्धान्तों की विवेचना करें।

राज्य की प्रारम्भिक या प्रागतिहासीय उत्पत्ति (The Primary or Pre historical Origin of the State)

राज्य की प्रारम्भिक अथवा प्रागतिहासीय उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहास और राजनीति शास्त्र के लेखकों ने निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है

- (१) दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त (The Divine Origin Theory)
- (२) सामाजिक सन्धि सिद्धान्त (The Social Contract Theory)
- (३) शक्ति सिद्धान्त (The Force Theory)
- (४) पितृशासक एवं मातृशासक सिद्धान्त (The Patriarchal and the Matriarchal Theories)।

पॉलिटिकल थियरी (Political Theory 1939), व ससक क्रननबर्ग (Kranen burg) ने इन सभी सिद्धान्तों को तीन भागों में बांटा है (१) धर्म प्रधान सिद्धान्त (२) प्राकृतिक नियम सम्बंधी सिद्धान्त और (३) शक्ति सिद्धान्त।

१. इसी उत्पत्ति सिद्धांत (The Divine Origin Theory) राज्य की प्रारम्भिक उत्पत्ति व सम्बंध में यह सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य की स्थापना स्वयं ईश्वर अथवा किसी अन्य दैवी-शक्ति द्वारा होता है और वही उस पर शासन करता है। राज्य का शासन या तो ईश्वर स्वयं करे या किसी ऐसे शासक द्वारा कराये जिन ईश्वर का प्रतिनिधि महाद्युक्त या पादरी माना जाता है और ऐसे राज्य को धर्मन्यायिक या ईश्वर शासित राज्य कहते हैं। नबी उत्पत्ति या धर्मन्याय का यह सिद्धान्त उनका ही पुराना है जिसका कि राज्य का धर्मिक और यह सिद्धान्त लगभग सभी आग्नि जातियों में पाया जाता है। यह तो एक प्रामाणिक सत्य है कि राजाशक्ति व प्रारम्भिक स्वल्प लिखा भद्र शक्ति से सम्बंधित माने जाते थे। उस समय व शासक धर्म-गुरु और राजा अथवा जाहंगीर और राजा के सम्मिलित स्वरूप होते थे।

प्रारम्भिक काल में नबी उत्पत्ति-सिद्धान्त के प्रधान पापक यहनी थे। उनके धर्म ग्रंथ Old Testament में बराबर इस धारणा के उद्धरण मिलते हैं कि ईश्वर स्वयं राजाओं का चुनता है नियुक्त करता है, बरखास्त करता है और उनका हत्या भी करता है। राजा अपने कामों के लिए केवल ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी माना जाता है। यूनानी जोड़े रामस मा राज्य का कवन अप्रत्यक्ष रूप में ही नबी मानते थे। यद्यपि उन्हीं धार्मिक विचारों का राजनीति से अलग नष्ट किया था किन्तु फिर भी वह राज्य का मनुष्य की राजनीतिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति मानते थे।

गुरु व ईसाई धर्म-गुरु भी नबी उत्पत्ति सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे। उनके उपरान्त सेंट पॉल (St. Paul) गारा रामवासिया का शिरे गय निम्नलिखित उपरान्त पर आधारित थे 'प्रत्येक प्राणी का देव शक्ति के अधीन रहना चाहिए क्योंकि परमात्मा के अलावा दूसरी कोई शक्ति है ही नहीं। जो जो शक्तियाँ हैं परमात्मा की ही हैं।'

ओल्ड टेस्टामन्ट और ईसाई धर्म-गुरुओं की शिक्षाओं ने मध्य युग में धर्म और साम्राज्य के बीच होनेवाले विवादों के सम्बंध में तत्त्वज्ञान समझ पर गहरा प्रभाव डाला। इन मसलों में स बुद्धि ने तो देव उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रयोग राज्य पर धर्म का प्रभुत्व स्थापित करने और बुद्धि ने धर्म पर राज्य की शक्ति स्थापित करने के लिए किया।

प्रोटेस्टेंट-रिफॉर्मेशन (Protestant Reformation) ने नबी उत्पत्ति-सिद्धान्त

* रोमन्स १३ : १ (Romans 13 : 1) पर इस बात को आमाजी में लाना किया गया कि उन्हीं धर्म-ग्रंथों में यह भी कहा गया है कि हम मनुष्य के बजाय ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। (Acts 5 : 29)

का और इससे सम्बन्धित राज्यवे प्रणि सविनय आशापालन या राज्य-शक्तिके प्रति अविराधक मिद्धान्तको बहुत बल दिया यद्यपि धार्मिक मामलोंमें यह आन्दोलन व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और व्यक्तिगत विवेक शक्तिका पक्षपाती था। धीरे-धीरे दैवी उत्पत्ति सिद्धान्तन अधिनाधिक रूपमें राजाओंके दैवी अधिकार सिद्धान्त (Theory of the Divine Rights of kings) का रूप ले लिया। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीके इंग्लैण्डके बारेमें यह बात विशेष रूपसे सत्य है। इस सिद्धान्तके अन्य मुख्य समर्थक प्रथम स्टुअर्ट राजा जेम्स प्रथम (James I) और राबर्ट फिल्मर (Robert Filmer) थे। फ्रांस में बूसे (Bousset) ने भी चौदहवें शताब्दी के निरंकुश शासनका समर्थन करनेके लिए इसी सिद्धान्तका सहारा लिया।

राजाओं का दैवी अधिकार सिद्धान्त (The Divine Right of Kings)

जॉन ऑफ फ्री मोनार्कीज (The Law of Free Monarchies) नामक अपनी पुस्तकमें जेम्स प्रथम ने इस सिद्धान्तका स्पष्ट विवेचन किया है। उनका दावा है कि राजाओं अपनी सत्ता सीधे ईश्वरसे प्राप्त होती है इसलिए राजा अपनी प्रजा और विधि-मानासे ऊपर है। वह केवल ईश्वर और अपनी आत्माके ही आधीन है। प्रजाके प्रति उनका कोई शक्ति उत्तरदायित्व नहीं है। उसका जेबल यही उत्तरदायित्व है कि वह मुचाह रूपसे शासन करे और ऐसा करना ईश्वर के प्रति राजा का नैतिक उत्तरदायित्व है। राजा विधि बनाता है विधिया राजाका नहीं बनाती। राजा प्रत्येक व्यक्तिका स्वामी है और उसके जीवन और धरण पर उस पूरा अधिकार है। अपने ग्रन्थमें शुरूसे अन्त तक जेम्स प्रथम यह दावा करता है कि राजा बुद्धिमान और अच्छे हाते है और प्रजा भूख और निर्बल होती है। उसका कहना है कि राजा सम्पूर्ण देशके लिए एक महान् शिक्षक होता है। उनका मत है कि स्वतन्त्र राजतन्त्र (free monarchy) वह राजतन्त्र है जो मनमाने ढंगसे शासन करनेके लिए स्वतन्त्र हो।

यदि राजा बरा हो तो भी प्रजाका उसके विरुद्ध विद्रोह करनेका अधिकार नहीं है। राजाके प्रति विद्रोह करना स्वयं ईश्वरके प्रति विद्रोह करना है क्योंकि राजा तो ईश्वरका ही प्रतिनिधि है। दुष्ट राजा प्रजाके पापके प्रापद्विचर स्वरूप ईश्वर द्वारा प्रजाको निया गया दण्ड है। इसलिए इस दण्डका समाप्त करनेका प्रयास करना गलत-नानुनी है। अगले जन्ममें मिसनेवाले दण्डका भय ही दुष्ट राजा पर एकमात्र धक्का है। यह दण्ड निश्चिन्त रूपसे अत्यन्त भयानक होता है। जेम्स प्रथमने इस तथ्य को समीक्षा दन प्रभावशाली धारणाओं में रखा है। राजाओंको देवता कहना बिल्कुल ठीक है क्योंकि वे पृथ्वी पर दैवी शक्तिका तरह ही व्यवहार करते हैं। जैसे ईश्वरकी शक्तिके बारेमें विचार करना नास्तिकता और पासक है ठीक उसी तरह प्रजाके लिए यह विचार कि राजा क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता दुस्साहम और मानहानि है। 'राजा पृथ्वी पर ईश्वरकी सजीव मूर्ति है।

राजाओंके दैवी अधिकार सिद्धान्तकी प्रमुख विशेषणों इस प्रकार हैं

(१) राजसत्ता ईश्वर द्वारा नियुक्त है

(२) यगानगन अधिशर नहा छाड जा सकतें

(३) राजा नवन इबरन ही प्रति उत्तरायी है एक

(४) निपमानसार अधिष्ठा राजाके विरुद्ध विद्रोह पाव है (G P Gooch)।

यह बहुत सम्भव है कि इस सिद्धान्तके समयकाको स्वयं ही इसके सभी अतिग्राहित पूरा दावोंमें पूरा विश्वास न रहा हो। मध्य यमम इस सिद्धान्तके इतने प्रबल समर्थनका एक मुख्य कारण यह था कि यह उस वैयक्तिक सम्प्रदायके विरुद्ध राज्यको बल देता था और योपके अधिशर दावका जा अनुचित विस्तार हो रहा था उस पर इन सिद्धान्तसे रोक लगनी थी। इस सिद्धान्तका समर्थन करने समय साग यह भूल गये कि इसके कारण राजाके भी अत्याचारी हो जानेका भय है। आग चलकर इसी सिद्धान्तका उपयोग जनताकी राजनीतिक जागृति व प्रजातन्त्रात्मक विचारों को दबानेके लिए और निरक्षर शासनका समर्थन करनेके लिए किया गया। अकारहवा सैनिक अन्तम जाकर इस सिद्धान्तका अप्रयुग और व्यवहारम हानिकारक मानकर त्याग दिया गया। औस्ट्रिया जर्मनी और रूस जैसे देशोंमें यह सिद्धान्त कुछ समय तक जोर माना जाता रहा।

आजकल राजनीतिक विचारकाम का उत्पत्ति सिद्धान्त और दली अधिकार सिद्धान्त समर्थन नहीं हैं। इन सिद्धान्तोंका अधिक विस्तारसे आलोचना करना व्यर्थ है। इतना ही कहना पर्याप्त है कि यद्यपि सामान्यरूपसे विचारण परिवार और राज्य जैसी मानव-संस्थाओंको उद्देश्य और शासनके अनुकूल ही मानते हैं फिर भी राज्य एक इतिहासीय विकास और मनुष्योंके राजनीतिक प्रयत्नोंका फल है। गिन्फोल्ड के अनुसार इस सिद्धान्तके पतनका निम्नलिखित कारण हैं

(१) सामाजिक सहिष्णु सिद्धान्तका उदय और उसके अन्तर्गत स्वीकृति (consent) की महत्ता।

(२) आध्यात्मिक शक्ति (spiritual power) से अलग सामारिक शक्ति (temporal power) की प्रधानता या दूसरे शब्दोंमें, धर्म संस्था (Church) व राज्यका वृक्षकरण।

(३) प्रजातन्त्रके उदयमें निरक्षर शासनके सिद्धान्तका विरोध।

राजनीति-इतिहासके एक सिद्धान्तका रूपमें इस विचारधारा पर ग्रोतियस (Grotius) हाब्स (Hobbes) और लॉक (Locke) ने बड़े प्रहार किए। फिर भी इसी उत्पत्ति सिद्धान्तमें कुछ मात्रा तक ये उनमेंसे कुछ निम्नलिखित हैं

(१) जिस समय मनुष्य अथवा मनुष्य अवस्थासे गुजर रहा था और एक धर्म-निरपेक्ष सौरिष सत्ता तथा स्वनिर्मित विधायी आकाश-शासनका उसे अभ्यास नहीं था तब सामाजिक व्यवस्था बनाने में राजा देवा उत्पत्ति सिद्धान्तन निष्प्रदेह महत्व पूरा योग दिया होगा। अराजकता का समाप्त करने और व्यक्ति सम्पत्ति और सरकारी प्रति सम्मानकी भावनाका महत्त्व करने में इसने बड़ी भूमिका की।

(२) इसकी व्याख्या इस अर्थमें भी की जा सकती है कि व्यवस्था और

अनुशासनकी प्रवृत्ति मनुष्यमै स्वाभाविक और बहुत गहरी होती है और यह राज नीतिक सगठनके रूपमें प्रकट होती है।

(३) इस सिद्धांतका सबसे बड़ा महत्त्व इस बातमें है कि यह सिद्धान्त अप्रत्यक्ष रूपसे राजनीतिक व्यवस्थाके नैतिक आधार पर जोर देता है। यह इस बात पर भी जोर देता है कि सरकारका अस्तित्व प्रजाके कल्याणके लिए है अपनी सत्तामें उपयोग करनेके तरीकाके धारेमें निरंकुश शासककी भी ईश्वरके प्रति नैतिक जिम्मेदारी है।

२ सामाजिक सविदा सिद्धान्त (The Social Contract Theory)
 इस सिद्धान्तकी भावना यह है कि राज्यका जन्म जानबूझ कर किये गये करार से हुआ है। यह करार आदिम मनुष्याने उस समय किया था जब वे प्राकृतिक स्थितिको पार कर रहे थे। यह सिद्धान्त मानता है कि मानव इतिहासमें ऐसा भी युग था जब राज्य या राजनीतिक विधि का अस्तित्व नहीं था। कुछ लेखक इस पूर्वनागरिक या पूर्व राजनीतिक युगका पूर्व-सामाजिक भी मानते हैं। इस प्राकृतिक अवस्था में मनुष्याके आपसी सम्बन्ध प्राकृतिक नियमोंके अनुसार चलते थे। सामाजिक सविदा सिद्धान्तके समयके इस विषय पर एक मत नहीं है कि यह प्राकृतिक नियम वास्तव में किस तरह का था यह प्राकृतिक अवस्था या तो अत्यन्त आदर्श थी या बहुत अशुविधाजनक व असह्य थी। इसलिए लागाने पीछे ही इस प्राकृतिक अवस्थासे छुटकारा पाकर प्रसविदा (covenant) द्वारा राजनीतिक समाजकी स्थापना की। प्रसविदा के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति का अपनी प्राकृतिक स्वाधीनता अलग या पूर्णतः छाड़नी पड़ी और इसमें बल में उस राजनीतिक विधि द्वारा मिलनबानी राज्यकी छत्रछाया और सुरक्षा मिली।

इस सविदाकी व्याख्या इस सिद्धान्तके समयके अनेक प्रकारसे करते हैं। कुछ लोग इस सम्मेलन समाजकी स्थापनाका ही ध्येय देते हैं पर कुछ अन्य लोगकी रायमें इसके कारण सम्मेलन समाजकी स्थापना ता हुई ही साथ ही शासक और शासितोंमें एक ऐसा करार भी हुआ जिसमें एक विशेष प्रकारकी सरकार बनी। पहले प्रकारकी सविदा का सामाजिक सविदा और दूसरे प्रकारके सविदाको राजनीतिक या सरकार सम्बन्धी सविदा कहते हैं। प्रारम्भिक या सामाजिक सविदा ता व्यक्तिगतात्त्विक थी जब दूसरे का भाव या सम्मिलित रूपमें उस समय हुई जब वे प्राकृतिक अवस्था पार कर रहे थे। दूसरे राजनीतिक या सामान-सम्बन्धी सविदा का पक्ष है—(१) प्रजा अपने सामूहिक रूपमें और (२) शासक या उसका प्रतिनिधि। एक दूसरे मन्त्र सामाजिक सविदा सिद्धान्तके समयका यह है कि कुछ लोग तो इस सविदाको एक इतिहासीय तथ्य मानते हैं और दूसरे लोग इसे इतिहासीय कल्पना मानते हैं जिसका उद्देश्य एक नैतिक नमूना आरम्भ करना है। प्रथम प्रकारका विचारधाराके समयके लोक और दूसरे मन्त्र पापक पक्ष (bani) हैं। वाट का सम्मिलित यह सविदा श्वेत एक सुनिश्चित विचार है। इस सिद्धान्तके व्यावहारिक रूपमें सम्बन्ध भी गहरा

समयकालि मन्त्र है। हाथ्य इसको निरङ्कुश राजतन्त्र तर्क बधानिक सरकार या सीमित राजतन्त्र और स्मा साकप्रिय सम्प्रभुता (popular sovereignty) के समयनमें प्रयोग करते हैं। सारांश यह है कि इस सिद्धान्तका प्रयोग इस धारणा के समर्थनमें किया गया है कि शासन सत्ताका न्याय-संगत हानक लिए अन्तिम रूप में शासितोंका समयन प्राप्त करना आवश्यक है। साधारणतया इस सिद्धान्तस जनता के अधिकारों और उनकी स्वाधीनताकी रक्षा हुई है और शासकाका स्वच्छाचारिता पर रोक लगी है। इस सिद्धान्तन राज्य के प्रति सामान्य अवहलताकी भावना भी उत्पन्न की है क्योंकि यह सिद्धान्त राज्यका एक कृत्रिम संस्था मानने के साथ ही शासन की व्यक्ति की प्राकृतिक स्वाधीनता पर रोक मानता है।

सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्तकी आलोचना सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्त पर इतिहासाय (historical) वैधिक (legal) एवं दार्शनिक (philosophical or rational) इन तीन दृष्टिकोणों से प्रहार किया गया है।

क्रेनेनबर्ग (Krenenborg) के अनुसार इस सिद्धान्त में नियमनात्मक पद्धति (deductive system) का बहुत अधिक और आगमनात्मक (inductive system) विचार पद्धतिका बहुत कम प्रयोग हुआ है (४५, ८)।

(क) इतिहासाय

(१) सामाजिक सविज्ञान-सिद्धान्तकी एक आलोचना या स्वयं समीक्षा आती है यह है कि इस सिद्धान्त का कोई सत्य-पूर्ण आधार नहीं है। यह अनुमान करना कि आदिम मनुष्यों ने किसी खास समय इकट्ठा होकर आपस में करार या सविज्ञान राज नीतिक समाजकी स्थापना की इतिहासका अनुमान पड़ना है। सविज्ञानका विचार आदिम मनुष्यों के बच्चे बाहरकी बात है। आज तक कोई इस बातका एक भी उदाहरण नहीं दे सका कि आदिम अवस्थाका पार करनेवाले मनुष्यों ने कहा जानबूझ कर आपसी करारक द्वारा समाजकी स्थापना की है। यह सच है कि सन् १६२० के मसाचुसेट्स करार (Mayflower Compact) के और सन् १६३६ के प्रोविडेंस करार (Providence Agreement) के जैसे उदाहरण सामाजिक सविज्ञानकी ऐतिहासिकता के पक्ष में दिए जाते हैं। पर यह याद रखना चाहिए कि जिन लोगों ने ये सविज्ञान की धीरे-धीरे प्राकृतिक अवस्था की पार नहीं कर रहे थे। वे लोग पहल दूसरे समूहों में रह रहे थे वही राजनीतिक समस्याओं से भरी भौतिक परिस्थिति में और जिन विचारों और संस्थाओं का वे पहलम जानने में उन्हाका वे नये भू भागों में प्रकटित हो कर रहे थे।

(२) शासकीय और राजनीतिक सविज्ञानों का इतिहासीय उदाहरण है पर ये सब सविज्ञान ऐसे मामलों में हुए हैं या पहलम मुख्य सामाजिक जीवन बिता रहे थे। ऐसे उदाहरण राज्यकी इतिहासीय उत्पत्तिका समस्याका किसी प्रकार का हल नहीं

करता है। यही वही शासक और प्रजा के अधिकारों और कर्तव्यों की व्याख्या भर करत है। शासकीय सविन्यता वास्तविकता है पर सामाजिक सविन्यता केवल कल्पना है।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार आदिम मनुष्य का दृष्टिकोण व्यक्तिगत ही अधिक था। यह सिद्धान्त मानता है कि आदिम मनुष्य एक स्वतंत्र व्यक्ति था और दूसरे स्वतंत्र व्यक्तियों के साथ स्वैच्छापूर्वक वृत्तान्त बन सक्ता था। परन्तु आदिम काल के सम्बन्ध में यही राजसिद्ध यह सिद्ध नहीं होता। आदिम काल की विधियाँ व्यक्तिगत की अपन्या सामुदायिक अधिक थी। व्यक्ति की भूमिका बहुत कम थी। परिवार को ही समाज की इकाई माना जाता था। सम्पत्ति पर सबका स्वामित्व था। विभिन्न रिवाज (customs) के रूप में थी। व्यक्ति का समाज एक निश्चित स्थान था। ऐसी परिस्थितियों में राज्य जैसी एक महत्वपूर्ण संस्था के सम्बन्ध में व्यक्ति द्वारा स्वैच्छापूर्वक कोई सविन्यता करना एक विचाररूप में बालू जान पड़ती है।

(ख) व्यक्ति

(१) यदि तर्क के लिये हम मान भी लें कि आदिम मनुष्य अपनी सामाजिक चेतना में द्रवना आगे बढ़ चुका था कि वह सविन्यता कर सके कि भी उस सविन्यता किसी प्रकार भी व्यक्ति महत्व नहीं है। किसी भी सविन्यता के बीच होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके पीछे राज्य की स्वीकृति का बल हो। सामाजिक सविन्यता के पीछे ऐसी कोई शक्ति नहीं थी क्योंकि सविन्यता राज्य की स्थापना के पहले की चीज थी बाद की नहीं। टी० एच. ग्रीन के दृष्टान्त में अस्थायी नागरिक सत्ता की स्थापना करने वाली सविन्यता बंध सविन्यता नहीं हो सक्ता। ऐसी सविन्यता करने वाले व्यक्ति ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि वे कोई बंध सविन्यता कर सकें (२९, ६४)। ऐसी सविन्यता के पीछे ऐसी कोई शक्ति नहीं होती जो उसे बंध बना सके।

(२) इस प्रकार यदि प्रारम्भिक सविन्यता ही अवस्था है तो उसके आधार पर भी गया बालू की सभी सविन्यता उसी प्रकार अवस्था होगी और ऐसी सविन्यता प्रारम्भ होने वाले अधिकारों का कोई व्यक्ति या कानूनी आधार न होगा।

(३) कोई सविन्यता केवल उन्हीं लोगों पर लागू होनी है जो स्वैच्छापूर्वक इस स्वीकार करते हैं। पर यह सामाजिक सविन्यता तो उन पीढ़ियों पर भी लागू मान ली जाती है जिनका उसमें कोई हाथ ही नहीं रहा। यदि पूर्वज लड़ते अगूर लारें तो आपसे लड़ते उनके बगलों का क्या मजबूर किया जाय कि वे भी लड़ते अगूर लारें न लड़ें लड़ें। इसका उत्तर यह सत्य है कि ऐसा जा सकता है जैसा कि सॉर ने कहा है कि राज्य में रहने के अर्थ यह है कि रहनेवाला इस मूल सविन्यता को मान स्वीकृति देता है। पर यह उत्तर तो स्पष्ट नहीं बल्कि निरर्थक एक उपायमात्र है। वास्तविकता तो यह है कि मूल सविन्यता करने वालों के मरते ही राज्य को समाप्त हो जाना चाहिए था और प्रत्येक नयी पीढ़ी का एक नया सविन्यता करना चाहिए। यह तो स्पष्ट है कि ऐसी

परिस्थितिमें राजनीतिक सत्ताका महत्व कम हो जायगा और यह भी सम्भव है कि राज्यरा हो अन्त हो जाय।

(ग) दार्शनिक

सामाजिक सविन्य मिद्धान्तके विरुद्ध दार्शनिक आपनियाँ तो इतिहासीय और वैधिक आपत्तियोगों भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। जसा कि पहले कहा जा चुका है सविन्य सिद्धान्तके अनेक समर्थक मानते हैं कि सविन्य केवल इतिहासीय कल्पना (fiction) है पर फिर भी वे लोग इसका उपयोग कुछ दार्शनिक सिद्धांतोंकी पुष्टिमें करते हैं। आलोचनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) इस सिद्धान्तमें यह मान लिया गया है कि राज्य और व्यक्तिका सम्बन्ध स्वच्छापूर्वक विभा गया सम्बन्ध है। भावधानताके भाव विचार करनेके बाद यह बात ठीक नहीं उतगती। हम ठीक उसी प्रकार राज्यक सदस्य हैं जिस प्रकार परिवारके। बच्चेकी परिवारकी सदस्यता और माता पिताकी भागा माननेका उसका कतव्य उसकी स्वच्छा पर निर्भर नहीं होता। हम राज्यमें बड़ा होने हैं और सामान्यतः राज्यको अपनी इच्छानुसार नष्ट करने। यदि हम बादमें नागरिकता ग्रहणते भी हैं तब भी हम राज्यमें ही रहते हैं। राज्य मनुष्यकी कृत्रिम रचना (artificial creation) नहीं है। राज्यकी सन्त्यता एच्छित नहीं है। यदि राज्य एक कम्पनी या व्यापारिक संस्थाकी तरह स्वेच्छामे बनाया गया संगठन होता तो व्यक्तिको यह स्वतन्त्रता होनी कि वह जब चाहे उसमें शामिल हो जाय और जब चाहे उससे अलग हो जाय। राज्यके प्रति नागरिकक कर्तव्य करार पर आधारित नहीं है। यदि राज्यके हर कामका औचित्य प्रत्येक नागरिककी स्वीकृति पर निर्भर हो तो राज्यका जीवन ही असम्भव हो जाय क्योंकि राज्य ही कोई ऐसा विषय हो जिसे समस्त नागरिकाका समर्थन प्राप्त हो। व्यक्तिकी स्पष्ट स्वीकृतिको ही राजनीतिक कर्तव्यका आधार माननेवाला स्पेंसर (Spencer) जैसा व्यक्तिवादी भी इस स्थितिको व्यर्थता स्वीकार करता है। सामाजिक सविन्य मिद्धान्तके समर्थक इस कठिनाईका हल करनेके लिए कहते हैं कि मूल सविन्यके लिए तो सबसेसम्मत स्वीकृति आवश्यक है पर उसके बाद बहुमत ही का समर्थन पर्याप्त है। यह तर्क-भंगत नहीं है। यदि हम सर्वसम्मति स्वीकृति का आरम्भ करते हैं तो क्या अन्य तर्क इस निराहना उचित नहीं हैं? एवमध्यम का क प्रसिद्ध और प्रभावपूर्ण दायन 'महान सत्यज्ञाना चाहिए कि राज्य भी मित्र और बर्षी बपड़ा या सम्बाधू जसे व्यवसायमें भागदारीका करार माया है और उसमें अधिक-बुद्ध नहीं जिनमें कि मूल पर लाभके लिए लोग जब मन चाहें शामिल हो जाय और जब चाहें छोड़ दें। यदि राज्य किसी अर्थमें सामंजस्य है तो वह एक उच्च जातिरी और म्यायी सामंजस्य है। पुन बर्ष के 'गामि' यह सामंजस्य समस्त विधानकी सामंजस्य है सभी कलाओंकी सामंजस्य है समस्त

सद्गुणाकी साक्षदारी है और सब प्रकारकी पूर्णताकी साक्षदारी है और क्योंकि इस साम्प्रदायीके उद्देश्योकी पूर्ति अनेक पीछियामे भी नहीं हो सकती इसलिए यह साम्प्रदायी केवल उही लोगोके बीचकी नहीं है जो जीवित हैं बल्कि यह साम्प्रदायी उन सबके बीचकी है जो आज जीवित हैं जो मर चुके हैं और जो भविष्यमें जन्म लेंगे। इस प्रकार व्यक्ति रायना सदस्य स्वेच्छापूर्वक किम्वद सम्वन्ध का कारण नहीं है। यह जन्मसे ही रायना सदस्य है। उसके कर्मव्यवस्था समझोते या स्वीकृति पर निर्भर नहीं है बल्कि उसके कर्मव्यवस्था आधार है, सार्वजनिक हित या समाजकी आवश्यकताएँ या उपयोगिताएँ (२२ ११३)।

(२) प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक नियमोंकी पूरी धारणा ही मुक्ति-संगत नहीं है। क्योंकि इस धारणामे यह मान लिया गया है कि राज्यकी स्थापनाके पहले जो कुछ था वह सब प्राकृतिक या स्वाभाविक था और उसके बाद जो कुछ हुआ वह (राज्यकी स्थापना सहित) सब कृत्रिम है। इस प्रकार एक तरहसे कुहड़ाडीसे इतिहासका या हिस्सा काट डालनेका कोई आधार नहीं है। हमारी आजकी नम्यता उतनी ही स्वाभाविक है जितनी पिछले समयमें कभी बदरता स्वाभाविक थी। मनुष्य स्वयं प्रकृतिक ही एक अंग है और राज्य मनुष्यकी प्रकृतिक सर्वोच्च विकास है। राज्यका विकास हुआ है वह मनीषासे चलकर नहीं बना। राज्यके सम्वन्धमें लोग जान बूझकर सौदा नहीं करते बल्कि यह समझोता है मनुष्यके स्वभावम ही है (२२ ११४)।

डुगुई (Duguit) सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्तका सर्वसिद्ध न हो सकने वाली परिफलपना कहकर अस्वीकृत करते हैं क्योंकि इस सिद्धान्तमें यह मान लिया गया है कि सविज्ञाना विचार प्राकृतिक अवस्था करी जानेवाली स्थिति भी मनुष्यों के निम्नागम मौजूद रह सकता है। उनके अनुसार यह असम्भव है क्योंकि जो लोग पहलेसे समाजम नहीं रह रहे हैं उन्हें सविज्ञानके सम्वन्ध और उत्तरदायित्वका बोध हो ही नहीं सकता।^१

यदि हम यह मान भी लें कि एक प्राकृतिक राज्य या जिसका शासन प्राकृतिक नियमों अर्थात् स्वाभाविक नैतिक नियमोंके अनुसार होता था तो ऐसी हासतम राज्यकी स्थापना करना आज बड़नेके बजाय पीछे हटना है। क्योंकि हृदयसे उत्पन्न और स्वीकृत नैतिक नियमोंके बदले राज्यकी दायित्वों अथनाना अवश्य ही एक जन्म पीछे हटना है। जसा कि प्रीन ने कहा है 'प्राकृतिक नियमों द्वारा शासित एक समाजको जिसमें कि मनुष्यकी अन्तरात्माके अतिरिक्त किसी दूसरी दायित्वके नियमोंकी आवश्यकता न हो छोड़कर एक राजनीतिक समाजकी ओर कदम बढ़ाना अवश्य ही पठन होगा। वह समाज तो ऐसा है कि उसने स्थान पर एक नागरिक शासन प्रणाली करनेका कोई कारण ही नहीं हो सकता (२२ ७२)।

एक बात और है यदि प्राकृतिक अवस्था ऐसी थी कि जिसमें लोग आपसमें सविदा कर सकते थे तो इसका माने सा यही हाते हैं कि लोगोंको सावजनिक हित का ज्ञान था। इसका अर्थ यह है कि लोगोंको समाजकी सत्ता और व्यक्ति के कृत्यों का भी ज्ञान था। यदि ये चीजें मौजूद थीं तो फिर उस अवस्था और नागरिक समाज राजनीतिक राज्यमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। फिर तो यह राजनीतिक राज्य ही है। भले ही उसका नाम कुछ और हो। एक राजनीतिक समाजके लिए जो तत्व आवश्यक हैं वे सब इस प्राकृतिक अवस्थामें मौजूद थे।

(३) सामाजिक सविन्य सिद्धान्तमें अधिकारोंके सम्बन्धमें एक भ्रान्त धारणा है। टी० एच० ग्रीन ने ठीक ही कहा है कि सविदा सिद्धान्तमें सबसे बड़ी भुक्ति यह नहीं है कि यह अनतिहासिक है बल्कि यह है कि इस सिद्धान्तमें अधिकारों और कृतव्या की कल्पना समाज से असम्बद्ध स्वतन्त्र रूपमें की गयी है। किसी भी व्यक्ति-संगत विचारसे अधिकारोंका आधार समाजकी स्वीकृति ही है। अर्थात् समाज एक ऐसे सार्वजनिक कल्याणको स्वीकार करता है, व्यक्तिवा कल्याण जिसका स्वाभाविक और अविच्छिन्न अंग होता है। अधिकार उन्हीं लोगोंका ही सम्भव है जिनकी प्रवृत्तियाँ और इच्छाएँ विवेकपूर्ण हों। पर सामाजिक सविदा-सिद्धान्तके अनुसार समाजके पूर्वकी अवस्थामें भी अधिकारोंका अस्तित्व सम्भव है। हमारी रायमें ऐसे अधिकार अधिकार हैं ही नहीं। बल्कि वे शक्ति मात्र हैं। ग्रीन कहती हैं कि 'ऐसी प्राकृतिक अवस्थामें जो सामाजिक अवस्था नहीं है प्राकृतिक अधिकारोंको अधिकार मानना एक आत्म-निराशी आधारहीन बात है। समाजके सम्बन्धमें सावजनिक कल्याणके ज्ञान के बिना अधिकार ही ही नहीं सकते (२९, ४८)। सविन्य-सिद्धान्तके सप्रथम आलोचकों में से एक जर्मन लेखक वॉन हालर (Von Haller) इस सिद्धान्तकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि यह कहना कि व्यक्ति और राज्यमें सविदा हुआ उतना ही व्यक्ति-संगत है जितना यह कहना कि व्यक्ति और सूर्यमें सविदा हुआ कि सूर्य उस गर्मी लाता करे।'

सिद्धान्त में सत्य का अर्थ यद्यपि राज्यकी उत्पत्ति तथा समाज में मनुष्योंके पारस्परिक नहीं सम्बन्धोंकी व्याख्या करनेवाले एक सिद्धान्तके रूपमें सामाजिक सविन्य-सिद्धान्त भुक्तिपूर्ण है और आजकल इसका कोई समर्थक नहीं है, फिर भी इसमें सत्यका कुछ अंश है। यदि हम इस सिद्धान्तका ठीक-ठीक समझना चाहते हैं—बिनापक्ष विज्ञापन सत्रहवाँ और अठारहवाँ शताब्दीमें इसकी व्याख्या की गयी थी—तो यह आवश्यक है कि हम यह समझें कि इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेमें इसने समर्थका का क्या उद्देश्य था। वे लोग राजनीतिक सत्ता और उसकी आत्मा-प्राप्ति की—जिसे अब तक दो विधि कहा जाता था—अधिक सन्तानजनक और मानवीय

^१ जर्मन द्वारा अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ सॉवरेनीटी सिंस रॉसो (History of Sovereignty since Rousseau)' में उद्धृत पृष्ठ ६२।

ध्यायना करना चाहते थे। दैवी अधिकार-सिद्धान्त शासककी आज्ञाओंको चुपचाप पालन करनेके लिए प्रजाप्राप्त मजबूर करता है। उसका स्थान पर सामाजिक सविदा सिद्धान्तने इस मौलिक सत्यकी स्थापना की कि राज्यको मनमाना शासन करनेका अधिकार नहीं है और प्रजा राज्यकी आपापालन इसलिए करती है कि वह राज्य सत्ताको अपनी स्वीकृति में खुकी है। इस सत्यकी व्याख्या करके सामाजिक सविदा सिद्धान्तने आधुनिक लोकतन्त्रकी स्थापनामें सहायता दी। इस सिद्धान्तने व्यक्तिकी महत्ता और इस सम्भावना पर बल दिया कि प्रत्येक मानव प्रयत्ना द्वारा राजनीतिक समस्याओंमें सन्तोषजनक हल सकते हैं। इस सिद्धान्तने यह भी घोषणा की कि राजनीतिक सत्ता अतन्त्र जनताके हाथोंमें ही निहित है (२४-२५)। यही कारण है कि स्वतन्त्रताके समयकोने इसे पसन्द किया क्योंकि इस सिद्धान्तने निरंकुश सत्ताके अधिकारों पर रोक लगानेके उपाय सुझाये। जो लोग तर्कमें रुचि रखते थे उन्होंने इस सिद्धान्तको अच्छा समझा क्योंकि सविदावाद विवादका विषय हो सकता है उसकी आलोचना की जा सकती है उसमें सन्तोषजनक बिये जा सकते हैं जब कि दैवी विधि के सम्बन्धमें कुछ किया ही नहीं जा सकता। यदि हम इस सिद्धान्तके इतिहासीय पक्ष पर ध्यान न दें तो भी यह इसलिए आकर्षक है कि यह मानव अनुभव के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पर प्रभाव डालता है (२४-४३)।

३ बल सिद्धान्त (The Force Theory) बल सिद्धान्तके अनुसार राज्य उच्चतर शारीरिक बलका परिणाम है। राज्यका जारम्भ बलवानों द्वारा कम जोरोंका अपने अधीन कर लेनेसे होता है। यह कल्पना तो स्वाभाविक है कि आग्नि कालमें अति बलवान मनुष्य दूसरोंको डरा कर उन पर एक प्रकारकी सत्ता कायम कर लेता था।^१ यही बात सामयिक उच्चतर जातियाँ एक उपजातियोंके दूसरी जातियाँ और उपजातियोंके सम्बन्धोंके कारण भी सही है। इसी अनुमानके आधार पर बल सिद्धान्त के समर्थक कहना है कि सभी राज्योंका जन्म बल प्रयोगोंके फलस्वरूप हुआ है।

इस सिद्धान्तके प्रबल समर्थक आपनहीमर (Oppenheimer) ने अपनी पुस्तक दि स्टेट्स में राज्यके उत्पत्तिकी विभिन्न अवस्थाओंका वर्णन किया है। इस सिद्धान्तके दूसरे प्रमुख समर्थक जेन्स (Jenks) ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिक्स (History of Politics) में लिखा है कि यह सिद्ध करनेमें जरा भी कठिनाई नहीं है कि आधुनिक राजनीतिक समुदायोंके अस्तित्वका ये सब सफल यद्वाकों हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार युद्धोंसे ही राज्योंका जन्म होता है। इस सिद्धान्तके समर्थकोंका कहना है कि जिस सैनिक राज्य निष्ठा और प्रादेशिक विश्वस्यता (military allegiance and territorial character) का हम आधुनिक राज

^१ वॉल्टर (Voltaire) का सूत्र है "पहला राजा कोई भ्राम्यमासी होता था।"

नीतिज्ञ समाजकी मौलिक विवेकताएँ मानते हैं उसने दो आधार हैं—एक यादवने साथ उसक अनयायिका सम्बन्ध और युद्धमें विजय जिसके द्वारा विभिन्न जानिया और देगोके लोग एक हो शासककी प्रभुताके अधीन हो जाते हैं।

कुछ लेखक 'बल' शब्दका प्रयोग इतने व्यापक अर्थमें करते हैं कि वे शारीरिक बलके अलावा बद्धि बल और धर्म-नैतिकता के प्राप्त होनेवाले बल भी इसमें शामिल करते हैं।

नैतिक उत्पत्ति सिद्धान्त और सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्तकी तरह इस सिद्धान्तके समर्थक भी इससे राज्यक इतिहासीय विकासकी व्याख्या और राज्यके अस्तित्वका तत्त्वपूर्ण औचित्य सिद्ध करते हैं। यह सिद्धान्त भी उन जना सिद्धांतोंकी भाँति होता है जो सामंजस्यपूर्ण है। व्यावहारिक रूपमें बल सिद्धान्तका मतलब केवल यह है कि सरकार मनुष्योंके बल प्रयोगका परिणाम है। इस प्रकारक विचार हबट स्पसर की प्रारम्भिक रचनाओंमें मिलते हैं। वह कहते हैं कि 'सरकारका जन्म बुराईयोंसे हुआ है और उन बुराईयोंकी छाप अब भी इस पर है। हम मानते हैं कि बल राज्य के निर्माणमें एक महत्वपूर्ण तत्व रहा होगा परन्तु इस ही एक मात्र कारण मान लेना स्पष्ट ग़लत है। प्रारम्भिक राजनीतिक समाजोंका निर्माणके अनेक कारण भी रहे होंगे। राज्यके विकासमें बल और विजयका जितना हाथ रहा होगा उतना ही हाथ स्वेच्छा से आपसमें मिल जानेका भी रहा होगा। विजयके बाद राज्यका विकास बातकी अपेक्षा समझौते और बल मितापन अधिक हुआ होगा बल-सिद्धान्त पारस्परिक सम्प्राप्य तथा उसी प्रकारक उन अन्य शान्तिमय तरीक़ोंका महत्व बहुत घटा देता है जिन्होंने राज्यक विकासमें निश्चय ही महत्वपूर्ण योग दिया है।

आन्तरिक एकता (internal unity) और बाहरी आक्रमण (external attack) से सुरक्षा हेतु राज्यक लिए शक्ति एक अनिवार्य तत्व है। शक्ति के बिना राज्य ध्वसात्मक शक्तिशाली शिवार हो जायगा और उसका अस्तित्व शीघ्र ही समाप्त हो जायगा।^१ परन्तु अनेक शक्तियों ही राज्यकी इतिहासीय उत्पत्ति तथा आपूर्तिक बालम उसके बने रहनेका कारण नहीं माना जा सकता। न्याय रहित शक्ति अपने सर्वोत्तम रूपमें भी केवल अस्थायी है 'याम-युक्त शक्ति राज्यका स्थायी आधार है' (२८ ७९)।

सामाजिक सविज्ञान-सिद्धान्तकी भाँति बल-सिद्धान्तका उपयोग भी विभिन्न ढंग-धोंसे किया गया है। कुछ साधारण कहना है कि 'यूँकि राज्यका जन्म शक्तिसे हुआ है इसलिए लोगोंका राज्यकी आज्ञा आज्ञा मूढ़कर माननी चाहिए। यह स्थिति तो बिल्कुल मुक्तिहीन मालूम होती है। जसा कि रूसो ने साफ-साफ कहा है (१७ पु० १ अ० ३) तब अधिक बलवान व्यक्ति का अधिकार तो अधिकार है

^१ मार्क्स के सहपाठी एंजेलस ने लिखा है 'बिना बल और सौहार्दकारिताके इतिहासमें कभी कोई सफलता नहीं मिली।

ही नहीं। बल पर आधारित अधिकार तो तभी तक टिकता है जब तक बल रहता है। परन्तु वह अधिकार ही क्या जो बलने समाप्त होते ही समाप्त हो जाय? पुनरुत्थान के गन्धर्व बल शारीरिक है उसके सामने मूक जाना विवाताकी बात है स्वेच्छाकी नहीं अधिकसे अधिक वह बुद्धिमत्ताका फल है। गुरुके कुछ ईसाई धर्माधिकारियों (Church fathers) ने भी बल सिद्धान्तका उपयोग किया है परन्तु उनका उद्देश्य राज्यको बलनाम करना था। उनका कहना था कि राज्यका आधार पाल्शिक बल (brute force) है और चर्च या धर्म ईश्वरकी कृति है और इसलिए राज्यसे अलग है। व्यक्तिवादिनों और समाजवादिनाने भी अपने-अपने सिद्धान्तोंके समर्थनमें बल-सिद्धान्तका उपयोग किया है। व्यक्तिवादियोंका तर्क है कि जैसे राज्य प्रबल शक्तिका परिणाम है वैसे ही समाजमें भी सबसे तेज व्यक्तिको ही दौड़में विजय मिलनी चाहिए। इसका अर्थ है कि समाजमें अनियंत्रित प्रतियोगिता (unrestricted competition) और व्यक्तिगत उद्यमको खुली छूट मिले। समाजवादी इस तर्क पर यह कह कर बात बन्द हैं कि व्यक्तिवादका अर्थ है बल का अनुचित प्रयोग इसलिए राज्यको चाहिए कि वह अपने उच्चतर बल प्रयोगसे बलवानों द्वारा कमजोरोंका शोषण किया जाना रोके और श्रमिकोंके साथ न्याय करे।

४ पितृसत्ताक एवं मातृसत्ताक सिद्धान्त (The Patriarchal and Matriarchal Theories) प्रायः सभी लोग इस बातपर एकमत हैं कि राज्य की उत्पत्तिको विकासके रूपमें समझना चाहिए। परन्तु विकासके क्रमके सम्बन्धमाफी मतभेद है। इसी मतभेदके सिलसिलेमें हम पितृसत्ताक और मातृसत्ताक सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं।

पितृसत्ताक सिद्धान्त सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) इस सिद्धान्तके मुख्य मर्मर्थक हैं। वह इस सिद्धान्तकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं पितृसत्ताक सिद्धान्त वह सिद्धान्त है जो समाज का आरम्भ ऐसे पुरुष परिवारोंसे मानता है जो सबसे अधिक आमुबाल पुरुष बान्धवों नियंत्रण व सन्तुष्ट्यायाम एक साथ रहते हैं। उनका विद्वान्त है कि राज्य परिवारका ही विस्तृत रूप है। उनकी धारणा है कि प्रारम्भिक परिवार एक पुरुष उसकी पत्नी और बच्चाका था। इस एक परिवारसे जल्दी ही कई परिवार हो गये और प्रारम्भिक पिता या बान्धव सबसे बृद्ध पुरुष इस समय पितृसत्ताक परिवारका रणक और शासक हो गया। ऐसे परिवारमें पुरुषोंमें या एक ही पुरुषसे व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़े जाते हैं। राज्य केवल पितृसत्ताक परिवारका उत्तरोत्तर विवाह-मात्र है। इस विवाहका मत न इस प्रकार बताया है 'प्रारम्भिक' इकाई एक ऐसा परिवार है जो सबसे बड़े पुरुष-मूलजक सामान्य शासनमें बसा हुआ है। कई परिवारोंको मिटाकर बस या बुद्धिमान बनता है। बेटों या बुद्धिमानों को मिलाकर एक कबीला या जाति बनती है। कबीलाको मिलाकर राज्य बनता है (२८ ५५)।

यह सिद्धान्त तीन मौलिक भावनाओं पर आधारित है

(१) पितृसत्ताक परिवारका आधार स्थायी विवाह और गोत्र-सम्बन्ध था,

(२) राज्य ऐसे व्यक्तिगोत्रा समूह था जो प्रारम्भिक परिवारके एक सामान्य पुत्रजके वंशज थे और

(३) पितृसत्ताक परिवारके प्रधानक व्यापक और अमोचित अधिकार राज नीतिक सत्ताके मूल स्रोत थे। यह प्रधान करते समय अपने सामान्य कानूनी अधिकार अपने उत्तराधिकारीका दे जाता था।

सिद्धान्तके समर्थनमें प्रमाण पितृसत्ताक सिद्धान्त के समर्थक अपने सिद्धान्तके समर्थन में हिब्रू, यूनानी, रामवासी तथा भारतीय जायों के पारिवारिक इतिहासका उदाहरण देते हैं। हेब्रू लोगोंने परिवारके सबसे बड़े पुरुषका परिवारके सभी लोगों पर निम्न अधिकार रहता था। उसकी सत्ता सर्वोपरि होती थी। उसका परिवार पर अधिकार मातृत्वके रूपकी अपना प्रतिनिधित्व के रूपमें अधिक होता था। एथेनवासियों में 'परिवार' तथा भ्रातृ सम (brotherhoods) हाथ में रामने पितृसत्ता (patna potestas) कानी पिताके अधिकारों पर परिवारके मुखियाको परिवारके सदस्यों पर अग्रिम अधिकार दे रखे थे।^१ भारतमें भी यहाँ समूह परिवार की प्रथा है एक परिवार में ही बहुतसे सदस्य रहते हैं। इन परिवारमें पिता और माता विवाहित लड़के और उनका परिवार अविवाहित लड़के और अविवाहित लड़कियाँ विधवाएँ और बूढ़ आश्रित सभी एक साथ रहते हैं। दूसरी और तीसरी पीढ़ीके चचेरे भाई भी भाई कहलाते हैं। ऐसे परिवारको आधार मानकर पितृसत्ताक सिद्धान्तके समर्थक यह अनुमान लगाते हैं कि समय बीतने पर परिवार बन्दर नागरिक समाज बन गया और पिता या सबसे बड़ा पुरुष सम्पूर्ण राजा या प्रधान बन गया।

सिद्धान्तकी आलोचना

(१) आदिम मनुष्यके इतिहासकी आधुनिक भावनाएँ पना चरना है कि पितृसत्ताक परिवारका विकास किसी भी हासतम सावधेशिक (universal) नहीं था। कुछ लोगोंका कहना है कि मातृसत्ताक पद्धति निम्न माताने माध्यमसे सम्बन्ध बना जाता है पितृसत्ताक पद्धतिसे पहले की है। मातृसत्ताक सिद्धान्त के प्रबल समर्थक मक्लेनेन (McLennan) का दावा है कि बहुपत्नित्व (polyandry) और मातृसत्ताक परिवार समाजमें आरम्भ हो गये और आगे चलकर बहुपत्नित्व एक पत्नीव्रत और मातृसत्ताक परिवार पितृसत्ताक परिवारमें बदल गये।

(२) मातृसत्ताक सिद्धान्तके एक और प्रबल पापक जैक्स का कहना है कि मेन की यह धारणा कि परिवार बड़कर गाँव और गाँव बड़कर इन्डोल हो जाते हैं

^१ सिड्ग्विक (Sidgwick) का कहना है कि स्त्री बच्चा और अपने बच्चों पर पिताका अधिकार इतना अधिक होता था कि व्यक्तिगत सम्पत्तिका कोई व्यक्ति अधिकार ही नहीं था। इस पूरा अधिकारके साथ इतना ही व्यापक उत्तरदायित्व भी था। परन्तु मनुष्ये का पिताके इस अधिकारमें एक बहुत बड़ी पावनी लग जाती थी (Development of European Polity Page 47)।

वास्तव्यम उम्पा है (२२ ११८)। जैक्स का कहना है कि जाति या कबीला ही प्रारम्भिक संगठन है उसके बाद वंश या गात्र है और उसके बाद परिवार है। अपने इस कथन की पुष्टि य जैक्स ने आस्ट्रेलिया और मलय द्वीप समूह की आदिम जातियों के कुछ समाजों के उदाहरण दिए हैं।

(३) अस्थायी आतिया में बहुपतित्व और अस्थायी विवाह प्रथा (transient marriage relationships) और स्त्रियाँ के उरिय सम्बन्ध जुटाने के रिवाज से मालूम होता है कि पितृसत्ताक परिवार प्रथा हमेशा से नहीं थी।

(४) इस सिद्धान्त की सबसे गम्भीर आलोचना यह है कि इसमें यह नहीं मालूम होता कि राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई। यह सिद्धांत बस यह अनुमान करता है कि समाज का और विषयरूप से परिवार का आरम्भ कैसे हुआ।

मातृसत्ताक सिद्धान्त मातृसत्ताक सिद्धान्त का संकेत उन जगहों प्रथाओं से मिलता है जो आस्ट्रेलिया के आदिवासियों भारत के कुछ समुदायों में तथा कुछ अन्य अल्पसंख्यक जातियों में प्रचलित हैं। जंगली जमाने के जीवन से एम समाज का पता चलता है जो पितृसत्ताक समाज से अधिक आदिम और असभ्य हैं। मातृसत्ताक समाज की मौलिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

- (१) अस्थायी विवाह-सम्बन्ध
- (२) स्त्री के माध्यम से सम्बन्ध-सूत्र
- (३) मातृसत्ता (maternal authority) और
- (४) सम्पत्ति और अधिकार पर स्त्रियाँ का ही उत्तराधिकार।

मातृसत्ताक सिद्धान्त के कुछ लेखक ऊपर बड़ी गंभीरता से विचारणाओं को आवश्यक समझते हैं परन्तु कुछ अन्य लेखक इस सिद्धान्त का अर्थ 'मातृसत्ता' (mother right) और मातृ सम्बन्ध (mother relationship) से ही लगाते हैं 'मातृशासन' (mother rule) से नहीं। उनके दोना विचारों में से दूसरा विचार अधिक मुक्ति भंगत मालूम देता है।

उन सीमित अर्थ में मातृसत्ताक सिद्धान्त के अनुसार मातृसत्ताक परिवार पितृसत्ताक परिवार से पूर्व का है। यह मान लेना स्वाभाविक है कि आदिम समाज में एक पति और बहुपत्नीत्व की प्रथा की अपेक्षा बहुपतित्व और अस्थायी विवाह का अधिक प्रचलन था। वीमह विवाह (Vemah marriage) का भी रिवाज था, जिसके अनुसार पत्नी के ही परिवार में पति मिला दिया जाता था। ऐसी परिस्थितियाँ में माना सं ही बन माना जाता था क्योंकि जसा जैक्स ने बताया है ऐसी हालतों में मातृत्व (motherhood) तो एक निश्चित तथ्य था परन्तु पितृत्व केवल अनुमान की बात ही बनती थी। मैकलवर (MacIver) का कहना है कि स्त्री दानि की प्रतिनिधि या माध्यम (agent of transmission) मानी गयी है दानि की संचालिका या प्रयोजना (wielder) नहीं। इस प्रथा से स्त्री को पत्नी और माता के रूप में एक सामाजिक प्रतिष्ठा मिली जो व्यक्तिगत प्रतिष्ठा से अधिक थी (५५ २९)। कुछ

समय मात्र आग्नि मनुष्य खानाबोले और निवासे जीवन के बजाय घरबाह और सतिहर जीवन व्यताठ करन लगा और सब मानसताक समाज का म्यान पितृसत्ताक समाज ने ले लिया (५१ ४१)।

आलाचना

(१) यद्यपि ससार क कई भागा म बहुपतित्व की प्रथा पाया जाती है परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहा है कि यह प्रथा सभी जगह प्रचलित थी या समाज का प्रारम्भिक अवस्था म आवश्यक थी।

(२) पितृ और मात सम्बन्ध क अतिरिक्त और भी गतिधरा और तत्वा का हम राजनातिक संगठन बनान म रहा हागा।

(३) पितृसत्ताक और मानसताक दाना ही सिद्धान्त एक बहुत बडा काम करन की वाणि करत हैं। ये दाना सिद्धान्त यह बनान की वाणि करत हैं कि मानव समाज का आरम्भ कस हुआ। परन्तु हम जिस प्राचीन स प्राचीन समाज की कल्पना कर सकत हैं मानव जाति की उत्पत्ति म और उसम सन्धिका अन्तर कर रह हा हागा।

(४) दाना सिद्धान्त राजनीतिक हान क बजाय सामाजिक अधिक हैं। ये राज्य की उत्पत्ति क बजाय परिवार की उत्पत्ति का विवचन करत हैं। साठन काय और उद्ध्य म परिवार और राज्य पयक-युक्त हैं।

पितृसत्ताक और मानसताक सिद्धान्त क बारे म हम जिस निष्पत्ति पर पहुचत हैं वह सबसे अच्छी तरह लीकोक (Leacock) के गाना म हम तरह व्यक्त किया गया है। आग्नि परिवार या गुटका एक ही स्वम्भ नहा था। कहा मानसताक सम्बन्ध का प्रचलन रहा है ता कहा पितृसत्ताक शासन का। इसम म कोई भी एन दूसरे को हटा कर उसका स्थान ले सकता था। वास्तव म हम यह स्वीकार करना पडता है कि मानव समाज का 'आरम्भ' नाम की कोई वस्तु है ही नहा। अधिक स अधिक हम इतना ही कह सकते हैं कि समय बीतने पर एक-अनर प्रथा या आघारित परिवार सबस अधिक प्रचलित हा गय यद्यपि संगठन क अर प्रकार आज भी सबर सब समाज नहां हो गय हैं। श्री रलम्बामी का कहना है कि मानसताक और पितृसत्ताक समाज का विकास साथ-साथ समानान्तर रूप म हुआ है परन्तु पितृसत्ताक सम्बन्ध-युक्त सम्व और प्रबल होत हैं।

इतिहासीय या विकासवादी सिद्धान्त (The Historical or Evolutionary Theory) ऊपर जिन पांच सिद्धान्तों की चर्चा का गयी है वह बहुत कुछ कल्पना-मूलक हैं। इन पांच सिद्धान्तों क मुकाबल म इतिहासीय या विकासवादी सिद्धान्त मान्य है जो राज्य की उत्पत्ति की ठीक-ठीक विवचना करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य इतिहासीय विकास या क्रमिक विकास का परिणाम है। यह विकास बराबर होता रहा है। इसका आरम्भ बिना एक बिना समय स हुआ—एगा नहीं कहा जा सकता। बर्गस (Burgess) के कथनानुसार 'मानव प्रवृत्ति के सावनीय

(universal) सिद्धान्तोंकी अधिक पूर्णता ही राज्य है। एक अकेले ऐसे कारणकी खोज करना ही ध्येय है जो सभी राज्योंकी उत्पत्तिकी समस्या एक दममे हल कर दे। विभिन्न कारणसे राज्यकी उत्पत्ति हुई होगी। कहीं पर एक कारण रहा होगा और कहीं पर दूसरा। जो भी हो राज्यको मनुष्य ने जानबूझ कर नहीं बनाया है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकारसे माया मनुष्य द्वारा जान बूझ कर नहीं बनायी गयी है। राजनीतिक चेतनाके विकासमें बहुत समय लगा होगा और प्रारम्भिक राज्यका विकास धीरे धीरे इस चेतनाके विकासके साथ-साथ हुआ होगा।

राज्य निर्माणके आधार (Factors in State Building) सभी राज्योंकी उत्पत्तिकी एक ही कारण ढूँढ निकालनेकी कोशिश करना ध्येय है। इससे अधिक सामान्यतः उन तत्वोंकी खोज है जिनसे प्रारम्भिक राज्य बना था। जैसा पहले कहा जा चुका है राज्य-निर्माणके विभिन्न कारण रहे होंगे और उनकी परिस्थितियाँ भी भिन्न रही होंगी। यह जानना कठिन है कि राज्यकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई। निम्नलिखित तत्वोंका राज्यके निर्माण पर प्रभाव पड़ा है—

(१) वंश-सम्बन्ध (kinship)

(२) धर्म और

(३) राजनीतिक चेतना।

१ वंश-सम्बन्ध इसमें तर्जिव भी सन्देह नहीं कि सामाजिक संगठनका उद्भव वंश-सम्बन्धम हुआ। वंश-सम्बन्ध चाहे वह वास्तविक रहा हो या कल्पित एकता का सबसे मूल्यपूर्ण सूत्र था। इनमे जातियों एवं उपजातियोंको एक सूत्रम बाँधा। तर्जिव कबल वंश सम्बन्ध ही राज्यका निर्माण नहीं हो सकता था। सामान्य सामाजिक चेतना सामान्य हित और सामान्य उद्देश्यका विकास भी जरूरी था। वंश-सम्बन्ध (kin relationship) न बड़ी मुश्किलसे सामाजिक सम्बन्ध (social relationship) को अपना स्थान लेने दिया होगा। मैकार्थर का कहना है कि वंश-सम्बन्ध सामाजिक निर्माण करता है और समाज अन्ततः राज्यका निर्माण करता है (५५, ३३)।

सब प्रथम वंश-सम्बन्ध पिताने माध्यमसे न होकर माताके माध्यमसे था। मनुष्य पिताकारी और खानाबगान था अतएव बहुपितृत्व और अस्थायी विवाहका रिवाज रहा होगा। फिर भी बच्चोंकी सुरक्षा और अधिक आवश्यकताके कारण माताएँ और बच्चे एक दूसरेमें घनिष्ठ रूपसे बँधे रहे होंगे। जैसे जैसे सत्ता और संपत्तिका विकास होता गया मनुष्यने अपने शारीरिक बलके कारण समुदायों पर प्रधानता पायी। जिन अन्य कारणोंने पितृसत्ताक समाजकी स्थापनामें मन्त्र पड़ेवाई व थे—जंगली जानवरों का पालनबूनाया जाना सम्पत्तिव्यवस्था का विकास अधिकार प्रारम्भिक व्यवसायोंका विकास और दास प्रथाका आरम्भ। इन सब कारणोंमें जंगली जानवरों का पालनबूनाया जाना अधिक महत्वपूर्ण था। जानवरोंकी सुरक्षाके साथ ही उस पर अधिकार रखना और ठीक प्रकारसे उसका उपयोग करना बहुत जरूरी था और इनका मतसब या समाजम पुष्पकी बढ़ती हुई प्रधानता।

पितृसत्ताक समाजका संगठन पुरुषोंके माध्यमसे निश्चित हानवाल सम्बन्धोंके आधार पर हुआ। स्त्रियों अधिकाधिक रूपसे सम्पत्ति माना जाने लगा। पत्नियोंकी आज अपने गिरहम बाहर की जाने लगीं जिससे विवाह-सम्बन्ध अधिक म्यामी हो गया और बहुपत्नी प्रथाका चलन सामान्य हो गया। कुलपति या परिवारके पिताका अपने पुरुष वंशजोंके शरीर और जीवन पर पूरा अधिकार था। उससे मरने पर यह अधिकार सबसे बड़े पुरुष वंशजको मिलता था। पुरुष वंशानुक्रमको कायम रखनेके लिए गोत्र सेनेकी प्रथा बहुत प्रचलित थी। इस पितृसत्ताक समाजका विकास इतना न हो सका कि वह राष्ट्रका रूप ग्रहण कर ले। यह समाज कई पितृसत्ताक समूहोंमें बँट गया जो अपने प्रारम्भिक समूहोंके प्रति किसी न किसी रूपमें कफादार थे। इन समूहोंके प्रधानोंके बड़े सागोंकी एक समिति बनाया होगी जो कुलपतिकी मदद करती होगी। यह कुलपति ही आगे चलकर जातिका प्रधान बन गया। कुलपतिक पास सेना प्याम और धर्म तीनोंके अधिकार रहते थे। य शासक या प्रधान समाजके कल्याण की अपेक्षा कुछ इन्त-गिने सागोंके विषय अधिकारों और शक्तियोंका सुरक्षाका और अधिक ध्यान देते थे।

पितृसत्ताक समाजमें रिवाज या प्रथाओंका बहुत महत्वपूर्ण स्थान था और उन्हाते विधिवा स्थापन ने रखा था। अभी तक नतिवता या वधिवताकी कोई निश्चिन भावना न थी। वैयक्तिक उद्योग (individual initiative) और जिम्मेदारी की भावना बिल्कुल न थी। पितृसत्ताक कानून कुलपति या परिवारका पिता (Patriarch or House Father) ही लागू करता था या न्यायाधीश भी था और फ़ैसल पर अमल करानेवाला भी। मायापोश और अपराधी दाना ही प्रथाओंसे बँधे थे। प्रथा ही मनुष्योंकी शासक थी। धीरे धीरे प्रथाने कानून या विधिवा रूप धारण कर लिया। उस समय तक राज्य अपने प्रचलित अर्थोंमें कहा नहा था। उससे कुछ विधायक तत्त्व उत्पन्न थे। मैकाइवर ने ठीक कहा है कि यह साधना बड़ी भारी भूल है कि जिस किसी भी जगती जातिमें हम कोई मुखिया मिन वहाँ हम राज्य मान लें। हम यह नहीं कह सकते कि जब और वहाँ राज्यका आरम्भ हुआ। नतुत्व और अधीनताकी विवक्यापी प्रवृत्तियों यह निहित है। पर जब सत्ता सरकारका रूप धारण कर लेती है और प्रथा विधि बन जाती है तभी राष्ट्रका जन्म होता है (५५ ४२)।

पितृसत्ताक समाज आजकलके समाजसे निम्नलिखित बातोंमें भिन्न था (३९ अध्याय ८)

(१) वह समाज प्राणैतिक (territorial) न हाकर व्यक्तिगत (personal) था। समुदायकी सन्त्यताका आधार स्थान या प्रान्त (locality) न होकर रक्त सम्बन्ध—वास्तविक या कल्पित—था। समूचा समुदाय अपना संगठन ज्यादा रक्त कायम रखन हुए एक जगहसे दूसरी जगह आकर बस सकता था। प्रारम्भिक कानूने राजा अपनी प्रजाके राजा होन थे, किसी निश्चिन भू भागके नहीं।

(२) उस समाजम दूसराब निए स्थान नहा या और उस अपन सदस्योंकी सस्या बढानेकी सलखा नही थी। अजनवियाको प्राचीन सहरकी चहार-दीवारीसे बाहर रहना पडता था। माद लिय जान पर ही वे समुदायम सम्मिलित हा सकत थे।

(३) उस समाजम प्रतियागिताकी गुजाइस नही थी। प्रयाए ही समाजके जीवनकी आधार था। समाजका बंधन सबके ऊपर एक-सा था और समाज ही सबके सामाजिक कर्तव्य और उसके प्रतिफल (rewards) निश्चिन करता था। परिवर्तन या प्रगति का दुरा माना जाता था।

(४) उस समाजका दुष्प्रमाण सम्प्रदायवादी था यह जरूरी नही कि उस साम्यवादी कहा जाय। यह समाज एम गुटाका एव समुदाय था जिनका उद्भव एक ही था। इस समुदायका आरम्भ एक कुटुम्बसे हुआ और फिर क्रमश गाँव या निकाद (guild) और अन्तम जाति या नगरकी स्थिति तक बिस्तृत हो गया। जीवनका आदम पारस्परिक सहयोग या स्वाधीनता नही। अहस्तक्षेप नीति (laissez faire) समाज के लिए अपरिचित थी। उस समाजमें व्यक्तिगत उद्योगका कुचलने और बुद्धिबलके मनमान प्रयोग पर बंधन लगानेकी प्रवृत्ति थी। पितृसत्ता समाजकी स्वाधीनता का अथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता न हाकर सामुदायिक स्वतंत्रता था। पितृसत्ता समाज और आधुनिक समाजके बीचका समय साम-तवाइका युग था और पितृसत्ता विचार राज्यके ठीक प्रकार बिस्तृत हा जानेके बाद बहुत समय तक प्रचलित रहे।

० धर्म सामाजिक चेतनाके प्रादुर्भाव और इस चेतनाके पन्थारूप राज्यक निमाणका दूसरा कारण धर्म है। जसा कि गटल (Giddell) न कहा है—वध सम्बन्ध और धर्म एक हा बातके दो पहनू हैं। आग्नि मनुष्यका सत्ता और अनुशासनका आगै बनानम और उसम सामाजिक एकताकी भावनाका विकास करनेम वग सम्बन्धकी अगेता सामान्य उपासना (common-worship) अधिक जरूरी थी। इस सामान्य उपासनाक बाहरका लाग अजनबी ही नही गनु तक मान जाते थे।

जैक्स (Jenks) का कहना है कि पितृपूजा (ancestor worship) सर्वत्र पितृसत्ता समाजका धर्म माना जाता था। पितृ पूजाका अर्थ है निवृत्त पूजकाकी पूजा करना। पितृसत्ता समाजक मनुष्यका विचार था कि उसक पूर्वजाका अस्तित्व निरन्तर कायम है। क्योंकि वह सपनाम अपन पूजकाका देखता रहता था। वह अपन पूजके लिए बलि देता था उमका पूजा करना था और पूजकाकी प्रयाप्ता पावन करता था ताकि उसने दिवंगत पूज उससे सल म हा जाय। इस प्रकार पूजकोंकी बलि देना पितृसत्ता समाजक धर्मकी एक प्रमुख विशेषता बन गयी। पूजकोंके बलि भाग ने धीरे धीरे एक धार्मिक कृत्यका रूप धारण कर लिया। यह पितृसत्ता धर्म समुदाय सभी लोग पर दबनके साथ लागू किया जाता था।

वग सम्बन्ध और धर्मम आपसमें दनता गहरा सम्बन्ध था कि कुसंपत्ति ही—जो भाग धनधर जातिका प्रधान हा गया—महापुरुषोहित भी होना था। यह परिवारका (बान्धमें जातिका) प्रधान था। यह प्रयाप्ताकी रक्षा और उनकी व्याख्या करता था।

यह महापुराहित होनेके साथ ही बहुधा जादूगर या चिकित्सक भी होता था। इस शासककी साधारण भाग भय और आत्मीय दृष्टि दस्तक दे। उसका शासन अत्यन्त कठोर होता था और इसमें उसका घमम बड़ी सहायता मिलती थी। उन प्रारम्भिक दिनोंमें निरकुशता बेचल बुरी ही नहीं थी। उसमें अन्धार्द भी थी। उसने जाति संगठनका मजबूत बनाया और मनुष्योंका अधिकार और उत्तरदायित्वका भावी बनाया। 'गुरुम निरकुशता ही प्रगति और स्वाधीनताकी ममम बड़ा सहायक थी। यहाँ कारण है कि घम और राजनीति बहुत समय तक एक साथ मिल्कर चल और आज भी वह एक दूसरेसे एकत्र अलग नहीं हैं।

जब पिन्सुताक आनि नयी-नया जानियाक मिननम या विजय प्राप्त करके बहुत संगी तब जा नयी स्मिति पदा हुई उमका मुकाबला पिनसुताक घम न कर सका। इसी अवस्थाम प्रकृतिकी पूजा आरम्भ हुई। प्रारम्भिक अपरिपक्व ब्रह्मवाद (crude animism) में प्रकृतिही उपासना आग्नि युगमें भी प्रचलित थी पर अब वह अपन विकसित रूपमें बड़ी आसानीसे पूज्य उपासना में घुल मिल गयी और सामान विधिसे लिए निषेध (sanction) का काम करने लगी। धार्मिक और राज नीतिव विचारोंमें कोई भेद नहीं किया जाना था और विधि तथा मताकी आजाबता पालन अधिकतर इन विश्वासों कारण बिना जाना था कि सामन्त दली गकिर है और प्राचीन प्रथाएँ पवित्र हैं (२४-२५)।

३. राजनीतिक चेतना राज्यके विकासका तावरा कारण यह है कि मनुष्य न प्रारम्भिक युगमें व्यवस्था और सुरक्षाकी चिन्ता अधिक उद्भूत समझी और इससे साथ ही साथ व्यवधान और चतुर लोगोंमें गति और अधिकारकी नालसा पैदा हुई।

जैसे ही मनुष्यन गिकार करनेकी और खानाबख्शका आनन्द छाडा और चरागाही और उत्तिहर जीवनका अपनाया वह ही उसमें जीवनमें अन्त परिवर्तन हुआ। आबादी बहुत लगी पहामियासि सम्बन्ध बहुत भग सम्पत्ति एकत्री होत लगी आयुष्मकी भावना अब पकड़ने लगी और अधिक जावतवा विकास हुआ। इन सब परिवर्तनमें यह उद्भूती हो गया कि कोई ऐसा व्यवस्था है जिसमें समाजमें आन्तरिक व्यवस्था कायम रहे और स्थिति तथा सम्पत्तिकी सुरक्षा हो सके। इस व्यवस्थाका और नाम उस समय मिला जब मनुष्यन यह अन्तर्भव किया कि परिवार तथा विवाह जब सामाजिक सम्बन्धोंका नियमन करनेके लिए एक अधिकारयुक्त संस्था का उद्भूत है। सावजनिक सुरक्षा और आक्रमणके समय उद्भूती सामूहिक कारवाइयों के लिए भी ऐसा संस्थाकी आवश्यकता प्रतीत हुई और इसमें भी सामन्त बल मिला।

राज्य-सम्पाद निमाचम गतिनकी अजागाका बल बड़ा हाथ था। इस अजागा का पूरा करनेका सबसे अच्छा अवसर सैनिक कारवाइयोंमें मिला। कमसे कम कुछ अवसरों पर तो 'युद्ध' ही राजाका जन्म दिया। आरम्भके पारिवारिक मण्डलका स्थान धीरे धीरे मनु राजनीतिक सम्पन्न भत गया। सफ़्त यद्-नायक राजा या सामन्त बन

गये और समाजम बर्द बग पदा हो गये। सक्ति अधिकधिक रूपसे कुछ चुने हुए वर्गों के हाथमें चली गयी जो अपने लिए विनाश असामान्य अधिकारोंका दावा करने लगे।

इस प्रकार वर्ग-संगठन धर्म और व्यवस्था तथा सुरक्षाकी आवश्यकतासे यह संगठन बना जिसमे सामारणतया राज्यका जन्म हुआ (२४)। इन सबके कारण विधिकी जरूरत पड़ी और इस विधिकी लागू करनेके लिए सरकारकी जरूरत पड़ी। राज्य इस राजनीतिक विकासका अंग बन गया।

SELECT READINGS

- GETTELL R G -- *Introduction to Political Science* -- Ch VI
 GETTELL R G -- *Readings in Political Science* -- Ch VI
 JENKS E -- *The Ship of State* -- Ch III
 CRAVENBURG R -- *Political Theory* -- pp 3 19
 MACIVER R M -- *The Web of Government* -- Ch II
 LOWIE R. H -- *Origin of the State*
 OPPENHEIMER F -- *The State*
 SIDOWICZ H -- *Development of European Polity* -- Lecture III
 WILLOUGHBY W W -- *The Nature of the State* -- Chs III VI

राज्य का इतिहासीय विकास

(The Historical Development of the State)

अब जब हमें राज्य का उत्पत्ति और प्रारम्भिक राज्य का बनाने का तत्वात्मक सम्बन्ध में प्रचलित कल्पनामूषक सिद्धान्तों का विवरण किया है। अब हम इतिहासात्मक काल में हुए राज्य के विकास पर विचार करेंगे। इस सभ्यता के विकास के लिए हमारे पास ठोस सामग्री है।

१. पूर्व का प्रारम्भिक साम्राज्य (The early Empire in the Orient)
आग्नि पितृसत्ता के अवस्था के विस्तार के बाद पहला राज्य का स्वरूप व्यापक रूप से दक्षिण-पश्चिम की ओर था। पितृसत्ता के समाज के पास न तो इतनी भूमि थी और न इतनी जनसंख्या कि वह एक राज्य बना सके। ऐसा मानना है कि वास्तविक या काल्पनिक एक सम्बन्ध के परम्परा बंध हुए विभिन्न कुटीरों और विभिन्न राज्यों के बीच कील-खाने के द्वारा था। परन्तु इनसे ही राज्यों का निर्माण नहीं हो सका था। राज्यों के निर्माण के लिए यह जरूरी था कि कुटीरों की मनुष्य विस्तृत निष्ठा और उत्तरदायित्व की भावना बन बिजय और प्रभुत्व कायम करके ही उन इन कुटीरों की भावना बनाया जा सके था।

बड़ी-बड़ी मत्प्राप्त साधन ज्ञान के पूर्व के गरीब और उपजाऊ भूभागों तथा मनुष्यों और पशुओं के पशुधन आदि सम्पत्ति और आदिम राज्यों का उत्पन्न हुआ। यह ऐसे क्षेत्र थे जहाँ कमसे कम महानगर अधिकतम अधिक उपजाऊ सम्भव था। यहाँ की आबादी तेजी से बढ़ी। बहुत जल्दी लोग प्रारम्भिक पारिवारिक और धार्मिक संगठन को पार करके तथा राजनीतिक व्यवस्था का गम। तब तक साधन बढ़ने वाली जनसंख्या न और न गम प्रेक्षा की दुर्लभ बनाने वाली जनसंख्या में एक बहुत बड़ा दासवादी उत्पत्ति कागज किया। जिनके पास आवश्यकताओं अधिक सम्पत्ति अवकाश और शक्ति थी वे जासानीस दूसरों पर हावी होकर निरंकुश सत्ता कायम कर सका। सामाजिक विभाग और जाति प्रथा का प्रथम धारक हुआ। इस परिस्थिति में बहुत जल्द विभाग साम्राज्य का विकास हुआ। यह सभी साम्राज्य—सुमेरियन, असीरियन, पर्सियन या फारसी साम्राज्य, मिस्र और चीन के साम्राज्य—नगरों का कट्टर बनाकर विस्तारित हुए। प्रारम्भिक साम्राज्य का स्थापक अब सभी साम्राज्यों का भौतिक सम्बन्ध और संगठन बहुत कमजोर था। उनका सुना भय और निरंकुशता पर

हीन्की थी। फारमक साम्राज्यम ही एवता और स्थिरता कुछ हद तक पायी जाती था। अ य सभी साम्राज्योंका नाम अधिनत राजस्व समूल करना और मन्त्रि मर्तो करना था। न ता वार् एक सामान्य उद्देश्य था और न एक सामान्य वधानरी। सत्ताएँ राजवर्ग के कमजोर हाते ही पकिष्वाणी प्रतिष्ठी धामन और सत्ताक लिए आपनम ल ने मगने थ। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और मन्त्री राजनीतिक प्रगति लिए वधान नहा थी। प्रारम्भिक साम्राज्य हम प्रकार अस्थिर हा रह। वह अधिक स अधिक अर्ध-स्वायत्त (semi independent) गन्थावा एक गिधित गठममन थ। साम्राज्य-सत्ता केवन एक राजवर्गस दूसरे राजवर्गम ही नहा बलि एक नगरम दूसरे नगरम बीच बन्तली रहनी थी (५५ ५८)। इन सब दुनियाक हात हुए भी प्रारम्भिक साम्राज्य न सागाका सत्ताकी आजा-वापनका आनी बनाकर राजनीतिक विकासम वनी सहायता नी।

२ यूनानके नगर राज्य (The Greek City States) राज्यक विकास की दूसरी महत्वपूर्ण अवस्था यूनानम पिनता है। यद्यपि यूनानम सम्यताका विकास पूर्वक गैराकी अर ता कुछ घातम हुआ फिर भी सम्यताक आरम्भ हा जान पर उसका विकास सदास हुआ। यूनान गैराकी भौगोलिक परिस्थितियाँ राजनीतिक अधिकार और उनके प्रयोगक निग बहुत उपयुक्त है। सारा देश पर्वता और सागरके कारण अनेक घाटिया और द्वीपम बटा हुआ है। उसकी प्राकृतिक अवस्था विभिन्न प्रजातकी है गैरम बड़-बड़ पहाड़ और नदियाँ नहा है और न कोई ऐसा प्राकृतिक कारण है जा मनुष्यकी त्रियाधीनताका गव सके। यूनानियाका घम तथा जीवन सम्बन्धी दुनियाक प्राकृतिक था। वह अपन दकताओ स नहा डरत थ। चूँकि वनी प्रदूति उष्ण कटिबन्ध देश (tropical countries) की भाँति उगार नहा था इस कारण लोग उपनिवेश बनाथ तथा व्यवसाय करत थ। पितृसत्ताक कबीला या जातियाँ न छात्र-छात्र प्रदश पर अधिकार कायम किया। उ हान पहाड़ियाँ आसपास गाँव बसाये जिसस उनकी रक्षा आसानीमे कर सके। इनपमे कुछ कबील विजय द्वारा कुछ रजाम-गीम तथा कुछ रक्त या वग सम्बन्धक कारण एकम मिल गय। परन्तु उनम राष्ट्रीय एकताकी भावना विवसित नहा हा पायी। उनम अत तक सिर्फ स्थानीय देशप्रेम (local patriotism) की भावना ही बनी रहा।

यूनानिया न अपन स्वायत्तता और स्वायत्ति नगर राज्यम या नगर समुदाय म कई प्रकारके राजनीतिक संगन्ताका विकसित किया। इन सभी समुदायम विकास क तय निर्हित थ। केवल स्पार्ता (Sparta) ही बराबर कृषिवाणी बना रहा और अपने शान्त और सरकारी उपायका ग्या बनाथ रहा। इसके विपरीत दूसरे राष्ट्रोंमे राजनीतिक विकासका साधारण क्रम राजतन्त्रम कुलीनतन्त्र कुलीनतन्त्रम निरकुलतन्त्र और सब प्रकारके पा (२ अ० १)।

यूनानी नागरिक अपन राज्यके प्रति बहुत कड़ादार हाता था। नगरके जीवनम गूरा भाग सना उनक जीवनका एक महत्वपूर्ण मध्य था। नागरिकता एक बनस्य

क रूप में था और नगरभण्ड एक व्यवसाय था (५१-८४)। यूनानी नगर नगरका एक नतिन मन्था मानत था। नगर अनेक शायों और वनस्पतिका पूरा करना था। वास्तव में नगर समाजका पूरा जीवन था। वह एक सर्वांगीण भागीदारी (all inclusive partnership) था। यूनानियोंका विश्वास था कि राज्यका अलग रहकर कोई भी व्यक्ति जीवनकी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता। यूनानियोंने जीवनका दृष्टिकोण आरम्भमें अन्त तक सामाजिक था।

इस तरह जहाँ एक आरम्भमें नगर राज्य राजनीतिक विकास और व्यक्तिगत स्वाधीनताकी खाती पर था दूसरी ओर उनमें अनेक सम्मीर त्रटियाँ भी थीं। पहली त्रुटि तो यह थी कि ये नगर राज्य नाम प्रथा पर आधारित थे और दूसरी यह थी कि यूनानी आरम्भमें मितवर्ती एक सम्मिलित राष्ट्र न बन सके। उनमें कभी भी एक सब सामाजिक राजनीतिक अंतर्गत का विकास नहीं हो पाया जो सभी यूनानियोंका एक राजनीतिक गुरुत्व था। नगर राज्यने निश्चित और सख्त मन बनाया परन्तु इसमें बाग अधिर कुछ न कर पाया। आपसमें बहुधा हानेवान् युद्धोंने एक-दूसरे के सब बड़-बड़ नगरोंका शक्ति का नष्ट कर दिया। नगरोंकी सीमाएँ भीतर बँध रहनेके कारण ही लोगमें दूसरे नगरों और यह दुनियाँके प्रति तटस्थता और नियतात्मक भावना (attitude of bitter exclusiveness) थी। यही कारण था कि यूनानियोंकी शक्ति कम होती गयी और एक दिन यह आसानीसे मकदूनियों (Macedon) और फिर रोमोंका शिकार हो गया।

३. रोम का विश्व साम्राज्य (The World Empire of Rome)
यूनान के नगरोंका प्रति रामोंके राजनीतिक जीवनका आरम्भ भी एक नगर राज्यके रूप में हुआ था। रोमोंके नगर राज्यका निर्माण उन अनेक कबीलानों द्वारा जो टाइबर नगर उपजाऊ भूदानमें स्थित आसानीसे रखा करने साम्य सात पन्नाइया पर अपना पन्ना रिय हुआ था। आरम्भमें इस नगर राज्यका कोई विषय महत्त्व न था पर अपनी केन्द्रीय स्थितिके कारण और दक्षिणी एक्वात्र जहाजरातीके वायव्य महत्त्व पूर्ण नदीके ऊपर स्थित होनेके कारण यह नगर राज्य बहुत शीघ्र एक प्रधान राज्य बन गया। वहाँ रहनेवाले विभिन्न कबीलानों एक सामान्य धार्मिक उपासनाके कारण एकताकी भावना सुदृढ़ हो गयी। आरम्भमें बहावा सामन राजनराय था। राजा ही न्यायवत्ता शासन और धर्म-गुरु था। राजनीतिक सत्ताय कुलीन वर्गका भाग था इस कुलीन वर्गका पैट्रिशियन्स (Patricians) कहते थे। आरम्भमें भूमि धोर सम्पत्ति रहित साधारण वर्गका अति 'प्लीबियन्स' (Plebeians) कहा जाता था इन अधिकारोंमें कुछ हिस्सा न मिला लेकिन धार्मिक उत्सवोंमें उनमें कुछ विषयोंमें अधिकार प्राप्त कर लिये।

यूनानी नगरोंकी भाँति रामों भी प्राग्भिन्न प्रवृत्ति सामन्तीय शासनकी ही ओर थी। मन् ५० ई. पू० के लगभग राजनराय अन्त हो गया और दो प्रधान व्यापकगोत्रा सहित गणराजकी स्थापना की गयी। इन व्यापकगोत्रोंको 'कोमन्स'

(consuls) बड़ा जान लगा। इस परिवर्तन के बाद दो कंसुलिया तक कुलीन वर्ग और सामान्य वर्ग (Patricians and Plebeians) के बीच राजसत्ता के लिए संघर्ष होता रहा। युद्ध के आर्थिक परिणामों के कारण संघर्ष तीव्र से तीव्रतर होता गया और अन्त में दोनों वर्ग मिलकर एक नागरिक समाज में परिणत हो गए जिनमें दोनों वर्गों को ही समान राजनीतिक तथा नागरिक अधिकार थे। इस परिवर्तन से सरकार में भी परिवर्तन हुआ जिसके अनुसार दो 'कॉन्सुल' में से एक का सामान्य (प्लीबियन) वर्ग से होना आवश्यक हो गया।

अब रोम अपनी सीमा के बाहर के प्रदेशों का अपने में मिला लेने की सोचने लगा। इटली की प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार पर विजय पाने में सहायक थी। सबसे पहले रोमने अपने पड़ोसी इटालियन राज्यों का अपने में मिलाया। सन् ९० ई० पू० तक— सामाजिक युद्ध (The Social War) के बाद (जो आठ इटालियन कबीलों का रोम के प्रति गम्भीर विद्रोह था)—पों नदी के तटों के सभी लोग पूर्ण नागरिकता प्राप्त कर चुके थे। यूनान की अपेक्षा रोम की नागरिकता अधिकारों की व्यवस्था में अधिक स्पष्ट तथा समानानुसार बतलाने वाली थी। जैसा कि मैं बाद में कह रहा हूँ आरम्भ से ही रोम के लोग अपनी संपत्ति के कारण नागरिक अधिकार (वानून के समस्त समानता के अधिकार) और राजनीतिक अधिकार (सम्प्रभुता सम्पन्न सत्ता की सदस्यता के अधिकार) में स्पष्ट भेद कर सकते थे (५५-९७)। इटली के कुछ नगरों को नागरिक अधिकार तो दिये गए परन्तु राजनीतिक अधिकार नहीं दिये गए।

इटली का जीत लेने के बाद रोम बहुत जल्द पश्चिम में अपने एकमात्र प्रतिस्पर्धी कार्थेज नगर को बरबाद कर एक बहुत बड़ी सामुद्रिक शक्ति बन गया। सिकंदर के साम्राज्य के कई प्रदेश रोम के शासन में आ गये। ईसा के पूर्व की पहली शताब्दी के समाप्त होते-होते लगभग समस्त सम्पूर्ण पश्चिमी समुद्र एक राजनीतिक व्यवस्था में बँध गया।

साम्राज्य को एक मूल्यवाने रखने के लिए एक प्रभावपूर्ण केंद्रीय शासन और नियंत्रण की व्यवस्था की गयी। जीत हुए नए भाग प्रशासित किए गए। हर प्रदेश में एक रोमन अधिकारी को जिसे 'प्रोकॉन्सुल' (proconsul) कहते थे राजनीतिक तथा नागरिक मामलों में पूर्ण अधिकार मिले हुए थे। उस पर केवल एक ही अंकुश था और वह अंकुश इस बात का था कि कहीं ऐसा न हो कि अपने काम में व्यवधान प्रदान कर लेने के कारण रोम में उस पर अभियोग लगाया जाय। स्वयं रोम में गणतन्त्र का स्थान कानून ही सैनिक शासन ने ले लिया था। सम्राट सर्वोच्च शक्तिमान बन गया। जनप्रिय परिणामों का कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं रह गया था। सीनेट का प्रमुख स्थान प्राप्त था परन्तु इस पर भी सम्राट का नियंत्रण रहता था क्योंकि वह ही सीनेट की भर्ती और मन्त्रानुमति दिलाने वाला था। अन्त में सम्राट का शासन ही विधि माने जाने लगा।

दूसरी शताब्दी के अन्त तक विभिन्न प्रदेशों के निवासियों को भी रोम की नागरिकता

मिल गयी। राज्यके सभी सभ्य साम्राज्य ने शासनम समान प्रजापक्ष म्पम आ गये। इसी बीच इस पुराने सिद्धान्तका स्थान कि शासकको प्रजापक्ष ही अधिकार प्राप्त होते हैं, 'नवी उत्पत्ति सिद्धान्त' ने ले लिया। साम्राज्यकी मत्ता ईश्वर द्वारा प्रदत्त मानी जाने लगी। कुछ समय तक सां मन्त्राट्का ईश्वर ही मानकर पूजा जाने लगा। बाद में जब ईसाई धर्म राज-धर्म हो गया तब 'नवी उत्पत्ति सिद्धान्तकी ध्याम्या इस प्रकार की गयी कि मन्त्राट्पृथ्वी पर परमात्माका प्रतिनिधि है। इस प्रकार प्राचीन साक्षरताय नगर राज्य एकलत्रोय विभक्त-साम्राज्य बन गया। स्वतन्त्रता साक्षरता और स्थानीय स्वाधीनता (local independence) का मान धन गया और उनका स्थान पर एकता ध्यवस्था विद्वविधि और विभक्त-धुत्वं रामन आत्म की प्रतिष्ठा बढ गयी।

संसारका प्रथम सुव्यवस्थित और सुशासित राज्य इनका स्थापना गीरव रामका ही प्राप्त है। रामका शासन पश्चिमय पांच सौ वर्ष तक और पूर्वम उड हज़ार वर्ष तक कायम रहा। रामन साम्राज्यकी व्यवस्था पद्धतिक अनुसार हा ध्यामिक धर्म-संघ (church) ने अपना संगठन किया। रामकी व्यवस्थाका नी प्लेखर पूरे मध्ययुगमें एक विव्यवस्थापी साम्राज्यकी भावना सागाके मस्तिष्कम घूमती रही। रोमका विधि उसने उपनिषद् और नगरपालिकाका शासन-व्यवस्था आधुनिक युगको विरासतक रूपम मिली है। सम्प्रभता और नागरिकताके मुगटित आत्म और विभिन्न ज्ञानियाम राजनीतिक एकता स्थापित करनेकी पद्धतियां रामकी कुछ महत्वपूर्ण सन्तानाए हैं।

इन महान् सफलताजके बावजूद रामका साम्राज्य स्थायी या शीघ्रजीवी न हा सका। उसने पतनक कारणाम से कुछ ध एकताकी प्राप्तिके लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका बलिदान, शासनकी हृदयहीन दक्षता (soulless efficiency) का उसकी विरासत थी उच्चवर्गोंका नितिक पठन महामारिया साम्राज्यका कमजोर अधिक साधार साम्राज्यक उत्तराधिकारका निर्गम करनेवाली विधिका प्रभाव एवं धार्मिक अव्यवस्था और बहर जातिपाके हमन। यद्यपि इन तथा अन्य कारणोंसे रामका पतन हो गया पर पतनक बाद उसका प्रभाव नाम और यन पढ़नेकी अवस्था अधिक गतिगाती हो गया। भूतान और रामकी सफलताओं और अमरलताका की तुलना करते हुए गमने ने ठीक ही कहा है 'भूतानने एकता रहित प्रजापक्षका विकास किया और गमने प्रजापक्ष रहित एकता कायम की (२४ २९)।

४ सामाजिक राज्य (The Feudal State) रोमन पतन का मतलब यह हुआ कि पश्चिमय गारापक्ष राज्य का हो अन्त हो गया। एक साथ अनेक तह भग्ना-व्यवस्था रही। राम पर उत्तरम हमना करनेवाले बहर संपूर्ण अव भा कदापनी जिम्मा बिना रहे ध और एक महजून राज्यक माली क पना न रहा कर पाय ध। उन्हें स्थानीय स्थापना और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बहुत मिल ध। 'नर राजा कक्षक राज्य पुढनायक ही ध। स्वतन्त्र व्यक्तिता का समस्त सामाजिक कार्यमें भाग लेने का अधिकार था।

जब एम गोगावा सम्पर्क रोमनी राजनीति पद्धतिमे हुआ जिसकी विगपनाए—व्यवस्था एकता और केन्द्रीयकरण था तब सघष अनिवार्य हो गया। इस सघषस समसौतेक रूपम सामन्तशाहीका उदय हुआ। यह सामन्तशाही ट्यूटानिका नागाने कुवायमी समाज और रोमन साम्राज्यक बीच समझौता सी थी सामन्तशाही की निष्ठा करना और राज्यक विनाशम इसने महत्वका कम करना था व न आसान है। यह ठीक ही कहा गया है कि सामन्तशाही राजनीति पद्धति है ही नहा। परन्तु रोमने पतनके बाद समाजम जब अराजकता पम गयी थी तब सामन्तशाही ने ही योरोपमे लागूक सान्ति और सुरक्षा दी और राज्य-यन्त्रको बनाव रखा। सीमित अर्थम यह मण्डित अव्यवस्था थी। रोमन साम्राज्यका और आधुनिक राष्ट्रका बीच सामन्तशाही अन्तर्वामीन व्यवस्था रही है।

सामन्तशाहीका उदय और उसका अर्थ (How Feudalism arose and what it meant) रोमन साम्राज्यके पतनके बाद उसने विस्तृत प्रदेश गति शासी सामन्ताके अधीन हो गये। प्रत्येक सामन्त स्वयं एक सत्ता बन गया और उसने अपने अधीन प्रदेसका छोटे-छोटे जागीरदाराने बाँटकर अपने चारों ओर एक समाज तयार कर लिया। प्रधान सामन्त (tenant in-chief) ने अपनी जमीन जागीरदाराने बाँट दी जागीरदाराने अपनी जमीन जमादाराने बाँटी और जमींदाराने अपनी जमीनका नौकर और दामा (vassals and serfs) म बाँट दिया। इस प्रकार भूमि पर प्रभुत्व स्वामिन्के आधार पर शक्ति-सम्पन्न लोगका एक समाज उठ खड़ा हुआ। एक कठोर बग व्यवस्था कायम हुई और 'राज्य' समाजम विलीन हो गया। भूमि मया तथा अ य प्रकारका स्वाभवा अधिकारी निरन्तरम सामन्त होता था। राजा या प्रधान सामन्तका नौकर व दासने निम्न बर्ग पर अग्रयण ही अधिकार होता था। समाजका प्रत्येक बग सबग परन्तु अपने ऊपरके बर्गका सबग परन्तु मेवक और स्वामिभवन होता था। इस सीमित स्वामिभक्तिका परिणाम यह हुआ कि उस समय के ला एव एसी सर्वोच्च समाजी कल्पना न हो कर पाये जिनका साधनीम प्रभुत्व हो। रोमने आगान बड़ गरिभमसे एक समान और निष्पक्ष विधि का निमाण किया था। सब लोग इस विधि का ही मानने लग थे। पर सामन्तशाही युगम लाग एक बार फिर रीति रिवाज का ही विधि मानने लग और राज्य लोग का सारा परिश्रम व्यर्थ गया। सामन्तशाही विचारने रहन रह वास्तविक राजनीतिक प्रगति सम्भव न हो थी। फिर भी सामन्तशाही अराजकताका समानार्थी (synonymous) नहीं माना जा सकता। योगपद लागका सान्ति और सुरक्षा दकर उमने अपन अस्तित्व का शोचिय सिद्ध कर दिया। यह अस्तित्व बरानारी और स्वीकृति पर आधारित था। सामन्त विचारक इन्वेन्डम जहा अपन ऊपरके जागीरदारीकी अपना समान्य प्रति बरानारीका अधिक महत्व दिया गया सामन्तवादन एक राष्ट्रीय राज्यक विनाशमे गढ़ावना दा।

ईसाई धर्म-गण (Christian church) एक दूसरी गण्य थी, जो धर्मसे उग

अध्यवस्थाने बाप भी जावित रह सका जो राम साम्राज्यक पतनक बाद फली थी। ईसाई धर्मका आरम्भ समाजक निम्न वर्गमें एक सामान्य धार्मिक विवासने रूपमें हुआ था पर कुछ ही सताई वर्षोंमें यह एक प्रबल धर्म हो गया। सन् ५५७ ईस्वीमें रोमके सम्राट् कान्स्टान्तिन (Emperor Constantine) ने ईसाई धर्म स्वीकार कर दिया। चौथा शताब्दीक अन्त तक पूरे रोमन सम्राज्यमें यही एक स्वीकृत धर्म रह गया। ईसाई धर्म-सभ ने अपना सम्पूर्ण रोमन साम्राज्यक ढंग पर किया था। जब रोमन साम्राज्यका पतन हो गया तब उसने साम्राज्यका स्थान ग्रहण कर पारायस में शान्ति और व्यवस्था कायम की। सम्पूर्ण मध्ययुगका मन्त्रा अवधिमें अन्य राज्यों पर अपना नियन्त्रण रखा और स्वयं एक गतिविधानी नीतिवत् सभा बन गया जिसके पास पर्याप्त सम्पत्ति बिनापकर भूमि-संपत्ति थी। जसाकि फिजिम (Fitzsim) ने कहा है मध्ययुगमें जब एक राज्य की सभा या बन्धु बान्धविक राजसभाक स्थान पर बनी आमानि था। राज्य नाममें पुकारी जानबूझा जा गया-यसता है (क्याकि धर्म सभसे अलग किसी दूसरे समाजका स्थिति तो स्वाभाविक ही नहीं थी जाती थी) वह बान्धवम् इस धर्म-सभका पुनिस विभागमात्र था।

सामन्तबाप धर्म-सभका बड़ा सहायक था यह इसलिए कि धर्म-सभका राजनीतिक हित इसीमें था कि पश्चिमा योराप बराबर विभाजित बना रह नाकि एक ऐसा सामान्य राजनीतिक शक्ति स्थापित न हो सक जा धर्म-सभ से अधिक शक्तिवान हो और उसके लम्बे चौड़े शान्ति विरोध कर सके। जब तक पाप धर्म और गतिविधानी और राज महागत्र कमजोर रहे और जब तक धार्मिक अधिकारियोंक प्रति जनताका श्रद्धा विश्वास बना रहा तब तक धर्म-सभकी प्रभावा भी बना रहा। परन्तु चौथी शताब्दीक आमानि हो पाइकी सत्ताक कुछे दिन आरम्भ हो गये और उसके बाद फिर कभी पापक पन्ना वह प्रतिष्ठा और अधिकार न मिल जा सताक प्रगरी (Georgy VII—१०३३ १०८५) और तीसरे इनासेंट (Innocent III—११९८ १२१६) का मिल कुछ था। दो इतिहासीय घटनाक्रम धर्म-सभक अधिकार और उसकी प्रतिष्ठाका कम कर दिया। इनमें से पहली घटना था धार्मिक धार्मिकताक शरत पापका एविनाम नामक स्थानमें बन्धी बनाकर रखा जाना जिन बरीलनिकस बन्धी बान (Babylonish Captivity)—१२६८ १३०० कहत हैं और दूसरी घटना धर्म-सभकी महान् मार (The Great Schism—१३०८ १४१५) था जब कभी भी और कभी-कभी सान प्रतिस्पर्धी व्यक्ति पाप हान का शवा करत रहे और इनके लिए योगसम शगडने रहे। उनका बाप मुख्य ही आनवान प्रोटेस्टान्ट धर्ममुधार (Protestant Reformation) ने पपकी मौखिक सत्ताका समग्र समाप्त हो कर दिया और इस प्रकार राष्ट्रीय राजतन्त्रा के लिए मार्ग मदार हो गया।

धार्मिक युग का राष्ट्रीय राज्य (The National State of Modern Times) पुनर्जायन (Renaissance) और धर्ममुधार (reformation) कालमें ही आमतौर पर आधुनिक युगका आरम्भ माना जाता है। इन आन्दोलनों के बिना

पारापके जीवनम नयी स्फूर्ति भर गी और उसने अन्तिम विकास और महत्त्वपूर्ण सफलताओंके युगम प्रवेश किया। ऐसी हाससम सामान्यता बहुत दिन तक टिक नहीं सकती था। जब तक परिस्थितियाँ अनिश्चित रही और सब जगह अव्यवस्था और गड़बड़ी पनी रही तब तक समान्तरवाद बड़ा उपयोगी रहा। पर परिस्थितियोंके मुघरने ही व्यवस्था स्थापित होते ही और जाति धर्म प्रभेद और भाषाके आधार पर लोगोमे एकताकी भावना उत्पन्न होने ही सामान्यवादको समाजकी एक उच्चतर व्यवस्थाका जगह देनी पड़ी।

मध्ययुगके समाप्त होनेके पहले ही कई क्षितियाँ इस नये युगको जानेम सहायक
 ■ । रोमका धर्म-साम्राज्य (The Holy Roman Empire)—ईसाई धर्म-संघके पापकी प्रभुता—अपने बंधवके मुनहरे नाम भी बहुत कुछ बनावने ही था। उसके पीछे कोई असली अधिकार सत्ता नहीं थी। इस धर्म-साम्राज्य और पोपकी सत्ताके बावजूद इंग्लैंड फ्रांस और स्पेनमे राष्ट्रीय राजाका उदय हो रहा था। नगर बड़ रहे थे और व्यापारकी वृद्धि हो रही थी। पापकी अकार और उद्दण्डता मरी माँगम राजाओंके आत्मममान और स्वाभिमानका ठस सगन लगी और वे लोग पोपके अधिकारोंसे अपने आपको घीरे-घीरे मुक्त करके अपने अपने देशाने वास्तविक शासन बनने लग। जनता शान्ति और सुरक्षा चाहती थी और इसलिए उसने भी पूरी बफादारीसे अपने राजाओंका साथ दिया। लोगोने अपन राजाओंका अपनी राष्ट्रीय भावनाका प्रतीक माना और वे राष्ट्रीय भावनासे प्रभावित होने लगे। धार्मिक प्रयोग राष्ट्रीय राजस्वम वृद्धि और स्थायी सेनाके निमाणके कारण राजाओंका अपने सामन्ता पर अधिकार करनेम मुक्ति मिली। सनवर्षीय-युद्ध (The Hundred Years War) और गुलाबो के युद्ध (Wars of Roses) ने सामन्ताके अधिकारोंको और उनका राजनीतिक महत्ता का और कम कर दिया। पण्टवा बनावने समाप्त होत-हान सामन्त-शाही ताकत बहुत कुछ समाप्त हो गयी।

इस प्रकार प्रोटेस्टन्ट रिफॉर्मेशन के आते-आते युष्मात्तरकारी राजनीतिक परिवर्तनाक लिए मन्त्र तयार हो गया था। मुयारक मुख्य धार्मिक उपदेश था। उन्होंने जनक भ्रष्टाचार उमके झूठे उपदेश। उसरी लौकिक सत्ता और उसरी अनुम सम्पत्तिके लिताफ घोर बड़ छुड़ दिया। उन्होंने नै सिद्धान्तारा प्रचार किया जिनका मनुष्यके धार्मिक जीवन पर हा नहा बल्कि उनका राजनीतिक सम्बन्ध पर भी गहरा असर पड़ा। ये सिद्धान्त मुख्यतः यह थे—हर मनुष्यका मनुष्य होनेके नाते मान और महत्त्व व्यक्तिगत विवेक और व्यक्तिगत स्वाधीनताका महत्त्व और पानरी या पुराहितरी मन्त्र बिना ईश्वरग सौधा सम्बन्ध कायम करने का हर व्यक्तिना अधिकार। इन उपदेशोमे ही आधुनिक युगका राजनीतिक दानम व्यक्तिवाद और राष्ट्रवाद आनेके आन्ताननाका जन्म हुआ। मध्ययुगकी नै दानि शास्त्री धारणाओं—विश्वव्यापी साम्राज्य और विश्वव्यापी धर्म मध—पर इन उपदेशाध पानक प्रहार किये।

सुधारकाके उपस्थापना तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय सम्भागन हाथ मजबूत हो गये। सभी बड़े उपस्थापकान् अपने अनुयायियोंका राजाका आगा आस मोक्षकर माननेका आदेश दिया। उनका कहना था कि जो भी मना है वह ईश्वर द्वारा नियुक्त है। उनका कहना था कि राजनीतिक सत्ता अन्तिम तौर पर ईश्वरकी इच्छान ही प्राप्त होनी है और जिन राजाओंका आगा हम मानते हैं वे राजा श्री अधिकारमें ही राज्य करने हैं। उनके उपस्थापन ईर्ष्या और कामम तथा गहरा प्रभाव डाला कि ईश्वरम टयूडर और स्पेन्स बंका और कामम कपागियन (Capetian) बंका का निरकुल शासन स्थापित हुआ। कामक चौथे लई ने ता पहा तक कह डाला मैं ही राज्य हूँ। सुधार आन्दोलनका शिखा यह थी कि राज तनीय देशोंमें राजतन्त्र और अभिजात तनीय दत्ताम अभिजाततन्त्र (aristocracy) का समर्थन किया जाय। दत्ताम ही नियमित राजनीतिक सत्ताका निरकुल बनाना ही इन उपस्थापकों का सार था।

पर इस प्रकारकी निरकुलताकी भीषण ही चर्चा ही मिल गयी। जम ही लागाम जागति फनी और उन्हें अपनी शक्ति और अपने महत्त्वका ज्ञान हुआ वम हा उनका राजकी बात चुपचाप माननेका कर्तव्य पर मन्त्र और अधिकधिक राजनीतिक अधिकार और सुविधाओंकी माग करने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि राजनीतिक अधिकारोंके लिए राजा और जनताम एक सम्बा सघष आरम्भ हुआ। निरकुल राजतन्त्र और लोकतन्त्रके बीचका युगम सुधार आन्दोलनके व्यक्तिगत महत्त्वका सिद्धान्तन बहन और पकड़ा। भाषारण व्यक्तिम अरन ऊपर एक नया विश्वास पना हा गया और यह मह अनुभव करने लगा कि शासनका अन्तिम शासिकाकी भवाइ के लिए ही अपनी भलाई के लिए नहा। इस प्रकार सुधार आन्दोलनके उपस्थापकों अन्तिम परिणाम यह हुआ कि हमम व्यक्तिगत स्वाधीनता और लोकतन्त्र के सिद्धान्त का बन मिला।

जनताका एक मूलम शोधनके लिए और सामन्तताका का अन्त्यवस्था और फुल्ले स्थान पर व्यवस्था और एरता कायम करनेके लिए राजतन्त्राथ निरकुलता निस्सन्देह आवश्यक थी। पर इस सत्यक पूरा हान ही उसका कायम रखनेका कोई कारण नहा रह गया था। इनगडम बहुत पहल ही लोकतन्त्रीय आन्दोलन शुरू हा गया। वह तन्त्रा शास्त्रिम तरीकेसे बराबर बढ़ता ही रहा। फामम इस आन्दोलन ने एक हिमक फाटिका रूप ले लिया। अन्य देशोंमें राजाओंने जनताकी इच्छा काग धुन्ने टक म्मि। वे सारतन्त्रीय सरकार अधीन नाममात्र शासक बन रहनेका राही हा गय। लोकतन्त्र इस आन्दोलनने इनकी गहरी अँड जमा सा और इन अन्ध ढास काग किया कि अब कुछ क्यों पूर तर शासनकाय राष्ट्रीय सरकारकी ही राज्य के विरामकी उचिततम अवस्था माना जाता रहा था। उगाहरण स्वल्प चपम (Benham) आगा करते थे कि यह बुराईयामे मरी म दुनियाका मन्त्रायाका दाल बिद्यापक दान कर सेंग।

६ विश्व संघ (The world Federation) निम्नलिखित लोकात्मिक राष्ट्रीय राज्य (Democratic National State) के पक्ष में बहुत से तर्क उपस्थित किए जा सकते हैं। जिस राज्य की प्राकृतिक सीमाएँ निश्चित हों तथा जहाँ की जनता में एकता हो, वहाँ के लोगों को अपना शासन स्वयं करने तथा एक सम्प्रभु राज्य स्थापित करने का अवसर मिलना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सद्भावना बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकारके स्वायत्त (self-governing) और आत्मनिर्णय (self-determination) के अधिकारों में पूर्ण सम्मिलित स्थापना का जाय। परन्तु गणराज्यों के इतिहास में यह पता चलता है कि हम नीति का परिणाम अवश्यम्भावी रूप से प्रतिस्पर्धा, प्रतिस्पर्धा और कभी-कभी युद्ध भी होता है। इन औपनिवेशिक साम्राज्यों में उस भौतिक आधार और जातीय एकता का प्रायः सम्मान नहीं है, जिन पर कि राष्ट्रीय राज्य आधारित होते हैं। राष्ट्रीयता के विचारों और राष्ट्रीय सम्प्रभुता की सकीर्णता को हटाने में विज्ञान का प्रयोग आधिपत्य यात्रा की सुविधाओं परस्पर मिल-जोल यातायात विचारों का आदान-प्रदान तथा विज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय और बड़ी-बड़ी समस्याओं में बहुत सहायता दी है। इन सब में तो समारोहों बहुत छाना बना दिया है और ये एक प्रकारके विनियमों की स्थापना की ओर इंगित करते हैं। यह तो भविष्य ही बता सकता है कि हम विनियम का क्या स्वरूप होगा। किसी न किसी रूप में एक विश्व सरकार अवश्यम्भावी जान पड़ती है। विश्व मंच पर मानव मंच पर जहाँ जहाँ राष्ट्रीय का विनियम है कि धर्म मानना का शासन दोष वाला के लिए समारोह सभी देशों के लिए सामान्य नियमों की अन्तर्गत बराबर रहती जा रहा है। उनका मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में राज्य की सम्प्रभुता धार धार स्वयं जानी जा रही है क्योंकि अब उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। आज के व्यक्ति को साम्राज्यवाद की धारणा नहीं रहनी, धर्म की स्थापना की आवश्यकता है।

क्लैरेंस ए. स्ट्रैट (Clarence A. Streit) ने अपनी पुस्तक 'यूनिनियन नाउ' (Union Now) में वर्तमान लोकतंत्रीय देशों की सही एकता की कल्पना की है। उनका तर्क यह है कि राष्ट्र संघ (League of Nations) की विफलता का कारण यह था कि वह मध्यम शक्तों का मंच था जनता का नहीं। निरुपेक्षता का आधुनिक परिस्थिति में बिना अनुपपन्न मानने हुए वह मध्यम शक्ति एक विश्व सरकार का भोग करते हैं। यह तथा समझने अपने सम्पूर्ण राष्ट्रों में सभी राष्ट्रीय सम्मेलनों का नियमन करना। अब धर्म में सामान्य सम्पूर्ण राष्ट्रों में गुप्त रहेंगे। समारोह धर्म-शास्त्र मधीय देशों में सामान्य शासन है, परन्तु उन अपने को नावर्त कर पक्ष धारित करना होगा और उसके साथ शासित करने रहने का इच्छा प्रकट करती होगी। इस विनियम में सामान्य नागरिकता सामान्य मुद्रा सामान्य डाक-व्यवस्था सामान्य आदान-निदान पर और मुद्रा का सामान्य प्रचलन होगा। सम्पूर्ण राष्ट्रों के उपनिवेशों का प्रबंध नहीं मध्य सरकार द्वारा उद्भूत करने की है, उन्हें अन्तर्गत करने के लिए आवश्यक

समय बना दिया जाय। इस योजनाकी सामान्य रूपरेखाका समर्थन लायानल बर्टिस (Lionel Curtis) तथा हर्म्सफ़र्ड बुद्ध अथ विचारकाने किया है। इस योजना का कार्यान्वित करनेके उपाय साधनेके लिए और समारोहे प्रभावशाली राजनीतिज्ञ के सम्मेलन उस ग्यारह लिए इन लोगोंने अपना एक मध्य भी बना लिया है।

सम्राट् के अथ साथ लावतनीय ग्यारह इस बिन्दु संप्रको पवित्रताका गगन रचन वालोंका मध्य कहेंगे क्याकि इस ग्यारह कई देश जातीय भावनाग्रामे भर हुए अग्रामक और सामान्यवादी है। दो शक्तिशाली मध्यका भोजुदा हासतम पवित्रमक गगनतम बानी राज्या का सय हास्यप्रद मानूम पड़ता है। फिर भी इन ग्यारह नाग (NATO) की स्थापना कर सी है जिसकी उपवागिताकी परीक्षा अभी तक नहीं हा पायी है। यह भावा विदवयमका सनिक-यूबगामी (military fore runner) है परन्तु आजक अग्रोयागिण समारम और स्पुलनिक (Spulnik) रकिट तथा गाइडड मिमिन्स (guided missiles) व यमम यह एक अग्रमन बान मानूम गानी है।

राज्यके विकासकी सामान्य रूप रेखा

राज्यके विनामके अध्ययनके ग्यारह के अनुसार निम्नलिखित पाच निष्कर्ष निम्नजत है (२४ ६५ ६७)

(१) अथ सगठनाकी तरह राज्यका विकास भी साधारणमे जगिनकी भाँर हुआ है। पहनकी अग्रता अब सरकार अधिकाधिक जगिन और पचीन्हा हा गया है। इनक साथ ही सरकारके विभिन्न अग्राम गगना बडी है और व एक दूसर पर अधिक आगिन रजन लग हैं। सरगारके विभिन्न अग्र विभिन्न कार्य सम्पन्न करत है पर उनक पीछ एक मौलिक एकता है। राज्यकी सभा जा पहन अतिरिक्त और अनियमित थी अब अधिक निरिचन और नियमित हा गयी है। जगन निरहुन और स्वेच्छाचारी शासनकी सम्भावनाएँ बराबर घट्या जा रही हैं।

(२) राज्यके विकासका अथ यह हुआ है कि राजनीतिक बनना और उद्योग विवागीनताका विकास हुआ है। प्रथम राज्यका नाम मनुष्य द्वारा जानबूझकर किए मम पायो ग नग हुआ था बलित उसकी उत्पत्ति प्राकृतिक कारणमे हुई थी। बुकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अत किन्दा एसी गगन सत्ताका सगठन उसके लिए स्वाभाविक था जा समाजका एक मूलम साथ रन मक। पर गया गया राज्यका विकास हाता गया और मनुष्य अधिकाधिक बुद्धिमान हाता गया तथा-तथा जगम यह माय्यता आती गयी कि बहु राज्य अतिरिक्त कारण का मात्र निवास और राग्याम अपन आगोंक अनुभूम गुधारकर। राज्यका गगना भाषार अधिक यक्ति-मगत और स्थायी हा गया। जनताम राजनीति बनना के प्रचारम साकनका निर्माण हुआ।

(३) साधारणतया राज्यके विकासके वलस्वरूप एक राज्यके अधीन क्षत्रपम का

विस्तार हुआ और अधिक जन-समुदाय उस राज्यके अधीन हो गया। आज जिन बातों में बड़-बड़ राज्योंको सम्मिलित बनाया है उनमेंसे कुछ ये हैं परिवहन (transport) और संचार (communications) के मुसल और सीधे-सीधे साधन अमृतपूर्व आर्थिक उन्नति स्थापित शासन का विकास तथा विधि और व्यवस्थाके प्रति आधुनिक नागरिकों की बढ़ती हुई निष्ठा।

(४) राज्यके विस्तारसे बड़ा-बड़ा राज्यकी मर्यादा कम हो गई और बड़ी-बड़ी महत्ता उसी मात्रा में बढ़ भी गयी। 'गुरुम राज्य और धर्मका विकास साथ-साथ हुआ पर आज सभी सम्मिलित धर्म और राज्य एक दूसरेसे अलग हैं यद्यपि नाज़ी जर्मनीमें धर्म राज्यका ही एक विभाग हो गया था। यह धारणा और पकड़ती जा रही है कि 'चूंकि धर्म और नैतिकता मुख्यतः मनुष्यके आन्तरिक जीवनमें सम्मिलित रहते हैं इसलिए हमें पर राज्यका सीधा नियंत्रण जहां तक हो सके कम से कम रहें। फिर भी उसके साथ ही साथ मनुष्यके जीवनको धार्मिक और नैतिक बनानेके लिए राज्य को कुछ भी कर सके उसे करना चाहिए। इस प्रकार व्यक्ति का निजी जीवन राज्यके नियंत्रणमें अधिकाधिक मुक्त होता जा रहा है। आमतौर पर यह माना जाने लगा है कि राज्यका व्यक्ति के पारिवारिक जीवन भाजन के समाना आदिकी हानि अहमि तब तक हस्तगत नहीं करना चाहिए जब तक कि ये चीजें समाजकी व्यवस्था और सुरक्षाके प्रतिबल न हों।

दूसरी ओर यह भी निरन्तर बढ़ती जा रही है कि राज्यका सामाजिक कल्याण के लिये धर्म अधिकाधिक हस्तगत करना चाहिए जहाँ व्यक्ति या तो अपना कल्याण खो नही कर सके या नहीं करना चाहते। हम प्रचार सभी आधुनिक राज्याम शिक्षा मन्त्रालय अपाहिजोंकी देखरेख अपराधियोंको दण्ड देना और अपराधियों को रोकना आदि राज्यके उचित काम समझा जाते हैं। आजकल लोग यह पण करते हैं कि राज्यका काम-काज उस समय तक बढ़ना जाय जब तक कि राज्यके कामोंको जनताका पूरा-पूरा समर्थन मिलता जाय और राज्यकी कार्यपालिका मनमाने ढंगसे काम न करे।

(५) इस युगकी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्यकी सम्प्रभुता और व्यक्ति की स्वाधीनताके बीच अधिकाधिक मात्रा में समझौता हो गया है पर आधुनिक निरंकुश राज्य (totalitarian states) इस के अपवाद हैं। आदिम मनुष्यका विधि और संस्कार महत्व समझानेके लिए परम्पराओंका बख़्तर पालन और निरंकुश शासन ज़रूरी थे पर इस उद्देश्यके पूरा होने की वही बातें व्यक्ति की स्वाधीनता और राज्यकी एकात्मता कायम बन गयीं। पूर्वके साम्राज्यमें उद्देश्य पूरा हो जानेसे बाद भी निरंकुश शासन कायम रहा। यूनानके पण्डित राज्याने व्यक्तिगत स्वाधीनताका विकास तो किया पर एकात्मता प्राप्त न कर सके। रोमन संघटन और व्यवस्था तो कायम कर ली गयी परन्तु स्वतंत्रता सीमित कर दिया गया। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राज्य सम्प्रभुता के बीच सामंजस्य स्थापित करनेका जिम्मा अन्तम दृष्टि

जातिके लोगोने लिया। इसे पूरा करनेके लिए उन्होंने आधुनिक साङ्गठनवाणी राष्ट्रीय राज्यकी स्थापनाकी है। विस्तृत भू प्रदेशोंमें लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए स्थानीय स्वायत्त और प्रतिनिधित्वक सिद्धान्तोंका मिलकर एक ऐसा समूह बनाया गया जो व्यक्तिकी स्वतन्त्रताको नष्ट किये बिना सामाजिक कार्योंमें एकता स्थापित कर सकता। भविष्यकी समस्या यह है कि बसती हुई परिस्थितियोंमें व्यक्तिकी स्वतन्त्रता और राजस्वताके बीच समुलन कैसे कायम रखा जाय। आधुनिक युगमें कोई भी दो राज्य इस प्रश्न पर एकमत नहीं हैं कि इस समुलनका उचित रूप क्या हो और इस कैसे प्राप्त किया जाय।

SELECT READINGS

- DEALEY J A — *The Development of the State*—Ch II
 FOWLER W W — *The City-States of the Greeks and Romans* —
 Chs IV VI
 GETTELL, R G — *Introduction to Political Science*—Ch VI
 GETTELL, R G — *Readings in Political Science*—Ch. VI
 JENKS E. — *History of Politics*—Chs VIII XII
 JENKS E. — *Law and Politics in the Middle Ages*
 MACIVER R M — *The Modern State*—Chs I IV
 SIDGWICK H — *The Development of European Polity*
 STEPHEN C A — *Union Now*

हॉब्स, लॉक और रूसो का सामाजिक सविदा सिद्धान्त

(The Social Contract Theory of Hobbes
Locke and Rousseau)

राजनीति शास्त्रका प्रारम्भिक ज्ञान रखनवान भी जानते हैं कि हॉब्स (१५८८-१६७९) लॉक (१६३२-१७८४) और रूसो (१७१२-१७७८) के नाम सामाजिक सविदा सिद्धान्तक साथ अभिन्न रूपसे सम्बन्धित हैं। इसलिये हमें हॉब्स तथा लॉक के और फ्रांसमें हमारे इस सिद्धान्तको अन्तिम रूप दिया। सामाजिक सविदा सिद्धान्त की महत्ताका समझनेके लिए हम इन लेखकों के विचारोंका सनपटा विवेचन करेंगे।

(क) प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक विधि (The State of Nature and The Law of Nature)

हॉब्स हॉब्स ने प्राकृतिक अवस्थाका बड़ा दयनीय चित्रण किया है लेकिन लॉक ने अपने निबंध जसमानता (*In quality*) में प्राकृतिक अवस्थाका आनन्दमयी बताया है यद्यपि बास्म उनमें अपने ग्रन्थ 'सामाजिक सविदा' (*Social Contract*) में इस विचारमें संशोधन कर दिया। लॉक ने हॉब्स और रूसो के बीचका माप अपनाया है। सारांशमें हॉब्स प्राकृतिक अवस्थाका अमहनीय लॉक अनुविधाजनक और रूसो सुखी और शान्तिमय मानते हैं। हॉब्स के विचारमें प्राकृतिक अवस्थामें मनुष्य लगातार मरण करता रहता है क्योंकि मनुष्य स्वभावमें स्वार्थी है। उनके अनन्तर मनुष्यका जीवन लज्जा, दृष्टि गन्ना बर और अथ (*solitary poor nasty brutish and short*) है। प्रत्येक मनुष्य दूसरेका दुश्मन है (३५)। मनुष्य गुप्त चाहता है और मुख्यतः प्राकृतिक विधि यह दूसरा पर अधिकार जमाना चाहता है। लेकिन यह दूसरा पर अपना अधिकार नहीं जमा पाता क्योंकि हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक

१ क्रानेनबर्ग (Kranenburg) के ग्रन्थमें 'हॉब्स' मनुष्यका मनुष्यकी चेतना में भय ही सबसे अधिक चिन्तागो है और इसलिये अपने कारण ही मनुष्य राज्य और सरकारकी सृष्टि करता है (४५)।

अवस्थाके मनुष्य मनुष्य शारीरिक और मानसिक नविकार करके उन्नत बनकर जाते हैं। माग एक दूसरेसे मिलते हैं। इस भयक कारण हमारा युद्ध का जीवन बना रहता है। इसका मतलब यह नहीं कि नाग हर समय आपसमें मड़ल रहते हैं बरन इसका अर्थ यह है कि सघपकी प्रवृत्ति हमारा रहती है। ऐसा अवस्थाम उद्योगिक विपत्ति का कारण नहीं है। जिस भाग सका मारा जा कुछ धीन सवा छाना यही उस समय का नियम रह जाता है। ऐसे कार्योंकी राक्षस्य करनक विपत्ति का कारण नहीं है। हाथ्य यह अनुमान करनक नहीं है कि मनुष्य इस स्थितिसे भी आरम्भ करके आगे बढ़ा है। वह तो बतला यह सिद्धांत चाहते हैं कि किमा जगत् भी यही बनने लगने लगे काय व्यवस्थित सरकार न रहे तो यह स्थिति पग भी भ्रष्ट होती है।

सामाजिक नविकार सिद्धान्तक मन्त्रवाक्य अनुमान है कि प्राकृतिक अवस्थाम प्राकृतिक विधियां थी। पर उन विधियां का आधार क्या था उस बारेमें वह एकमत नहीं है। हाथ्य प्राकृतिक विधियों का अनुकूल या दूरदर्शिता की विधियां मानते हैं जबकि माक का रायमें प्राकृतिक विधियां मनुष्यकी आन्तरिक नविकारका विधियां हैं। हाथ्य तो साफ-साफ कहते हैं कि मनुष्यका प्राकृतिक शक्ति का उसके प्राकृतिक अधिकार हैं। उनका कहना है कि प्राकृतिक अवस्थाम न कोई नविकार हो सकती है और न उत्तरदायित्वका विचार। विधि और सरकारकी स्थापना का ही यह सम्भव है। जब तक कार्य विधि नहीं है तब तक सभी काम एक समान अच्छे और उचित हैं। प्राकृतिक अधिकार यही है कि हर मनुष्यका अपनी जीवन रक्षाकी पूरा स्वतंत्रता है। प्रकृतिकी पहली विधि यह है कि हर मनुष्यको शान्तिकी स्थापनाका प्रयत्न करना चाहिए। दूसरी विधि यह है कि मनुष्यका दूसरोंके साथ मिलकर अपने प्राकृतिक अधिकारोंका ध्यानके लिए तैयार रहना चाहिए। तीसरी विधि यह है कि मनुष्यका अपने करार पूरे करने चाहिए। चौथी और अन्तिम विधि यह है कि मनुष्यका कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए अपना भलाईक बनन भलाई करनी चाहिए। हलावल (Hallowell) का कहना है कि हाथ्य की पद्धतिमें कृतज्ञ और स्वाध एक ही गण हैं।

साथ प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक विधियोंके बारेमें माक के विचार बहुत भिन्न हैं। वह प्राकृतिक अवस्थाका यद्धकी अवस्था नहीं मानता। वह अवस्था शान्ति सम्भावना वास्तविक महापना और सुरक्षाकी अवस्था है। वह स्वतंत्रता (liberty) की अवस्था है स्वच्छन्दताकी नहीं। इस अवस्थाम अधिकतर माग प्राकृतिक विधियां अपने आन्तरिक नविकारके नियम को मानते हैं। परन्तु कुछ हद तक भी हाथ्य का दूसरा कारण अमुविधाएँ बना करते हैं। पन्तु शान्ति प्रिय लोगोको मजबूर हाथर विधि का अपने हाथमें बना रहता है और यह उन मापदण्ड मनुष्यको हमारा समता है जो अपने धर्म पुरी तरह स्वतंत्र रहना चाहता है। इससे अनिवार्य माग अपने ही मामलमें मही राय नहीं जायज कर पान। इस प्रकार प्राकृतिक अवस्थाकी यद्धा एक बुराई है कि उसमें विधि और शासकी कार्य

सबमाय पड़ति नहीं है।^१ इन कमियोंको दूर करनेके लिए लागू प्राकृतिक अवस्थाका छोड़कर सविदाके द्वारा नागरिक समाजका निर्माण करते हैं। लॉक का यह सिद्धान्त हॉम्स के सिद्धान्तसे बड़ी अधिक अवस्तविक है।

रूसो (Rousseau) रूसो ने अपनी पुस्तक 'डिस्कर्स ऑन इनिक्वेलिटी' (Discourse on Inequality) में प्राकृतिक मनुष्यको एक 'नबल सवज' (noble savage) के रूपमें चित्रित किया है। प्राकृतिक अवस्थामें लोग मायारणतया आत्मनिर्भर तथा सन्तुष्ट थे। उनका जीवन ग्रामीण जीवन की भांति सुखी तथा सरल होता था। सम्पत्तिके उत्पन्नके साथ ही असमानता भी फैलती है। बला तथा विज्ञानका विकास होता है तथा निजी सम्पत्तिका आरम्भ होता है। श्रमका विभाजन भी शुरू होता है। इन सब बातोंके कारण नागरिक समाजकी स्थापना जरूरी हो जाती है। इस प्रकार राज्य एक घुसाई है किन्तु मनुष्योंकी असमानताओंके कारण राज्य अनिवार्य हो जाता है। रूसो ने अपनी पुस्तक 'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (Social Contract) में राज्य सम्बन्धी अपने विचारोंमें सन्तुष्टि कर यह स्वीकार किया है कि नागरिक राज्यके लाभ प्राकृतिक अवस्थाके लाभोंसे बड़ा अधिक है। उन्होंने अपना नाम 'सामाजिक सविदा'से मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्वतन्त्रताको और अपनी पसन्दकी सारी वस्तुओंको अपन करके कर लाने के असामित अधिकारों का देता है। इसके बदले उसे नागरिक स्वतन्त्रता मिलती है और अपनी सम्पत्ति पर अधिकार मिलता है। हम प्राकृतिक स्वतन्त्रता और नागरिक स्वतन्त्रताका अन्तर तथा फर्क द्वारा प्राप्त वस्तु और सम्पत्तिमें फर्क समझ लेना चाहिए ताकि मूल्यांकनमें भूल न हो। व्यक्तिकी अपनी शक्तकी सीमाके अभावमें प्राकृतिक स्वतन्त्रताकी कोई सीमा नहीं होती। लेकिन नागरिक स्वतन्त्रता लोकसम्मति (general will) द्वारा सीमित होती है। कब्जे (possessions) का आधार किसी वस्तुका अपनी शक्तसे हथिया लेना है। सम्पत्ति (property) का आधार एक निश्चित स्वत्व (अधिकार) होना है जिसे सब स्वीकार करते हैं (६७ सं० १ अ० १३)।

(ख) सविदाका स्वरूप (Nature of the Contract)

हॉम्स हॉम्स एक सविदाका हाना बनाते हैं जिसे प्रारम्भिक या सामाजिक सविदा कहते हैं। लाभ की सम्पत्तिमें दो सविदाएँ होती हैं। एक सामाजिक और दूसरी शासकीय (governmental) रूसो की रायमें भी सविदा एक ही होती है। हॉम्स जब सविदाकी चर्चा करते हैं तो यह बातोंकी बिम्बा नहीं करके कि सविदा

^१ लॉक के अनुसार प्राकृतिक अवस्थाकी तीन कमियाँ यह हैं

- (१) एक व्यवस्थित निश्चिन और प्रतिष्ठित विधान
- (२) एक निश्चिन और निष्पक्ष न्यायाधीश
- (३) सही दण्डका कार्यान्वयन और उसका ममयन करनेवाला शक्ति।

कार सरकार बननी है या नही। वह मविशका बहुत कुछ एक इतिहासीय कल्पना मानत है पर यह कल्पना कबन इस मध्यकी आर मवेन करनेका ठग मान है कि सरकारका आधार केवल गति ही नही है इसका आधार बहुत कुछ जनताकी इच्छा या मम्मति है। इसके विपरीत माक मविशका एक इतिहासीय धरना मानत है उनका विचार है कि वास्तवमें नाग एक समय किसी स्थान पर एकत्रित हुए य और आपसम करार करके उन्होंने सरकारकी स्थापना की।

हॉयस का विचार है कि यह मविश प्राकृतिक अवस्थाका पार करनेवा नमुप्या के बीच हुई थी। यह सविश जनता और शासकके बीच नही हुई थी वरिष्ठ यह सविश सागाने मय आपसम सामक निरुक्त करनेके लिए की थी। यह करार कुछ इस प्रकार हुआ—हर व्यक्ति हर दूसरे व्यक्तिम कहना है कि अपन ऊपर शासन करनेका अपना अधिकार मैं अमुक व्यक्ति या अमुक समितिमा सीपना हू और उम अपन ऊपर शासन करनेका अधिकार देना हू बगल कि तुम भी अपना अधिकार उम सौरा और उमे अपन ऊपर शासन करनेका अधिकार दो (३५ ख० २ अ० १७)।

व्यक्ति अपन सारेके सारे प्राकृतिक अधिकार शासकका सीप देता है। भागे बनकर हॉयस ने अपन इस विचारम कुछ परिवर्तन किये हैं। शासक स्वम सविशम भाग नही मना वह ना सविशका परिणाम-भाज है। वह निरुक्त है। एक बार उम शक्ति और अधिकार द गिय जानेके बाद जनता उसस इहें वापस नही ल मक्ती इसलिये जनताके बिनाह करनेका अधिकार नही रहता। नागरिक समाजका निमाण करनेवाली सविश सरकारका भी स्थापना करती है क्पाकि हॉयस क मनानुसार राज्य और सरकारके बीच कोई अन्तर नही है। कबन एक सविदा म्वीकार करनेका परिणाम यह है कि जब कोई सरकार बलट की जाती है तब राज्य भी नष्ट हा जाता है और समाजम बराबरचना पैस जाती है। यह धारणा यक्तिमगन नही मालूम दना। इस धूनका सुधार सौंख न दो सविशजोंकी बलना करक किया है परन्तु यह दाना सविश प्रत्यक्ष न हाकर अप्रत्यक्ष है।

सौंख मोक न जिन दो सविशजोंका उल्लेख किया है उनमम पहली सविश हाय नागरिक समाजकी व दूसरी द्वारा सरकारकी स्थापना हाती है अर्थात् पहली सविश जनताके बीच हुई थी और दूसरी एक आर समस्त जनता तथा दूसरी आर शासकके बीच हुई। हॉयस के धयनानुसार, सरकारकी स्थापनाक बाद हो नागरिक समाजकी स्थापना हुई। परन्तु सौंख क अनुसार सरकारकी स्थापना बादम हुई और यानि सरकार भग हा जाय ता उमका यह अर्थ नह कि नागरिक समाज भी छिन्न-भिन्न हा जानता। साधारणतया एक सरकारके भग होनेका अर्थ यही है कि समाजको उनम स्थान पर दूसरी सरकार बनानी पडवी। सौंख क मनानुसार नागरिक अपन सम्पूर्ण प्राकृतिक अधिकारका समर्पण नही करत। व अपने प्राकृतिक अधिकारामे म कुछका एक सामान्य मलाको इसलिये द दन है जिममे कि उनके गय अधिकार पर और न भाय। यदि शासक इन अधिकारकी रक्षा नही कर पाता है ता जनताका अधिकार है

कि उसका हटाकर दूसरी सरकार बना स। इस तरह सॉक अपने सिद्धान्तको एक सीमित राजनयिका आधार बनाता है क्योंकि उसका उद्देश्य १६८८ ई० में हुई रक्तहीन राज्यक्रान्ति (Bloodless Revolution) का समर्थन करना था। इस प्रकार सॉक भी दृष्टिमें यह सविन्य एक सीमित सौदा है। सम्पत्तिवे अध्यापन यह कहते हैं कि सरकारको उतना ही राजस्व इत्यादि लेना चाहिए जितना उसको नाम संचालनके लिए आवश्यक हो। उससे अधिक लेना सरकारका सब सब अधिकार नहीं है जब तक कि सम्पत्तिका मानिक अपनी स्वीकृति न दे द। सरकारके सम्बन्धमें यह धारणा विज्ञान अवास्तविक है अधिक शक्ति ही अन्तिम शक्ति नहीं है।

रूसो रूसो के अनुसार यह सविन्य नागरिकों के धर्मनिरपेक्ष स्वल्प तथा उनके सामूहिक स्वल्पके बीच हुई। अर्थात् क ख ग घ आदि अपने प्राकृतिक अधिकारों (natural rights) का क+ख+ग+घ के सामूहिक स्वरूपका सौंप देने हैं। इस प्रकार कोई भी घाटम नहीं रहता बल्कि प्रत्येकको साम ही होता है क्योंकि अब उनमें से किसी पर आक्रमण होता है तो सारा समान उसकी रक्षा करता है। राज्यका प्रत्येक नागरिक राज्यकी सम्प्रभुताके एक भागका स्वामी होता है। सबके लिए यह अक्षरबद्ध होता है और उसको छीना नहीं जा सकता। रूसो कहता है हममें में हर एक अपने शरीर और अपनी शक्तिको लोकसम्प्रभुताकी श्रेष्ठताके समाजका समर्पण कर देता है और अपने सामूहिक स्वल्पमें हम हर सदस्यका समाजका अविभाज्य भागके रूपमें मानते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपनेका अर्थ सब व्यक्तियोंके हितोंमें समर्पित ता कर देता है परन्तु सब पूछा जाय ता यह पढ़नेकी तरह ही स्वतन्त्र रहता है। रूसो इस सविन्यका सच्ची इतिहासीय पन्ना नहीं मानते हैं।

(ग) सम्प्रभुता (Sovereignty)

हॉब्स हॉब्स का विचार है कि प्राकृतिक अवस्थाम रहनेवाले लोग असंगठित और परस्पर युद्ध रत व्यक्तियोंके झुण्ड-भाण्ड थे। इसलिए हॉब्स के सामने यह एक समस्या थी कि व्यक्तिपाषाण एक ऐसा समुदाय कैसे बन सकता है जिसमें सबकी एक सम्मति हो। इसी समस्याका हल यह सामाजिक सविन्य में पाया है जिसमें एक राजाका निष्ठाचन होता है जो एक ही सम्मति (will) के रूपमें समाजका शासन करता है। सविन्यकी शर्तोंके अनुसार यह एक सम्मति ही समस्त शासक की व्यक्तिगत सम्मतिपाषाण स्थापन होता है और उनका प्रतिनिधित्व करती है।

शासक जनताका प्रतिनिधित्व कैसे करता है—इस प्रश्नके उत्तरमें हॉब्स ने सदाय व्यक्ति और कल्पित व्यक्तिके बीच भेद (legal distinction) की आरम्भके किया है। एक एसी सामूहिक सत्ताकी जिससे पास अधिकार और शक्ति है हम कल्पित व्यक्ति कहते हैं। यह सत्ता अपने प्रतिनिधि द्वारा ही कार्य करती है। हॉब्स इस प्रतिनिधि को कल्पित व्यक्ति मानते हैं। हॉब्स का कहना है कि यदि विभिन्न

सम्मतिप्राप्त व्यक्तिगत नियम बन रहे (हॉब्स के अनुसार लागू यही करते हैं) ताकि वस्तु-वस्तु सम्मतिप्राप्त मिलकर एक हो जाती है। उनका प्रतिनिधि उनकी अनन्त सम्मतिप्राप्ति धारण करने का कार्य करता है। इस प्रतिनिधि को इस प्रतिनिधि का एक व्यक्तिगत व्यक्तिगत हो जाता है। इस नाम प्रत्येक व्यक्ति का विचार यो होगा — मेरा प्रतिनिधि जो कुछ करता है वह मेरे द्वारा किये गये के समान है और जो कुछ वह करता है उसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। सारी जिम्मेदारी मुझे स्वाभाविक रूप से चाहिए। इस प्रकार नामक द्वारा किया गया काम अनन्त ही करती है और इसलिए शासक अपने प्रतिनिधि स्वरूप में अलग होकर कुछ नहीं कर सकता। हॉब्स का कहना है कि यही एकमात्र उपाय है जिससे समाज में एकता रह सकती है। एकता सामान्य प्रतिनिधि ही निहित रहती है न कि व्यक्तियों में। इस प्रकार हम कहते हैं कि हाब्स के सिद्धान्त में अनेक सम्मतिप्राप्त स्थान पर एक सम्मतिप्राप्त प्रतिस्थापन (substitution) होता है परन्तु कसो के अनुसार अनेक सम्मतिप्राप्त एक सामान्य सम्मति (general will) में रूपान्तरित (transform) और हस्तान्तरित (transmute) हो जाती है।

ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि सत्ता चाह जिसके हाथ में रहे वह पूर्ण (absolute) अविभाज्य (indivisible) और अन्त्य (inalienable) होती है। सत्ता का निर्माण ही समाज बनता है। सम्प्रभु ही राज्य का नीतिगत तत्त्व निहित है। हॉब्स का कहना है कि शासक एक कुछ या अनेक हो सकते हैं। वह स्वयं एक ही शासक होना अधिक उपयुक्त समझते हैं क्योंकि उनके अनुसार राजतन्त्र के निम्न विभिन्न माम होते हैं

(क) राजा का व्यक्तिगत स्वार्थ जनता के हित के साथ वृत्तमिन्नकर एक रूप हो जाता है।

(ख) अन्य प्रकार की सरकारों की अपेक्षा राजतन्त्र अधिक बुद्धिपूर्वक कार्य कर सकता है और

(ग) राजा के अपने नीर-नरीझोमे व्यापार रहनवी अधिक सम्भावना है।

निम्नलिखित हॉब्स के इन तर्कों में कुछ कम है। हॉब्स का वास्तविक उद्देश्य ग्राही निर्दुःखता का समयन करना था। लेकिन ऐसा करने में उन्हें अपने समय के निर्दुःख राजतन्त्र दूसरे समयकों में कोई सहायता नहीं मिली क्योंकि वे लोग चाहते थे कि राजा सभी अधिकारों को जन पर शासन करे। इन नीतियों का तर्क यह था कि यदि राजा की शक्ति का आधार जनता की इच्छा ही है तो जिस जनता राजा को सत्ता दी है वही जनता एक दूसरे व्यक्ति को नाराज या अनेक लोगों को सत्ता सौंप सकती है। राजतन्त्र के विरोधियों ने भी हॉब्स से कोई सरोकार नहीं रखा क्योंकि वे भाग राजा की शक्ति का सीमित करना चाहते थे।

हॉब्स का कहना है कि शासक सर्वोच्च विधायक (supreme law maker) है। वह अपनी प्रजा के साथ कोई सन्धि नहीं कर सकता क्योंकि वह उनका प्रतिनिधि है।

वह नैतिक भूलें भन ही कर दास पर अधिक (legal) आयाय उससे हा ही नहीं सकता। वह अपने कामोंके लिए केवल परमात्मा के ही प्रति उत्तरदायी है। हॉम्स का यह कथन उस सिद्धान्तसे बन्न मित्रता-जुनता है जो कहता है कि राजा कोई गलती कर ही नही सकता। राजा परमविधि नियन्ता हानके कारण विधि से उपर है। वह अपन का किसी भी प्रकारके बाधसे नहीं बाध सकता। यह सनाका सर्वोच्च मनापति होना है। समाज में कानून ग सिद्धान्त या धार्मिक विश्वास प्रचलित है। इसका भी वही निर्णायक है।

लॉक सम्प्रभुता सम्बन्धी लॉक का सिद्धान्त अत्यन्त अस्पष्ट है। एक आधुनिक लक्षण दिखता है। जिनकी ही जगह गहराईसे हम लॉक के सिद्धान्तका मनन करते हैं उनका ही अधिक हम मानूँ होता है कि लॉक ने सम्प्रभुताके विरुद्ध जगह बाट की है और निरङ्कुश राजतन्त्र के दावके विरोध कम (२९)। सम्प्रभुताके सम्बन्ध में परम्परागत दृष्टिकोण यह है कि इस अविभाग्य और सर्वोपरि हाना चाहिए। हॉम्स आस्टिन और अन्य लेखकोंके भी यही विचार है। लॉक लॉक का विचार इन सबके विचारोंके विपरीत है। लॉक सम्प्रभुताको न तो सर्वोपरि मानते हैं और न अविभाग्य। सम्प्रभुता एक ओर जनतामें और दूसरी ओर शासकमें बँटी हुई मानूँ होनी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है मूल सविन एक ऐसा करार है जिसके द्वारा प्राकृतिक अवस्था के स्थान पर नागरिक समाजकी स्थापना हुई। इस मूल करार के लिए समाजके प्रत्येक सदस्य की स्वीकृति आवश्यक है। चाहे वह प्रत्यक्ष रूपसे दी जाय चाहे मौन रहकर। किसी देशमें रहना राज्यका मौन स्वीकृति देना है। दूसरी भविष्यके अनुसार शासकोंकी सक्तिको भीमित किया जाता है। यदि वे अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको पूरा करनेमें असमर्थ हों तो वे हटाये भी जा सकते हैं और उनके स्थान पर दूसरोंको नियुक्त किया जा सकता है। इसके लिए समाजको फिरसे प्राकृतिक अवस्थामें लौट जाना पड़ेगा।

लॉक के सम्प्रभुता सिद्धान्तका व्यावहारिक मतलब तो यह है कि सम्प्रभुता रहती तो जनता के पास है परन्तु उसका वास्तविक उपयोग सरकार द्वारा किया जाता है। उदाहरण स्वरूप 'इंग्लैंडमें पार्लियामेंट और मन्त्रिमण्डल' (king and parliament) इसका उपयोग करते हैं। जब सरकार अपने विरुद्ध या कर्तव्यका उल्लंघन करती है तो यह आवश्यक हो जाता है कि जनता सरकारमें अपनी शक्ति वापस ले ल। इस तरह जनता निष्प्रिय माथीदारके समान है। जनता सरकारको सम्प्रभुताका उपयोग कुछ सीमाओं तक करने देती है। जनता उस समय तक कुछ नहीं बीनती जब तक सरकार जनता द्वारा नियमित सीमाओंका उल्लंघन कर अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करती। जब सरकार अपने अधिकारोंका दुरुपयोग या अनियमित करने लगती है तब प्रभु जनता जनता हानर उस सरकारका हटाकर दूसरी सरकारकी स्थापना करती है। यद्यपि सरकारका कानून देने का अधिकार समाजके पास हर समय रहता है परन्तु इस अधिकारका उपयोग करने का कोई व्यवधानिक मार्ग नहीं है। इसी कारण

यह अधिकार किसी भी प्रकार की सरकारी अन्तर्गत एक विद्रोह या क्रांति का ही रूप होता है। साक का विचार है कि यदि क्रांति सारे समाज द्वारा मान्य है तो वह 'प्रायश्चित्त' है। किन्तु यह निश्चित करना मुश्किल है कि क्रांति क पीछे पूरा समाज है या नहीं। जैसा कि टी० एच० ग्रीन ने कहा है 'तब अपन सिद्धान्त का अपन समय की शक्ति अथवा 'गामन प्रगाना' को सुधारने में नहीं मगाना चाहते हैं।

साक व सम्प्रभुता सिद्धान्त की यह एक बहुत बड़ा अस है कि वह 'गामन' का शक्ति पर अधिकार रख सकता है। उदाहरण के लिए साक कहते हैं कि विधायिका (legislature) अनायास आनन्वित (extempore decrees) द्वारा राज्य नहीं कर सकती। यहाँ अर्थ यह होता है कि वह 'नहीं कर सकती' के स्थान पर 'नहीं करना चाहिए' कहते क्योंकि आमनौर पर माना जाता है कि अधिक 'गामन' व्यक्ति का अवल और संपत्ति हारण का निरवृत्त अधिकार है। परन्तु साक ने 'नहीं कर सकती' का उन्माद किया है जिससे बहुत गड़बड़ी पैदा हो गयी है। यह एक गम्भीर गलती है जिसका अधिकार की घोषणा पर प्रभाव पड़ता है। साक प्राकृतिक अधिकार का समाज से अलग मानते हैं।

क्योंकि जैसा कि निम्न या कहा है 'सर्वोच्च' 'गामन' के अन्तर्गत व स्व ग घ अपने प्राकृतिक अधिकार को व + स्व + ग + घ की सामूहिक सत्ता को सौंप देते हैं। यहाँ हमें जनप्रिय सम्प्रभुता और साकतमोद सरकारी आधारगिता मिलती है। प्रत्येक नागरिक का सम्प्रभुता एक भाग होता है और साथ ही वह प्रजा भी है क्योंकि 'न' उस विधि का मानना पड़ता है जिन उमन स्वयं सम्प्रभु के रूप में बनाया है। क्मो हाँस व इस विचार में सहमत हैं कि सम्प्रभुता संपूर्ण अविच्छेद्य और अल्प है। किन्तु यहाँ हाँस ने सम्प्रभुता को गलत स्थान पर अर्थात् राजा में माना है वहाँ क्मो सम्प्रभुता का निवास पूरे राजनीतिक समाज में मानते हैं। यद्यपि साक की राजसत्ता और सरकार के विमर्श को क्मो ग्रहण करते हैं किन्तु क्मो सरकार को उत्तरी अधिकार नहीं देते जिनकी ताकत देते हैं। क्मो के अनुसार सरकार हमेशा प्राप्त शक्ति है जो हमेशा सम्प्रभु जनता (sovereign people) की सत्ता अधीन रहती है। साक व बिपरीत क्मो का सम्प्रभु हमेशा बर्तमान और साक का सम्प्रभु है। व (सम्प्रभु) सरकार के अधिकार अत्याचार करने के पक्ष ही शक्ति हो जाता है।

सोवरेनमन्ति सिद्धान्त राजनीति शास्त्र को हमेशा की गवो बनी देन है। 'सार सम्प्रभु' ही सम्प्रभुता का प्रकट स्वरूप (manifestation) है जो यह सम्पूर्ण राज नातिक समाज में निहित है।

{सोवरेनमन्ति सिद्धान्त का निरूपण इस अध्याय के अन्त में किया गया है।}

(घ) राज्य और सरकार के प्रकार (Type of State and Government)

राज्य के प्रकारों में मुख्यतः दो प्रकार के राज्य हैं और क्मो के दृष्टिकोण से मौलिक

विभिन्नता है। हॉम्स का सिद्धान्त निरंकुश राजतन्त्रका सौँव का सिद्धान्त सार्वधानिक सरकार या सीमित राजतन्त्रका तथा रूसो का सिद्धान्त जनप्रिय सरकार विनापकर प्रत्यक्ष लोकतन्त्रका समर्थन करता है।

सरकारके सम्बन्धमें भी इन तीनों विचारकोंकी धारणाएँ मौलिक रूपसे भिन्न हैं। हॉम्स ने राज्य और सरकारके बीच कोई भेद नहीं किया है। उसके अनुसार वास्तविक (de facto) सरकार सदैव ही वैधिक (de jure) सरकार है। हॉम्स के विपरीत लॉक और रूसो राज्य व सरकारके बीच तथा वास्तविक और वैधिक सरकारके बीच भेद मानते हैं। जैसा कि कहा जा चुका है हॉम्स के अनुसार सरकार के भंग होना मतलब है राज्यका भंग होना और पुरानी अराजक अवस्थाम फिरसे पहुँच जाना। यह बिल्कुल गलत है। लॉक का मत है कि सम्प्रभु जनताको अपनी सरकार चुनने और असंतोषजनक होने पर उसे बदल देनेका अधिकार है। सरकार एक न्यास (strut) और नैतिक उत्तरदायित्व है। रूसो के अनुसार सरकार जनताकी प्रतिनिधि या एक जीवित-यंत्र (living tool) है। वह किसी सविदाका परिणाम नहीं है। सरकारकी शक्ति सीमित तथा सम्प्रभु जनता द्वारा दी गयी होती है। इसकी कोई अपनी मौलिक शक्ति नहीं है। लोकसम्मति किसी भी समय उसको शक्तिहीन कर सकती है। सरकार के इस आश्रित स्वरूपका रूसो ने इस प्रकार बताया है कि समय-समय पर जनता को प्रश्नोंका उत्तर देती है (६७ ख० १ अ० १८)

(क) क्या हम वर्तमान ढंगकी सरकारको कायम रखना चाहते हैं ?

(ख) अगर हम ऐसा चाहते हैं तो क्या सरकारके रखक (constituent) ये ही लोग रहें जो इस समय हैं ?

जहाँ तक सरकारके अधिकारों और वर्तमानका प्रश्न है हॉम्स ने सरकारको निरंकुश अधिकार दिये हैं। यह सम्प्रभु भी है। लॉक ने सरकारका सीमित अधिकार ही दिया है क्योंकि उसके सविदा सिद्धान्तके अनुसार जनता अपने प्राकृतिक अधिकारों का उतना ही भाग सरकारका देती है जितना नागरिक-समानके साम प्राप्ति करनेके लिए आवश्यक है। लॉक ने सरकारके दो अर्थों—विधायिका तथा कार्यपालिका में भेद किया है जो हॉम्स ने नहीं किया। लॉक ने विधि विधानका ही सरकार का सबसे महत्वपूर्ण काम माना है जबकि हॉम्स ने व्यवस्था और सुरक्षा को। लॉक का कथन है कि सरकारका व्यवस्था कायम रखनेका काम ही राज्य का ही सर्वोच्च काम भी करना चाहिए। शासकोंको प्रजाके कल्याण का ध्यान रखते हुए शासन करना चाहिए। यहाँ लॉक के विचार हॉम्स की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील हैं।

रूसो के अनुसार सरकार कार्यपालिका मात्र है। विधि-निर्माण का काम सम्प्रभु जनताके हाथमें होना चाहिए। अपनी सम्प्रभु की सीमित विय बिना जनता अपनी विधि निर्माण की शक्ति नहीं छोड़ सकती। सम्मति ही विधि निर्माणका सारमूल है जो कि स्वभावतः किसी दूसरेका नहीं दी जा सकती और न कभी प्रतिनिधिय को दिया जा सकता है। इसीसे आधार पर रूसो ने प्रतिनिधि सरकारकी बट

आपाचना की है और प्रत्यक्ष लोक-तन्त्र (direct democracy) के पक्ष में गति शाली ठकें लिये हैं। यह एक ऐसा लोकतन्त्रके पक्ष में है जो यूनानके धाट नगर राज्य में प्रचलित था। उन्हींके शास्त्रों में त्रिज कारणोंने सम्प्रभुता अविकल्पा है उन्हीं कारणों से इसका प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता। सम्प्रभुता लोकसम्मति ही निहित रहती है। लोकसम्मति का प्रतिनिधित्व असम्भव है। तब सम्मति या तो वही है या उससे भिन्न है तबसे लोकसम्मति का सम्भव नहीं है। इसलिए जनता के प्रतिनिधि न तो जनता के प्रतिनिधि हैं और न हो सकते हैं (६७ ख० ३ अ० १४)।

अब लोको के अनुसार राजनीतिक संस्था में लोकसम्मति का निवास है और कार्यपालिका उस सम्मति का कार्य निर्वहण करती है। परन्तु हम भूलेंगे कि लोकसम्मति पूर्ण नहीं समझा जा सकता क्योंकि ऐसा करने पर तो यह मानना पड़ेगा कि कार्यपालिका की अपनी कोई सम्मति नहीं है जो गलत है। कार्यपालिका एक पुलिस का निपाही नहीं है जो केवल आज्ञापालन करती है। हर देश में कार्यपालिका को अपने विवेक से काम करने का अवसर दिया जाता है उस कारण कार्यपालिका का लोकसम्मति में भी हिस्सा रहना है। दूसरी तरफ जनता कानून तो बनाती है और साथ ही भी निष्पक्ष करती है कि कानून कैसे और किसके द्वारा लागू किये जायें। इस तरह अपनी सम्मति का लागू करने में उसका भी हाथ होता है। परिणामस्वरूप हम यह पता चलता है कि सम्मति और उसे कार्यान्वित करने में जो भूल हम करते हैं वह भूल विस्तार में लागू नहीं किया जा सकता। विधायिका और कार्यपालिका में भेद की सम्मति करना अच्छा है परन्तु कार्यपालिका को हम हमने महत्वहीन स्थान नहीं दे सकते जितना लोको ने बताया है।

लोको ने सम्प्रभु जनता में विधायिका व कार्यपालिका (सरकार) का निपाण करती है दूसरी विनियमन यह बताया है कि विधायिका को सामान्य बातों पर और कार्यपालिका को विषयों पर ध्यान देना चाहिए। हम दृष्टिकोण को अपनाते पर जनता की विनियमन पंक्ति हो जाती है। वास्तव में सामान्य और विचारक बात नहीं भूल करनी करनी है। यदि हम यह मान लें कि जो बात समूह समाजसे सम्बन्धित है वह सामान्य है तथा जो विनियमन या बात विनियम से सम्बन्धित है वह विचारक है तो भी विनियमन दूर नहीं हानी। आपत्तिक राज्य में हर कानून एक विचार प्रसारक होता है। साथ ही कार्यपालिका का हाथ विचारक सम्मति पुरे समाज में फैला हुआ है। तब कारण यदि हम विचार और सामान्य कानून में भेद करा बनाये गये भेद मानते हैं तो हम लोको के उक्त उद्देश्य को भूल रहे हैं जिसमें लोको ने सम्प्रभुता को परिभाषित करने की कोशिश की थी। सरकार को हम एक अधोतन्त्र सम्मति द्वारा नियंत्रित रूप में सबसे महत्वपूर्ण सम्मति बना दें। इनके अनिवार्य सरकार का बनाना भी एक विचार का ही है जिसे करने का जनता का कार्य अधिकार नहीं है। लोको द्वारा दिये गये प्रयोग कथन धाट-धाट नगर राज्य में ही किया जा सकता है।

(३) व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकार सिद्धांत (Individual Liberty and Theory of Rights)

हॉग्स अधिकारों के धार्मिक सिद्धांतों को मानते हैं और साव प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्तों को अपनाते हैं। उसी समाजकी सदस्यता से अधिकारों की उत्पत्ति मानते हैं और इस प्रकार अधिकारों के आदर्शवादी या व्यक्तिवत्त्ववादी सिद्धान्त (personality theory) के लिए मार्ग तैयार करते हैं।

हॉग्स के सिद्धान्त में प्रजाओं के सभी अधिकार प्राप्त हैं जो उसे विधि द्वारा मिलते हैं। जहां विधि का कोई प्रतिबंध नहीं है वहां प्रजा के अपने प्राकृतिक अधिकार बच रहते हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि जीवन और मृत्यु पर सम्प्रभु (sovereign) के अधिकारों को छोड़ लिया जाता है। सम्प्रभु किसी भी समय हस्तक्षेप करके प्रजा की स्वतंत्रता को सीमित कर सकता है। जहां विधि का नियंत्रण नहीं है वहां प्रजा के अधिकार प्राप्त हैं। हॉग्स के विचार में सत्ता और स्वतंत्रता परस्पर विरोधी हैं।

हॉग्स की राय में सम्प्रभु के अधिकारों की कोई सीमा नहीं है। यद्यपि कभी-कभी विधाय परिस्थितियों में व्यक्तिगत आज्ञापालन की सीमाएं होती हैं। यह बात सविद्या में ही निहित है क्योंकि सम्प्रभुता की स्थापना जीवन की सुरक्षा के समुचित निष्पत्ति ही हुई थी।

(१) इस निष्पत्ति यदि वास्तविक व्यक्ति के जीवन पर हमला करना है तो आज्ञापालन का आधार ही समाप्त हो जाता है। यह एक विरोधाभास की स्थिति है। भले ही व्यक्ति का 'यायपूषक मौलिक सद्भाव' दी गयी हो फिर भी अपनी जान की रक्षा या प्रयत्न करना न्यायसंगत माना जायगा। जब किसी व्यक्ति का जीवन पर हमला किया जा रहा हो तो उसे यह मौलिक अधिकार है कि वह बच निकले। जब दूसरे के जीवन पर हमला हो रहा हो तब वह हस्तक्षेप तो कर सकता है पर इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता।

(२) कुछ परिस्थितियों में व्यक्ति सैनिकता का काम करने में इन्कार कर सकता है—क्योंकि सविद्या उसने जीवन की रक्षा करने के लिए हुई थी।

(३) जब सम्प्रभु अपनी शक्ति का प्रयोग करने और व्यक्ति की रक्षा करने में समर्थ नहीं रह जाता है सविद्या समाप्त हो जाती है। इसमें यकीन रखना है कि हॉग्स का सिद्धान्त अकाट्य तर्कों पर आधारित है। इन कुछ असाधारण स्थितियों का ध्यान कर सामान्य अधिकार हमेशा निरन्तर माना गया है।

साव सरकारों को शासितानी स्वायत्ति पर आधारित बनाते हैं। व्यक्ति को ये सब अधिकार प्राप्त हैं जो उसने राज्य का नहीं छोड़े हैं। राज्य का अस्तित्व मुख्य रूप से जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा करना ही है। फिर भी साव ने सामाजिक अधिकारों पर नए अधिक प्रतिबंध लगा दिये हैं कि उनका अस्तित्व नहीं बरकरा हो जाता है।

रूसा के सिद्धान्तके अनुसार व्यक्ति नागरिक राज्यमें जनता ही स्वतन्त्र है (यदि उसमें ज्यादा नहों) जितना कि वह प्राकृतिक अवस्थामें था क्योंकि वह अपने अधिकार किसी बाहरी व्यक्तिको नहों देता है। वह इन अधिकारोंको अपने हाथ में और उन दूसरे व्यक्तियोंको मौपड़ा है जिनको मिलकर राजनीतिक समाज बनना है। रूसा के बयानानुसार समस्या यह है कि एक ऐसा संस्था बनाया जाय जो समूचा सामान्य शक्तिमें हर मनुष्यको आवन और सम्पत्तिकी रक्षा करे और जिसमें हर मनुष्य दूसरोंके साथ मिलकर जो स्वयं अपना ही आकांक्षारो बना रहे और साथ ही जनता ही स्वतन्त्र बना रहे जितना पहले था। इस समस्याका हम रूसो ने सामाजिक सविधान पामा है। इस सविधानके अनुसार हममें से प्रत्येक अपने गरीब और अपनी मजदूरी शक्तिको नागरिक रूपमें भागसम्पत्तिके सर्वोच्च नियन्त्रणके अधीन कर देना है और अपनी सामूहिक शक्तमें हम हर मनुष्यको समझिका अधिकार अंग मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूसा के अनुसार मनुष्य नागरिक राज्यमें एक स्वतन्त्र व्यक्ति है। जो कुछ भी प्रतिषेध है के स्वयं उसी ने अपने ऊपर लगाये हैं। वह अपने ही द्वारा लागू की गयी विधिमानना है और वह स्वतन्त्रताका अपहरण नहों है। ऐसी विधिकी मानना जिसे हमने स्वयं अपने ऊपर लागू किया है स्वतन्त्रता ही है।

स्वतन्त्रताके इस विचारकी हम एक ही आलोचना करना चाहते हैं। वह आलोचना यह है कि रूसा पूरा मानवशक्ति पूरा स्वतन्त्रता मान लेते हैं। हमारा अनुभव हम बताता है कि यह हमारा नहीं है। रूसा बहुमतके अवाधानकी सम्भावनाको भूल जाते हैं जिसकी आकांक्षा आधुनिक तात्त्विकों के बारे में ज. एस. मिल (J. S. Mill) ने पूरी तरह की है। उनकी यह धारणा कि जहाँ मानवशक्ति है वहाँ व्यक्ति स्वतन्त्र होने के लिए मजबूर किया जा सकता है आसानी से बहुमत के अवाधानका पर्याय बन सकती है। आपुनिक सोचनशक्ति ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ मानवशक्तिके अभावमें भी बहुमत अल्पमत पर अवाधान करता है। रूसा अभी अधिक मानव और बहुत अल्पमतके लोग भी भयभीत तथा अल्पमत बहुमत पर अवाधान करते हैं। इस आलोचनाके बावजूद हम यह कहनेमें मनाज नहों है कि रूसो ने स्वतन्त्रताकी सर्वोत्तम व्याख्या की है। उनकी व्याख्या राजनीतिक शास्त्रके एक महत्वपूर्ण प्रश्नका उत्तर हम मिलता है। वह प्रश्न है सामाजिक शक्ति और व्यक्तिगत उन्नतियन्त्रण आपसी सम्बन्ध।

होब्स, लॉक और रूसो के सिद्धान्तों में सत्य का अंग

(Truth in the Theories of Hobbes, Locke and Rousseau)

हमारे हाथ में न अपने पूरे सिद्धान्तों का निष्पन्न व मनुष्यगत रूपसे

विवक्षित किया है। यदि उसके सिद्धान्तकी आधारभूत मायताओंको हम स्वीकार कर सते हैं तो निष्कप अपने आप निश्चय आते हैं। हाँस्य एक महान् विचारक थे। वधिक सम्प्रभुता (legal sovereignty) का सिद्धान्त राजनीति-शास्त्रको उनकी एक महत्त्वपूर्ण देन है। उनकी मूल कल्पना यही है और यह एक बहुत बड़ी भूल है कि उन्होंने कानूनी सम्प्रभुताकी पूर्ण राजनीतिक सम्प्रभुता (political sovereignty) में नहीं की। आधुनिक मसख राजनीतिक सम्प्रभु या वास्तविकता वधिक राजसत्ता से भ्रष्ट मानने हैं। हाँस्य ने रायकी इच्छा और शासककी इच्छाका एक मानकर गलती की है। इस गलतीकरणके कारण ही उन्हें राय और सरकारके बीच भेद करने में कठिनाई हुई है। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला है कि शासककी मृत्युके बाद राज्य समाप्त हो जाता है।

हाँस्य के कथनानुसार सम्प्रभु प्रजाका प्रतिनिधि है। हम यह मान सकते हैं कि जो सरकार जनताकी आवश्यकताओंको पूरा करनेकी कोशिश करती है मौलिक रूपसे वह जनताकी प्रतिनिधि है। परन्तु सच तो यह है कि हाँस्य ने प्रतिनिधि शब्द का उसके साधारण अर्थमें प्रयुक्त नहीं किया है। यह जल्दगी नहीं है कि तथाकथित प्रतिनिधि सम्प्रभु जनताका सही प्रतिनिधित्व करे अर्थात् उनके कल्याणके लिए कार्य करे। हाँस्य का उत्तर यह होगा कि सम्प्रभुके विधि बनानेके अधिकार पर हम कोई रोक नहीं लगा सकते क्योंकि वह सर्वोच्च विधि निर्माता है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि शासकके वधिक अधिकारोंका समूह कैसे किया जाय कि एक अच्छी सरकारकी स्थापना हो सके। दक्षिणके क्रांतिकरणमें निम्सल्लेह सरकार कायकुशल बनायी जा सकती है पर आवश्यकता तो दक्षिण के द्रोहरण और अत्याचारमें रक्षा—इन दोनों नाम समर्थन प्राप्त करनेकी है।^१

यह कहा जा सकता है कि हाँस्य का सिद्धान्त ध्वस्तिका किमो प्रकारकी स्वतंत्रता न देकर उसे शासककी दया पर छोड़ देता है। इस सिद्धान्तके अनुसार तो व्यक्तिको उस समय तक शासकके आदेशोंका पालन करना चाहिए जब तक उसका जीवन सड़क में न पड़े। जनताके अधिकारोंके समर्थन यह करने हैं कि जब शासक निरनुदा हो जाता है और जनताके कल्याणकी अवहेलना करता है तब जनताको उसका विरोध करनेका अधिकार (right of resistance) होना चाहिए। इस तर्कके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि हाँस्य के ही अनुसार जब सरकारका शासन पाषण्ड न रह जाय तब विरोधका भग्न हो जाना चाहिए। परन्तु महत्त्वकी बात तो यह है कि हाँस्य ने हम दक्षिणाली सरकारकी मौलिक आवश्यकता बनायी है। उन्होंने विरोध करने के अधिकार में होनेवाले खतरोंको अच्छी तरह समझा है। एक पदार्थकी नगण्यता का स्वयं अपनेमें प्रतीति चाहिए अथवा स्थिति ऐसी है कि हममें गृह-युद्ध और अन्तर

^१ हैरावेल के कथनानुसार हाँस्य ने राज्य और समाज राज्य और सरकार अथवा विधि और नतिक्रमों के बीच बाई भेद नहीं माना है (३१ पृष्ठ)।

घम्माका खतरा माल लेना उचित होगा? सरकारके विरोध करनेका परिणाम गृह युद्ध हो सकता है। एक बार सरकारका विरोध शुरू करनेके पश्चात् यह नहा बनाया जा सकता कि परिणाम क्या होगा। विरोध करते समय मन ही सांगकि मनम गृह युद्धकी भावना न हा पर यह सम्भावना अधिक है कि इसका अन्त गृह-युद्धम ही होगा। इसी कारण सरकारके 'यायकारी होनेकी अपेक्षा शक्तिशाली हाना अधिक आवश्यक है। कभी-कभी हो जानवाल अयायपूर्ण कार्योंकी अपेक्षा शान्ति और सुरक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। हॉब्स हमारा ध्यान इसी सयकी ओर आकर्षित करना चाहत थ कि किसी नी प्रकारका विरोध सरकारका कमजार ही बनाया है। जैसा कि आइवर ब्राउन (Ivor Brown) ने कहा है—हॉब्स अनुशासनके प्रथम महान् दार्शनिक हैं।

हॉब्स जैसे पूण व्यक्तिवाणी विचारके लिए समाजका सही अध्ययन बहुत कठिन है। हॉब्स के सिद्धान्तका आरम्भ ही गलत है। उनकी धारणा है कि मनुष्य मूलतः स्वार्थी है और वह सुख-दुखकी भावनाओंसे ही प्रेरित होता है। परन्तु यह धारणा गलत है। इसके विपरीत प्लेटो की यह धारणा सर्वसंगत है कि व्यक्ति अपनेम पूण नहा है और समाजमे अलग उसका कोई महत्व नहीं है। हॉब्स के सिद्धान्तके अनुसार लोगोंको एक मूनम बाँधनेवाला तत्त्व अराजकताका सामान्य मय ही है इसलिए वह समाजकी एकताका सम्प्रभुकी इच्छास मिमान के लिए बाध्य हा गये हैं और उन्होंने जनताकी 'राका अधिक महत्व नहीं दिया है।

लॉक लॉक १६८८ ई० की अंग्रेजी रायत्रान्तिके दार्शनिक हैं। उनकी पुस्तक *Second Treatise on Civil Government* इतिहासीय दृष्टिस बहुत प्रभावपूर्ण है। इसम यह बहुत अच्छी तरह बनाया गया है कि रायत्रान्तिक ममय लागू के क्या विचार थ। मेखक न अपना इस पुस्तकम राजनीति-शास्त्रका वैज्ञानिक अध्ययन ता कम अपन राजनीतिक विचारोंका प्रचार अधिक किया है। इसम हॉब्स की पुस्तक *Leviathan* की भांति तर्कपूर्ण विवेचन नहा किया गया है। लॉक के सिद्धान्तका साग यह है कि सरकारका मूल उद्देश्य जनताकी आवश्यकताओंका पूरा करना है। यदि काइ बात जनताक हितम होती है ता लॉक इस बातका धिना नहा कग्ने कि यह बात दार्शनिक दृष्टिमे जिननी उचित है। राज्य की दृष्टिम व्यवस्था और मुग्गा सयम उपाय जरूरी हैं। लॉक व्यावस्थाने माथ हा अण्ड शासनकी आवश्यकता भी बताते है। शासनका जनताके कल्याणके लिए शासन करना चाहिए। इसी कारण लॉक का राजनीतिक सम्प्रभुताके अस्तित्वका स्वीकार करना पडता है हालाकि वह अधिक सम्प्रभुताके अयको पूरी तरहम नग ममस पाय हैं। इस विषयम गिनत्राइस्ट (Gulchrist) हॉब्स और लॉक के अन्तरका समझात हण कहते हैं 'हॉब्स ने राजनीतिक सम्प्रभुताके महत्व और गतिता मान बिना ही वैधिम सम्प्रभुताका सिद्धान्त बनाया है लॉक न राजनीतिक सम्प्रभुताके महत्वका सा स्वीकार किया है लेकिन वैधिम सम्प्रभुता का पूरी तरहम माग है (१८ ६१)। लास्की के विचारम लॉक ने राजनीति-शास्त्र म स्वीकृतिमे सिद्धान्त (Theory of Consent) का एक स्थानी स्थान दिया है।

रूसो (१) रूसो न सविन्याका तो माना है परन्तु उनके विचार कहा-नही पर सविदा सिद्धान्तके विचाराका अतिश्रमण कर जाते हैं।

(२) रूसो न सिद्धान्तम हॉम्स और लॉक के सिद्धान्तके सर्वोत्तम तत्त्वाका सम वय है। जसा कि एक लेखक ने कहा है कि उन्होंने हा स की प्रारम्भिक मायता और विचार शलीके साथ लॉक व निष्कर्षोना समन्वय कर दिया है।

रूसो ने हॉम्स से एक निरवुग अविभाज्य और अदेय राजसत्ताका विचार लिया है और लाक में यह सिद्धान्त लिया है कि जनताका हित अष्ट गसनवी बसोटी है। इन दोनों सिद्धान्तके समन्वयने ही लोकसम्मतिक सिद्धान्त उत्पन्न होता है। रूसो लॉक की तरह जनहित पर जोर देकर ही चुप नहीं हा जात वरन् वह पूरी जनताका नियन्त्रण चाहते हैं। इस तरहसे रूसो के हाथम यह सिद्धान्त मौलिक रूप से लोकतन्त्रीय हो जाता है और इस बातका दावा करता है कि जनता सिद्धान्तिक रूपम ही नहा वरन् वास्तविक रूपसे शासन करेगी। रूसो ने ही राजनीति ससारम लोकतन्त्रका एक मजीब सिद्धान्तिक रूपम प्रतिष्ठित किया (Cole)।

लोकसम्मति का सिद्धान्त (Doctrine of the General Will)

आधुनिक राजनीतिक विचार विमर्गम लोकसम्मतिक सिद्धान्त बहुत महत्व रखता है। कुछ विचारक इन सिद्धान्तको यदि स्तरनाक नहा तो अपेक्षीन अवश्य मानते हैं। लेकिन इसके विपरीत अन्य विद्वानाकी सम्मतिम लोक-सम्मतिक सिद्धान्त प्रजातन्त्र तथा राजनीति शासनकी आधारशिला है।

लोकसम्मतिकी धारणाका ठीक तरहसे समझनेके लिए 'व्यावहारिक इच्छा' (actual will) और 'वास्तविक इच्छा' (real will) का अन्तर समझना आवश्यक है। यहाँ पर यह कह देना जरूरी है कि व्यावहारिक और वास्तविक शब्दाका प्रयोग पारिभाषिक अर्थम हा विभिन्न विचाराको प्रकट करनेके लिए किया गया है। यह कारण इन शब्दाका प्रयोग एक दूसरेके लिए करना जैसा कि हम सामान्य बात चीतम किया वगत हैं उचित नहा है। एल० टी० हॉबहाउस (L. T. Hobhouse) ने अपनी पुस्तक *Metaphysical Theory of the State* में यही मूल की है। वह तो यहाँ तक बत गय है कि जो व्यावहारिक है वही वास्तविक है और जो वास्तविक है वही व्यावहारिक है।

जो व्यक्ति इन दोनोंका प्रयोग पारिभाषिक अर्थम करते हैं और इनका आपसम गन्ना लोकसम्मतिक आधार बनाने हैं वे अनुप्यवे भीतर होनेवासे सम मपयका उपयोग करते हैं जो मनुष्यकी वी (I) और मुझसेअच्छा (better than I) की भावनाने बीच पना बग्या है। वे व्यावहारिक इच्छा का उपयोग मनुष्यकी प्रेरणात्मक और अविचारमूल गन्ज या स्वाभाविक इच्छा (compulsive and

unreflective will) का रूप धारण करता है। यह मनुष्यकी क्षण-क्षण पर बदलनवाली इच्छा है। यह पूरे जीवनका बिम्बुम ध्यान नही रखता। यह स्वार्थका ही ध्यान रखती है और समाजके कल्याणका ध्यान नही रखती। यह व्यक्तिकी विचारामय परिवर्तनशील (transitory) व तुच्छ (trivial) इच्छा है। यह इच्छा सबीर्ण तथा क्षांभ-विगपिनी है। यदि मनुष्य विचारशील है तो वह अपना इस इच्छाम पुनः पानकी चेष्टा करता है। यह इच्छा चाह किन्ती ही प्रबल क्या न हो गयी हो मनुष्य उगत छुन कर 'वास्तविक' इच्छा का अपनाका प्रयत्न करता है। 'वास्तविक इच्छा' ही मनुष्यकी सच्ची स्वतन्त्रता व्यक्त करती है। यह इच्छा स्थायी होती है और स्थायी होनेक साथ ही स्थायी सन्ताप भी देती है। यह इच्छा स्वायत्ती कराईम मुक्त हावर गुठ हा चली हानी है। यह मनुष्यकी सठ इच्छा है। यह मनुष्यक स्वायत्ती भी ध्यान रखती है परन्तु इस व्यक्तित्वन स्वायत्ती आगे चलकर सामूहिक स्वायत्ती सामान्य हित (common good) का परिचालन हा जाता है। यह इच्छा कभी भी किसी सामान्यक पूरा हो जानके मनुष्य नही हा जाती। यह मनुष्यक जीवनका ध्यान रखती है। यह एक सुनिश्चित इच्छा है। व्यक्ति और समाजके समन्वयके रूपम यह प्रकट होती है। यह कभी भी किसी व्यक्ति-विचारम पूर्णरूपेण नही पायी जाती।

ऊपर बताये गये 'व्यावहारिक' इच्छा और 'वास्तविक' इच्छा' का भेदकी हाँवहाउस ने बड़ी बड़ी आलाचना की है। उनका कहना है कि यदि वास्तविक इच्छा' का कार्यान्वित किया जा सकता उमका स्वरूप इनका भिन्न हा जायेगा कि हम उमको पहचान भी न सकेंगे। 'य तवम हम सहमन नम है' कदाचि 'वास्तविक' इच्छा का ऐसा आन वेचन कल्पना-आश ही है। यह तथ्य कि हम अपनी आलाचना अपने तब अपने विवेक और या फिर अपने अनुभव द्वारा किया करते हैं यह निश्चय करना है कि व्यावहारिक और वास्तविक इच्छाका यह का सामाजिक है। इस भेदकी मान्यता देनेका यह अर्थ नहीं कि हम व्यावहारिक इच्छा का प्रथम हातनेवाली समझते हैं जसा कि हाँवहाउस का मत है। इसे स्वीकार करनेका अर्थ सिर्फ यही है कि यह इच्छा असूय होती है। इस पर पुन विचार करना आवश्यक होता है। हाँवहाउस तो एक शब्द जान रखते हैं और कहते हैं कि व्यक्तिका इच्छा हर समय 'वास्तविक' इच्छा' होती है। बोसाके (Boschquet) तथा अन्य सामाजिकविदोंके प्रति जा व्यावहारिक' और वास्तविक' शब्दका प्रयोग पारिभाषिक अर्थम करते हैं यह आलाचना उचित नही जान पड़ती। हाँवहाउस मनुष्यके कार्योंका ऐसा विभाजन करते हैं माना उनम आपसम जग भी सम्बन्ध न हा। हाँवहाउस चाह कुछ भी कहें परन्तु एक साधारण नागरिकम वास्तविक इच्छा काउा अर्थम सग पायी जाती है यद्यपि हम यह माननेको तैयार हैं कि उमका पुन विचार ता सब देष्ट व्यक्तिगत भी नहीं हो पाता है। व्यक्तिकी किसी इच्छाका बहुत अधिक तीव्र होता हो 'वास्तविक' इच्छा नही है। व्यक्तिकी इच्छाका सार्वजनिक हितम सम्बन्ध ही उम 'वास्तविक' इच्छा' बनाना है। व्यक्तिका कार्यान्वित कल्याणका अभिमत अर्थ

है। साधारण मनुष्याम व्यावहारिक और वास्तविक इच्छा मिली हुई होती है। यह मिली हुई इच्छा विवक्षित हाते हुए धीरे धीरे वास्तविक इच्छा में बन जाती है।

इसा वास्तविक इच्छा और कल्याण की भावना पर ही दार्शनिकाने लोकसम्मति (general will) की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है। समाजका निमाण करनेवाला व्यक्तिवादी वास्तविक इच्छावाका समन्वय या याग ही लोकसम्मति है। बाकाके की परिभाषाके अनुसार लोकसम्मति समाजकी इच्छा या सभी व्यक्तिवादीकी सावजनिक हित चाहनेवासी इच्छा है। यह सावजनिक कल्याणकी सामान्य चेतना है (It is the common consciousness of a common end or good)। यद्यपि इसका क विचार लोकसम्मतिक समन्वयम सदैव स्पष्ट नहीं है फिर भी उनकी राजनीतिक धारणाओम यह धारणा सबसे अधिक मौलिक है। इसका अनुसार नागरिक समाजका निमाण करनेवाला मूल सिद्धांत लिए तो सबकी स्वीकृति आवश्यक है लेकिन उनके बा लोकसम्मति ही काफी है। लोकसम्मति शब्दसे इसका दो बातें समझते हैं—मतदाताओं की संख्या और उससे व्यक्त होनेवाला सावजनिक हित। एक स्थान पर उन्होंने साफ-साफ कहा है कि सावजनिक हित अधिक महत्वपूर्ण है। उनके गान इस प्रकार है 'लोकसम्मतिक लिए मतदाताओंकी संख्याकी अपेक्षा सावजनिक हित अधिक जरूरी है (What makes the will general is less the number of voters than the common interest uniting them) (६७ स २ अ ४)। फिर भी कभी-कभी यह लोकसम्मतिको बहुमतका पर्याय समझने लगते हैं। परन्तु इसकी विचारधारा सभी तर्कसंगत होती है जब यह संख्याके बजाय सावजनिक कल्याण या सामान्यहित का अधिक महत्व देती है।

इसका मतलब यह होता है कि लोकसम्मतिको बहुमत या जनमतका पर्याय नही समझना चाहिए। जब तक वास्तविक सावजनिक हित मौजूद है बहुमतसे और कभी कभी एक व्यक्तिके मतमे भी लोकसम्मति व्यक्त की जा सकती है। क्याकि ऐसा भी हो सकता है कि बहुमत सामूहिक स्वायत्त के ऊपर न उठ पाये। हो सकता है बहुमत सामूहिक स्वायत्त के शायद ही ऊपर उठ पाय। फिर भी अधिक सम्भावना इसी बातकी है कि एक व्यक्तिकी इच्छा या कुछ व्यक्तिवादीकी इच्छाओंकी ओगा बहुमतकी इच्छा ही लोकसम्मति है। इस प्रकार लोकसम्मतिक सिद्धान्त व्यावहारिक तौर पर लोकतंत्रीय सरकारकी स्थापना करता है। बुनियातगत या राजनयकी ओगा लोकतंत्रीय संगठनम ही लोकसम्मति अधिक अच्छी तरह व्यक्त हो सकती है। परन्तु बुनियाततंत्रीय या राजनयकी संगठनम भी जब तक समाज एक मूलम बंधा हुआ रहता है और उसम कोई हिंसक गणप नही होता है यह कहा जा सकता है कि लोकसम्मति अग्रगण्य रूपसे विद्यमान है।

लोकसम्मति कैसे बनती है (How General will is Generated)
इसके अनुसार किसी भी समाजम हम सबकी सम्मति (will of all) यानी समाजके

मान्यता की व्यक्तिगत हानियों से आरम्भ करते हैं। समाज का प्रत्येक सदस्य हर सामाजिक प्रश्न पर अपने दृष्टिकोण से विचार करता है। परन्तु यदि समाज सत्य है और उसमें नागरिकता की भावना मौजूद है तो व्यक्तिगत हानियों के स्वाभाविक एवं दूरदर्शी नष्ट कर देते हैं और स्वायत्तता के तत्वात्मक वारसपरि परिणाम स्वरूप लोकसम्मति का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार सबकी इच्छा (will of all) की परिधि 'लोकसम्मति' (general will) में होती है। इसका मतलब यह नहीं है कि लोकसम्मति एक निश्चितता समझी जाती है। वह हर मनुष्य की सर्वोच्च भावना का प्रतीक है—नागरिकता की भावना का मूल रूप है। लोकसम्मतिक नियम एक आदर्श समिति के नियमों की तरह हैं। ये नियम समझते हैं कि उन सब सदस्यों के सर्वोत्तम रूप की अभिव्यक्ति है। विचार विमर्श और परामर्श के फलस्वरूप प्रत्येक की इच्छा का परिवर्तन परिवर्धन और गूढ़ीकरण हो जाता है।

हमो इस प्रकार की लोकसम्मति ही सम्प्रभुता (sovereignty) का एकमात्र प्रकृत स्वरूप मानते हैं। जब सम्प्रभुता सार्वजनिक हितों का काम करती है तो वास्तविक लोकसम्मति ही काम करती है। जब तक विधियाँ सार्वजनिक हितों की होती हैं वे लोकसम्मति की प्रकट स्वरूप ही होती हैं। लोकसम्मति स्वतन्त्रता का आधार गिला है। जब लोकसम्मति क्रियाशील होती है तब व्यक्तियों 'वरस' स्वतन्त्र बनाया जा सकता है। ऐसी हानियों के व्यक्तियों निम्नस्तर के जीवन के विचारों के स्वतन्त्र करने के उच्च स्तर के जीवन और विचारों की स्थिति में लाया जाता है। इस स्वतन्त्रता की तुलना हम या तो उन व्यक्तियों के स्वतन्त्रता के कर सकते हैं जो एक सततता के पुल पर जाने में रोके दिया गया हो उनके अपने-बाने के बह नही जानता था या फिर उस व्यक्ति की स्वतन्त्रता के कर सकते हैं जिसे दासता का जीवन स्वीकार करने से रोका जा रहा था।

लोकसम्मति की विशेषताएँ

(Characteristics of the General will)

लोकसम्मति की पहली विशेषता उसकी एकता (unity) है। लोकसम्मति कभी भी आत्मविरोधी नहीं हो सकती क्योंकि वह युक्ति-युक्त है। उसमें विभिन्नता नहीं है परन्तु यह विभिन्नता एकता का प्रयास करती है। वह राष्ट्रीय चरित्र की एकता का निर्माण और रखा करती है और एक राष्ट्र का नागरिकों के बिना एक अन्तर्गत गुणों के बिना हम आगे बढ़ते हैं उनमें उसका विकास होता है (५४ १६०)।

लोकसम्मति की दूसरी विशेषता उसका स्थायित्व (permanence) है। हम हमें प्रयोग करने के लिए 'सार्वजनिक' भावना की गूढ़ता में पा सकते हैं और न राजनीतिज्ञों की दुरवस्थाओं में। वह हम राष्ट्रीय चरित्र में मिलती है। लोकसम्मति

उन बापों या जन्दासनकी अपेक्षा अधिक स्यायी होती है जिनके द्वारा उसका अभिव्यक्ति होता है (५४ १८०)।

साकसम्मतिकी तीसरी विपत्ति है उसका हमारा उचित या सही (right) होना क्याकि वह हमसा पूरे समाजके न्यायकी मावनाम प्रति होती है। प्रायः परिस्थितिमें उसका न्याय बड़ी होता है या उस परिस्थितिमें उचित और सर्वोत्तम होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि लोकसम्मतिमें भूलकी सम्भावना होती ही नहीं। जमा कि रुसा न बनाया है सम्मति हमारा सही होती है लेकिन उसका निर्देशन करनेवाला विवेक त्रुटिपूर्ण हो सकता है। इसलिए उसके नियमों में भूल हो सकती है परन्तु उसमें नैतिक दुर्भावना नहीं हो सकती। जनता सही लक्ष्यकी लक्ष्य करती है भले ही वह ब्रह्म पथ भ्रष्ट कर ले जाय। रुसा के ही शब्दों में जनता प्रति ता हमारा अच्छाईमें ही होती है परन्तु उस अच्छाईका वह हमारा दख नहीं पाता। साकसम्मति हमें ठीक होती है पर उसका पथ प्रमाण करनेवाला विवेक हमारा ठीक नहीं होता (६८ दूसरी पुस्तक छठा अध्याय)।

आलोचना

साकसम्मतिक सिद्धान्तकी कई तरहस आलोचना की गयी है —

(१) साकसम्मतिको लोग व्यावहारिक जीवनमें भिन्न और एक सामान्य तथा भावसूत्रों में धारणा करते हैं। इसका आलोचकाका कहना है कि यदि साकसम्मति यहूतमत्तम नहीं बनायी जाती तो वह अर्थहीन है। एसी अवस्थामें न तो वह साकसम्मति है और न सम्मति ही। उपर्युक्त आलोचनास हम निराशा नहीं होती क्योंकि सूक्ष्म (abstract) धारणाओं के बिना हमें ही एसी आलोचनाओं की जाती हैं। इसके समर्थकाका कहना है कि इस सिद्धान्तका महत्त्व वही तब है जहाँ तब इसमें जनहित होता है। इस सिद्धान्तकी यह विशेषता ही इसकी शक्ति है। हम आदर्श के पास पहुँचनेकी आशा तो कर सकते हैं परन्तु उसको पूरी तरह से लेना और बाय रूप में पाना कठिन है। लोकसम्मति व्यावहारिक (actual) और आदर्श (ideal) दोनों ही है। व्यावहारिक रूपमें उसे किसी भी राज्यमें पूरी तरहस नहीं पाया जा सकता।

(२) कुछ लोगोंका मत है कि इस सिद्धान्तके राज्यमें आलोचनामें निरनुशासना आ जानका भय है। साकसम्मतिके नाम पर सर्वाधिक निरनुशासना कायमकी जा सकती है। स्वतन्त्र बनाने के लिए विवश करना (forced to be free) इस कथनकी सबसे अधिक आलोचना हुई है क्योंकि इसमें अत्यधिक निरनुशासना सम्भावना है। इस आलोचनामें काफी बल है परन्तु यह अकारण नहीं है। जमा निरनुशासना सम्प्रभुताका समर्थन करते हैं परन्तु साथ ही उस पर कुछ नैतिक कथन भी लगाने हैं। चूँकि लोक सम्मति में व उचित और 'यावत्पूर्ण' होती है इसलिए वह तभी राज्य-नायक बनाने पर करी है जब ऐसा करना उचित होता है। रुसा का कथन है—समाजके ऊपर

होगा साक और हतो का सामाजिक संबंध सिद्धांत

मन्त्रम ऐसा बार्ड बंधन नहीं। साक सक्ता जा समाजक लिए निरर्थक है और न वह ऐसा करनेकी इच्छा ही कर सकता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि समा नागरिक स्वतंत्रता (civil liberty) की प्राप्ति के लिए व्यक्ति का बलिदान नहीं करता है। बंधनाका अभाव ही स्वतंत्रता नहीं है। राज्यक हर हस्तक्षेप का यह अर्थ नहीं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता छीनी जा रही है।

() लोकसम्मति का सिद्धान्त सावजनिक हित की धारणा पर आधारित है लेकिन सावजनिक हित की परिभाषा करना बहुत मुश्किल है। एक निर्दुष्ट सानागाट भी अपने कार्यों का सावजनिक हित के नाम पर उचित ठहरा सकता है। यह भी पहचान नहीं कहा जा सकता कि लोकसम्मति द्वारा व्यक्ति का अधिकार सावजनिक हित में हटा होगा। हित या अहित का निर्णय तो उसके परिणाम से ही किया जा सकता है। हम स्वाभाविक रूप से पढ़ना कि लोकसम्मति का सिद्धान्त की कुछ सीमाएँ हैं परन्तु हम यह न भूलना चाहिए कि ये सीमाएँ ही इस सिद्धान्त का गतिशीलता भी बनाती हैं। य निमित्तनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि यह सिद्धान्त सिर्फ बल्बना की उद्देश्य या कोरा आकाश नहीं है। यह सही है कि हम मनुष्य के उसकी संस्थाओं में काम करना है वह जिस हालत में भी हो। परन्तु इसके साथ ही हमारा कोई लक्ष्य भी होना चाहिए जिसका सामन रखकर हम जाग बूझ सकें। हम उसके साथ कह सकते हैं कि लोकसम्मति का सिद्धान्त राजनीतिक प्रयत्न के लिए सर्वोत्तम सम्भव सत्य है। यह सत्य हमें बोलना तथा धारण कुछ सीमा तक आत्मबलिदान भी चाहता है (५ १०६)।

(५) कुछ लोगों का यह कहना है कि यदि हम यह मान भी लें कि लोकसम्मति हमारा उचित व न्यायपूर्ण हस्त है फिर भी यह उचित नहीं है कि सरकार हमारा ठीक और न्यायपूर्ण हस्त ही कार्य करे। हम आपत्ति उत्पन्न हम यह मानना तैयार हैं कि राज्य का शासन-यंत्र अपूर्ण ही रहता है। परन्तु हम यह भी तो नहीं कहें कि हम लोकसम्मति का पूरी तरह व्यावहारिक रूप में प्रयत्न कर सकते हैं कि वह लोक या अपूर्ण शासन-यंत्र बना है, उसे हम यही आशा कर सकते हैं कि वह लोक सम्मति के आधार पर चलना शुरू करेगा। एक निर्दुष्ट या प्रबुद्ध जनमान (educated or enlightened public opinion) में ही हम लोकसम्मति की निरन्तर स्थिति सम्भावना माननी चाहिए।

लोकसम्मति के सिद्धान्त में सत्यता
(Truth in the Doctrine of the General Will)

(१) यह सिद्धान्त हमारे राजनीतिक प्रयत्न का सत्य प्रमाण करता है। यह हमारा सत्य निर्धारित करता है जिसकी प्राप्ति के लिए हम अत्याधिक बलिदान और अगम्यताओं का बलिदान कर सकते हैं।

(२) यह सिद्धान्त हमें बताना है कि समाज के सम्बन्ध व्यक्ति का उ-रा० शा० प्र०

उन कामों या आन्तर्लोककी अपेक्षा अधिक स्थायी होती है जिनके द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है (१६ १४०)।

साक्सम्मतिकी तीसरी बिगड़ता है उसका हमगा उचित या सही (right) होना क्योंकि वह हमगा पूरे समाजके कल्याणकी भावनासे प्रेरित होती है। प्रायः परिस्थितिमें उसका लक्ष्य सही होता है या उस परिस्थितिमें उचित और सर्वोत्तम होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि साक्सम्मतिकी भूलकी सम्भावना होती ही नहीं। जैसा कि रूसो ने बताया है सम्मति हमें सही होती है लेकिन उसका निश्चय करनेवाला विवेक त्रुटिपूर्ण हो सकता है। इसलिए उसके नियम भूल हो सकती है परन्तु उसमें नतिक दुभावना नहीं हो सकती। जनता सही सत्यको लेकर चलती है मगर ही वह बान्धन पकड़कर दौड़ जाती है। रूसो के ही शब्दोंमें 'जनता प्रेरित तो हमारा अन्धकार ही होती है परन्तु उस अन्धकारकी वह हमारा देख नहीं पाती। साक्सम्मति हमें ठीक होती है पर उसका पथ प्रदर्शन करनेवाला विवेक हमारा ठीक नहीं होता (६८ दूसरी पुस्तक छठा अध्याय)।

आलोचना

साक्सम्मतिके सिद्धान्तकी कई तरहसे आलोचना की गयी है —

(१) साक्सम्मतिकी सामाजिक व्यावहारिक जीवनमें भिन्न और एक सीमित तथा भावसूक्ष्म धारणा रहते हैं। इसके आलोचकोंका कहना है कि यदि साक्सम्मति बहुमतमें नहीं बनायी जाती तो वह अर्थहीन है। ऐसी अवस्थामें तो वह साक्सम्पायी है और न सम्मति ही। उपर्युक्त आलोचनासे हम निराशा नहीं होती क्योंकि सूक्ष्म (abstract) धारणाओंके विरुद्ध हमारा ही ऐसी आलोचनाएँ की जाती हैं। इसके समयवाक्य कहना है कि इस सिद्धान्तका महत्व वही तक है जहाँ तक इसमें जनहित होता है। इस सिद्धान्तकी यह बिगड़ता ही इसकी शक्ति है। हम आस के पास पहुँचनेकी आशा तो कर सकते हैं परन्तु उसका पूरी तरह वास्तव और वास्तव रूप में पाना शक्ति है। साक्सम्मति व्यावहारिक (actual) और आदर्श (ideal) दोनों ही है। व्यावहारिक रूपमें उसे किसी भी राज्यमें पूरी तरहसे नहीं पाया जा सकता।

(२) कुछ मतोंका मत है कि इस सिद्धान्तसे राज्यमें आसानीसे निरंकुशता आ जानका भय है। साक्सम्मतिके नाम पर सर्वाधिक निरंकुशता कायम की जा सकती है। स्वतंत्र बनानेके लिए विवश करना (forced to be free) इस कथनकी सबसे अधिक आलोचना हुई है क्योंकि इसमें अत्यधिक निरंकुशताकी सम्भावना है। इस आलोचनामें बाड़ी बात है परन्तु यह अकारण नहीं है। रूसो निरंकुश सम्प्रभुताका समर्थन करते हैं परन्तु साथ ही उस पर कुछ नैतिक बाधन भी लगाने हैं। चूंकि लोक सम्मति में व उचित और 'यावत्पूर्ण' होती है इसलिए वह सभी राज्य-कायम स्थापन करती है जब तक कि वह उचित होता है। रूसो का कथन है—'समाज' अगर

उन नापों या आँकड़ों की अपेक्षा अधिक स्थायी होती है जिनके द्वारा उसकी अभिवृद्धि होती है (२४ १८)।

सांख्यिकी की तीसरी विशेषता है उसका हमारा उचित या सही (right) होना क्योंकि वह हमारा पूरे समाज के धर्मशास्त्र की भावना से प्रेरित होती है। प्रत्येक परिस्थिति में उसका पथ बही होता है जो उस परिस्थिति में उचित और सर्वोत्तम होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि सांख्यिकी में भूल की सम्भावना होती ही नहीं। जहाँ कि कृष्ण न बताता है सम्मति हमारा सही होती है लेकिन उसका निर्देशन करनेवाला विवेक त्रुटिपूर्ण हो सकता है। इसलिए उसका निष्कर्ष भूल हो सकती है परन्तु उसमें नैतिक सम्भावना नहीं हो सकती। अपना सही सम्मति लेकर चलती है भले ही वह ब्रह्म पथ भ्रष्ट कर दी जाय। कृष्ण के ही धर्मशास्त्र में प्रसिद्ध ता हमारा अच्छाई ही होती है परन्तु उस अच्छाई का वह हमारा देख नहीं पाती। सांख्यिकी हमेशा ठीक होती है पर उसका पथ प्रदर्शन करनेवाला विवेक हमारा ठीक नहीं होता (६८ दूसरी पुस्तक छठा अध्याय)।

आलोचना

सांख्यिकी सिद्धान्त की कई तरह से आलोचना की गयी है —

(१) सांख्यिकी में लोग व्यावहारिक जीवन से भिन्न और एक सामित तथा भावपूर्ण धारणा कहते हैं। इसका आलोचका का कहना है कि यदि सांख्यिकी बहुत दूर नहीं बनायी जाती तो वह अर्थहीन है। ऐसी अवस्था में तो वह लोकव्यापी है और न सम्मति ही। उपर्युक्त आलोचना में हम निराशा नहीं होती क्योंकि सूत्र (abstract) धारणाओं का विरोध हमारा ही ऐसी आलोचनाएँ की जाती हैं। इसके समर्थकों का कहना है कि इस सिद्धान्त का महत्त्व बड़ी तक है जहाँ तक इसमें अनिश्चित होता है। इस सिद्धान्त की यह विषयता ही इसकी शक्ति है। हम आदर्श के पास पहुँचने की आशा तो कर सकते हैं परन्तु उसको पूरी तरह पाना और वास्तव रूप दे पाना कठिन है। सांख्यिकी व्यावहारिक (actual) और आदर्श (ideal) दोनों ही है। व्यावहारिक रूप में उसे किसी भी राज्य में पूरी तरह नहीं पाया जा सकता।

(२) कुछ लोगों का मत है कि इस सिद्धान्त से राज्य में आसानी से निरंकुशता आ जाना संभव है। सांख्यिकी के नाम पर सर्वाधिक निरंकुशता कायम की जा सकती है। स्वतंत्र बनाने के लिए विवश करना (forced to be free) इस कथन की सबसे अधिक आलोचना हुई है क्योंकि इसमें अत्यधिक निरंकुशता की सम्भावना है। इस आलोचना का काफी बल है परन्तु यह अफाट्ट नहीं है। कृष्ण निरंकुश साम्यवाद का समर्थन करते हैं परन्तु साथ ही उस पर कुछ नैतिक बाध भी लगाते हैं। पूर्ण लोक सम्मति में ही उचित और व्यापकपूर्ण होती है इसलिए वह सभी राज्य-कायम स्थापित करनी है जब ऐसा करना उचित होता है। कृष्ण का कथन है—समाज का

हारम साह और कसो का सामाजिक सविन्य सिद्धान्त

मध्यम एसा कांड बचन नहा साह सकना जा समाजक तिए निरर्थक हा और न बहु एसा बचनकी इच्छा ना कर सकता है। इसलिये हम कह सकन हैं कि क्या नागरिक स्वतंत्रता (civil liberty) का प्राजिक तिए व्यक्तिका बलिगन नहा करत है। बचनका अभाव ही स्वतंत्रता नहा है। नागरिक हर हस्तक्षेप का यह अर्थ नहा कि व्यक्तिकी स्वतंत्रता छाना जा रही है।

() नाकसम्मनिका मिडान्न सावजनिक हितका धारणा पर आधारित है तकिन सावजनिक हितकी परिभाषा करना बहुत मजिन है। एक निरनुग ठानागाह भी अपन बापों का सावजनिक हितक नाम पर उचिन ठहरा सकना है। यह भा पहलस नहा बता जा सकता कि नाकसम्मनिका द्वारा व्यक्ति काई बाप-बिण सावजनिक हितम हा हाता। हित का अहितका निगय ता उसके परिणाममे ही किया जा सकना है। हम स्वाकार करता पडगा कि लोकसम्मनिक मिडान्नकी कुछ सीमाए हैं परन्तु हम यह न भूलना चाहिए कि ये सीमाएँ ही इस मिडान्नका गतिगानी भा बनानी हैं। ये सिधितताएँ यह प्रमाणित करती हैं कि यह मिडान्न निष्पक्ष बचनकी गडान या कारा आगन नहीं है। यह सही है कि हम मनुष्य व उनका सम्प्राप्त म काम लना है वह जिन हाननम भी हों परन्तु इसके साथ ही हमारा कार्य लक्ष्य भी हुना चाहिए जिसका मानन रखकर हम आगे बढ़ सकें। हम उनके साथ यह कह सकत हैं कि नाकसम्मनिका सिडान्न राजनीतिक प्रयत्नाक तिए सर्वोत्तम सम्भव लक्ष्य है। यह लक्ष्य हमन कागिण तथा नागरिक कुछ मामा तक आत्मबलिगन भी चाहता है (५ १ ६)।

(५) कुछ सागाबा यह कहता है कि यदि हम यह मान लें कि नाकसम्मनिका हमना उचिन व न्यायसंगत हाती है फिर भी यह बळी नहा है कि सरकार हमना ठीक और न्यायसंगत डगम ही बाप करे। इस आपत्तिक उत्तरम हम यह माननका तयार है कि राज्यका गामन-यत्न अपूर्ण हो रहा है। परन्तु हम यह भी ता नहा कहत कि हम नाकसम्मनिका पूरी तरह व्यावहारिक रूपम प्रयत्न कर सकन हैं कि वह नाक जा अपूर्ण गामन-यत्न भिना है उसस हम यही आगा कर सकन हैं कि वह नाक सम्मतिकी बायाबिन करनेका यथासम्भव प्रयत्न करेगा। एक गिठित या प्रबुद्ध जनमन (educated or enlightened public opinion) से ही हम नाकसम्मनिका की निश्चयन स्थिति की सम्भावना माननी चाहिए।

लोकसम्मतिके सिद्धान्तमे सत्यान (Truth in the Doctrine of the General Will)

(१) यह सिडान्न हमारे राजनीतिक प्रयत्ना का पथ प्रदर्शन करता है। यह हमारा लक्ष्य निर्धारित करता है जिसकी प्राजिक तिए हम अग्यायी बलिगन और अमकननाप्रति बावजू प्रयत्न कर सकन हैं।

(२) यह सिडान्न हम बचन पर डार गता है कि समाज प्रमम्बड व्यक्तिम का

समूह नहीं है बल्कि उसमें आन्तरिक एकता भी होती है। यह सिद्धान्त हम बताता है कि राज्यकी भी अपनी एकता और इच्छा होती है जो उसके सन्स्थाकी व्यक्तिगत एकता और इच्छासे मिल जाती है। निस्सन्देह अपने सदस्यसे अलग राज्यका कोई अस्तित्व नहीं होता परन्तु राज्यका जीवन किसी एक नागरिक अथवा किसी एक पीढ़ीके जीवनसे अधिक स्थायी विस्तृत और पूण होता है (५४ १३९)।

(३) यह सिद्धान्त इस सत्यकी पुष्टि करता है कि 'राज्य का आधार शक्ति नहीं बरन इच्छा है (will not force is the basis of the state)। लोकसम्मति की धारणाका यह अर्थ नहीं है कि अल्पमतवाले समुदाय पर दबाव डाला जाय। यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि बहुमतकी नीतिबा मुयार अल्पमतकी शक्ति और मूलभूत द्वारा भी किया जा सकता है।

(४) यह सिद्धान्त बताता है कि राज्य एक स्वाभाविक संस्था है क्योंकि इसका आधार मनुष्यकी इच्छा व स्वाभाविक आवश्यकता है। 'हमारे व्यक्तित्वका स्वाभाविक विस्तार होनेके कारण ही राज्य का अस्तित्व है और इसी कारण राज्य यह दावा करता है कि हम उसकी आज्ञाएँ माना करें। (कोल)

(५) यह सिद्धान्त यह माधित करता है कि लोकतन्त्रका सच्चा आधार न तो शक्ति है और न स्वीकृति बरन हमारी सक्रिय इच्छा ही इसका आधार है।

लोकसम्मतिको हम मानना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह हमारे ऊपर घापी जाती है बल्कि इसलिए कि वह हमारा ही एक अविच्छेद्य अंग है। राज्यकी लोकसम्मतिकी आना माननम हम अपनी ही आना मानने हैं और हमारे अन्दर जा कुछ भी सङ्श्लेष है उसका अनुगमन करते हैं। लोकसम्मति व्यक्तिगतो उसका महत्त्व बनाती है। वह व्यक्ति और व्यक्तिव बीच एकताकी समर्पक है।

SELECT READINGS

BOSANQUET B — *The Philosophical Theory of the State*—Ch IV pp 264 66

GARNER J N — *Political Science and Government*—pp 222 28

GETTLE R G — *Introduction to Political Science*—pp 81 87

GILCHRIST R N — *Principles of Political Science*—pp 60 65

HALLOWELL J H — *Main Currents in Modern Political Thought*—pp 77 ff 107 ff 173 ff 180-89 248 ff and 280

HOBBS T — *Leviathan*—Chs 13 14 16 17 18 and 21

JOAD C. E. M — *Modern Political Theory*—Ch I

LEACOCK S — *Elements of Political Science*—pp 24 31

LOCKE J — *Second Treatise on Civil Government*

LORD A R. — *Principles of Politics*—Chs II V

होमर सौर और रुमो का सामाजिक सविदा सिद्धान्त

११

MACIVER R M—*The Web of Government*—pp 17 20 and 449 50
ROUSSEAU J J—*Social Contract*—Bks I and II Bk III Chs. 15 17
Essays in Political Theory Presented to George H Sabine (1947)—
pp 113 129

राज्य का उद्देश्य और औचित्य (The End and Justification of the State)

राज्यका उत्पत्ति और उमर विकास पर विचार करनेकी अपेक्षा उसका औचित्य और उद्देश्यका विवेचन करना अधिक महत्वपूर्ण है। सबसे अधिक आवश्यक प्रश्न तो यह है कि राज्यकी जरूरत ही क्या है। क्या राज्यका कोई मुक्त-मगल आधार है? क्या हम अपना काम राज्यके बिना नहीं चला सकते? अरस्तू ने बहुत पहले ही इन प्रश्नों का महत्व समझ लिया था और इसीलिए उन्होंने कहा था कि राज्य का निर्माण तो इसलिए किया गया कि हम जिंदा रह सकें और फिर इसे कायम इसलिए रखा गया कि हम मुरी रह सकें। इस प्रकार अरस्तू ने राज्यका मनुष्यका अच्छे जीवनके लिए अनिवार्य बता कर उसका औचित्य सिद्ध किया था। इस तर्क कावजूद हम यह मानना ही पड़ता है कि अच्छे से अच्छे मनुषी मूल्यों ने भी राज्य द्वारा प्रयाग की जानेवाली शक्तिका औचित्य ठीक प्रकार सिद्ध नहीं किया। हमें उनकी यह बात तो माननी पड़ती है कि मनुष्यका पूर्ण और स्वतंत्र विकास अकेलेमें सबसे असंगत रहकर नहीं हो सकता और मनुष्यका अपने उद्देश्य की प्राप्तिके लिए समाजका आवश्यकता है। लेकिन राज्य द्वारा प्रयाग की जान वाली शक्ति पर उन्होंने बहुत कम विचार किया है चायन इसलिए कि शक्तिका प्रश्न एक आधुनिक समस्या है।

राज्य मानव व्यवहारको व्यवस्थित करना है—यह तो ही इस कायम उमर का प्रयाग करना पड़। राज्यकी इच्छा बहुत-सी बातोंमें अन्य सभी इच्छाओंमें गूँथ है। व्यक्ति का जीवन तथा उसकी स्वतंत्रता और सम्पत्ति में मन का अधिकार राज्यका है। राज्य करके स्वयं व्यक्तिकी सम्पत्ति जाता है। युद्ध-क्षेत्र या अपराधके दण्ड स्वयं उमरका प्राण जाता है। क्या यह सब उचित है? सभी युगोंमें अनेक बार एक बार राज्यके अस्तित्वका उचित सिद्ध करने और दूसरी ओर इसके अस्तित्वको अनुचित सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है। हम उनका निष्कर्ष निम्नलिखित सीमाओंमें सन्निहित वर्णन करेंगे।

अराजकतावादी दृष्टिकोण (The Anarchist View) अराजकतावादी राज्यका अस्तित्वका औचित्य बिल्कुल ही नहीं मानते। उनका विश्वास है कि राज्यका कोई व्यक्ति-संगत उद्देश्य नहीं है और जिनकी ही जन्मी हम राज्यका अस्तित्व मान

सम्भव हो जाय। इसलिये हमारा कहना है कि राज्य नैतिक मायताओंका विनाश नहीं करता—यह केवल उनका महत्व कुछ कम कर देता है। हममें से सबसे अच्छे व्यक्तिके लिए भी पुलिसका भय कभी-कभी अच्छा जीवन बितानेमें सहायक होता है। अच्छे कार्योंकी आवश्यकता नैतिकताके विकासमें बाधा नहीं डालती। हम राज्यकी आज्ञा पालन करके अच्छे काम कर सकते हैं।

(२) अराजकतावादियोंका यह विचार गलत है कि स्वतंत्रता ही सबकुछ राजनीतिमें बरदान है। हमें यह न भूलना चाहिए कि स्वतंत्रता अपने आपमें कोई उद्देश्य नहीं है—यह तो उद्देश्योंको प्राप्त करनेका केवल एक साधन है। स्वतंत्रता और सत्ता एक दूसरेके विरुद्ध नहीं हैं जसा कि अराजकतावादी उन्हें समझते हैं। वे एक दूसरेके सहायक व पूरक हैं। कोई भी मानव-संस्था व्यक्तिको पूरी तरह स्वतंत्र नहीं छोड़ती। प्रत्येक समूह या संगठनसे व्यक्तिकी स्वतंत्रता पर कुछ-न-कुछ बाधन लग ही जाता है।

(३) अराजकतावादी मानव स्वभावका एक भ्रामक चित्र खींचते हैं। उनकी धारणा है कि संगठित राजनीतिक समाज ने व्यक्तिके अधिकारको नीचे गिरा दिया है और यदि एक बार उसे हटा दिया जाय तो मनुष्य फिर पवित्र-आत्मा हो जाय। यह धारणा बहुत-कुछ असो की उस धारणासे मिलती-जुलती है जो उन्होंने अपने निबन्ध 'असमानता' (Inequality) में व्यक्त की है और जिसके अनुसार मनुष्य प्राकृतिक अवस्थामें आनन्दमय ग्रामीण जीवन बिता रहा था। यह धारणा इस विश्वासको लेकर चलती है कि सम्यक्ताका विकास हमारी सभी मीनूदा बुराइयोंकी जड़ है। परन्तु बादमें इसी सामाजिक सविदा (Social Contract) नामक पुस्तकमें अपनी इस धारणामें सुधार कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नागरिक राज्य में ही अधिक लाभ हैं। एक भू-बर्बर (noble savage) के गुणोंकी वास्तविक प्रशंसा करना तो बड़ा आसान है पर मानव स्वभाव और आन्तरिक मानवके इतिहासका हमें जो ज्ञान है उससे यह प्रशंसा झूठी ही साबित होती है। यह कहना बिल्कुल सही है कि मनुष्य अपनी उन्नति की वर्तमान स्थिति तक संगठित राजनीतिक समाजमें ही और उसीके द्वारा पहुँच सका है।

अराजकतावादीयोंकी धारणा है कि सिवा समझाने-बुझाने और नैतिक उपदेशोंमें हम मनुष्यके स्वभावका इनका अधिक सुधार करने हैं कि भविष्यमें एक दिन ऐसा आयेगा जब हम अपने आपका राज्यसे विस्तृत भक्त कर सकेंगे। हम यह अस्वीकार नहीं करना चाहते कि ऊपर बताये गये तरीकोंमें मानव-स्वभाव का सुधार किया जा सकता है। मनुष्यके स्वभावका वहाँ तक सुधार किया जा सकता है इसका अभी तक पूरा-पूरा पता नहीं लग सका है पर यह निश्चित है कि बनमा गमयम या हमारी कल्पनामें आनेवाले भविष्यमें राज्यके न रहनेसे व्यापक रूपमें अव्यवस्था और गड़बड़ी ही फैलती। मनुष्यके भीतरकी पशु प्रवृत्तियोंका विनाश करना नहीं है और राज्यकी सहायता ही इन प्रवृत्तियोंको नियंत्रणमें रखनी है।

राज्यका उद्देश्य और औचित्य

(५) अराजकतावादी यह मान लत है कि एक आत्म परिवारम प्रमका ही एक आत्म परिवारमें भी पायी जाती है यद्यपि व बाह्यम निष्ठाया नहा दत। जमा कि हर्नगो (Hearnshaw) ने कहा है मनुष्यके स्वभावका अपराधी प्रवृत्तियाका बावमें रहनेके लिए राज्यकी गतिता मुरमिन रहना जरूरी है। इसलिए हम कममे कम बनमान ममयम सरकारकी अधीनता और विधिकी बडिमनाको छा मग मकते।

(५) अराजकतावादी राज्यकी सत्ताका समान बरके ठमक पान पर व्यक्ति व विवेका मता ज्ञायम करना चाहत हैं। तकिन जमा कि शीक ही कम गया है व्यक्तिता विवक बत ही अस्तिर, अनिश्चन और अविबडनीय होता है।

२ धार्मिक दृष्टिकोण (The Religious View) प्रारम्भिक कालम ही राज्यके अस्तित्वा समयम इस काल्पनिक आधार पर किया गया है कि राज्यकी ईवरन बनामा है और राज्यकी आगाआका पालन दबी उद्देश्ये अनुकूल है। पूर्वके अधिकांश राजनर धर्मतत्र ही थ। राज्यकी सन्स्थनाका मननव भी धम-सपकी मन्स्थना था। चूकि राज्यका प्रयान धम-सपका भी प्रपान होता था इसलिए राज्य और धार्मिक समुदाय एक रूप थ। हिब्रू लोग (Hebrews) म धमनरकी धारणा मबने अधिब बिभित्त हुई। हिब्रू लोग अपने आरको परमात्माका सबम प्यारा मानत थ। यूसी राज्य (Jewish state) भी दबा इच्छाका प्रत्यय परिणाम माना जाता था और धार्मिक आधार पर ही उसका औचित्य निड किया जाता था।

यूनानी लोग भी राज्यका औचित्य धार्मिक आधार पर ही निड करते थे यद्यपि उनम धमनरकी धारणा अधिब विमिन न हुई थी। यूनानी सामान्य नवताआकी पूजा करते थ और यह पूजा हा राज्यकी ताब थी। राज्यकी स्थापना था धय विनीन किमी देवताका किया जाता था और हा नगरका अपना देवता हाता था। प्लटा और अरस्तू ने जो यूनानी राजनीतिक विचारकाम सवथड हैं एर हुगय ही दृष्टिकोण रखा। व राज्यका स्थानाविक तथा आवन्दक मानत थ। पर उहोंने राजनीतिक सत्ताके साथ व्यक्तिगत स्वतन्त्रताक मानवत्वकी समन्था हुन नहा की। वे इस विचारम ही सन्नुष्ट हो गय कि राज्यकी उन्धमि स्थानाविक कारणमि नई है और राज्यमे अनय मनुषका जीवन अपुन और अपराधन है।

यूनानी नगर राज्यका तरह समन राज्यका आधार ना धार्मिक हा था। समन सामाजिक भी अपन विाप दवना हाते थ और न सामान्य नवताआकी पूजा ही उन्हें एव मूत्रम बात था। आग धनकर जब सम एक सामाज्य ही गया ना मग्याम दबी गुण माने जान मग।

श्रोमन्थ धम मुपर का आरम्भ करनेवात मग्नि मूदर न निमा है एक ईगई व लिए यह किमी तरह भी निबन ना है कि व अना सरकारका विराय बने—चाह बह सरकार उचित काम कर रहा हा या अनचित। नून सवका निबिनी टोगमि बननेमे मगई प्रब भी मनी मानत है।

आलोचना

आधुनिक वैज्ञानिक युगमें यह तर्क कोई बल नहीं रखता कि हमें राज्यकी आत्मा केवल इसलिए माननी चाहिए कि उसकी उत्पत्ति ईश्वर द्वारा मानी जाती है। इस धारणा कोई सबल प्रमाण नहीं है कि किसी भी राज्यको सीधे ईश्वर ने बनाया है। धार्मिक प्रवृत्तिके सख्त भी अधिक ने अधिक इतना ही मानने को तैयार हैं कि राज्य के अधीन जीवन सभी उद्देश्यके अनुकूल है। यदि हम तर्कके लिए मान भी लें कि राज्यको ईश्वरने बनाया है तो भी यह सिद्धान्त राज्यसत्ताके सही और गलत स्वरूप के नियमन कोई मदद नहीं देता।

३ शक्ति सिद्धान्त (The Physical Force) राजनीतिक चिन्तनके प्रारम्भिक कालमें ही राज्यके अस्तित्वका औचित्य इस आधार पर सिद्ध करनेकी कोशिश की गयी है कि राज्य के पास प्रबल शक्ति होती है। सॉफिस्टा (Sophists) का कहना था कि राज्य या तो दुबल लोगों पर अत्याचार करने के लिए शक्ति-सम्पन्न लोगोंका शासन है या शक्तिशाली अल्पसंख्यकाके विरुद्ध बहुसंख्यक दुर्बलों का संगठन है। प्रारम्भिक ईसाई धर्म-गुरुआ और मध्यकालीन धर्म शास्त्रियों ने राज्यके ऊपर घमकी दृष्टता मिट्ट कर देनेके लिए राज्यकी भौतिक शक्ति पर ही अधिक बल दिया। मरियावेनी राज्यको केवल एक शक्ति-व्यवस्था (power-system) मानते हैं। फिर भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तकके अन्तमें वह स्वीकार करते हैं कि राज्यकी शक्ति राज्यके स्वार्थके लिए न हाकर जनताकी प्रतिष्ठा सम्मान और कल्याण के लिए है।

आधुनिक युग में स्पिनाडा (Spinoza) मार्क्स (Marx) एंगेल्स (Engels) नीत्श (Nietzsche) और स्पेंसर (Spencer) ने इस विचारका प्रचार किया है कि राज्य शक्तिका मूर्तिमान स्वरूप है। स्पिनाडा का कहना है कि राज्य प्रबलतर भौतिक शक्तिका द्योतक है और उसका अधिकार केवल उसकी शक्ति द्वारा ही सीमित है। मार्क्स और एंगेल्स राज्यको शासक-वर्ग का केवल एक यंत्र मानते हैं। नीत्श ने 'पारोवरिक' शक्तिक आधार पर ही अपने महामानव सिद्धान्त (Theory of the Superman) का प्रतिपादन किया है। स्पेंसर का मत था कि राज्य सर्वत्र शक्तिका ही द्योतक है और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके हितमें उसका नियंत्रण जाना चाहिए।

आलोचना

यह धारणा ग्राह्य है कि राज्यकी आत्मा हमें इसलिए माननी चाहिए कि वह सर्वोच्च शक्तिशाली लोगोंका शासन है। इस सिद्धान्तकी ग्राह्य-हीनता लोगों ने इस प्रकार साफ-साफ व्यक्त की है 'जगमके एक बालेन मूठोरा का एक दल मूठ पर हमला करता है। निष्पक्ष ही मूठ मजदूर हाथर अपने स्वयं की धेनी उन्हें दे देनी जाती है। पर यदि मैं उन मजदूरों ने अपनी स्वयं की धेनी बचा मजदूरों भी क्या माग

यह घंटी ज़रूरों को दे देने की चाहिए ? क्योंकि सुट्टा के हाथ में विस्तार के रूप में शक्ति है (६३ पु० १ अ० ३)। शक्ति का अर्थ सिर झुका देना अधिक-से-अधिक चतुराई का काम बढ़ा जा सकता है पर वह नैतिक बर्तन्य नहीं है। जसा कि मास्की ने कहा है शक्ति अपने आपमें नैतिक सत्यमें हीन है (४८ ६४)। राजनीति का पक्ष धीनता सभी औचित्यपूर्ण है जब इसे प्रजा की सहमति प्राप्त रहती है। ऐसी सम्मति के अभावमें राज्य दामों का समूह है नागरिकों का समाज नहीं। शक्ति का औचित्य वहीं तक है जहां तक यह मानव अधिकारों को कायम रखती है और उन्हें बढ़ाती है।^१ नी० एच० पीन के प्रभाववासी राज्यों में राज्य का निर्माण केवल सर्वोपरि शक्ति मात्र में नहीं होता बल्कि उसका निर्माण किसी निश्चित उद्देश्यके लिए एक निश्चित तरीके से उपयोग की गयी शक्तिसे होता है। यह उपयोग मिलित या परम्परागत विधि के अनुसार अधिकारों की रक्षा के लिए किया जाता है।

यह सिद्धान्त वास्तव में एक भ्रान्तिकारी सिद्धान्त है क्योंकि इस सिद्धान्त को पूरी तरह अपना लेनेवाले तो यह अर्थ होगा कि किसी भी बग के लिए शक्तिवासी होकर सरकार पर अधिकार कर लेना 'याय-मय' है। राज्य की शक्ति नहीं तक 'यायचित' है जब तक कि दूसरी शक्तियों को पराजित कर सकें। परन्तु राज्य की शक्ति का औचित्य उस समय समाप्त हो जाता है जबकि राज्यसे भिन्न कोई भी अर्थ शक्ति का बड़कर सरकार पर अधिकार जमा लेती है और तब वह नयी शक्ति स्वयं ग्याम-संगत और अधिकारपूर्ण हो जाती है। क्रमों की तरह हम भी यह प्रश्न कर सकते हैं कि वह कौन-सा अधिकार है जो शक्ति की असम्यक्ता के साथ ही मल हो जाता है ? क्रमों के ही शब्दों में यदि शक्ति ही अधिकार का आधार है तब तो शक्ति के बदलने में अधिकार भी बदल जाता है। प्रत्येक प्रबल शक्ति पहले की दुबल शक्ति के अधिकार की उत्तराधिकारिणी हो जाती है। शक्तिके बल पर अबज्ञा ग्यामाचिन हो जाती है और शक्तिवासी ही हमेशा सही रहता है इसलिए शक्तिवान बनना ही एक मात्र लक्ष्य हो जाता है। यदि शक्तिके कारण ही हम आपा मापते हैं तो अपने विवेक से आशापासन करने की कोई आवश्यकता नहीं होती और इसके साथ ही यदि हम आशापासन करने के लिए बिना न बिना जाय तो आशापासन हमारा बर्तन्य नहीं रह जाता। यह जाहिर है कि 'शक्ति में अधिकार' का उक्त कोई महत्व नहीं—इस प्रसंग में यह शब्द बकार है।

यह विचार अधिक से अधिक सरकार में अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करता है पर

^१ शक्ति और ग्यायके पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना करने हुए पैस्कल (Pascal) ने लिखा है 'शक्ति के बिना 'याय' अर्थ है 'याय'विहीन शक्ति अर्थवाचक है। शक्ति विहीन ग्याय एक अवास्तविक सम्पत्ति मात्र है क्योंकि उसे आदमियों का बन्धा अभाव नहीं रहता। इसलिए हम शक्ति और ग्याय का सम्बन्ध बनना होगा तथा कुछ लक्ष्य व्यवस्था करनी होगी कि जिसमें 'याय' और शक्ति एक दूसरे के योग्य हों।

राज्यके अस्तित्वका औचित्य नही। यह किसी नासन विद्रोहके शासनको सही बताना है तबिन किसी भी सन्दर्भ राजनीतिक समाजकी सत्ताको नही।

४ सविदा सिद्धान्त का दृष्टिकोण (The Contract View) पश्चिमी योरोपम सभ्यता और अन्तर्राष्ट्रीय सभ्यताओं में सविदा सिद्धान्तका उपयोग राज्यके अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेके लिए बहुत अधिक किया गया था। इसने अनुसार राज्यकी सत्ता इसलिए ठीक मानी जाती है कि इस सत्ताको हमने अपनी स्वेच्छासे स्थापित किया है। ऐसा लगता है कि राज्यके अस्तित्वका औचित्य साधित करनेके लिए हमसे अच्छा कोई और तरीका नहा था। यह कहा जा सकता है कि चूंकि राज्यकी उत्पत्ति हम लोगोंको सम्मतिसे हुई है इसलिए हमकी आज्ञा मानना दायप्रतिपात मक्ति मगन है।

आलोचना

घोड़ा-सा विचार करते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सविदाको राजनीतिक सत्ता का आधार बनाना यथित-संगत नहीं।

(१) इतिहासके अध्ययनसे हमे किसी ऐसे राज्यका पता नहीं चलता जिसकी स्थापना मनुष्याने आपसम वरार करके की हो। राज्यका अधिक विकास हुआ है ऐसा महा हुआ है कि कुछ बिगड़लोगोंने किसी एक समय और एक स्थान पर मिलकर राज्य का निर्माण कर दिया हो।

(२) यदि राज्यकी आज्ञा मानना इसलिये उचित माना जाय कि वह हमारी पूरा सहमति पर आधारित है तो किसी भी विधिको प्राणु करनेमें पहले उसके लिए सबकी सहमति जरूरी होगी। बहुमत ही काफी नहीं है। अल्पमत समुदायोंका बहुमत द्वारा दबाया जाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। इस विचारका हृदय स्मरण अपनी राजनीतिक व्याख्याम अखंडी तरहसे समझाया है। एक सच्चे व्यक्तिवादकी भाति स्मरण का कहना है कि राज्यको केवल वही काय करने चाहिए जिन्हें जनता ने राज्यको इसलिये मौका हो कि वह स्वयं उन्हें नहीं कर सकती। उनके अनुसार वह काय है—(क) बाहरी सन्तुष्टिमें रखा (ख) आन्तरिक सन्तुष्टिमें रखा (ग) भूमिका राष्ट्रीयकरण (स्मरण ने अपने काममें निरन्तर प्रयोग अन्तिम कार्यको हटाकर उसकी जगह नगरोंका कायाविवरण करना रखा है)। राज्यका कार्यका निमित्त करने ही स्मरण ने कुछ एक बंधन भी लगाए हैं जो युक्तिपूर्ण नहीं मान पड़ते हैं। वह यह महसूस करते हैं कि इन तीन महत्वपूर्ण कार्योंके सम्बन्धमें भी हम किसी भी समाज में सशक्त मन स्वीकृति नहीं पा सकते। उनका कहना है कि युद्धों नित्य दृष्टिमें बुरा समझनाका व्यक्ति तथा केवल समाज (Quakers) अपनी रण्य हनु किए गये युद्ध का भी विरोध करेंगे। अरावीक बग आन्तरिक गुरुराके लिए किए गये कार्योंका भी विरोध करेगा और प्रमाणिक बग भूमिके राष्ट्रीयकरण को पण नहीं करेगा। इस

कारण इन मामलाम सशसम्मतिका मिद्वान्त मागू नहा किया जा सकता। अब प्रश्न यह उठता है कि जब इन मामल म सशसम्मतिका आवश्यक नहीं है तो क्या विषय म ही उस पर क्या कहा जाय। स्पेशल साइजनिंग गिना और फेक्टरी विधि आदि विरोधी हैं। आइक युगम ऐसे बहुतसे लोग मिलेंगे जो अनिवाय गनिक भर्तीको फक्टरी विधिसे बुरा मानते हैं। उनका कहना है कि अगर दबाव डालना हा हो तो अनिवाय सैनिक भर्तिका बजाय फक्टरी विधि द्वारा गनिका उपयोग करना अधिक न्याय-संगत और ठीक है। फक्त हमें इस नीति पर पहुँचना भी पता है कि राजनीतिक सत्ता और व्यक्तिगत तरदायिकारी ममत्ता सशसम्मतिका मिद्वान्तगे हल नहीं हो सकती।

(३) यदि किसी विषयमें मतसम्मति सम्भव भी हो तो भी आयुनिष्ठ राज्याय यह इस कारण नहीं हो सकता क्योंकि किसी न किसी प्रकारकी प्रतिनिधि सरकारके द्वारा ही राज्यकी इच्छा या सम्मतिकी अभिव्यक्ति हो सकती है। वर्तमान परिस्थितीमें प्रत्यक्ष लोकतन्त्र असम्भव है। यह कहना कि ऐसे मामलोंमें मौन सहमति ही पथाप्त है, जैसाकि सविदा-सिद्धान्तके समर्थक कहते हैं उचित नहीं है। क्योंकि सहमतिका अर्थ है मनुष्यकी इच्छाकी अभिव्यक्ति और यह व्यक्तिकी मौन सहमतिमें नहीं बल्कि उसकी सक्रिय भावसे ही हो सकती है (४८ ३१)।

(४) अगर महमति स्वीकार दी जाती है तो वह स्वेच्छामे वापस भागी जा सकती है और फिर यह हो सकता है कि महमतिको वापस लेनवाने आपसम मिलकर एक नये राज्यकी स्थापना कर दें। हॉम्म ने इन कठिनाईका समाधान था और उसका दूर करने के लिए अपने कहा था कि अनुष्ठीका एकबार आपसम बाई करार करने के बाद उसे बराबर मानने रहना चाहिए। इस प्रकारके तर्क बाई बन रहा है। यह तो हॉम्म की बोरी बनता ही है जिसका समर्थन हमारे अनुभव या बुद्धिमें नही होता। मरिना निदान्तरे अन्य समझावा कहता है कि जो साथ महमति वापस लें उन्हें राज्यमें भीतर बिन्धी माना जाय। यह एक यूतडापन बात है। हम एंसेर के इस दावेकी स्वीकार नहीं कर सकते कि व्यक्तिको यह अधिकार है कि वह अपने-विषय परे (outlaw) बनान और फिर भी राज्यमें ही बना रहें। उस तरहके अधिकार में तो सामान्य अभिमत ही जायगा और परिणाम-स्वरूप बराबरका फल जायगी।

(५) डविड ह्यूम (David Hume) ने भविष्य विद्वान् की गरम अपेक्षा बँटार आवाजना की है। उनके अनुसार यह विद्वान् ज्ञानिमान है क्योंकि इसमें किसी ऐसी शक्ति का स्थान ही नहीं है जो व्यक्ति को भविष्य में याद कर सके। टी० एच० वीन का भी यही मत है। उनका कहना है कि प्राकृतिक व्यवस्था में वह मनुष्य जिस भविष्य को चरत हुए मान जाने है वह वास्तविक भविष्य ही नहीं है। क्योंकि उनमें भविष्य को मायू करने की ही कोई शक्ति नहीं है। सम्प्रभुता इस भविष्य का स्थानित है। वह पन्ने में मौजूद नहीं है जैसा कि जाना था।

X उपयोगितावादी दृष्टिकोण (The Utilitarian View) चर्चण

विचारकोन राज्यके अस्तित्वका औचित्य उपयोगिताके आधार पर सिद्ध करनेकी काशिश की है। उनका कहना है कि राज्यका मौलिक औचित्य इस बातमें है कि वह व्यवस्था स्थापित करता तथा विधि बनाता है बाहरी और आन्तरिक शत्रुओंसे व्यक्तिकी रक्षा करता है। संधिदाओंका पालन करवाना है व्यक्तियों और विभिन्न सभोंका सम्बन्ध व्यवस्थित करता है साहित्य कला और विज्ञानका विकास करता है और संक्षेपमें वह उस वातावरणकी रचना करता है जिसमें समाजका जीवन बमसे कम सघर्षमय और अधिक-से-अधिक कल्याण प्रवृत्त बीते। नास्की ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टु पॉलिटिक्स' (Introduction to Politics पृष्ठ ३२) में कहा है कि राज्यकी 'व्यक्तिगत औचित्य उन उद्देश्यों द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है जिन्हें राज्य पूरा करना चाहता है। राज्यकी विधियाँ ऐसी हानी चाहिए कि वह उन उद्देश्योंको पूरा कर सके जिन्हें पूरा करना उसका लक्ष्य है। राज्यका विभिन्न हितोंके समुदायोंको व्यवस्थित करना पड़ता है। इनमेंसे कुछ हित व्यक्तिगत और कुछ सामूहिक होते हैं इनमें आपसमें प्रतिस्पर्धा भी होती है और सहयोग भी। राज्यकी यह भाँति कि प्रजा उसकी आज्ञाका पालन करे उसकी उस क्षमता पर आधारित होनी चाहिए जिसके द्वारा राज्य नानिबारी सामाजिक भाँतिोंको पूरा करनेमें समर्थ होता है। राज्यको विभिन्न हितोंका ऐसा संतुलन करना चाहिए कि उसका परिणाम अथर्व किसी प्रकारमें प्राप्ति परिणामोंमें अधिक मन्तोपजनक हो।

आलोचना

राज्यके अस्तित्वके समर्थनमें अथर्व हमने जितने दृष्टिकोणों पर विचार किया है उन सबमें उक्त दृष्टिकोण निस्सन्देह सबसे अधिक मन्तोपजनक है। फिर भी इसकी आलोचना इस प्रकार की जाती है —

(१) इस बातकी बहुत बड़ा जानका है कि उपयोगितावादका मिद्वान्त राज्यके प्रति एक अत्यन्त मनुष्यविषय दृष्टिकोण अपनाव और राज्यको मानवजनिक उपयोगिता केन्द्रकी मात्र मान बढ। पिछले एक अध्यायमें हमने यह स्पष्ट कर दिया था कि राज्य भौतिक कार्योंकी पूर्तिके लिए ही स्थापित नहीं हुआ है। यह ठीक है कि राज्य का अपने सदस्योंका भौतिक कल्याण भी करना चाहिए परन्तु इसके साथ ही उसका एक नैतिक और आध्यात्मिक कर्तव्य भी है। राज्य समस्त मनुष्योंकी एक भागीदारी (a partnership in all virtue) है। राज्यके अनेक उद्देश्योंमें से एक उद्देश्य और सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि वह मानव 'आत्माकी भव्यता' (excellence of souls) का विकास करे (४)। राज्य समाजकी प्रमुख नैतिक समस्याओंमें से एक है। राज्यका औचित्य केवल उपयोगिताके आधार पर सिद्ध करना गुरुत्वहीन है। अतः यह कहना कि परिवारका अस्तित्व केवल नैतिक गुणोंके लिए बहने वाला चानके लिए और मानव जाति का बहाने के लिए है। राज्य और परिवार

गनाका एक नतिव उद्देश्य है। दोनों ही व्यक्तिव लिए परस्पर सम्बन्धित जायन सम्भव बनाना है। जलन व्यक्तिवके लिए आत्मानुभूति (self realization) साधन हा जानी है।

(७) उपयोगितावादी राज्यका व्यक्तिव सम्बन्धित साधन-मात्र समझन की श्रुत कर सकत है जबकि राज्य माध्य और साधन दोनों ही हैं। राज्य बनमान पीढ़ी के साथ ही साथ भावी पीढ़ीके सम्बन्धित भी चिन्ता करना है। इस तरह यह स्वयं साध्य माना जा सकता है।

इन सब युक्तियोंके ज्ञान हुए भी हम डा० अप्पादोराल (Dr Appadoral) के इस कथनसे सहमत हैं। सचते है कि यह सिद्धांत हम ऐसा नारा देता है जो दीप्त ही माकप्रिय हा जाना है और जो राज्यके द्वारा नियंत्रित कार्योका परामर्श एक कसौटी का नाम दे सकता है।

६ संगठन की आवश्यकता (Necessity of Organization) संगठन की आवश्यकता पर जार इन बातें राज्यके उपयोगितावादी औद्योगिक समर्थन विशेष प्रकारसे करत हैं। आन्तरिक मानव संगठनका महत्त्व नया समझना था। उन दिनों जो भी संगठन था वह साधारण दलका और बहुत कुछ प्रेरणा पर ही आधारित था। लेकिन समय युगम संगठनकी स्थापना प्रत्येक सम्भव उद्देश्यकी पूर्ति के लिए हुई है। हमने अनुभवसे यह सीखा है कि कुछ कार्योका एक व्यक्तिकी शक्ति समूह बढ़ी तरह कर सकना है। व्यवसाय के लिए कमा विज्ञान और धन से प्राप्त हान बाव मुक्तकी वृद्धिके लिए एक युद्ध और शान्तिके लिए हम संगठित हात हैं। इस शान्तिका शक्तिपूर्वक स्थापित करनेके लिए भी संगठित हाते हैं। आधुनिक समाजम संगठनकी समस्या अत्यधिक है परन्तु राज्य इन सबसे भयं महत्वपूर्ण और व्यापक है। राज्य एक ऐसा संगठन है जिस पर अन्य सभी संगठन निर्भर करत हैं और इससे शक्ति प्राप्त करत हैं। इसे संगठनको अपने उद्देश्योकी प्राप्ति के लिए कुछ नियम और विधियों की आवश्यकता हाती है। साथ ही अपनी इच्छाका कार्य रूप देने के लिए उसे पर्याप्त शक्ति की आवश्यकता हाती है।

आलोचना

यद्यपि इन सिद्धान्तके विरुद्ध हमें कई आपत्ति नहीं है कि भी उपयोगितावादी सिद्धान्तकी आलोचनाएँ हम पर भी लागू होनी हैं।

अस्तु कि समझ ही यह साबित करने की कोशिश की गयी है कि मनुष्यम स्वाभाविक राजनीतिक प्रवृत्ति हाती है और वह सामान्य के अधीन स्वनामक रहता है। मनुष्य का राजनीतिक प्राणी कहा गया है।

आलोचना

७ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (The Psychological View) (१) यदि

यह बात मान ली जायता तो इस मध्यका समाधान कैसे होगा कि समाजम ऐसे व्यक्ति भी है जो यह नहीं मानते कि उनके अन्दर कोई प्रवृत्तिमूलक सामाजिक या राजनीतिक भावना मौजूद है। एस्किमा लोग (Eskimos) के इतिहासका आधार मानने पर तो यह स्वाभाविक करना पड़गा कि राज्य एक सावर्भौम आवश्यकता नहीं है—बल्कि एस्किमा लोगोंका समाज तो है पर उनका कोई राज्य नहीं है।

(२) बल्कि यह कहना ही काफी नहीं है कि राज्यकी उत्पत्ति मानव प्रवृत्तिसँ है। यह जरूरी नहीं है कि प्रणाम से उत्पन्न हर वस्तु कल्याणकारी और बनाय रखने योग्य ही हो। जमा कि विलोबी (Willoughby) ने कहा है राजनीति शास्त्र में हमारी मुख्य समस्या यह है कि राजनीतिक सत्ताका उपयोग मानवीय तौर पर हा और राजनीतिक सत्ता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता में सामंजस्य स्थापित हो। इस समस्याको मुलमानग मानवतानिक दृष्टिकोण हमारी कोई सहायता नहीं करता। यह दृष्टिकोण यह नहीं बनाता कि राजनीतिक सत्ताका प्रयोग कैसे तथा किसके द्वारा हा और व्यक्तिगत स्वतंत्रताका साथ उसका समन्वय कैसे हा।

आदर्शवादी दृष्टिकोण (The Idealistic View) आदर्शवादी सिद्धान्त सबसे अधिक सन्तोषप्रद जान पड़ता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार राज्यकी आज्ञा मानना इसलिए उचित है कि राज्य हमारे सर्वोच्च आन्तरिक गुणाका प्रतीक है। राज्य न तो व्यक्तिका शत्रु है और न वह एक तत्त्व पर्यवेक्षक ही है। वह तो व्यक्ति का सच्चा मित्र है। राज्यकी इच्छा मानकर हम अपनी उन इच्छाओंका पालन करते हैं जो स्वायत्त रहित होकर गड़ हा चुकी होती हैं। अपने सच्चे रूप में राज्य और व्यक्ति एक रूप हैं। हीगल के शास्त्र में 'राज्य स्वतंत्रताका यथार्थ रूप (actualisation of freedom) या स्वतंत्रता का मूर्त रूप (embodiment of concrete freedom) है।

आदर्शवादी दृष्टिकोणसँ राज्य एक नैतिक संस्था है। राज्य ऐसे स्वतंत्र सामाजिक जीवनको सम्भव बनाता है जिसके बिना मनुष्यका पूरा विकास नहीं हो सकता। राज्य हमारा ही दूसरा रूप है। यह व्यक्तिका स्वभाविक विकास और प्रसार है। यह मनुष्य को अपनी इच्छा और विवेकका प्रवृत्ति करनेका मौका देता है। यह नैतिक जीवनकी बाहरी परिस्थितियाँ तयार करता है। यह पूरे समाजका एकता स्थापित और अधिकाधिक आम जनता प्रदान करता है (८१ १४८)। राज्य अधिकाराका व्यवस्थित करनेका है और सामाजिक ग्यायका संचालन है (८१ १४८)। अतः राज्यकी आज्ञापालन करना एक नैतिक कर्तव्य हा जाता है।

टी० एच० ग्रीन ने राज्यकी आज्ञा मानना इसी प्रकार उचित ठहराया है। वह इस प्रस्तावित विचारका विरोध करते हैं कि नैतिकताका आधार मनुष्यका विवेक और राजनीतिक अधीनताका आधार शक्ति है। उनकी यह धारणा बिस्तुतः ठीक है कि नैतिकता और राजनीतिक अधीनता दोनों का एक ही स्रोत है। वह स्रोत है मनुष्य व्यक्तित्व द्वारा सामाजिक व्यवस्थाकी धारणाका विवेकपूर्ण विचार किया जाना।

यह बल्त्याण व्यक्तियोंका भी बल्त्याण है और व्यक्ति उसे अपना बल्त्याण मानन भी है। भन ही उनमेसे कुछ व्यक्ति बिना बिना परिस्थितियोंमे उस बल्त्याणकी ओर प्ररित हों या न हा। सावजनिक बल्त्याणकी यह स्वीकृति एस नियम क रूपमे भी प्रकट हाती है जिनके द्वारा व्यक्तिगत प्रवर्तियोंका नियन्त्रणमे रखा जाता है। यह भा नतिवत्ता और राजनीतिक अधीनताका सात है। इस नियन्त्रणक अनुपातमे ही सावजनिक बल्त्याण करनेवाले बायोंका करनेकी स्वतन्त्रता मितता है (० १०४ १२५)। नैतिकता और राजनीतिक अधीनतामे गहरी धारणाए हाती है (क) मुन करना ही होगा यद्यपि भ पस नहा करता' (ख) मुन करना ही हागा क्याकि यह सामान्य बल्त्याणके लिए है जिसमे मग भी बल्त्याण सन्निहित है (० १४१ ५)। चीन जाग कहन है कि बचन भय ही राज्यकी आनामाननका धार्मिक कारण नहा हा सक्ता। नागरिक अधीनताका आधार बचन भयका मानना नागरिक और दासक अन्तरका भिन्न दना है। भय पर आधारित अधीनता क्या भी राजनीतिक या स्वाधीन समाजका आधार नहा बन सक्ती।

आलोचना

(१) इतना सा निस्मलह कहा जायगा कि उपरुक्त बिचार बचन कपना ही है क्याकि जैमे राज्यका बिच इममे लाचा गया है वसा राज्य कहा है ही नहा। चीन की भानि यह प्रन किया जा सक्ता है कि 'क्या आधुनिक राज्यमे राजनीतिक अधीनताको प्रकाश इच्छा पर आधारित बताना गणा साय तिमबाड करना नहा है?' (२९ १२४ १२५)। मकिन जसा कि चीन न स्वय कहा है व्यक्ति राज्यका बतानर उसा हुन तक बन सक्ता है जिस हद तक यह यह अनुभव करना है कि राज्य स सामान्य बल्त्याणकी सिद्धि होनी है और उनका अपना बल्त्याण उस सामान्य बल्त्याण का ही एक अभिन्न अंग है। उसकी राज्य भक्ति सभी सच्चो और स्थायी हा सक्ती है जब उसके हृदयमे राज्यके प्रति वैमी हा भावना हा जैसी भावना उसक हृदयमे अपने पर और परिवारके लिए है। हम यह स्वीकार करते हैं कि अन्त्ये अन्त राज्यमे भी हम प्रकारकी भावना बचन आंगिक रूपमे ही पाया जाती है। हम हीगत की तरह नहा कह सक्ते कि एक आदम राज्य उस समयक प्रतिपन राज्यकी तरह या अन्य किन्ना गमकी तरह ही हा मक्ता है। फिर भी हम स्वीकार करने हैं कि राज्य सावजनिक बल्त्याणकी भावनाका मूलरूप है यह बाह अितना अनुन क्यों न हा। यह भावना ही राजनीतिक अधीनता का सत्ता सात है।

(२) राज्यमे सामाजिकी मौलिकक विरापी सम्भवत यह दर्शाए दग कि राज्य का निर्माण गतिमे होना है और अन्त्यमे वह स्थायी बन जाना है अपना राजनीतिक अधीनताका आधार सामाजिक मुविषा (social expediency) है। इममे ता कोई सन्देह नहा कि राज्यकी उत्पत्ति और उसक स्थायी होनेमे स्वार्थ, गति और

मय न बहुत बड़ा काम किया है। परन्तु इन सबसे सभी तक अच्छे परिणाम मिलते हैं जब तक कि वे स्वायत्त रहित रहें हैं (२९-१६)। राज्यम एक दबाव डालनेवाला शक्तिकी उपस्थिति ने ही इस विशासधारकता को जन्म दिया है कि राज्य दबाव डालने वाली शक्ति (coercive power) पर आधारित है जबकि असत्य यह है कि दबाव डालनेवाली शक्ति बस इसलिए सर्वोपरि होती है कि उसका उपयोग राज्य द्वारा किसी लिखित या परम्परागत विधिके अनुसार किया जाता है (२९-१६)।

(२) यह भी कहा जा सकता है कि यदि हम उसके लिए मान भी लें कि साक्षी की इच्छा या सम्मति ही राज्यका आधार है तो यह आधार तो केवल साक्षरतीय राज्यका ही हो सकता है। जब तक नाग राज्यक विधि निर्माण और शासन प्रबंधन सक्रिय भाग न लें तब तक उनमें राज्य और सांख्यिक हितके प्रति इस प्रकारकी भावना कैसे उत्पन्न हो सकती है। इस आलाचनामें पर्याप्त बल है और हम इस साधारणतया ठीक माननेका विषय हैं। फिर भी हमारा विश्वास है कि जिस देशमें साक्षरतीय शासन न हो उसमें भी जनताकी सम्मति अप्रत्यक्ष रूपमें प्राप्त रहती है वशनें कि उस देशमें शान्ति और व्यवस्था कायम है और कोई व्यापक उलट-फेर नहीं होता।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसे ध्यानमें रखते हुए हम इन निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राज्यकी आत्मा मानना अपने ही उच्चतर व्यक्तित्वकी आत्मा मानना है और यदि किसी विषय अवस्थाम ऐसी स्थिति न हो तो गम्भीर स्थिति पैदा करनेकी कोशिश हम बराबर करनी चाहिए।

राज्यका उद्देश्य (The End of the State)

राज्यक उद्देश्यका विवेचन किया बिना राज्यक मोचित्वका विवेचन अपूर्ण ही रह जाता है। इन विषय पर विचार करते समय प्रायः तात्कालिक उद्देश्य (immediate or proximate end) और अन्तिम उद्देश्य (final or ultimate end) के बीच अन्तर किया जाता है। पहले प्रकारक उद्देश्यको समझना तो सरल है पर दूसरे प्रकारके उद्देश्यको समझनेके लिए हमें ज्ञानकी अपना निष्ठाकी अधिक आवश्यकता है।

मनुष्यी लोग राज्यका उद्देश्य आत्म निर्भरता मानते थे। उनका कहना था कि राज्यका उन सभी चीजोंका प्रबंध करना चाहिए जो मापरिचित सर्वोच्च विश्वास और मुक्ति लिए आवश्यक हैं। ध्वजा के अनुसार राज्य एक अणु विश्व (macrocosm) है जिसमें व्यक्तिगत जीवन स्थान मिल सकता है और व्यक्ति उन चीजोंका कर सकता है जिनके लिए वह सबसे अधिक उपयुक्त है। शासकों और योद्धाओंको राज्यके अधिकतम कल्याणके लिए आवश्यकतानुसार प्रयत्न करना चाहिए। इस उद्देश्यमें अपने न उनके लिए साम्प्रदायीक जगत् जीवनकी व्यवस्था प्रगतिशील की थी। ध्वजा के विचारसे

राष्ट्र एक ऐसा संगठन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक व्यक्ति लिए एक निश्चित स्थान है जिसका पूरा करता है और ऐसा करता है उस व्यक्ति के लिए।

असम्भूत का विकास या कि राष्ट्रका उद्देश्य नागरिकों के अङ्गुलीका विकास करना है। पर वह ना पुनान्त नगर राष्ट्रका आत्म-निर्भरता पर विचार करता है। जिसका उद्देश्य व्यक्ति का अधिकतम अधिकतम सुखी बनाना या। अपना पुस्तक 'पॉलिटिक्स' (Politics) में उन्होंने एक पूरा अध्याय इस विषय पर विचार किया है। उन अध्याय का अन्तर्गत इस प्रकार है

राष्ट्रका अस्तित्व सम्पत्ति समाज तथा मरणादे लिए न होकर अस्तित्व जीवन के लिए है। यदि कवन अस्तित्व है राष्ट्रका उद्देश्य जाना ना नाम और जन्मा जीव भी राष्ट्र बना तत। पर वह ऐसा नहीं कर सकेगा क्योंकि वह सुखी तथा स्वतंत्र जीवन के लिए आवश्यक लाभ प्राप्त नहीं कर सकेगा। यदि सचि और अज्ञानने मरणा या विनिमय और पारस्परिक सम्बन्ध ही राष्ट्रका उद्देश्य जाने ना व्यावहारिक सचि कर देनेवाले सभी लोग राष्ट्रका नागरिक ना जान। उनके सामान्य स्वाध्याय नहीं जान। फिर राष्ट्रके नागरिक और अज्ञानने उनका बाइ सरावर नहीं जाना और वे नागरिकों के अन्तर्गत रूप तक पहुँचानेका प्रयत्न नहीं करते। राष्ट्र सम्पत्ति और दुर्भाग्य पर भी ध्यान देता है। वह जीवन और सम्पत्ति के लिए किये गए समझौते मानने अधिक है।

राष्ट्रमें कवन अन्तर्विवाह पारस्परिक सम्बन्ध विनिमय और सामाजिक निवास स्थान ही निहित ना हैं। राष्ट्रका अर्थ इन सबका कहा अधिक है और वह अर्थ है सामाजिक कल्याणकी भावना। राष्ट्र कवन एक ऐसा समाज ना है जिसमें सामाजिक प्रगति हो और जिसकी स्थापना अन्तर्गत राष्ट्रके और विनिमय के लिए की गयी हो। यह परिवारों और परिवार समूहों के बीच कल्याणका सामाजिक भावना है जिसका उद्देश्य पूरा जीव आत्म निर्भर जीवन है। कल्याणकी यह सामाजिक भावना उन्हा लागोंके सम्बन्ध है जो एक ही स्थानमें रहने हो और जिसमें आपसमें विवाह अन्तर्गत हो। उनका उद्देश्य सुख जीवन है और उन प्राप्त करने के निम्नलिखित साधन हैं— पारिवारिक सम्बन्ध भाई बहन सम्पत्ति पूरा मनोरञ्जन इत्यादि। परिवार और गाँवका विनाश राष्ट्र बना है और उसका उद्देश्य पूरा और आत्मनिर्भर जीवन होता है।

इस प्रकार राजनीतिक समाजका अस्तित्व अस्तित्व के लिए होता है कवन साथ रहने के लिए मने और जो साथ एक समाज के लिए सबसे अधिक योगदान देने के बली सामने करने के अधिकारी हैं।

राजसमूहों के राष्ट्र उद्देश्य पर बहुत अधिक विचार नहीं किया। उनका गति अधिकतर अपने साम्राज्य के विचारों में गयी रही। राष्ट्र के अन्तर्गत मगर और पश्चिमी साम्राज्यका रूप बन गया—जिसका अधिक कि साम्राज्य के पक्ष के रूप में सामने नाम और लोभ कई सन्धियाँ मक बना रहा।

मध्य-युग भी राज्य उद्भूत पर अधिक विचार नहीं किया गया। धार्मिक लेखकाने तो आमतौर पर राज्यको नास्तिकासे ईसाई धर्मको बचानेका बस एक साधन माना। एक्वाइनस (Aquinas) का विचार था कि राज्यका अस्तित्व साति व एवताकी स्थापना और अच्छे जीवनकी वृद्धिके लिए था। राज्यका महत्व इस बातमें माना जाता था कि वह धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोणों निश्चित क्रियामें लक्ष्याकी प्राप्तिमें सहायक हो।

राज्यके उद्देश्यके बारेमें गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना आधुनिक युगमें ही आरम्भ हुआ। यह उस समय हुआ जब लोगोंने उदार विचार फैल और यह धारणा समाप्त हो गयी कि राज्य राजाकी बघीती है। अब से साग न यह अनुभव किया कि राज्य जनताकी चाती है, तभीसे राज्यके उद्देश्यके बारेमें अनेक सिद्धान्तोंका विकास हुआ।

हॉब्स के अनुसार व्यवस्था और सम्पत्तिका अधिकार कायम रखना राज्यका उद्देश्य था। नागरिक समाज कायम होनेके पहले जो प्राकृतिक अवस्था थी। उसके सम्बन्धमें हॉब्स का दृष्टिकोण इतना निराशापूर्ण था कि राज्य न होनेकी अपेक्षा किसी प्रकारका भी राज्य होना उन्हें अच्छा जान पड़ता था। अराजकताकी अपेक्षा निरंकुश अन्यायाचारी शासन उनका विचारामें अच्छा था। इसी प्रकार लॉक के विचारसे राज्य का उद्देश्य एक निश्चित विधि और सामान्य यायाचीकी सहायतासे जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रताकी रक्षा करना है। रूसो में हम फिर इस विचारका पाते हैं कि राज्यका अस्तित्व व्यक्तिव जीवनका सुन्दर बनानेके लिए है यद्यपि वह इस बात को इसी रूपमें नहीं कहते। उनका विश्वास है कि राज्य बस उपयोगी उद्देश्योंकी प्राप्तिको सुविधाजनक बनानेका साधन मात्र नहीं है बल्कि वह मनुष्यके सर्वोत्तम रूपकी उच्चतम अभिव्यक्ति है।

१ राज्यका उद्देश्य-सावजनिक सुख (The End as General Happiness) १९वीं शताब्दीके आरम्भमें जेरेमी बेन्थम (Jeremy Bentham) ने इस विचारका प्रचार किया कि राज्यका उद्देश्य अधिकतम अधिकतम अधिकतम अधिकतम सुखकी वृद्धि करना है। आज भी इस उपयोगितावादी विचारको बहुत माना जाता है। १९वीं शताब्दीके ईंग्लैण्डमें अनेक सामाजिक और राजनीतिक सुधारोंका ध्येय इसी विचारको है। इस सिद्धान्तकी प्रेरणा ही दरिद्रों भूमि और सत्ताके सम्बन्धित विधियामें तथा जल व्यवस्थामें और मताधिकार एवं सारजनिक शिक्षा के क्षेत्रों में विभिन्न तौर पर सुधार हुए। कुछ संसदोंने 'अधिकतम सुख' के स्थान पर अधिकतम सत्यता' लिखा है। इस सुधारके बावजूद इस सिद्धान्तमें बहुतमनत्र हितमें सम्पन्नके हितोंके बलिदानकी आकांक्षा और सम्पन्नताकी योग्यताका बहुतमनत्र साधनकी अपायताका अर्थान्त्रित्य जानेका भय है। समाजमें बचनित 'उद्देश्य' स्थान पर सामाजिकताको इस सिद्धान्तमें विनष्ट है। इसके अनिश्चित आनन्दके अर्थमें सुख की परिभाषा करना बहुत कठिन है। यदि भी दो व्यक्ति इस प्रश्न पर एकमत नहीं

है कि मुझ क्या है। संनित नापाके आनन्द का नाप ज्ञान करने और सावजनिक मुक्त का बलि करने का नाप रायका मीपना एक असम्भव बात है। हर व्यक्ति यह जानता है कि उस जिस आनन्द या मुक्त मित्रता है परन्तु यह चाह नग जानता कि सावजनिक आनन्द का स्वरूप क्या होगा। 'सब अतिरिक्त उपवाग्नितावा' मित्रान्त का 'मित्रता' व्यक्तिवादी ही है और यह समाजिक अधिक स्वभाव (organic nature) पर विचार नही करता। इन सब भ्रष्टिदाक वादभू' इस सिद्धान्तन मुक्त का मुक्त और प्रकृतित अममि प्रयाग करत अनक मानवतावा' विविधाक विमा'म वा'मन निदा है। जसा कि गिनकाइय न कहा है यह सिद्धान्त विमियाके उ'पकी एक व्यावहारिक अभिव्यक्ति है परन्तु रायका उद्देश्य पुरा अनिव्यक्तिक रूपन यह कथोनी पर सरा नह उतरता (२८ १२३)।

२ रायका उद्देश्य—व्यवस्था बनाय रखना (The End as Maintenance of Order) रायका उद्देश्य बारम १९वा 'नाय'म अ'य अनक सिद्धान्त प्रकृतित हु' य। इनमे से सबसे अधिक ताकजिय यह व्यक्तिवा' सिद्धान्त कहा कि रायका अस्तित्व नवन व्यवस्था बनाय रखनक लिए है।^१ अ'य सम्यक'न इस सिद्धान्त का विस्तार करके व्यवस्था का साथ शान्ति और सुरक्षा का भी जाह निदा है। यह मागकी गयी कि हर व्यक्ति का अपना कल्याण करने के लिए स्वतंत्र छान्द निदा जान और रायक उसमे किसी प्रकारका हस्तगत न करे। यह बतात ग जाता है कि रायका काम तो नाप का बाहरी तथा भीतरी सब वि' सुरणित रखना है जिससे नाप शान्तिपूर्ण रह सकें। रायका उद्देश्य सम्भवतः यह कहा सका वृष्टिका है। जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना निस्सन्देह रायका कर्तव्य है परन्तु यहा रायका एकमात्र उद्देश्य नही है। यह सिद्धान्त अपन व्यावहारिक रूपन जमी स्थितिका उचित विद्व करने का प्रयत्न करता है जो इस समय मौजू' है और इस तरह प्रगति का विचार करता है। इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि यह सिद्धान्त मौजू' हालतका ही 'नाप' का काम रखना चाह बहु-क्षेत्र का काम रखन चाहे या न हो।

३ रायका उद्देश्य—प्रगति (The End as Progress) कुछ सामानि प्रगति का रायका उद्देश्य ठहराना है। पर प्रगति 'नाय' ही तो रायका नाय लक्ष्य नहीं होता। यदि हम यह नाय न मानू' है जिस सम्पत्ति का प्रगति करना है तो प्रगति का चाह अब नग रह जाता। प्रगति का सम्भव अनावक लिए पहले नाय निश्चित कर लेना आवश्यक है।

४ रायका उद्देश्य—सामाजिक सेवा (The End as Social Service) समाजवादी विचारधारकान कुछ नायका कहना है कि रायका अस्तित्व इसलिये है कि वह 'न सामाजिक सेवाओं का प्रोत्साहित कर जिनका सम्भव सामाजिक शिवा

^१ काम' व विचारक रायका उद्देश्य बानू'न का बनाय रखना और प्रत्येक मध्य का व्यक्ति के स्वतंत्रता की सुरक्षा है।

की प्राप्ति है न कि बाहरी आक्रमणसे व्यक्ति की रक्षा और राज्य का नागरिकों की व्यवस्था कायम रखना (१०)। हम देखते हैं कि आधुनिक राज्यों में यह उद्देश्य दिन प्रतिदिन अधिकाधिक महत्त्व प्राप्त कर रहा है। आधुनिक राज्य सामाजिक स्वाम्य आभरण और अधिक हितों की वृद्धि की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं। इनमें से अधिकांश राज्यों की नीतिनीति का विस्तार इस प्रकार करता चाहते हैं कि उत्पादन और वितरण के माध्यमों की व्यवस्था और उनका स्वामित्व भी राज्य के अधिकार में आ जाय (उत्पादन के लिए आजकल भारत में प्रचलित व्यवस्थाकारी राज्य (welfare state) का आदर्श)। इस सिद्धांत की मुख्य आलोचना यह है कि यह राज्य का कार्य की सीमा का सिद्धान्त है राज्य का उद्देश्य नहीं।

५. राज्य का उद्देश्य-न्याय (The End as Justice) आजकल बहुत से नए नए 'यादों' ही राज्य का उद्देश्य मानते हैं। ये नए नए प्रायः आदर्शवादी हैं। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि अभी आदर्शवादी 'यादों' ही राजनीतिक उद्देश्य के रूप में स्वीकार करते हैं।

हर्जरिंग्टन एवं म्यारहेड (Hetherington and Muirhead) ने अपनी पुस्तक *Social Purpose* में यह मत प्रकट किया है कि राज्य का प्रधान कर्तव्य राज्य के नागरिकों की व्यवस्था करना ही रहा है। 'यादों' की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है। जीवन की एक ऐसी व्यवस्था जिसमें मनुष्य के व्यक्तिगत और आर्थिकों की पूरी-पूरी प्राप्ति हो सके। उन्होंने आम फ्री निगा है। राज्य अपने मौलिक रूप में सामाजिक जीवन सम्पूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति है। इस व्यापक अर्थ में हम फिर भी यह कह सकते हैं कि राज्य का उद्देश्य न्याय की व्यवस्था ही है और इसलिए राज्य मुख्यतः एक नैतिक संस्था है (पृ. १४६)।

हम सामान्यतया यह मानने का तैयार हैं कि राज्य का उद्देश्य नैतिक है परन्तु हम यह कहेंगे कि नहीं। यह मत कि 'यादों' ही राजनीतिक उद्देश्य मानना एक बड़ा तर्कीक विचार है। हर्जरिंग्टन एवं म्यारहेड ने यह बात प्रमाण देकर व्यापक रूप में किया है कि समूची नैतिक धारणा उसके अन्तर्गत आ गया है परन्तु 'यादों' राज्य का आमतौर पर यह अर्थ नहीं माना जाता। और फिर जसा कि मिनाइस ने कहा है 'यादों' एक ऐसी स्थिति है जो सामाजिक सत्ता के उद्देश्य की पूर्ति पर निर्भर करती है। पूरा यादों लिए पूरा जान जरूरी है और यह बतल ईश्वर का ही प्राप्त है (पृ. ४७)।

राज्य का उद्देश्य है या साधन (Is the State as End or Means)? राज्य का उद्देश्य सामान्य और भी अनेक सिद्धांत हैं। उन सबका विवेचन करना जरूरी नहीं है। एक प्रश्न जिस पर आधुनिक विचारों का बहुत ध्यान गया है यह है— 'राज्य अपने आप एक साधन है या वह केवल साधन है?' पुराने लोग विचारक यूनानी, राज्य का मतलब जीवन की सर्वोच्च सत्ता और अपने आप में साम्य या उद्देश्य मानते थे। आधुनिक व्यक्ति और राज्य का अर्थ माना जाता है वह उन्हें मान न

या क्या कि जिन परिस्थितियों में वे रहते थे वह हमारी आज की परिस्थितियों से बिल्कुल भिन्न थी।

आधुनिक काल में ही यल न यह सिद्धान्त पुनर्जीविन किया कि राज्य स्वयं साम्य यानी एक उद्भव है। उन्होंने व्यक्ति की इच्छा का राज्य की इच्छा के साथ एकत्व बना दिया। इस सिद्धान्त का परिणाम फासिज्म (Fascism) है। इटली के मजदूर पार्टी की पक्षी धारा इस प्रकार है— इटालियन राष्ट्र एक संगठन है जिससे अपने उद्देश्य अपना जीवन और अपने साधन हैं जो शक्ति और स्थायित्व से उन व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों से मिलते हैं जिनको मित्रावरुद्ध राष्ट्र बनता है। राष्ट्र एक मजिद राजनीति और आर्थिक इकाई है जिसकी पूरा अभिव्यक्ति फासिज्म अस्तित्व में होती है।

एक ओर राज्य की इस तरह की निरन्तरता का समर्थन यह विचार है और दूसरी ओर ठीक उल्टे विपरीत व्यक्तिवादियों का विचारधारा है। उनका व्यक्तिवादियों के विचारों से राज्य जनता के अधिकतम व्यक्ति के सम्पादन का एक साधन है। इस विचार के विरुद्ध सब से बड़ी आपत्ति यह है कि राज्य किसी विषय पक्ष का ही सम्पादन करने की चिन्ता नहीं करता—बल्कि तो भावी पीढ़ी के सम्पादन का भी ध्यान रखता है। और इस सम्पादन की पालन के लिए राज्य नागरिकों के ऊपर एक बहुत बड़ा भार उत्पन्न करता है। अब यह स्पष्ट है कि व्यक्ति का सम्पादन ही राज्य का एकमात्र उद्भव नहीं है।

राज्य और व्यक्ति के साध्य और साधन का सम्बन्ध बनता है इन दोनों की प्रवृत्ति का समतल है। ये दोनों आपस में इनके प्रतिष्ठित रूप से सम्बन्धित हैं कि हम यह कह सकते हैं कि अपनी निम्नतर स्थिति में राज्य और व्यक्ति दोनों का सम्पादन अपनी स्थिति का उत्थान करना पड़ता है और दोनों ही इस सम्पादन का साधन हैं। दोनों ही एक साथ एक ही सम्पादन और करने हैं।

इस कारण आज हम आम तौर पर यही माना जाता है कि राज्य साध्य भी है और साधन भी। विलोयबी (Willoughby) ने अपनी पुस्तक राज्य का स्वरूप (The Nature of the State) में लिखा है कि यदि हम राज्य पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से ही विचार करें तो राज्य एक साधनमान—एक मात्र ही प्रतीत होगा जिससे जगत् मानवता का सर्वाधिक विकास होता है। परन्तु यदि राज्य को एक एकी गत्या माना जाय जिसकी सत्ता उसमें सम्पादन नागरिकों के अंग है तो राज्य स्वयं एक साध्य बन जाता है (८१ पृष्ठ)। इससे न राज्य को दोहरे स्वरूप का बहुत मन्द रूप से इस प्रकार स्पष्ट किया है— एक विश्व निर्मा विचारों के जीवनोत्थान का साधन होता है उसके साथ ही सबकी सम्पादन सम्पादन उत्पन्न प्रयत्न का साध्य भी होती है। उस कारण द्वारा वह अपनी भावनाओं की गंभीर अभिव्यक्ति करता है—जो उमर अपना आत्म निर्माण करता है। इस तरह उमरी वह बना स्वयं एक साध्य बन जाती है। और इसी प्रकार राज्य व्यक्ति के सम्पादन का साधन भी है और

स्वयं एक माध्य भी पयावि रायका उद्देश्य किसी एक पीढ़ीक व्यक्तिमा या समुदाय क कल्याणत बना अधिक होता है।

राज्यके उद्देश्योंका विवेचन करते समय यह उचित होगा कि हम उनके माधारण या मौलिक (general or fundamental) उद्देश्यों और विभिन्न उद्देश्योंके अन्तर को एवं उनका दूरस्थ या चरम (ultimate or remote) उद्देश्यों तथा तात्कालिक या आसन्न (immediate or proximate) उद्देश्योंके अन्तरको अच्छी तरह समझ लें। होल्ज़ेंडॉर्फ (Holtzendorff) ने राज्यके व्यावहारिक एवं आन्तरिक उद्देश्योंकी बीच भेद बताने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि राज्यको सबसे पहला अन्य राज्या तथा अपने निवासियों और निवासियोंके समूहों के मुकाबिले में अपनी शक्ति बढानी चाहिए। राज्य का दूसरा कर्तव्य व्यक्तियों के स्वतंत्रताकी रक्षा करना है। इस कायकी पूर्तिके लिए राज्यको व्यक्तियों कायक्षेत्र निश्चित कर देना चाहिए जिसमें वह अपना विकास सरकार या अन्य व्यक्तियोंके हस्तक्षेपसे स्वतंत्र होकर कर सके। राज्यका अन्तिम कर्तव्य राज्यमें शान्ति और व्यवस्था कायम करना प्रजाका शिक्षित करना एवं सर्वसाधारणका कल्याण करना है।

एलरडी के अनुसार राज्यका उद्देश्य यह है राष्ट्रीय शक्तिका विकास राष्ट्रीय जीवनकी पूर्णता तथा उसकी काय रूपमें परिणति। अर्बिन राजनीतिक तथा सामिक विकासका तरीका मानवताके सत्यके विरुद्ध नही होना चाहिए। इस कथनमें यह स्पष्ट है कि राज्यका तात्कालिक उद्देश्य राष्ट्रीय शक्तिको बनाये रखना और उसका विकास करना है एवं उसका अन्तिम उद्देश्य मानवता है। यह उल्लेखनीय है कि प्रथम और द्वितीय महायुद्धके समय राष्ट्रीय विचारधाराकी ओरका मानवतावादी विचारों ने सांगका अधिक प्रभावित किया। एलरडी ने अपनी परिभाषाके प्रथमांश में जिस राष्ट्रीयताका चिह्न दिया है उसमें वही कठिनाइयाँ सामने आती हैं जो व्यक्तियोंकी दृष्टिकोणको अपनातेगें होती हैं। इन दोनों ही विचारधाराओंमें समाजक हित को ध्यान में रक्षानेका स्वार्थका विकास होता है। जसाकि विरुद्ध ने कहा है आज कम हम राष्ट्रीय सीमाओंको पार कर एक आदर्शकी ओरका आग बढ़ रहे हैं। अन्तराष्ट्रीयतावाद तथा राष्ट्रीयतावादका स्थान से रहा है (२८ ४३०)।

अमेरिकी लेखक बर्गस (Burgess) ने राज्यके प्रारम्भिक माध्यमिक और अन्तिम तीन प्रकार के उद्देश्य बनाये हैं और इन सबको क्रमशः एक दूसरेकी पूर्तिका माधन माना है। बर्गस के कथनानुसार राज्यका तात्कालिक उद्देश्य सामन एवं स्वतंत्रता है। राज्यका प्रारम्भिक और मुख्य कर्तव्य अपनी एवं अपने सदस्योंकी रक्षा है। परन्तु जब यह उद्देश्य पूरा हो जाय और साथ विधिसे अधीन रहकर जीवन बितानेके आगे हो जायें तब राज्यका वैयक्तिक स्वतंत्रताके धर्मको मुनिश्चित कर देना चाहिए और हर तरहके हस्तक्षेपोंसे उसको बचाना चाहिए एवं समय-समय पर इस धर्म की पुष्टि करने रखना चाहिए। नवी उद्देश्यमें वैयक्तिक माध्यमिक उद्देश्य राष्ट्रीयताकी पूर्ति तथा राष्ट्रीय प्रतिभाका विकास है। नव उद्देश्योंकी पूर्ति

राज्यका उद्गम और मोचित्व

सर्वोत्तम मापन नैसर्गिक भौतिक और ज्ञातय आधार पर स्थापित राज्य है। राज्यका अन्तिम उद्गम मानवताकी पूर्णता या सत्कारम सम्यक्ताना विवाम है। नैसर्गिक सिद्धान्तकी आलोचना करते हुए गानर निम्नलिखित हैं यहा भू साध्य और मापनके भूतका भूना दिया गया है। उदाहरणके लिए यह समझना कठिन है कि सरकारके मंगलका लक्ष्यकी पूर्णता साधन माननके बजाय स्वयं एक उद्गम क्या न माना जाय (७३ ७३)। गानर राज्यके निम्नलिखित तीन उद्गम बताते हैं व्यक्ति व व्यक्तिगत कल्याण की यदि करना व्यक्तिके सामूहिक कल्याण की वृद्धि करना तथा सत्कार का अधिकाधिक सुख और प्रगतिशील बनाना।

SELECT READINGS

- GARNER J W — *Introduction to Political Science*—Chs I & V
 GARNER, J W — *Political Science and Government*—pp. 69-74
 GETTELL, R.G — *Introduction to Political Science*—pp 377-379
 GILCHRIST R.N — *Principles of Political Science*—pp 424-431
 GODWIN W — *An Enquiry Concerning Political Justice*
 STEPHEN L. — *English Thought in the Eighteenth Century*—Vol II
 WILDE, N — *The Ethical Basis of the State*—Ch VII
 WILSON W — *The State*—Chs 15 & 16
 WILLOUGHBY W W — *Nature of the State*—Ch 12

राज्य का उचित कार्य-क्षेत्र

(The Proper Sphere of State Action)

राज्यके उचित कार्य-क्षेत्रका प्रश्न राजनीतिव विन्ननके प्रारम्भिक त्तिनोम इतना महत्वपूर्ण नहा था जितना आजकल है। यूनानियोंके लिए अच्छे जीवनका अर्थ 'नगर राज्य' (polis) के भीतर स्वतन्त्रता था। व्यक्तिव कायान तथा राज्य कल्याणम व कोई अन्तर नहा समझते थ। कभी-कभी व्यक्ति और राज्य बीच मध्यमे उदाहरण भी मिलते थ जस सुकरात के मामराम पर प्रचलित विश्वास यही था कि राज्यके कार्य-क्षेत्रम व सब बातें आ जाती था जिनका सम्बन्ध व्यक्तिके जीवन और उसके उच्चतम विकाससे था।

राजनीतिक विचारकाने राज्यके उचित कार्य क्षेत्रके प्रश्नको न तो रामन युगम और न उसने बाकी अव्यवस्थित परिस्थितियोंम ही अधिक महत्वका समझा। मध्य-युगम सत्ताके लिए घममघ (church) और राज्य म वक्त मध्य छिडा। यह सपथ बहुत समय तक चला। अन्तम नवीन राष्ट्रीय राज्याका विजय मिली। राष्ट्रीय राज्याका उन्म मध्य-युगके अन्तम हुआ। पूरा डाननवादी सामन्तवादी व्यवस्थाका समाप्त करके राजाया न जल्दी ही अपनी स्थिति मजबूत करती और अपनी-अपनी प्रजा पर अपना निरकुल गामन कायम किया। कुछ प्रोटेस्टेंट सुधारकाक दबी-अधिकार सिद्धान्तकी पितान इस निरकुलताका उचित टहराया। इसी समयस आगेके लिए सामका और सामिताक हितार्थ पर तीव्र सपथ आरम्भ हा गया। जनतान निरकुलताक विरुद्ध मध्य छेड लिया। इस मध्यम प्राकृतिक विधि (natural law) के सिद्धान्तने बहुत महत्वपूर्ण योग दिया।

जॉन लॉक (सम्रहवा गतात्नी) इस आन्दोलनके दानिर्वाध। उनका कहना था कि राज्यके कार्य-क्षेत्रकी सीमाएँ व्यक्तिके प्राकृतिक और जन्मजात अधिकारों द्वारा निधारित होती है। अगरहवा दानात्नीम यह सिद्धान्त समझाय रहा। उन्नीसवा गतात्नीके हस्तक्षेप न करन (laissez faire) सिद्धान्तका इस दानिर्वा आधार बनाया गया। यह सिद्धान्त आधुनिक युग तक विमी न विमी रूपम चला आ रहा है। रॉसर ने अपने मनुष्य बनाम राज्य (Man versus the State) पाथ्यांगम आ भावना व्यक्त की थी व आज गमान्य हा चुकी है और अब समझाय दान्य राज्यकी भावना उगवा गमान न गती है।

१ व्यक्तिवादी सिद्धान्त (The Individualistic Theory)

अगरहवा गतात्मक पूर्व राज्य व्यक्तिगत मामलोंमें स्वनियम विधायकता था। बहुधा यह हस्तगत राज्यनियम दिया जाता था और समय व्यक्तिगत कार्यमें विभक्त पना होता था। इस स्थिति का प्रतिनिधित्व स्वल्प ही हस्तगत न करने (laissez faire) के सिद्धान्त का अर्थ होता है। उदाहरण के तौर पर हम मध्यमामी नीति विधायक विनियम निश्चित कर दिया गया था कि विधायक विनियम मात्र किम प्रकारका भाजन हों और मन्त्रों का किम प्रकारका उपयोग स्वीकार्य हो। व्यापारिक स्वतन्त्रता पर भी अनिश्चित बंधन लग चुका था। अगरहवा गतात्मक औद्योगिक क्रांति होने पर इन प्रकारके नया राजस्व का कार्य का विनियमन पदम विधायकता जाना अब सम्भव हो गया। जनता के अधिक जीवन के क्रांति करने वाले नये व्यवस्थापक थे। बन्धुत्व का अर्थान्त बंधन का पमान पर जाने लगा और इन बन्धुत्व का बंधन के लिए नये-नये बाधाओं पर अधिकार दिया जाने लगा। एकी परिस्थिति में उदात्त उद्योगी और मजदूर प्रतिभावात मोटा का यह मांग स्वाभाविक थी कि जहाँ तक सम्भव हो स्वतन्त्र हासिल काम करने का अधिकार मिले किम व करत व्यक्तिगत पदम अधिकार अधिक लाभ के लिए कर सकें। अगरहवा गतात्मक व्यक्तिवादी नीति का अर्थान्त जमा बंधन है करने का उमके कार्य में हस्तगत पदम बंधन बंधन का अर्थान्त नियमन स्वयं कर लेता है।

हम पदमूमिका पानम करने का इसमें का अर्थान्त न जान पाना कि व्यक्तिवादी राज्य का एक बंधन मानता है। पर यह बंधन मनव्यता स्वयं-सत्ता और मन्त्रपदम कारण अधिक हो गया है। इसके बंधन रहने का कारण मनव्यता बंधन का है। व्यक्तिवादी मानता है कि यदि राज्य की नियामक शक्ति न हो तो समाज में गति और व्यवस्था नहीं हो सकती। हमने राज्य का व्यक्ति का सुरक्षा का पूरा ध्यान देना चाहिए। परन्तु व्यक्ति का अर्थान्त राज्य का कार्य करने का है। राज्य का मन्त्र काम है हिमा और जाल-सम्बन्ध का रहना। व्यक्तिवादी का निम्न सिद्धान्त है कि व्यक्ति का अधिकार अधिक स्वतन्त्रता मिले और राज्य कम से कम हस्तगत करे। यह वह ना मानता है कि यदि राज्य स्वयं अपनी रक्षा के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता में हस्तगत हो तो यह अर्थान्त मीमांसक अर्थान्त ही काम करता है परन्तु जहाँ बंधन व्यक्ति का होता है प्रत्येक व्यक्ति का राज्य में हस्तगत करने का कार्य अधिकार नहीं है। ४० एम० मिल (J S Mill) के अनुसार व्यक्ति का अर्थान्त अर्थान्त नीति और मन्त्रपदम अर्थान्त अधिकार है।

मन्त्र व्यक्तिवादी हम बंधन पर हस्तगत करता है कि राज्य का अधिकार नहीं है। मन्त्र जहाँ उच्च व्यक्तिवादी राज्य का बंधन व्यक्ति का निम्न निम्न कार्य नहीं हो मन्त्रिण्यम है।

(क) बन्धुत्व नीति व्यक्तिवादी नीति करना

(ख) घरेलू शत्रुओंमें व्यक्तिकी रक्षा करना और

(ग) अधिक तौर पर की गयीं सविन्याओं (contracts) को लागू करना।

नरम विचारके व्यक्तिवादी इससे बहुत आगे जानेको तैयार हैं। उनके विचारसे राज्यका जो नाश-मन है उसे गिलक्राइस्ट ने इस प्रकार व्यक्त किया है

(१) बाहरी आक्रमणोंसे राज्य और व्यक्तिकी रक्षा करना

(२) व्यक्तियोंकी एक दूसरेमें रक्षा करना अर्थात् ऐसा प्रबंध करना कि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तिके शरीरको आघात न पहुँचा सके उसका बदनाम न कर सके और उस पर किसी प्रकारका अचन न लगा सक।

(३) चारों दृष्टी या अन्य प्रकारकी सतिमें सम्पत्तिकी रक्षा करना

(४) अनेक सविन्याओं या बंध सविदाओंके भंग किये जानेसे व्यक्तिकी रक्षा करना

(५) असमय व्यक्तियोंकी रक्षा करना

(६) प्यंग मरेरिया जैसी निवारणीय (preventable) बीमारियोंसे व्यक्तियों की रक्षा करना (२८ ३९७-९८)।

व्यक्तिवादी अपने विचारोंका निम्नलिखित तीन दृष्टिकोणोंमें समझन करते हैं नैतिक आर्थिक और वैज्ञानिक।

१ नैतिक तर्क (The Ethical Argument) यह माना जाता है कि चरित्रके विकासके लिए काम करनेकी स्वतंत्रता (freedom of action) अनिवार्य है। इस स्वतंत्रताके बिना मनुष्य एक स्वयं चालित यंत्र मात्र रह जाता है। जीवनको सार्थक बनानेवाणी और आनन्द देनेवाली जो बात है वह यह कि हम अपने जीवनको अपने आत्माके अनुकूल बनानेकी स्वतंत्रता हो। व्यक्तिका उच्चतम विकास सभी सम्भव है जब उसे आत्मनिर्भर बननेका अवसर मिले। जब व्यक्तिको स्वयं अपने ही पर। पर लड़ा होना होता है तब उसे अपने उत्साह अप्यवसाय और मौलिकताकी रक्षण के उपयोग करनेके लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है। यदि उसमें वास्तविक कोई अन्तर्निहित योग्यता (intrinsic worth) है तो उस प्रकट करनेका उग अवसर मिलता है।

समाजका हस्तक्षेप एक हद तक उचित है। पर उसमें आग बढ़न पर वह व्यक्ति का दया देना है। अतिशय (over government) व्यक्तिकी उद्योगशीलताका समाप्त करनेका है और व्यक्ति अपने ही ऊपर निर्भर रहनेके बजाय सरकार पर आश्रित होना सीख जाता है। इसमें याचक मनोवृत्ति (pauper mentality) बढ़ती है व्यक्ति को आश्रय देनेका अवसर मिलता है क्योंकि जो काम उसे स्वयं करना चाहिए उसको दूसरोंके हाथ किये जानेकी वह आगा करता है। अपनी प्रतिभाका विकास करने के लिए उग कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। परिणाम स्वरूप व्यक्ति और समाज दोनों ही हानि होती है। अतिशय न बंधन व्यवस्थाकी रक्षण को मरना है बरिन्स समाजका अकर्मण्य बना देता है। साथ एक ही साथ हम इस बात है।

एक सामान्यतः हा व्यक्ति जन जानेका ही महत्ता की जान समझा है। एक ही सामान्य मननेस स्कार करना (non-conformity) बना भारी अपराध माना जाता है। समाजका विकास रुक जाता है। हर प्रकारकी नवीनताका गन्ती गन्तीकी दृष्टिने स्कार जाता है। इसलिए यह दलील दी जाती है कि यदि व्यक्तिकी प्रतिभाप्रकाश अधिकन अधिक विकास करना है तो राज्यका कार्य-रूप बहुत ही भीषित होना चाहिए। सरकारका अधिकारोंका सागु करने शान्ति और व्यवस्था बनाय रखन और अराजका के लिए दण्ड बनक बनावा और अधिक बुद्ध नष्ट करना चाहिए।

२ आर्थिक तर्क (The Economic Argument) आर्थिक दृष्टि कोणम व्यक्तिवादीकी रूपमें हर मनुष्य स्वाय-सराज्य है और अन हिताना वह सबम अच्छी तरह जानता है। इसलिए यदि हर मनुष्य पूरी तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वह अनन अवसरोंका अच्छे से अच्छा उपयोग करेगा और प्रत्येक रूपम अपना स्वाय सिद्ध करते हुए परीन रूपम समाजका भी हित करेगा। इस प्रकार यदि पक्षीपनिहा स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वह अपने चारों ओर स्म जानकी स्वाज करेगा कि वह अपनी पूरी कृष्ण पर लगाय जिससे उस ज्यादासे योग्य लाभ हो सके। इसी प्रकार मजदूर भी अपने चारों ओर इस बातकी खोज करेगा कि कहा पर उस मजदूरीका अधिकन अधिक मुक्तिप्राप्तक गये मिल सकती है और वह वही मजदूरी करेगा। इस प्रकार स्वतंत्र प्रतियोगिता (free competition) माय और प्रतिवे नियमका बराबर टाक सागु होना समाजके आर्थिक स्वायर्थी तिरा हितकर है। क्रीमन् वेतन किपमा और व्याज पर विनी प्रकारका नियम नही लगाया चाहिए। तार्कि वह स्वय अपन आपका तन्वानीन आर्थिक परिस्थितिके अनुबून बना स। इसी प्रकार विदेशी व्यापारका भी खुली धार देनी चाहिए। ऊँचे जायाउ-निर्वाण करो और सरकारी सहायता आर्थिके द्वारा छोटे छोटे प्रारम्भिक व्यवसायोंका कृत्रिम सहायता नही दा जानी चाहिए। बाजारकी लया और स्वतंत्र करने नया घाना-घडा और जानसाजी आर्थिके रोफने के अलावा आर्थिक लक्ष्य सरकारको बहुत कम काम करना चाहिए।

३ वैज्ञानिक-तर्क (The Scientific Argument) व्यक्तिवादीकी का लया है कि व्यक्तिवादी जीवविज्ञान के उस नियम के विस्तृत अनुरूप है जिसके अनुसार अस्तित्व के लिए बराबर लय (struggle for existence) होता रहता है और इस लयम योग्यतम ही बच पाता है (survival of the fittest)। हरब स्मर इस तर्कके प्रधान व्याख्याता है। उनका कहना है कि जीवन लय और योग्यतम की विजयके नियमसे ही निम्न कार्मिक जीवोंका विकास हुआ है और यदि मनुष्य जातिके सबल समथ और विज्ञानीत बनाना है तो इसी नियमका मनुष्योंमें भी काम करने देना चाहिए। विकास और प्रगतिका स्वाभाविक माग यह है कि गरीब कमजोर और अराज्य व्यक्ति विनीत हो जायें। यद्यपि हमने कुछ व्यक्तिवादीके माग अन्वय होना है पर समाजका हित इसीमें है। स्मर के ही गम्भीर समुदाय प्रहर्षित हम एक बनाय अन्यायनका विचारान पाते हैं। यद्यपि इस अन्यायनम विन्या

है फिर भी यह निष्पत्ति एक तरहकी दयाशीलता ही है। निम्न कोटि की सृष्टि में जो मनुष्यापी युद्ध चल रहा है और जिसमें अनेक व्यक्ति चकित रह जाते हैं वह वास्तव में परिस्थितियों को देखते हुए सबसे अधिक न्यायपूर्ण व्यवस्था है (७४-३२२)। सॉमरस अनुसार इन बातों का निष्पत्ति यह है कि यदि व्यक्तियों को स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो भय और यादों से वे रुढ़ और असमर्थ तथा अयोग्य समाप्त हो जायें। इसका अर्थ यह होता है कि राजा को नेबन बनी नाम बरन चाहिए जिनका लक्ष्य नियन्त्रण नियंत्रण (negatively regulative) हो। राज्य का माध्यमिक स्वास्थ्य जिसे ज्ञान सावधानी पुनर्वास तथा गरीबी की समाप्ति डाकूना की व्यवस्था मुक्त बालू करना आदि कार्यों का नष्ट करना चाहिए क्योंकि ऐसा करना प्रकृति की व्यवस्था (wise provision of nature) में हस्तक्षेप करना है।

४ व्यावहारिक कारण (Practical Reasons) व्यक्तिवाद के समर्थन में सिद्धान्त के समर्थन में उपयोग के सैद्धांतिक तर्कों अलावा कुछ व्यावहारिक तर्कों भी होते हैं। यह कहा जाना है कि जब सरकार बहुत-से काम करने की बागिनी होती है तो वह उन्हें बरी तरह से करती है जिसका नतीजा यह होता है कि काम बहुत देर और न्याय की बहाली होती है। बहुत-सा अच्छा काम किया हुआ जाता। अनुभव बताता है कि सरकारी हस्तक्षेप नतीजा बहुत ही बुरा होता है। अनेक मामलों में व्यक्तिगत व्यवस्था और नियंत्रण की अनेक सरकारी व्यवस्था और नियंत्रण अधिक असफलताएं होती हैं और इसमें स्वार्थपरता तथा भ्रष्टाचार बढ़ जाता है। सरकारें कानूनों बनाती हैं और फिर उन्हें रद्द कर देती हैं। सॉमरस का कहना है कि जहां यह बात सिद्ध होती है कि जहां से अनेक कानून बनीं बनाये ही नष्ट हो जाते हैं।

इससे अलावा मानने के लिए कि यह ज्ञान बहुत ही अन्याय की वजह से है। इस वजह से कि या तो सरकारी हस्तक्षेप विरुद्ध मनुष्य की स्वाभाविक अर्थ की होती है या यह कि कानून स्वयं बुरा होता है।

आलोचना

यह भी है कि व्यक्तिवादी सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण तथ्य दिया हुआ है पर ज्ञान का बहुत बड़ा चक्रांतर हुआ है। यह सिद्धान्त मनुष्य के सामाजिक जीवन के एक पक्ष पर ज्ञान अधिक जोर देता है कि दूसरा पक्ष बिल्कुल भुला ही दिया जाता है। जहां जहां भी ज्ञान हस्तक्षेप करने वाली विधियां बरतें जायें जहां यह सिद्धान्त अपेक्षाकृत बुरा होता है। अपनी बात के समर्थन में दिए गये उदाहरण निम्न रूप में एकत्रित और कुछ हद तक असत्य भी हैं।

व्यक्तिवादियों इस विचार में कि सभी सहज ही कि आपत्तिभरता ज्ञान अज्ञान समाप्ति है जो व्यक्ति को मिल सकती है और सरकार की नीति लगी जानी चाहिए कि इन मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। परन्तु जहां मनुष्य यह भी नहीं

है कि राज्य बचन सुरक्षाकी व्यवस्था करे और अपराधका दमन करे। आधुनिक पक्षोंकी सम्मतिान व्यक्तिके लिए यह असम्भव नहीं था बलिन अवश्य बना दिया है कि यह अपनी सभा दक्षिणायाम सामजस्य-पूर्ण विकास कर सके। आजकाल जीवनम अनन्य एसी परिस्थितियाँ आती हैं जिन पर व्यक्ति अकेले बाधू नही पा सक्ता और उस राज्यकी सहायताकी जरूरत पडता है। राजकीय काय-क्षणका विस्तार बिना बिना अधिनाश लागोके लिए अपना पूर्ण विकास करना सम्भव नहीं है। विपुल व्यक्तिवाद प्रतिभावाली व्यक्तिवादका निमाण करनेकी अपक्षा व्यक्तिवादीन मनुष्याका निमाण करता है। बामोके के गज्जाम आमोचना रहिन व्यक्तिवाद (uncriticized individualism) के अथ समष्टिवाद (uncritical collectivism) म बलन जाने वा खतम हमशा रहता है।

व्यक्तिवादका आधार ही बयओर है। यह मनुष्यका मौलिक मयम स्वार्थी मानता है। हमका आधार वह सुखवादी सिद्धान्त (hedonistic theory) है जिस बहुत पहले ही अत्यन्त सिद्ध किया जा चुका है। मनुष्य बचन अपना ही मला नहीं चाहता बलिन वह दूसराकी भलाई भी चाहता है। हर व्यक्तिम स्वाय और परामय की भावना विभिन्न परिमाणाम पायी जाती है। अन मानव स्वभावके केवल एक पक्षके आधार पर ही राज्यका काय-क्षणका बारेम सम्पूर्ण सिद्धान्त बनाना उचित नही है। व्यक्तिगत बन्धान और पारस्परिक बन्धान परस्पर विरोधी नहीं हैं। वह एक दूसरे पर आधित है। एच जी० वेल्स (H G Wells) का यह कहना गलत नही है कि स्वार्थ किसी भी व्यक्ति या देशको निरदनीय पक्षके अतिरिक्त किसी दूसरे परिणाम पर नहीं ले गया है।

व्यक्तिवाद यह मान लेता है कि हर मनुष्य अपना हिन अपनी भांति समगता है। अनुभव हम यह बताता है कि यह बात अनेक व्यक्तिवाद बारम सही नहीं है। व्यक्ति अपने वनमान स्वायको भन ही ठीक प्रकार समत से पर इस बात का बाई मदासा नही दिया जा सकता कि वह अपने भावी गिताको भी समगता है और फिर यदि व्यक्ति अपने हिताका सबसे अच्छा पारसी होता भी इसके मततब यह नही है कि वह उन हिताकी सिद्धि साधनाका भी इच्छा पारसी है। मानर का कहना है कि हर देशम ऐसे बुद्धिहीन मनुष्य होने हैं जो अज्ञात बचनके विपुल तावधानता नहीं बरन सकते। कभी-कभी राज्य व्यक्तिकी माननिक ननिक और दारीरिक भाव-परमात्राका मयम उस व्यक्तिकी अनेका अधिप पारसी होता है—उन्हाहरके लिए—सावजनिक स्वाय्य और सजाईके मायन। सावजनिक बन्धानकी रण तभी हो मानी है जब राज्य स्वाय्यका हानि पहुँचानेवाली परिस्थितियोंका दूर कर द पाउ पक्षोंका मरवाती नीतीमण हा और बईमान व्यापारिक और धाववाडाका मरवारकी ओरने दष्ट दिया जाय। मुभाकरा यह बर्नन है कि यह व्यक्तिवादी मूर्खता और नैतिक कुटिलताके स्वय यह की रण करे। व्यक्तिगत स्वतंत्रताके प्रषन समर्थक जे० एस० मिल भी मानन है कि यदि कोई व्यक्ति एक पक्षलाफ पुसको पार

करना चाहता है या गुलामी स्वीकार करने जा रहा है ता समाजका हस्तक्षेप कर उसकी इच्छाके विरुद्ध उसकी रक्षा करनी चाहिए।

व्यक्तित्ववादी यह दलील देते हैं कि यदि हर मनुष्यका अपना हित साधनकी छट ॥ दी जाय तो हर कोई सुखी होगा और समाज समृद्ध हो जायगा। यह बात तब सही हो सकती है जब हर व्यक्तिकी हित दूसरेके हितके समान्तर हो और व्यक्तित्वके हितों परस्पर कोई विरोध न हो। पर अनुभव यह बताता है कि मनुष्योंके हित प्रायः परस्पर विरोधी होते हैं। इसलिए हिंसाकी टक्करसे समाजका सुखानके लिए और यह देलन के लिए कि किसी व्यक्तिकी व्यक्तिगत दुःखसताका लाभ कोई दूसरा न उठा पाय राज्यकी शक्तिकी आवश्यकता होती है।

व्यक्तिवादकी प्रथम मान्यता है अपनी अधिकार-परिधि के भीतर पूर्ण व्यक्तित्व (the atomic individual with a fringe of right)। यह कहनेकी आवश्यकता नही कि ऐसा व्यक्ति केवल कल्पनाकी ही वस्तु है। समाज एक सन्निहित इकाई (organism) है इसलिए व्यक्तिके हित उसके सहयोगियोंके हितोंसे एकान्त भिन्न नहीं है। राज्य एक बुराई नहीं है बल्कि एक निश्चित अच्छाई है। राज्य एक कृत्रिम सृष्टि नहीं है बल्कि यह स्वाभाविक विकास है। सरकारी नियमनका यह अर्थ नहीं है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका अवशेष अव्यहरेण हो। जिस प्रकार परिवहन (transport) का नियन्त्रण करनेवाले पृथिवी के सिपाहीके नियन्त्रणके पलस्वरूप परिवहन सुरक्षित और बिस्तृत रहना है ठीक उसी प्रकार राज्य द्वारा व्यक्तिकी इच्छाओं और प्रेरणाओंका विवेकपूर्ण नियन्त्रण समीचे अधिकारोंकी सुरक्षा और विस्तृत कर देता है। राज्य स्वतन्त्रताका विरोधी नहीं है और न समी प्रकारका नियन्त्रण बुराई ही है। 'राज्य प्रतिबंध सगानक' साथ ही हम स्वाधीन और प्रगतिशील भी बनाता है (२२ २९१)। समाजकी सामूहिक व्यवस्थाएं सामूहिक कानूनों द्वारा ही पूरी हो सकती हैं।

व्यक्तिवादी माँग और प्रति' तथा श्वसी प्रतिपोगिता (free competition) का नियमन पूरा-पूरा विश्वास रखता है। यह एक जानी-बूझी बात है कि माँग और पूर्ति का सिद्धांत उतना वैधानिक नहीं है जितना कि उस बताया जाना है। प्रायः उसमें गड़बड़ पैदा होती रहती है। जहाँ तक मुनी प्रतियोगिताकी बात है वह व्यवहारम बहुत कम सिखाती देती है। उसका परिणाम एकाधिकार (monopoly) ट्रस्ट और व्यावसायिक एके (trade combinations) आदि होते हैं जो मुली प्रतियोगिताका उल्टा हैं। औद्योगिक मामलोंमें हस्तश्रम न करनेकी नीतिकी आवश्यकता जिनकी औद्योगिक क्रान्तिके समय थी आज उसकी आवाज भी नहीं है। अब परिस्थितियाँ बिन्दुम भिन्न हैं। जगह-जगह नये शहर बने गये हैं। फॅक्टोरियों काम करनेके लिए श्रमिकों में बड़े-बड़े शहरों में निवास आते हैं। पुराने घरेलू उद्योग प्राधान्य स्थान पर पैमाने उत्पादन (large-scale production) में ले लिया है। परिवहनके माधनारोतेबीने विकास हुआ है। आज व्यक्ति अपने सहयोगियों पर जिनका अधिक निर्भर है उनका बहुत कम नहीं था। इन बरमी हुई परिस्थितियोंमें यह दलील देना

सूचना है कि हस्तक्षेप न करनेकी नीति सबसे अच्छी 'मकानके सम्बंधम' इस कानून जो बीमारियाँ व घनी आबादियोंको दूर कर सके' ऐसी मजदूर विधियाँ जो अच्छा काम मन और अत्यधिक महंगे मजदूरों की राख-याम कर सके और कनटारियोंके बारेम ऐसी विधियाँ जो सरलित मशीना और अनुचित सस्तराज नियमन कर सके (२८ ४०६) इन सबकी हम आवश्यकता है और ऐसी विधियाँ हम राज्यामि पात भी है।

स्वैरर व वमानिक तत्व के विरुद्ध अनवर आपत्तियाँ की जा सकती ह।

याम्यनम (Hill) एक आपत्तिक दण्ड है। जो आज योध्य या उपयुक्त है, सम्भव है पही कल उपयुक्त न रहे। जो एक स्थितिम उपयुक्त ह उसरी नहीं है कि बहु दूरी स्थितिम भी उपयुक्त हो। याम्यनमकी विषयता मननर यह नहा कि वह उल्टी ही ध्येयनमकी विषय हा। याम्यनम' क बच रहन (survival of the fittest) के नियमका मतलब केवन यह भासूम पड़ता है कि जो बच रहता है वह बच रहनके योग्य है। स्पष्टन यह एच अचरीम तक है। क्योंकि यदि बच रहनकी याम्यनमकी एव अकेली कसीटा पही हा कि जो बच रह रही याम्यनम है तब तो संध काटकर मीन उडावेकाना आर हमारी प्रयसावा और भूसो भरनकामा गिल्पो हमारी निगाका पात हो जाता है (२१ ३४६)। हैलावेल (Hallowell) लिखत हैं स्वैररन एच बहुत बडी भूम की है और बहुतत साग मही भूम अब तक करत वन आ रह है। वह भूम यह है कि जो बाते किसी एक विज्ञानके लिए उपयुक्त है उन्हें किसी दूसरे विस्तृत मित्र सहायकाम विज्ञान पर लागू करना।

जो काम निम्न काटिके जीवाके लिए सब हा उसके लिए यह उल्टी नहा है कि वह सृष्टिके ध्येयनम प्राणी मनुष्य पर भी लागू हा। क्योंकि अब हम विकासकी तीढ़ी पर चढ़ते चढ़न मनुष्य तब पहुँचत है तब तब आन्धवजनर नवीन अवस्था पर पहुँच जान हैं। निम्न कोटिके प्राणी हाथ पर हाथ घर अपने आपका प्रवृत्तिका अनुमायी वन जान देने हैं। इससे विपरीत मनुष्य अपनी उच्चतर बुद्धिक मनस प्रवृत्ति की ही अपनी आवश्यकतामकि अनुकूल बना नेता है। इसलिए यह तत्वमन जान पड़ता है कि प्रवृत्तिका मनबाह् उपसे कुछ मोह-म सागोको जीवित रमनका अवसर देनेके बजाय मनुष्य अपने उच्चतर बुद्धिकमका प्रयोग करके यथामम्यव अधिकस अधिक सागोका ववन और जीवित रहनेका मोता है। मनुष्य नीची श्रानि के प्राणिया से बचन बुद्धिकममें ही भिन्न नहा है बल्कि वह अपने विवेक और अपना विश्वसित सहानुभूतिपाके शत्रुम भी उनसे युधक है। उसकी व शक्तिपा उम प्ररित करती है कि वह जीवनम अमनन सागवे प्रति निरयनाका और दारीरिक् न्तिम दुवन साग। क हृदयहीन विनायका विराय व उसकी निगा कर।

आवहारिक कटिनाइपाके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि राज्यर ममूख कायोंकी निगा और विरोध केवन हमलिए उल्टी नहा हा जाता कि सरकारें जनताका करती हैं। व्यक्तिवारी ममूखरा और सरकारों अधिकारिपाकी वनर भूना

का वह संपादन करता है। वह यह भूल जात है कि व्यक्तिगत एजेंसियाँ (private agencies) भी भूलें बिया करती हैं। पर उनकी भूलें इनकी प्रत्यक्ष नहीं होनी और जनताका भरी भाति जान भी नहीं होता। इसमें विपरीत सरकारकी भूलें प्रायः हर एक का भरी भाति जान हा जानी है। यदि सरकार भूलें करती है तो बहुत-से अग्र काम भी करती है जिनके लिए इसकी पर्याप्त प्रशंसा नहीं की जाती। अक्षमियत यह है कि जनता आगा करती है कि व्यक्तियोंकी अपेक्षा सरकार बहुत अधिक कुशलता पूर्वक काम करे। अतएव सरकारका उसकी विफलताएँ लिए जा दाप दिया जाता है वह अनुमान अधिक होता है।

साक्षरप्रकी उपनिषद् कारण व्यक्तिवादीका अवधारणा आज उनकी नहीं रह गयी जिनकी कुछ समय पहले थी। जहाँ नाकनत्र है और जहाँ स्थानीय शासन सबल एवं योग्य है वहाँ समाजवाद और व्यक्तिवादके बीचका अन्तर काफी भीषण हो गया है। निश्चित नियमनके विरुद्ध व्यक्तिवादियोंकी जा आपत्तियाँ हैं व स्थानीय नियमनके सम्बन्धमें अधिक नामूना होता है। दूसरे साम्यवाद राष्ट्रीयकरणके विरुद्ध जा आपत्तियाँ की जा सकती हैं वह नागरिकीकरणके (municipalization) के विरुद्ध नहीं की जा सकती।

कुछ व्यक्तिवादी व्यक्तिवादका विपरीत या परिपक्व अजीबपन समझ बैठनेकी शूल करते हैं। यह बात मिल के बारेमें विषयरूपमें सही है जा व्यक्तिवाद समाजका अभिन्न अंग न मानकर स्वयं भू (Self-centred entity) मानते हैं।

यदि रोगका इलाज करनेकी अपेक्षा उससे बचना अच्छा है तो राज्यका चाहिए कि समाजका हानि बचाव और यदि उसका प्रयत्न बाधक समाजको किसी प्रकार की हानि डालती हो तो उसकी क्षतिपूर्ति भी करे। पूर्ण तटस्थ नीति सरकारके लिए असम्भव है क्योंकि उसका मतलब तो अराजकतावाद है। तीव्र कहते हैं कि एसी तटस्थता व्यक्तिवाद सामाजिक अधिकारोंसे वंचित कर देती है। यह सहयोग और नियंत्रित उद्योग होनेवाले समाजकी आरम्भ जालें मूल सत्ता है।

साक्षर न व्यक्तिवाद सिद्धान्तके विरुद्ध अनवरत लड़ते हैं। उनमें से मुख्य तर्क यह है कि व्यक्तिवाद नैतिक दृष्टिमें अप्रगम है। साक्षर कहते हैं कि व्यक्तिवादका अर्थ है शीघ्र स्वायत्त अधिकारोंमें शक्ति का स्थानीय निवास-स्थान और समाज के अतिरिक्त अधिकार व्यक्तिवादों को नहीं मिला है। कमजोरीका अनिश्चित साम साम्यवाद जाता है। मजदूरोंकी शक्ति करनेकी शक्ति पूँजीपतिकी शक्ति पर बराबर न होनेके कारण मजदूरोंकी शक्ति दोषम प्रायः हार जाता है। बाजारका उत्पन्न-वृद्धि (सोवियत) असमानताका अन्तः प्रगटन (apotheosis of inequality) है (४३ १९१)। माग और पूर्ण मित्रतावादी प्रतिस्पर्धा किसी तरहका सामाजिक मूल्य चाहिए नहीं होता। विभाजनकी शक्ति द्वारा अपार भ्रष्टाचार पैदा की जाती है मत-भ्रष्टाचार गंदे पराजित बननेका जाता है। इसलिए बाजारका समाजवादी समाजिक मूल्यकी व्यवस्था के साथ समस्त सामाजिक मूल्योंको भट कर लेनेवाली व्यवस्था है।

गितजाइय ने व्यक्तिवादी के पक्ष और विपक्ष के तर्कोंका निष्कर्ष इस प्रकार दिया है

(१) व्यक्तिवाद आत्मनिर्भरता पर जोर देता है।

(२) वह अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेपका विरोध करता है।

(३) वह समाजमें व्यक्ति के महत्व पर जोर देता है।

(४) इसने बरा बरा-सी बातोंमें हस्तक्षेप करनेवाली व्यर्थकी विधियाँ को रद्द करनेमें सहायता की है।

‘एन व्यक्तिवाद’ राजकीय नियमोंकी बराहवाका बहुत बडा चडाकर कहता है। वह यह भुल जाता है कि राज्य द्वारा किये गये बाजोंम बुर कामाकी आत्मा भण्ड बाजोंके उपादरण कहा अधिक है। इसमें व्यक्तिवादकी समान एक भ्रामक धारणा प्रचलित की है और साथ ही व्यक्तिवाद आधुनिक अर्थ व्यवस्थाके बिना चलन ही अनपेक्षित माना हुआ है (२८ ६०८)।

जी० डी० बर्न (C. D. Burns) ने पूरी समस्याका सभ्यतम हल ‘राज्यम व्यवस्था’ दिया है। व्यक्तिवाद सामाजिक उद्देश्य के पक्ष कायोंक सामाजिक परिस्थितकी ओरसे आगे भूत मता है। एक जातीय रूपमें व्यक्तिवादका अर्थव्यवस्था बहुत उज्ज्वल है। मूलतः तत्त्व की गयी इस सिद्धान्तकी भूमि और इसकी प्रुतिष्ठा विन्तुल स्पष्ट है। पर उनके बावजूद यह सिद्धान्त अभी तक प्रचलित है। व्यक्तिवाद के साथ पूरा-पूरा ग्याव करने के लिए हमें उसकी आत्माका उस आधुनिक स्वरूपमें पक्ष करना होगा जिसमें वह पक्ष पहल प्रवृत्त हुआ था और अर्थव्यवस्था स्वयंसे हम एक सम राज्यकी कल्पना एमें व्यक्तिवादके सभ्य रूपमें करनी होगी जो अर्थव्यवस्थामें हमसे स आजाद सभ्य धर्म व्यक्तिकी अनेका प्रुति अर्थव्यवस्था और उन्नत होंग जिसका कि अपन पूरा आत्मिक बर्बर मनुष्याकी अनेका हम स्वयं विवर्धित और मनुष्य है (९ २४९ २३०)।

२ समाजवादी सिद्धान्त (The Socialistic Theory)

समाजवादी राज्यका निश्चित अच्छाई (positive good) मानने है। इसलिए उनकी मान है कि राज्यकी कमसे कम काम करने के बजाय अधिकसे अधिक काम करने चाहिए। उनका विश्वास है कि यही एक मार्ग है जिसके द्वारा अधिकतम मानव समाज के लिए सामाजिक ग्याव सम्भव है। सचता है। उनका सम्य यह है कि एक समा ‘सामूहिक, पूर्णसंघ (cooperative commonwealth) स्थापित किया जान जिसका कि उत्साहन सभी साधनों पर नियंत्रण हो और जो सामूहिक वितरणका प्रवृत्त करता हो। समाजवादम् उपायानक साधनों और विविध पक्ष मार्गजनिक प्रवृत्त होगा और वेन आवश्यकता अनुसार नियंत्रित जाय।। बुद्धिवादी समाजवादी समान वितरण (equal distribution) का समर्थन करने हैं और बुद्धिवादी समाजवादी समान वितरण (equitable distribution) का समर्थन करते हैं।

समाजवादकी मुख्य अन्त्याश्योंका हम सशेषमें यों ध्यान कर सकत हैं

हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाकी सचविदित बुराईयोंका समाजवाद विराध करता है और एक मौलिक परिवर्तनकी माँग करता है। आजकल पूँजी और शक्ति कुछ थोड़े-से मोनोंके हाथमें केन्द्रित है। मजदूरको उसका उचित भाग नहीं मिलता। चूँकि मजदूरकी आर्थिक शक्ति मौलिक शक्तके बराबर नहीं होती इसलिए मजदूर को मजबूर होकर मौलिकसे दबना पड़ता है। वर्तमान व्यवस्थासे सम्पत्ति और अवसरप्राप्ति (opportunity) में घातक असमानताएँ पैदा होती हैं। समाजका किसी सवा या वस्तुकी एक इकाईकी आवश्यकता है तो वृथा ही अनेक इकाईयोंका निर्माण हो जाता है जिससे समाजकी पूँजी और धन नष्ट होते हैं। ऐसे समाजमें राष्ट्रीय स्तर पर कोई व्यापक आर्थिक योजना नहीं होती। अनियंत्रित प्रतियोगिताके फलस्वरूप मजदूरों को कम वेतन मिलता है उत्पादन छकरतसे बढ़ावा होता है वस्तुआके मूल्य गिर जाते हैं और बेकारी बढ़ती है। वर्तमान व्यवस्थामें धनलोभपता अन्धाय बढ़माणी और व्यक्तिगत चरित्रके स्तरको सामान्यतया नीच गिरानेकी प्रवृत्ति है (२२ ३०२)।

समाजवादमें सावधानतासे बनायी गयी योजनाओंसे धनका वृथा उपयोग आवश्यकतासे अधिक उत्पादन अनावश्यक विज्ञापन और हानिकारक वस्तुआका उत्पादन हट जायगा। परोपकार तथा समाजके लिए उपयोगी बननेकी इच्छा और कायम नित्यार्थ हजि-जिती प्रवृत्तियाँ जिन पर बल देना चाहिए समाजवादके आदर्श हैं। समाजवादीयोंके अनुसार सामूहिक स्वामित्व (collective ownership) और सामूहिक व्यवस्था (collective management) पूर्णतया लोकतंत्रीय (thoroughly democratic) व्यवस्था है। समाजवादीयोंके समर्थकोंका कहना है कि लोकतन्त्र का ही जगला उद्गम समाजवाद है। जहाँ कहा समाजवादी नीतियाँ और कार्यक्रम व्यावहारिक रूपमें अपनाये गये हैं वहाँ वह अधिकतर सफल हुए हैं।

इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि समाजवादीयोंने वर्तमान औद्योगिक व्यवस्थामें जो साराधियाँ बतलायी हैं उनमेंसे अधिकतर सही हैं। हम समाजवादियोंकी यह बात भी मान सकते हैं कि उन बुराईयोंका हल यही है कि वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाके स्थान पर एक नयी व्यवस्था कायम हो। पर इसका मतलब यह नहीं है कि यह नयी व्यवस्था समाजवाद ही हो। समाजवादको एक राजिय व्यावहारिक रूप देनेमें जो कठिनाइयाँ हैं वे इनकी अधिक हैं कि उनकी आसानीसे उपना नहीं की जा सकती।

समाजवादी व्यवस्थामें बहुत अधिक प्रजासत्तीय कठिनाइयाँ हानरी सम्भावना है। निरन्तर डाकू तार टसीक्रीन और रेला का प्रयोग अनेक देशोंमें काफी सफलता के साथ किया गया है। पर प्रतियोगिताका अभावमें हम यह नहीं कह सकते कि उनका प्रबंध कमसे कम सर्वश्रेष्ठ ही हो रहा है। कुछ वर्ष पहले इंग्लैंडके पार्लियामेंट में कहा था कि उस देशकी डाकू-व्यवस्थाका प्रबंध व्यक्तिगत संचालनमें और अधिक कुशलताके साथ हो सकता था। यदि हम यह मान भी लें कि आज कुछ पाँच

राष्ट्रीय उद्योग बढ़ने ही मितव्ययिता और कुशलतापूर्वक संचालित हो रहे हैं तो भी इसमें यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सभी उद्योगोंके व्यापक राष्ट्रीयकरणका परिणाम भी इतना ही सुन्दर और प्रगतिशील होगा। समाजवादी आलोचकाका कहना है कि राज्यके कार्योंका बड़ात रहनेका अर्थ यह होगा कि सरकारका धामन पत्र अपने ही बाँधसे बँकर टूट जायगा। यह धारणा ठीक है कि समाजवादीको सरकारी व्यवस्था पर अधिकतम अधिक निष्ठा और विश्वास है।

मनुष्यके नैतिक विकासकी वर्तमान अवस्थाम समाजवादी के मतस्वरूप स्पष्टाचार, गुणवत्ता और व्यक्तिगत समन्यक कार्यों और व्यवसायिक अभ्युदय वृद्धि होगा।

यह कहा जाता है कि समाजवादी विकासके अनुकूल नहीं है। महत्त्व करनेके लिए प्रोत्साहनकी प्रेरणा सम्मिलन समाप्त हो जायगा। आज साधारण मनुष्य अपने लान के लिए ही अधिकतर काम करता है न कि सामाजिक उपयोगिताकी परमाय भावना से। समाजवादी राज्यमें मनुष्यका व्यक्तिगत प्रेरणाके नष्ट हो जानका भय है। समाजमें जीवन एक रूप और अर्थव्यवस्था हो जायगा। सरकारी नियंत्रणमें नयी-नयी आविष्कारनाशक प्रेरणा नहीं रहे जायगी।

आज भी व्यक्ति उसका कमजोर और असहाय नहीं है जिसका वह कमी-कमी बताया जाता है। मजदूर-मध्य और मण्डलके अन्य साधनके द्वारा वह बूझा अपने लिए हितकर सोच तथा करणमें समर्थ हो जाता है।

समाजवादी व्यक्ति स्वतंत्रता पर राय लग जानकी तथा व्यक्तिगत परिवर्तनके पणित हो जानेकी आशंका है। हब्स स्पेंसर का विश्वास है कि समाजवादमें समाजका हर सम्बन्ध व्यक्तिके रूपमें पूरे समाजका दाव हो जायगा। समाजवादी व्यक्तित्वका दमन होगा प्रतिभा कुण्ठित हो जायगी और नागरिक आलसी और अकर्मण्य हो जायगे। व्यक्तिगत अनुप्रेरणा समाप्त हो जायगी। उत्तरदायित्वकी भावनाका नीचरसाही द्वारा लोप और सरकारी विभागोंका शासन सर्वोपरि हो जायगा।

उत्पादनमें सम्मिलित उत्तमता (quality) औरपरिमाण (quantity) दोनों ही दुष्टिप्राप्ति कभी हो जायगी।

व्यक्तिवादी और समाजवादी सिद्धांतोंका मूल्यांकन (Evaluation of The Individualistic and Socialistic Theories) व्यक्तिवाद और समाजवाद दोनों ही महत्त्वपूर्ण बातें हैं परन्तु दोनों ही उभय सत्यका बहुत बड़ा चित्रण कर रहते हैं। दोनों ही वैज्ञानिक और विश्वारम्भक हैं। जैसा किगुड व्यक्तिवाद अव्यक्त है वैसे ही किगुड समाजवाद भी अव्यक्त है। हमें सा ज़रूरत है एक ऐसी व्यवस्थाकी जो व्यक्तिगत गुणोंका सुरक्षित रखनेके साथ ही समाजको भी एक महान् इशारेके रूपमें आत्ममें रखे। अर्थ का यह कहना किगुड ठीक है कि 'यदि हम किसी एक आत्माकी कल्पना कर सकें जो एक साथ ही व्यक्तिवादी और समाजवादी दोनों ही हो तो व्यक्तिगत विश्वारम्भक मनुष्य उसे समाजवादी आत्म माने (१० २३२)। उन्हीके मतमें 'यदि एक और हमारा मुख्य भावना स्वाय

साधने और पूरक रहनेकी ओर होता है तो दूसरी ओर हम अपने व्यक्तिगतको 'बहुत् समाज' (The Great Society) के अटल प्रवाहमें छो देनेकी ओर भी प्रवृत्त होते हैं । व्यक्तिवादीका व्यक्तियोंकी विभिन्नता चाहना उचित है और समाजवादी का सार्वजनिक हितको महत्त्व देना भी ठीक है क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिका पूर्ण विकास पूरे समाजके जीवनमें अपने कर्तव्योंका पालन करनेमें है (१० २७५)।

समाजवादीकी प्रत्यक्ष मृट्टियोंके होते हुए भी समाजवादी आन्दोलनकी सिद्धिके लिए राजकीय कार्यवाही धीरे धीरे विस्तार करनेकी विवेकशील नीति अपनाना बुद्धिमानी होगी। जिसका सक्षय साथ ही साथ मानव-जातिवा नैतिक उत्थान करना भी है। छोटे उद्योग-व्यापार स्वतन्त्र प्रतियोगिताकी अनुमति दी जा सकती है पर बहुत-से लोगोंके जीवनको प्रभावित करनेवाले बड़े पमानेके उत्पादनमें राजकीय स्वामित्व और नियंत्रणकी व्यवस्था आज अपनायी जा सकती है।

३ आदर्शवादी सिद्धान्त (The Idealistic Theory)

हीगन आदिके अतिवादी आदर्शके स्वरूपकी चर्चा न करके हम अपने आपको अग्रिम आदर्शवादियों तक ही सीमित रखेंगे। अग्रिम आदर्शवादियान राज्योंके कार्यके बारेमें एक ऐसे सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है जिस पर सम्भीगतापूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है। आदर्शवादी राज्योंको बहुत अधिक महत्त्व देते हैं और राज्योंको प्रत्येक व्यक्तिके सर्वोत्तम सत्त्वकी मूर्ति मानते हैं। वे राज्योंको एव नैतिक सत्ता मानते हैं जिसकी आज्ञापालन करने हम स्वयं अपनी ही आज्ञाका पालन करते हैं। यह कि आदर्शवादी राज्योंको इतना गौरवपूर्ण स्थान देते हैं इसलिए यह आश्चर्य की जा सकती है कि वह राज्योंके लिए एक व्यापक कार्य-यान भी निर्धारित करेंगे। पर उन्होंने इस कार्य-क्षेत्र का सर्वोच्च बना दिया है। इस विरोधाभासका कारण आमानीसे मासूम किया जा सकता है।

आदर्शवादी व्यक्ति और राज्य दोनोंके उद्देश्यको एक ही मानते हैं। यह उद्देश्य है आदर्श 'सुन्दरतम जीवन' या मनुष्यकी बौद्धिक आध्यात्मिक तथा नैतिक उत्थिति (promotion of the excellence of human souls) (बाग्राके)। पर यह उद्देश्य इतना अधिक व्यक्तिगत और आन्तरिक है कि इसकी सिद्धि व्यक्तिने अपने प्रयत्न पर ही निर्भर करती है। नैतिक सद्गुण या सत्प्राण तो स्वयं अजिन हाता है। नैतिक जीवनके अग्रजक लिए व्यक्तिको अपने भराप छोड़नेका एक दूसरा कारण यह है कि राज्यका माधन शक्ति और दबाव देने चाहती है कि नैतिक शक्ति

होगमन का कहना है 'राज्यने डॉक्टर, नर्स सहित मास्टर व्यापारी उत्पादक बीमा एजेंट मकान बनानेवाले मगरकी यात्रा बनानेवाले रेनके निर्देशक आदि सैकड़ों अन्य प्राणिक कामके उत्तरदायित्वका स्वीकार कर लिया है।

जैसी आन्तरिक थपत्ताकी सिद्धि बहुत सरल नहीं हो सकती। क्योंकि के सम्बन्धमें 'अद सामूहिक इच्छा' (राज्यकी इच्छा) हमें एक ऐसे सामाजिक सुसावके रूपमें नहीं मिलती जिस स्वीकार करनेके लिए हम अपने आप तैयार हो जानें बल्कि एक व्यक्ति या व्यक्ति पर आधारित सत्ताके रूपमें मिलता है तो यद्यपि वह स्वयं हमारी ही इच्छा हानका दावा कर सकती है पर उस समय उसके इस दावेकी माननेमें हम सहमत नहीं हो पाते। परिणाम यह होता है कि या तो हम मजबूरी की तरह उसकी आज्ञा मानते हैं या फिर विद्रोह के लिए तैयार हो जाते हैं (५ २०१ २०२)।

इसलिए राज्यका कार्य-नियमननक या नकारात्मक है। राज्यका काम व्यक्तिगत भाग्य मानना तो बाधाओंको हटाना है ताकि व्यक्तिको श्रेष्ठतम जीवनके अवसर उपलब्ध मिल सकें। इसका अर्थ है कि राज्यका कर्तव्य व्यक्तिके श्रेष्ठतम जीवनके मार्गमें आनेवाली बाधाओंका निराकरण (hindrance of hindrances) या समस्त मुविधाओंका मुविधापूर्वक उन्मूलन करना (adjustment of all adjustments) है। यदि राज्य इसमें अधिक काम करता है तो वह व्यक्तिगत नैतिक उत्थानको अक्षय्य करता है। ज्ञाते कि पहलू कहा जा चुका है मानव आत्माकी महानता स्वयं अज्ञित करनेकी बल्लु है। यह महानता बाहरसे नहीं दी जा सकती। यदि बाहरसे देना सम्भव भी हो तो या ऐसा करनेका किसीको अधिकार नहीं है। इनामके मातृत्व या पदके जगमे भरिपरा विराम एक व्यर्थका विचार है। जैसा कि बादाके न कहा है 'सच्ची वास्तवता और सामाजिक सेवाके अनुशासन में नैतिक सत्यता निर्धारित करनेका प्रयत्न करना स्वयं एक विरामी बात होना (To attempt to assign material success in proportion to true merit and social service would be fully contradictory) एवं और नैतिकता इनमें अधिक व्यवस्थित और आध्यात्मिक है कि जब राज्य उन्हें प्रत्यक्ष तौर पर लागू करता है या उनका समर्थन करता है तब उनका महत्व ही जाता रहता है। यदि राज्य यह कार्य अक्षय्य या दूसरे तौर पर करे तो बात दूसरी है। बिचिकी सीमाके भीतर मानवाने व्यवहारके मामलोंमें राज्यका कार्य-नियमननक होनेके कारण बाहरी कामों तक ही सीमित रहता है। अनिश्चय (intention) का भी विचार किया जा सकता है और प्राप्त किया जा सकता है पर उम्मीद हमें तक नहीं तक उनका प्रभाव बाहरी बाधक पर पड़े। राज्य केवल उत्तम ही अभिप्राय लागू कर सकता है जिसका बाहरी कार्य कर्तव्योंके बारेमें निश्चित आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए आवश्यक हो। प्रत्येक (motives) पर विचार करना राज्यके लक्ष्य के बाहरकी बात है। उनका सम्बन्ध व्यक्तिकी आत्मासे है। प्रत्येकको परचनके लिए राज्यके पास कोई साधन नहीं है। नैतिक दृष्टिकोणों से अभिप्रायों (intentions) और प्रत्येक (motives) में कोई अक्षय्य नहीं है। पर वैयक्तिक दृष्टिकोणों से आत्माकी इनके अक्षय्य पर जोर देते हैं। उदाहरणार्थ राज्य मन्त्रियोंको देने अर्थोंको हटाने करनेके लिए मजबूर कर सकता है पर राज्य इस कार्यके लिए कोई निश्चित प्रयत्न नहीं लागू कर सकता। मन्त्रियों करने अर्थोंकी

चाहे किसी उच्च प्रेरणासे स्कूल भर्जें अथवा किसी निम्न प्रेरणासे पर जब तक स्कूल भर्जनेका ऊपरी काम पूरा होता रहता है विधि सन्तुष्ट रहती। पर अभिप्राय महत्वपूर्ण होते हैं। क्योंकि अभिप्राय ही किसी कायको स्वेच्छाजय (voluntary) बनाता है। उदाहरणके लिए किसीको साधारणतया ऐसे कार्योंके लिए सजा नहीं दी जायगी जो अनजानेमें या दुष्टटनावण हो गया हो। यदि उसे सजा दी भी जायगी तो वह कभी न हागी। विधि अभिप्रायोंकी बाहरी नाप-जोख भी करती है और इस प्रकार विधि कार्यों और अभिप्रायों दोनों पर ऊपरी दृष्टिसे विचार करती है।

टी० एच० ग्रीन के दृष्टान्तमें केवल बाहरी कार्योंके लिए ही जिम्मेदारी ठहरायी जा सकती है। विधिवा आदेश उनमें द्वारा सिद्ध होनेवाले नतिक उद्देश्यसे ही निश्चित किया जाना चाहिए। विधि केवल कुछ कामके करने या न करनेका आदेश दे सकती है। पर प्रेरकोंके बारेमें वह कोई आदेश नहीं दे सकती। विधिको केवल ऐसे ही कार्योंके करने या न करनेका आदेश देना चाहिए जिनका किया जाना या न किया जाना—प्रत्येक चाह कुछ हो—समाजके नतिक लक्ष्यके लिए आवश्यक हो (१९ पृ० ९)।

ग्रीन ने इस सिद्धान्तके आधार पर ऐसी अनेक विधियाँकी आलोचना की है जिन्होंने धर्म आत्मसम्मान अथवा पारिवारिक भावनाओंको कमजोर किया है। ईंग्लैण्ड में उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धकी परिस्थितियाँ पर उत्तम जीवनके मार्गमें आनेवाली बाधाओंको हटानेके सिद्धान्त को लागू करते हुए ग्रीन ने अनिवार्य शिक्षा धरावके व्यापारका नियंत्रण और ऐसी सविभागमि हस्तक्षेप करनेका जोरदार समर्थन किया है जिनमें सविभाग करनेवाले दोनों पक्षोंकी सौग करनेकी शक्तिम अन्तर हो। निरपराध और धरावका अनियंत्रित व्यापार उत्तम जीवनके मार्गमें बाधक है। इसलिए राज्यको अनिवार्य शिक्षा और धरावके नियंत्रणका प्रबन्ध करके इन बाधाओं को दूर करना चाहिए। अधिकांश माता पिता अपने बच्चोंको शिक्षा देनेका महत्व समझते हैं। इसलिए अनिवार्य शिक्षाके लागू होनेसे उनकी अपनी आत्मिक प्रेरणाका अन्त नहीं होगा। उन लोगोंको छोड़कर जिनमें शिक्षाके लिए आत्मिक प्रेरणा नहीं है और किसी के लिए अनिवार्य शिक्षा अनिवार्य नहीं होगी (२९ पृ० ९)। यही दलील बहुत कुछ धरावके व्यापार पर भी लागू होती है। यदि धरावकी बरोक-टोक बिना बहुतसम्भव लोगोंको उत्तम जीवनकी प्राप्तिसे भागमें बाधा पहुँचाती है तो, राज्यका कर्तव्य है कि वह धरावके व्यापारका नियंत्रण करे। सविभागकी स्वतंत्रतामें हस्तक्षेप करनेके बारेमें ग्रीन का यह तर्क ठीक है कि हमें न केवल उन लोगों पर विचार करना चाहिए जिनकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप किया जाता है बल्कि उन भाग पर भी विचार करना होगा जिनकी स्वतंत्रता हस्तक्षेपके कारण बढ़ जाती है (२९ पृ० २)। भूमि स्वामित्वके सम्बन्धमें ग्रीन का आर्ग्य यह है कि छोटे-छोटे भू-स्वामियोंका वर्ग हो जा अपनी जमीनको छाना जाता है।

बहुतेरे ऐसे भाग भी जा राजकीय कार्यभारके बारेमें आर्ग्यवादी दृष्टिकोणका स्वीकार नहीं करते यह माननेको तैयार हैं कि धर्म और नीतिना जैसे जीवनके

उच्च तत्वोंको राज्य द्वारा लागू नहीं किया जा सकता। पर वह ऐसा कोई कारण नहीं पाने जिससे राज्य सामाजिक कल्याणके विकासके लिए आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धोंका नियन्त्रण न करे। वास्तविक इसका उत्तरमें कहेंगे कि आर्थिक और सामाजिक जीवन नैतिक और धार्मिक जीवनसे एकत्र भिन्न नहीं है। व्यक्तिके आर्थिक और सामाजिक हिताका नैतिक और आध्यात्मिक हितासे गहरा सम्बन्ध है। उन्हाहरणाय बहुधा अच्छे परिवारका मतनव मुन्दर व्यवहार उच्च आत्मा और उच्च काटिका धार्मिक जीवन हो सकता है। इसलिए राज्यका कार्य जीवनसे उच्च और निम्न दोनों प्रकारके कल्याणके लिए अग्रसरण ही हो सकता है। आध्यात्मिक कल्याणकी भाति भौतिक कल्याण भी बाहरसे मिलनेकी अपेक्षा स्वयं अर्जित होना पर अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। फिर भी ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जिनमें भौतिक परिस्थितियां उत्तम जीवन की प्राप्तिमें सक्रिय रूपसे बाधक हों। ऐसी हालतमें वन बाधाओंका दूर करना राज्यका कर्तव्य है। पर इस सम्बन्धमें भी बोलाके का तब यह है कि हम यह मान न भूलनी चाहिए कि जिस हद तक भौतिक पदार्थ हमारे उच्च काटिक जीवनमें प्रवेश कर पाते हैं और 'हमारी बड़ि और इच्छाके बाधक' बन जाते हैं उस हद तक राज्य केवल अग्रसरण रूपमें ही उन्हें लागू कर सकता है। यही कारण है कि 'पारिस्विक स्वायत्त आत्मसेवक' मतान और पयाप्त आत्मनी आदि सरकार द्वारा नहीं दिये जा सकते। उत्तम जीवनके विकासके लिए राज्य जिन मामलोंमें प्रत्यक्ष कारवाई कर सकता है व केवल ऐम ही मामलों हैं जहां विकासकी साधारण रूपरेखा ठीक तरह मान्य है और जहां इस प्रकारके हस्तक्षेपसे स्वतंत्र होनेवाले धार्मिक मान्य और बहिर्जन उन अधिकारोंकी अपेक्षा नहीं अधिक हैं जिनको इस प्रकार छीना या भंग किया जाता है। इस समस्याका बल प्रयाग (compulsion) और आत्मप्रति विकास (spontaneous growth) के भेदसे समझा जा सकता है। बोलाके सहायता तथा आत्म निर्भरताके अन्तर पर डार न देकर इच्छा (will) और यांत्रिकता (automatism) के अन्तर पर डार देने हैं।

राज्यका कार्यक्षेत्र बाहरी कार्यों तक ही सीमित रहता है और इस कारण राज्य के कार्यक्षेत्र प्रत्यक्ष रूपसे आध्यात्मिक सहायकी प्राप्ति नहीं हो सकती। पर इस तथ्य के मद्देन यह कहा है कि राज्य निरर्थक है (does not mean administrative nihilism) (३ पृ० ६)। इसका मतलब केवल इतना है कि उत्स्वन्न जीवनकी प्राप्तिके लिए राज्य द्वारा कार्य किये जानेके पूर्व व्यक्तियोंमें स्वयं एक निश्चित प्रयत्न और सपर्य होना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें राज्यके कार्य करनेसे पहले ही सनाजको प्रधान करना चाहिए। अथवा उदाहरणके लिए 'एक अच्छा परिवार मनुष्यके उत्स्वन्न जीवनका अंग न बनकर उसके सहायका एक ऐसा अतिक्रम हो जायगा जिसकी सति-श्रुति न हो पायगी। अतः राज्यके कार्यको हम प्रत्यक्ष कारवाईकी अपेक्षा व्यक्तिगत या सामाजिक उद्योगका समर्थन कह सकते हैं। राज्यका कार्य प्रत्यक्ष रूपसे मन्दर जीवनका विकास करना न होकर उसे जीवनकी रक्षा करना

उस ठोसहित करना और संगठित करना है। यह भी एक कारण है कि हम बड़ा राज्यको दोष सब प्रकारकी समस्याओंसे जँचा स्थान देने हैं और उसे अन्य समस्याओंको उचित स्थिति पर कायम रखनेका अधिकार देते हैं। हमारे सामाजिक राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक संगठन वे प्रयोगशाखाएँ हैं जिनमें हम उत्तम जीवनकी प्राप्ति के प्रयोग करते हैं। इन प्रारम्भिक प्रयोगों और किसी बिनाय उद्योगिक पथमें जन भावना जगानेमें सफल होनेके बाद ही हम इस बातकी आशा कर सकते हैं कि राज्य हमारी सहायता करे और तभी हम सुन्दर जीवनकी प्राप्ति कर सकते हैं। यदि राज्य जनतासे पहले सक्रिय हो उठता है तो उसका नतीजा यह होता है कि राज्य समाजका अभिभावक सा बन जाता है और समाज राज्यके आदेश पर ही चलन लगना है तथा समाजकी प्रयत्नशीलताका भारी दायित्व पड़ुचनी है।

आलोचना

राजकीय नायक मध्य धम यह दुष्क्रिय विधि और नैतिकतासे बीचने भदका बहुत बड़ा चढ़ाकर बतनाता है। यह सही है कि नैतिकताका बहुत बड़ा भाग विधिके मायरेम बाहर ही रहता है पर नैतिक वर्तमान बड़ी हूँ तब विधि द्वारा भी लागू होते हैं वे बहुत कुछ विधि द्वारा लागू किये जाते हैं। उनकी अनुमति ठीक प्रकारसे महा की गयी है। उदाहरणके लिए दण्ड विधि (criminal law) का नैतिक प्रभाव क्षत्र बहुत व्यापक है। सभी समय राज्य जानवरोंके प्रति निशयनाकी निंदा करते हैं क्योंकि जानवरोंके प्रति निर्भयता अनिष्ट है और इसलिए राज्य उसमें निषेध देता है। इस मामलमें राज्य प्रत्यक्ष रूपमें और ठीक तर्कसे नैतिकता लागू करनेकी वागिस्त करता है। साथ ही साथ विधिके एसा क्षत्र भी है जिसका प्रभाव नैतिकता पर इतना अप्रत्यक्ष होता है कि हम उसकी उपयोग कर सकते हैं।

अच्छ जीवनकी बाधाओंका निवारण करना (hindrance of hindrances) एक ऐसा कथन है जिसमें एक मीध-साधे मध्यका घुमा फिरा कर बनावकी दृष्टि कहा गया है। उदाहरणार्थ एक साधारण व्यक्ति ना यह कहगा कि योजना परिस्थितियों में प्रारम्भिक विचारकी सब कहीं उलट है और इसलिए राज्यका उसका प्रबंध करना चाहिए। पर जब उसमें यह कहा आया कि निश्चयना अर्थ जीवनके मायमें एक बाधा है और निष्पुण्य विज्ञा एक दूसरी बाधा है जिसे राज्य पहली बाधाको दूर करनेके लिए काममें लाता है तो यह हम कथनको बनावकी ओर पड़नाऊ व्याख्या समझता। आत्मवादी राज्यके नायके निषकारक स्वयं पर अधिक जोर देता है। हमारा विश्वास है कि राज्यको निषकारक (negative) और त्रिपारक (positive) दोनों ही तरहसे काम करने चाहिए। पर इस बातकी सावधानता रखनी चाहिए कि उससे नागरिकोंकी स्वयं कार्य करनेकी प्रवृत्ति (spontaneity) समाप्त न हो जाय। उदाहरणार्थ निष्पुण्य विज्ञाकी व्यवस्था निषकारककी योजना त्रिपारक ही है।

धीन और घांसाके का यह अनुमान भ्रम है कि सरकार हर नियामक कामसे व्यक्तिपरिमित स्वतंत्र काम करनेकी प्रवृत्ति बम हामी और वे राज्यकी मशीनके पुञ्जकी तरह काम करेंगे जिसके कारण उनका व्यक्तित्व कमजोर हो जायगा। कमसे कम कुछ असा तक तो यह सब समय म्यान और परिस्थितियाँ पर निर्भर करेगा।

राजकीय कार्यके इस सिद्धान्तमें यह खतरा भी है कि 'उत्तम जीवनकी बाधाओंके निराकरण करने का काम राज्य बहुत देरमें उठाये। यदि राज्य एक तन्त्रस्य दण्ड मात्र बन जाय और हम लोगोंका सुन्दर जीवनकी प्राप्तिके लिए प्रयासित सपर्यं करनेका छोड़ दे तो बहुत सम्भव है कि वह इतना अकर्मण्य हो जायगा कि उस स्थिति में उस उबारना कठिन हो जायगा। इस आलोचनाका उत्तर सामान्य यह देते हैं कि राज्य एक उन्मादीन दण्ड नहीं है बल्कि वह उस चीजकी भाँति है जो अपने छोटे-छोटे बच्चों पर अपने पालाका साथ रखती है और पालनेकी रखा करती है (Dialectic Ch. 33 Verse 11) और ऐसा करनेमें उसका उद्देश्य बच्चोंका आत्म निर्भरताकी गिना दना होता है न कि उनका बिलग होना। सामान्य मानते हैं कि जब तक विभिन्न वैधानिक तरीक़ों पर विचार किया जा सकता है तब तक यह सोचना व्यर्थ है कि राज्य हमारी पुकारावो मुनी अनमुनी करता रहेगा।

एक दूसरी आपत्ति यह उठायी जा सकती है कि 'समाजकी आध्यात्मिक नावका मनुष्यके विवेक या अन्तरात्मा में प्रस्थापित करनेमें आत्मवाणी इतना व्यस्त हो जाता है तथा आन्तरिक मन्त्र और उसकी स्वतंत्र इच्छा (free will) के स्वामित्व (autonomy) में इतना उमंग जाता है कि व्यक्तिकी भौतिक परिस्थितियों का सुधारन की आवश्यकता उसके विचारमें आमतो नहीं आती है। इस आपत्तिके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि आत्म और समाज एवं आध्यात्मिक और भौतिक सब एक दूसरेमें एकत्र भिन्न नहीं हैं बल्कि वह एक दूसरेके सम्बन्धित हैं। सिद्धान्त रूपमें यह बात साफ़ जिनमा मनी है पर व्यवहारमें यह सम्बन्ध हमेशा स्पष्ट नहीं मिलता।

अन्तिम आपत्ति यह है कि उत्तम जीवनकी बाधाओंके निराकरण करने का विचार करना अनिश्चित और अस्पष्ट है कि उसका प्रयोग व्यक्तिवाणी और समाजवादी मानो ही राजकीय कार्यान्वयन में करके अपने सिद्धान्तों का पुष्टि कर सकते हैं।

इन बर्तमानों का हल कुछ भी आत्मवाणी सिद्धान्तोंका यह आग्रह ही है कि राज्य शास्त्र का कुछ कर या न करे पर नतिक और आत्मिक कार्यके स्वतंत्र और निष्पक्ष मन्त्रालयों में उन हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

४ गांधीवादी अर्थनीति (Gandhian Economy)

गांधीवादी अर्थनीतिमें व्यक्तिवादी समाजवाद और आत्मवाणी का सम्मिश्रण है। यह मनुष्यके आर्थिक जीवनमें अहिंसाके सिद्धान्तों का अनुसरण करनेकी कोशिश करती है।

गांधीवादकी मान्यता है कि बि बि बड़े पैमाने पर यात्रिक उत्पादनका परिणाम निम्न कोटिका भौतिकवाद पिछड़े देशोंको (जहाँ कच्चा माल मिल सके और तैयार माल बचा जा सके) जीतकर अपने अधिकारम करना युद्ध, सैनिकवाद (militarism) और साम्राज्यवाद होते हैं।

पूँजीवादी भौतिक-मूल्यका महत्ता देता है पर गांधीवादी मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों पर जोर देता है। गांधीवाद हर प्रकारके शोषणका विरोध करता है चाहे यह शोषण श्रमिकों के भीतर—एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर—हो या बाहरले हो। सबसे बड़े हुए यात्रिक उत्पादन (standardized production) की अपेक्षा गांधीवाद एक ऐसी प्रणाली या पद्धति स्थापित करना चाहता है जिसमें व्यक्ति की प्रेरणा और मौलिकता स्वतंत्र रूपसे कार्य कर सके।

गांधीवादी अर्थनीतिके मूल-तत्त्व आत्मनिर्भरता (self-sufficiency) विकेंद्रीकृत उत्पादन (decentralized production) और 'यामयुक्त वितरण' (equitable distribution) है। इस व्यवस्थाके अन्तर्गत केवल उन वस्तुओं और सेवाओंको छोड़कर जिन्हें व्यक्तिगत उत्पादकोंके हाथमें नहीं सौंपा जा सकता व्यक्ति विहीन माध्यम (impersonal agency) द्वारा बड़ी मात्राम वस्तुओंका उत्पादन बन्द हो जायगा। डाक-तारकी व्यवस्था सड़के और वातावरणके अत्यंत साधन सरकार के स्वामित्व और नियंत्रणमें बने रहेंगे। रेल खान जंगल सिंचाई और बड़े-बड़े उद्योग पंचायती देल देल पर राज्यका एकाधिकार (monopoly) रहेगा। परन्तु प्रारम्भिक आवश्यकताओं वस्तुएँ जैसे भोजन वस्त्र और निवास-स्थान आदि विवेकीकृत नीतिसे ही उत्पादित होंगी। वस्तुओंके उत्पादनमें समन्वय स्थापित करने का और उनको बाजारमें बचनेका ठीक-ठीक इन्जाम करनेका उत्तरदायित्व सरकार पर होगा। इसमें दलालोंका मनाना तथा बड़े-बड़े उद्योगपतियों और कम्पनियोंका मुनाफा समाप्त हो जायगा। प्रारम्भिक उत्पादकोंको अपन परिधमका ऐसा 'यामयुक्त' प्रतिफल मिलना जैसा बि मौजूदा हासतमि सम्भव नहीं है। स्थानीय उत्पादित वस्तुओंका प्रायः उमी स्थानमें उपयोग हो जायगा। कुछ परिस्थितियोंमें वैसेसे चीज मशीनक बजाय वस्तुओं का वस्तुमति विनिमय करनेकी प्रथा चालू हो जायगी। उदाहरणके लिए कुछ मामलोंमें राज्य-कर मुद्राम न लेकर वस्तुओंमें दिया जाने लगेगा।

केवल उन वस्तुओंका छोड़कर जो आवश्यकतासे अधिक मात्राम उत्पादित होंगी अन्तराष्ट्रीय व्यापार बहुत कम पैमाने पर होगा। जनताके स्वास्थ्य और कल्याणके लिए ऊँची वस्तुएँ आज़कालकी तरह देने बाहर नहीं भजी जायँगी। अन्तराष्ट्रीय व्यापार पर लगे ऐसे बंधनोंसे सैनिकवाद और युद्धकी परिस्थितियोंका बन्ध हो जायगा। हर देश और हर देशके भीतरका प्राकृतिक प्रदेश अपने आप एक आत्म निर्भर इकाई बन जायगा। किसी भी देशके लिए तब यह सम्भव न होगा कि वह किसी दूसरे देशका शोषण करके स्वयं समृद्ध बन जाय।

गरीब और अमीरके बीचका अन्तर जिन प्रति जिन कम होता जायगा क्योंकि तब एक व्यक्ति या वर्ग को किसी दूसरे व्यक्ति या वर्ग का धारण करने का अवसर हो न मिलेगा।

यह सही है कि उसी व्यवस्था का अन्तर्गत राज्यका कार्य-क्षेत्र विस्तृत हो जायगा। लेकिन यह व्यवस्था समाजवादी नहीं है क्योंकि समाजवादी सम्पत्तिके नियंत्रित वितरण का विचार करता है जबकि गांधीवादी व्यवस्था राज्यसे ही साधनानाम निश्चय की गयी नातिके अनुसार सम्पत्तिके स्वतंत्र वितरण का विचार करता है। इससे अनावा जहाँ एक ओर पूँजीवादी और समाजवादी माना जा सकता है। लेकिन मूल्य का मन्त्र दते हैं इस व्यवस्था में मौलिक मूल्यों का बहा तब मन्त्र है जहाँ तक उनका सम्बन्ध मानवीय मूल्यों (human values) से होता है।

गांधीवादी अर्थ-नीति का जब हम आनाचनात्मक दृष्टि से देखते हैं तब हमका यह कहना पड़ता है कि इसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं है कि जिसमें हम हम पूँजीवादी या साम्यवादीका विकल्प (alternative) मान सकें। इसकी एक मुख्य बात यह धारणा है कि मनुष्य केवल सामके उद्देश्य काम करना है। इस धारणा को समझना उस समय और भी कठिन हो जाता है जब हम यह देखते हैं कि राजनीति के क्षेत्र में गांधीवादी दानन अथवा आत्म-निर्भरता और एक नए-नए आरम्भ निष्ठा की आवश्यकता पर जोर दिया है। समाजवादी और साम्यवादी दानाका विचार है कि मनुष्यका केवल सामकी धारणा की अनेकानेक उद्देश्य काम करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अन्तरीक्षिकताका उद्देश्य एम ऊँचे उद्देश्यमय एक है।

यद्यपि गांधीवादी अर्थ-नीति में विवेकीकरण की योजना मनी राज्य पर एक प्रभाव है लेकिन उसमें अति विचार करने की आवश्यकता है। समायोजित उत्पादन (coordinated production) से बहुत साम है। अब हम एक उसी व्यवस्था का आवश्यकता है जिसमें विवेकीकरण और विवेकीकरण का साथ-साथ विकास हो सके। भारतके बारे में तो हम यह कहना होगा कि विवेकीकरण की योजना हमारी एका करण का अममयताका और अधिक बन मिलेगा जिसमें कि हम आज की अवस्था और भी अधिक व्यक्तिवादी हो जायेंगे।

आजकी दुनिया हम सब एक दूसरे पर निर्भर है। यह दुनिया जिन प्रति जिन एक आर्थिक इकाई बनती जा रही है। ऐसी स्थिति में विवेकीकरण उत्पन्न हो जाने के लिये भी स्पष्ट है। हमारे अन्तराष्ट्रीय व्यापार और व्यवसाय और अन्तराष्ट्रीय व्यवहार में अलग-अलग नही तो कठिन अवस्था हो जायगा। दुनियाका आज ऐसी विवेकीकरण योजना की आवश्यकता है राष्ट्रीय प्राथमिक तथा राष्ट्रीय योजनाओं के बिना ही। कुन्तरी योजनाओं पर अन्तराष्ट्रीय योजना महत्वपूर्ण है कि वही हमारी आर्थिक प्रगति का न जाय और हम आर्थिक दुर्गति पर पर हो न रहे जाय। हमसे बनी हुई बस्तुओं की नीति बनी हुई बस्तुओं की अनेकानेक योजना समग्र और जितनी सैंगी और समन्वित वह समाज का योग्य मित्र होगी।

गांधीवादी अर्थनीति यह स्वीकार करती है कि हर प्रकार की व्यवस्था में कुछ न कुछ अनुशासन और दबाव जरूरी है। लेकिन उसका यह दावा स्वीकार करना मुश्किल है कि गांधीवादी व्यवस्थामें सोय स्वतः अपने मनसे अनुशासन मानेंगे जबकि दूसरी व्यवस्थाओं में अनुशासन को बाहर लाया जाता है। कौन-सा दबाव (coercion) व्यापक है और कौन-सा अनुचित है इसमें अंतर करना बड़ा कठिन है।

शोषण करना बड़े-बड़े पूंजीपतियों या किसी नियम (corporation) का एकाधिकार नहीं है। यह तो किसी छुट आदमी द्वारा भी किया जा सकता है। आवश्यकता इस बातकी है कि (क) व्यक्तिगत परिष्कार सुधार किया जाय और (ख) शोषणके अवसर कम किये जाय।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी गांधीवादी अर्थनीति भारतकी मौजूदा हालातों के लिए एक बहुमूल्य योजना है। बुद्धिमत्ता इस बातमें है कि विवेकीकृत ग्राम्य अर्थनीति (decentralised village economy) को एक मिश्रित अर्थनीति (mixed economy) का अभिन्न अंग बना लिया जाय जिसमें विभिन्न पद्धतियोंमें उन्नत मच्छादियों को लेकर इन अच्छाइयों को भारतीय परम्परा और प्रतिभाके अनुकूल बना लिया जाय।

५. अन्य सिद्धान्त (Other Theories)

सार्वजनिक कल्याण (General Welfare) अधिकांश वर्तमान राज्योंमें सार्वजनिक कल्याणके दृष्टिकोणोंमें ही वास्तविक शासन व्यवस्थाका संचालन होता है। यह एक व्यावहारिक और स्पष्ट सिद्धान्त है और इस आसानीसे बनसकती हुई परिस्थितियोंके अनुकूल बनाया जा सकता है। इस सिद्धान्तके राजस्व होनेका मुख्य कारण यह है कि आजकल लोग विपुल सैद्धान्तिक विवेचनके विषय हैं और सिद्धान्तों का व्यावहारिक परिणाम चाहते हैं। स्वतंत्रताकी अब विधिमें मुक्त नहीं माना जाता है और न व्यक्तिगत स्वतंत्रताकी परीक्षा इस बातमें की जाती है कि राज्यका कार्य कितना सीमित है। अंगरहवा दानादारीके अधिकारों और अन्य अधिकारों (inherent and inalienable rights) वाला सिद्धान्त समाप्तप्राय है और अब सामाजिक कल्याण पर जोर दिया जा रहा है। राज्यके कार्योंको तय करनेमें उपयोगितावादी (utilitarian) और अवसरवादी विचारोंका स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। उपयोगितावादी दृष्टिकोणमें व्यक्ति और समाजके हितोंका ध्यान रखनेकी कोशिश की जाती है। हम देखते हैं कि उपयोगितावादीके सहायक जेरेमी बेन्थम (Jeremy Bentham) ने सभी मर्यादों और विधियोंके अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेके पहले उनकी व्यावहारिक उपयोगिता की जांच की थी।

इस दृष्टिकोणके समर्थक यह ठीक ही कहते हैं कि राज्यके बंध और बंधन धारकों के साथ कोई स्पष्ट अंतर नहीं दिखता था या सकता है। किसी मामलेमें राज्यको हस्तक्षेप

करना चाहिए या नहीं, इसका निर्णय तो उस मामलतकी परम्पराके ही किया जा सकता है। फिर भी राज्य कार्यके बारेमें कुछ सामान्य सिद्धान्त स्थिर किये जा सकते हैं

(१) क्या प्रस्तावित कार्यसे सार्वजनिक हितकी सिद्धि होती है ?

(२) क्या किया जानेवाला कार्य प्रभाव-पूर्ण होगा ?

(३) क्या मसालकी अगंगा अधिक बुराई किये बिना ही यह कार्य किया जा सकता है ?

मानव के विचार मानव सार्वजनिक कल्याणको अपना आदर्श सिद्धान्त मानते हुए राज्य-नायक बारम्बार अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं। पुनिसका काम करना ही राज्यरत्न कनक्यकी इतिथी महा है। एक दूसरेकी हत्या या चारों करनेसे राज्यके अलावा राज्यका भाग्यिकके लिए कुछ अधिक करना चाहिए। उस राष्ट्रीय जीवनका पूरा बनाना राज्यका सम्पत्ति और उसके कल्याणक विकासमें तथा उसके नैतिक और बौद्धिक उत्थानमें योग देना चाहिए। युक्ति-मग्न मानव जीवनके लिए जो उत्तम अनिवार्य हैं और जिन्हें पानका अधिकार हर मनुष्यका है उन सभी कल्याणों के लिए सम्भव बनाना राज्यका कर्तव्य है। राज्यको चाहिए कला और विज्ञानको प्रोत्साहित करना चाहिए। राज्यको सामाजिक और आर्थिक विकासका साधन होना चाहिए। राज्यको व्यक्तिगत एकाधिकारके विरुद्ध हस्तक्षेप करना चाहिए और उसकी सुरक्षाके समर्थनकी रक्षा करना चाहिए। फिर भी आम तौर पर यही कहा जाता है कि राज्यका हस्तक्षेप नही करना चाहिए। स्वतंत्रता नियम होना चाहिए, हस्तक्षेप अपवाद। जो काम व्यक्ति स्वयं राज्यकी भाँति या उससे अच्छा कर सकते हैं उन कामोंको राज्यका नही करना चाहिए। जब वह बिचुल निर्विघ्न हो कि राज्यके हस्तक्षेपमें सार्वजनिक हित होगा तब ही राज्यका हस्तक्षेप करना चाहिए। किसी विषय या सन्दर्भके कारणसे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। आपूर्ति युगमें हस्तक्षेप न करन (laissez faire) की नीति बढाकर और उन्नीसवीं शताब्दीकी अपेक्षा अधिक असम्भव है। सभी मानव तथाका लक्ष्य स्वतंत्रता ही नही है। यह तो एक साधन है जिसके द्वारा मानव जीवनका पूरा बनाया जा सकता है।

मकाइवर के विचार (२५ अध्याय २) मैकाइवर के विचार बहुलवांन प्रभावित हैं। उनका कहना है कि राज्यके कार्य-क्षेत्र निर्णय इस आधार पर होना चाहिए कि राज्य समाजके एक मानवसंगठनक रूपमें नही बल्कि समाजके अनेक संगठनों में से एक संगठनक रूपमें कार्य कर सकता है। उनके साधन मुख्य तीन यह नही है कि राज्यका क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए। प्रश्न तो यह है कि क्या सामाजिक संगठन और स्वयं राज्यका अपना सीमित स्वयं राज्यका क्या करनेकी अनुमति देते हैं। फिर भी इस दृष्टिकोणके व्यवहारमें कार्यावृत्ति स्थिर जानने या निश्चय निश्चय है वे प्रायः वही हैं जो साधारणतया सार्वजनिक कल्याण मिश्रणक होते हैं।

भगवान् का कहना है कि राज्यके सक्रियात्मक और निष्पाद्यक काम हैं— व्यवस्था कायम करना और व्यक्तित्वका सम्मान करना। उदाहरणार्थ राज्यको विचारका नियन्त्रण नहीं करना चाहिए चाहे विचार किसी भी प्रकारके क्यों न हो (५५ १८०)। यद्यपि इस नियमके भी कुछ अपवाद हैं।

(१) यदि कोई व्यक्ति राज्यकी विधियों को तोड़ने या राज्यक अधिकारको अवहेलना करनेको उद्योग करता है तो ऐसे व्यक्तिके विरुद्ध राज्यको कार्रवाई करना चाहिए। नागरिक उचित तरीकेसे मौजूदा विधियोंकी आलोचना कर सकते हैं। वह दूसरोंको शान्तिपूर्वक समझा-बुझा सकते हैं और अपना मनचाहा परिवर्तन लाने के लिए वह सभी वैधानिक और अध्यात्मिक तरीकोंको अपना सकते हैं। पर विधियोंकी अवहेलना सहन नहीं की जा सकती। इसके मतलब यह नहीं है कि राज्यकी अवज्ञाका प्रचार करनेवाले हर व्यक्तिको राज्य दण्ड दे।

(२) यही विचार एमे साहित्य पर भी लागू होता है जो विधि द्वारा वर्जित अनैतिक कामोंके लिए उत्तजित करता है। पर दण्ड देनेके पूर्व इस बातका सावधानतासे देख लेना चाहिए कि उत्तजित करनेका काम प्रत्यक्ष तौर पर किया गया हो। ऐसा न हो कि कोई बात केवल रचनात्मक मुद्राव के तौर पर कही गयी हो और उसी पर दण्ड दे दिया जाय।

(३) विचार व्यक्त करनेकी स्वतन्त्रताका मतलब यह नहीं है कि अपमान या निन्दात्मक विचार प्रगट किये जाय या अन्ततः विचारार्थीन मामलोंकी टीका टिप्पणी की जाय।

१ विधि और नैतिकता (Law and Morality) भगवान् आन्स कादियाके इस विचारसे सहमत हैं कि नैतिकताकी आन्तरिक शक्तियों राजनीतिक विधियों पृथक् करना आवश्यक है। विधिये नैतिकता लागू नहीं की जा सकती। विधि केवल बाहरी कामका ही नियमन कर सकती है। विधिका केवल ऐसे ही कार्योंको निर्धारित करना चाहिए जिन्हें राज्य कल्याणकारी समझता हो—एक कार्य जो स्वतन्त्र और नैतिक व्यक्तिगत के विनाशक लिए आवश्यक तथा भौतिक और सामाजिक परिस्थितियोंका पैदा करनेमें सहायक हो। यह काम चाहे जिस उद्देश्यसे किया जाय उसकी पूर्ति ही आवश्यक होती है। सभी नैतिक उत्तरदायित्वोंके वैधित्व उत्तरदायित्व बना देनेसे नैतिकताका नाश हो जायगा। विधि द्वारा कटूता से नैतिकताका सादना स्वतः निन्दनीय है। व्यक्तिगतकी स्वतन्त्र मतिक प्रेरणाको इस प्रकार कमजोर करना स्वयं एक अनैतिक कार्य है। नैतिकताकी अर्पण हमारा व्यक्तिकी अपनी उचित और अनुचितकी भावनासे की जाती है। व्यक्ति स्वयं व्यक्ति का अपना सच्चा अर्थ विवेक ही उसका विधाया है (५५ १५५)। नैतिकताका आधार विवेक है। विवेक एक भीतरी शक्ति है। उसमें व्यक्तिगतकी एकाग्रता समायी रहती है। इसलिए नैतिकताका सत्यके कभी भी राजनीतिक विधियों केवल एकल नहीं हो सकता।

यद्यपि विधि नैतिकतासे मिश्र होती है पर राजनीतिक विधिक प्रति नागरिक का एक नैतिक दृष्टिकोण ही होता है। आमतौर पर नागरिकों को समझा पाने करना ही चाहिए। महात्माजी ने कहा है 'हम विधिक पानेन इसलिए नहीं करते कि हम विधिको ठीक मानते हैं बल्कि इसलिए कि हम विधिक पानेन करना ही समझते हैं। अतः हम हर अन्य-सम्बन्ध समुदाय विधिक पानेन मजबूर होकर करेगा और राज्यम इतना अधिक समझ पदा हो जायगा कि राज्यका काम बुरा तरह अभ्यवस्थित हो जायगा। विधि और सरकारकी सापेक्षिक सदा और उपरान्ति सभी स्वीकार करते हैं और उसी के लिए हम सभी विधियों का भी मान लेते हैं जो अपने आपमें हम स्वीकार करने योग्य नही जान पड़ता। इस सापेक्षिक स्वीकृति पर ही राजनीतिक चारणाधिक्य निभा हुआ है (१४ १२६)।

२ विधि और धर्म (Law and Religion) यदि विधि प्रत्यक्ष रूपसे नैतिकताको लागू नही कर सकती तो धर्म विधिक गारा और भा लागू नही किया जा सकता। धर्म-सम के लिए यह उचित नही है कि जिन सामाजिक बहु स्वयं अपना अनुयायी नही बना सकता उन्हें जबरन अपना अनुयायी बना देने के लिए वह राज्यसे अलग करे। ऐसा करनेका मतलब यह होगा कि धर्मका अपनी नैतिक गति पर विश्वास नहीं है।

३ विधि और प्रथाएं (Law and Customs) : प्रथाएं या 'प्रचलित सामाजिक विधान' हैं जिनसे जीवनकी आन्तरिक परिस्थितियां और विश्वास प्रकट होते हैं (१५ १६०)। कोई भी राज्य अपने नागरिकों की पुरानी प्रथाओं का विधिक द्वारा समान्य नहीं कर सकता। एकत्र राज्यकी अपनी सावधान्य राज्यम विधि और प्रथाओं के बाध मध्य होनेकी अधिक सम्भावना है। सावधान्य प्रथाओं का सीपता और स्थायित्व कम रहता है। 'सुनिश्चित वह अन्यसम्बन्ध सामाजिक प्रथाओं का नष्ट कर देने के लिए सैवार रहते हैं। पर हमारा अनुभव हम यह बताता है कि अन्य सम्बन्ध अनुयायी प्रथाएं विधिकी गति और दबाव द्वारा आसानीसे नही बनता जो अपनी जैसा कि समुदाय राज्य अपरिष्कार मध्य निषेध के सामने होना पड़े। विधिक द्वारा प्रथाओं में हस्तक्षेप करने पर प्रथाएं भी विधिक विरोध करती हैं। यह प्रथाओं का बनने दम विधि विपक्ष हो सीमित नही रहता जो कि प्रथाओं के विरुद्ध होती है बल्कि यह प्रथाओं का विधि पानेन करनेकी आवश्यक विरुद्ध—सामान्य साधन नैतिक दृष्टिकोण की एकता के विरुद्ध—होता है (जो और भा अधिक महत्वपूर्ण होता है)। उत्तराधिक प्रथाओं का विधिक द्वारा समान्य करना उचित हो सकता है लेकिन सामाजिक प्रथाओं का सामान्य करनेका विधिको भीमान बाहरका बाध है। उद्यम न तो राज्य बना सकता है और न विधि सकता है (१५ १६१)।

४ विधि और फैशन (Law and Fashion) ये धार्मिक-सैद्धांतिक प्रथाएं या समझ-समझ पर बनती रहती हैं फैशन कहलाती हैं। फैशन पर राज्यका नियंत्रण और भी कम होता है (१५ १६१)। यह राज्यक अधिकारों का सीमाओं का अभाव

उदाहरण है। लोग बड़ी उत्सुकता और चाहत पेरित, सन्तान या न्यूयार्क के किसी अनाथ सप द्वारा प्रचारित फ़सानका अनुगमन करते हैं पर यदि राज्य इसी प्रकारके किसी मामूली परिवर्तनकी आज्ञा दे तो उसे भयानक आधार माना जायगा। सम्भव है उससे श्रान्ति भी हो जाय (५५ २६१)।

५ विधि और संस्कृति (Law and Culture) साधारणतया वह समस्त जीवन संस्कृति जो किसी जाति या युष्की भावनाकी अभिव्यक्ति है विधिकी दाम्ना न बाहर है। राज्य उन प्रतिबिम्बित करता है पर इससे अधिक कुछ नही कर सकता। राज्य जीवनका व्यवस्थित करता है न कि उसकी मृष्टि। समुदायकी सुष्ठि संस्कृति है जो आन्तरिक शक्तिमान् जीवित रहनी है। यह आन्तरिक शक्तियाँ राजनीति विधिकी अपगा बड़ा अधिक सबन और समय हाती है (५५ १६१ ६२)। कता साहित्य और संगीत प्रत्येक रूपसे राज्यके निश्रणकी सीमान नही आते न सभी क्षणाम 'काई भी जाति या सम्यता अपने स्वतन्त्र माग पर चन्ती है। उन प्रभावों और परिस्थितिका असर उन पर पड़ना रहना है जो अधिकतर अज्ञान हो रहती हैं और जहां व प्रभाव और परिस्थितिया पाठ भी होती है वहां राज्य द्वारा न ता उनका नियंत्रण होता है और न उनकी पूर्ण-पूरी जानकारी हाती है (५५ १६२)।

६ राज्य और युद्ध (State and War) 'राज्यकी युद्ध और शान्तिका पूरा अधिकार रहता है और इसलिये उस सभी प्रकारके सर्वा और स्थितियों पर जावन और मुक्तका अधिकार रहना है। राज्य राजनीतिक विवादका शक्ति द्वारा हल करनेके अधिकारका दावा करता है। इस दावका अर्थ यह है कि राजनीतिक हित अन्य सभी प्रकारके हितोंसे अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। युद्धको पापना करनेमें राज्य किसी राजनीतिक उद्देश्यका परिवारके सामान्य उद्देश्य सांस्कृतिक जीवन और आर्थिक व्यवस्थास अधिक ऊँचा और महत्वपूर्ण स्थान मता है। महाश्वर का मत है कि राज्यकी इस युद्ध सम्बन्धी अनिश्चित मताका नियंत्रण किया जाना चाहिए क्योंकि उनके कथनानुसार राज्य एक सीमित संगठन है और उन पूरे समाज या जातिके साथ एक-रूप नही माना जा सकता।

राज्यके काम-काजके बारेमें महाश्वर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आसानीर पर मनुष्य जिन परिस्थितियों या बहुधा आर्थिक लिये उत्सुक रहना है उन्हें ध्यानमें रखन हुए सामाजिक जीवनकी जो राजनीति बाह्य परिस्थितियाँ (universal external conditions) हैं वही राज्यके कार्य-प्रणम आती हैं। साथ हीर पर इसका मतलब है व्यवस्थाकी प्रतिष्ठा जिससे सुरक्षा (protection) स्वाविव्य (conservation) और विकास हो सके (५५ १८५)। जहां व्यवस्थाका उद्देश्य केवल व्यवस्था हो वह अर्थ है। इसका अर्थ यह है कि जहां तक उससे समुदायकी आवश्यकताएं पूरी हों। समाजके आन्तरिक बिगड़कर ग्राह्य और स्थानिकताके आन्तरिक व्यवस्थाकी सीमा निश्चित करते हैं।

आवृत्तिक हीर पर व सभी काम राज्यके काम-प्रणम आते हैं किन्तु स्थितियों

यथवा व्यक्तिगत संगठनाकी अपथा राज्य अधिक कुशलता और वृद्धताके साथ कर सकता है। इस कार्य-क्षेत्रम निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं। दुर्बलताकी रक्षा करना स्वस्थ और सुन्दर जीवनके लिए आवश्यक न्यूनतम परिस्थितियाँ बनाय रखना। इस बड़े रचनात्मक उद्योगकी कायावलि करना जिनका पस नानी पीड़ियोंको मिले जैसे नगर निर्माणकी योजनाएँ आदि देहातोका जंगल क्षीला और पहाड़ोंके सौन्दर्य का संरक्षण सिंचाईके सफ़्त प्रयोग करना दंगकी धरतीका उपयोग करना जानवरों और पौधाकी नस्ल बनाना और हानिकारक कीड मक्काडाका नियन्त्रण करना, पारम्परिक सहयोग द्वारा उद्योगिक स्थापित करनेम मग्न करना मुग्न प्राण आदि पर नियन्त्रण रखना उद्योग व्यापार और व्यवसायकी प्रोत्साहन देना मनुष्यकी सामर्थ्यका विकास और संरक्षण करना शिष्टा और सांस्कृतिक जीवनका उन्नयन करना। इन सब कामोंको करनेम राज्यको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि कार्य करने की व्यक्तियोंकी आन्तरिक प्रेरणाओंको दबाया न जाय।

६ राजकीय कार्योंका वर्गीकरण

(Classification of Governmental Functions)

अनेक संसदोंने राजकीय कार्योंका वर्गीकरण उस स्थितिके आधार पर करना चाहा है जो अधिकतर आयुनिष्ठ राज्याम निर्वाची होती हैं। इन कार्योंको इस प्रकार बांटा गया है

(१) आवश्यक या मौलिक (Essential or fundamental) और

(२) वैकल्पिक अथवा संवामूलक (Optional or ministrant)।

१ आवश्यक कार्य (Essential Functions) आवश्यक कार्योंमें वह कार्य शामिल हैं जो राज्यके निरन्तर अस्तित्वके लिए व्यक्तियों नागरिक और राजनीतिक स्थायीनताके लिए और दूसरे व्यक्तियोंसे उसके जीवन सम्पत्ति और स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए उभरी हैं। दूसरे शब्दोंमें ये कार्य तीन प्रकारके सम्बन्धों द्वारा निर्दिष्ट होत हैं। राज्यका राज्यसे सम्बन्ध राज्यका नागरिकसे सम्बन्ध और नागरिकका नागरिकसे सम्बन्ध (२६ ३६४)। वुड्रो विल्सन (Woodrow Wilson) ने राज्यके आवश्यक कार्योंका इस प्रकार वर्णन किया है

(१) व्यवस्था बनाये रखना और हिंसा व चोरी इवैती आदिसे जानमालकी रक्षा करना

(२) पति और पत्नी तथा संगतान और माता पिताके पारम्परिक वैधानिक सम्बन्ध निर्दिष्ट करना

(३) आपदाओंके अधिकार हस्तान्तरण (transmission) और विनियमन नियमन करना तथा कर्तव्य और अरराधके लिए जायदान पर आनकात शायिकोंके निर्दिष्ट करना

(४) व्यक्तिगत आपसम हानिवाले संविदा सम्बन्धी अधिकारों का निश्चित करना,

(५) अपराधों की परिभाषा करना और उनके लिए दण्ड तय करना

(६) दीवानी के मामलों में न्याय की व्यवस्था

(७) नागरिकों के राजनीतिक कर्तव्यों विधेयाधिकारों और सम्बन्धों को निश्चित करना

(८) बाहरी सन्तुष्टि के राज्य के सम्बन्धों को तय करना बाहरी सतरो अथवा हस्तक्षेपों से राज्य की रक्षा करना और उसके अन्तर्राष्ट्रीय हितों की वृद्धि करना।

ऊपर के वर्गीकरण का समर्थन करते हुए वेल्स कहते हैं कि प्रशासन की दो शाखाएँ हैं आर्थिक और सैनिक जिन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना जरूरी है। आर्थिक कृतव्यम वह निम्नलिखित कार्यों का शामिल करते हैं कर सयाना आशत निर्यात कर (tariffs) का नियमन मद्य मुद्रा (coinage) और मुद्राचक्र (currency) का नियंत्रण करना सार्वजनिक भूमि जंगल सार्वजनिक इमारतें युद्ध सामग्री आदि सार्वजनिक सम्पत्ति और डाक रेल सार आदि सार्वजनिक एकाधिकारों की व्यवस्था करना। सार्वजनिक श्रृण की व्यवस्था करना भी इसीसे मिला जुता कर्तव्य है।

सैनिक कर्तव्यों में स्थल जल और वायु सेना की व्यवस्था शामिल है। साधारणतया स्थल सेना और नौ-सेना दोनों ही का सामान्य रूपक माना गया है युद्ध की प्रत्यक्ष चुनौतियाँ नहों। स्थल-सेनाएँ देश के भीतर स्थिति और व्यवस्था कायम करती हैं और नौ-सेना व्यवसाय-व्यापार और संपत्ति के रक्षा करती है (२४ ४०० १)। सभी बड़े राज्यों में कुछ राष्ट्रीय मामलों का बहुत बड़ा भाग स्थल-सेना और नौ-सेना पर खर्च किया जाता है। अमेरिकामें भा जहाँ सन् १९३० ई० से आरम्भ होनेवाले दशक में युद्ध से उत्पन्न अपमानित बहुत कम था संघ सरकार ने व्यय तीन-चौथाई स्थल-सेना नौ-सेना और पैदलों पर खर्च किया था।

२. वैकल्पिक कार्य (Optional Functions) वैकल्पिक काम वह कार्य हैं जो राज्य के अस्तित्व और व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सुरक्षा के लिए अनिवार्य नहीं होते पर वे सार्वजनिक कल्याण के लिए जरूरी होते हैं। और इसीलिए अधिकतर राज्य इन कामों को करते हैं। अनिवार्य और वैकल्पिक कार्यों के बीच अंतर कायम करना आसान नहीं है। दोनों एक दूसरे में मिल जाते हैं। यह वर्गीकरण देश और काल के अनुसार बदलता रहता है।

वैकल्पिक कार्यों को आमतौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है समाजवादी (socialistic) और असमाजवादी (non socialistic)। समाजवादी कार्य वे हैं जिन्हें व्यक्तिगत उपयोग के लिए छाड़ा जा सकता है पर जिन्हें राज्य द्वारा ही करना है ताकि व्यक्तिगत निरक्षरता दूर हो सके। छद्मवादी वे कार्य होते हैं जिनसे यह भ्रम उत्पन्न होता है कि अनुभवों के बिना बिना सार्वजनिक नियंत्रण अधिक सार्वजनिक है। राज्य द्वारा रेलों और सार्वजनिक व्यवस्था पर अधिकार और नियंत्रण तथा बिजली और पानी

पर स्थानीय निकायों का नियंत्रण इस प्रकार क बाजों के उन्नाहरण है। असमाजवादी काम वे हैं जिन्हें यदि सरकार न करे तो मुमकिन है कि कोई भी अपने हाथ न ल। इसमें निम्नलिखित काम शामिल हैं गरीब और असह्य लोगों को देखभाल सवजनिक उद्यान और पुस्तकालयों की व्यवस्था सजाई, बुद्ध विशेष प्रकार की शिक्षा और आंकड़ा सम्बन्धी एवं धातु-यन्त्राल सम्बन्धी काम जिसका उद्देश्य हमारे वातावरण को उन्नत बनाना है तथा ऐसी सूचनाएँ इकट्ठा करना जिनके आधार पर अधिनियमों और भी सुधार किये जा सकें (२४ ३९६)।

युद्धो विस्तृत वैरन्विक या सहायक कार्यों को निम्न चीजों में विभाजित करते हैं

- (१) उद्योग और व्यापार का नियंत्रण
- (२) धन का नियंत्रण
- (३) आवासन की व्यवस्था—जिनमें रक्षा की सरकारी नियंत्रण तथा वे तमाम काम शामिल हैं जिन्हें हम 'आन्तरिक विकास' कहते हैं
- (४) ठाक और तार व्यवस्था का प्रबंध या विज्ञान करने सीमरे विभाग के ही समान है
- (५) गन्तवा उपायन और वितरण बन-कन की व्यवस्था आदि
- (६) सजाई जिनमें सजाई में सम्बन्ध रखनेवाले व्यापारों का नियंत्रण भी शामिल है।
- (७) शिक्षा
- (८) गरीब और असमर्थ लोगों की देखभाल
- (९) जगत्वा की देखभाल तथा अन्य काम जैसे नगरि में मद्यनिषेध की वृद्धि करने का प्रयत्न।
- (१०) व्यय विनामक विधियाँ (sumptuary laws) जैसे 'मद्यनिषेध' विधि (२८ ४३३)।

भारतमें सामाजिक विधान

(Social Legislation in India)

यह जान लेना चाहिए कि राजकीय कार्य-भारका सिद्धांत सामाजिक सुधार के लिए बने लागू किया जाय। किसी देशकी सरकारका समाज-सुधारके दायम कितना भार पड़ा चाहिए यह एक विवादास्पद विषय है। हमारे सामाजिक और आर्थिक सिद्धांत कुछ भी क्या न हों। इस बातका तो सभी मानते हैं कि हम राज्यको केवल पुलिसके रूपमें नहीं मान सकें। जिसका जनस्य बाहरी और आन्तरिक अभुजात रखा करता ही हो। यदि राज्य सामाजिक-व्यवस्थाकारी राज्य नहीं बन जाता तो आजकी दुनिया उससे अस्तित्वका कोई भोचिरप ही नहीं रह जाता। यकिन हम बातका ध्यान रखना होगा कि राज्य के कारण व्यक्ति और समुदायकी प्रेरणा शक्ति और भाव निर्भरतामें किसी प्रकारकी बाधा न पहुँचने पाये।

जहाँ कहीं भी समाजको निश्चिन्त रूपसे एक बड़े पैमाने पर प्रयोग हानि पहुँच रही हो सरकारको लोकमतकी अपेक्षा करने भी उसका निराकरण करना चाहिए, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि उस बुराईका दूर करनेसे साधन बुराईसे बन्द तथा छिपौल न हों और उनमें सरकारकी बन्नामीका भी डर न हो। यदि सरकार गरीबों और बाल हत्या प्रथाका हटानेके पड़ने पराक्रमतः निश्चित हानका इन्तजार करती तो उसे अनिश्चिन्त समय तक इन्तजार करना पड़ता। यही ध्यान बहुपक्षीत्वके सम्बन्धमें भी लागू होती है। इस प्रथाका हिन्दुओंमें रोकनेके लिए सरकार ने हाल ही में बहुत बड़े तथा नियामक कानून बनाये हैं। जब तक भारतकी समस्या निश्चित न हो जाय तब तक के लिए स्वास्थ्य तथा धर्म और पौष्टिक भावन आर्थिक सम्बन्धमें आवश्यक सामाजिक सुधारोंका गंभीर रहना मूलतः होगी।

जो लोग राज्य द्वारा आश्रयित विधान (positive legislation) के विरुद्ध हैं वह इस बातका नहीं समझ पाते कि विधान स्वयं साक्षरता का साधन है। जिस तरहसे पुलिस विधानाधीन ठीका व्यवस्था कीया बनाय रखता है उसी तरह राज्य द्वारा बनायी गयी विधि भी हम सामाजिक जीवनमें उन उच्च स्तर पर पहुँचनेमें मदद करती है जिन पर रहने की साधारणतया हम लायकी आदत नहीं होती। विधिराजों एक आराम बातका स्वागत करना चाहिए कि वह साक्षरताके बहुत आगे बढ़ जाय वहाँ यह भी देगना चाहिए कि वह सामंजस्य के कुछ भाग ही रहे ताकि सामंजस्यको जैसा उद्देश्य यह प्रण और सहायक हो सके।

सामाजिक-नैतिक विधि का प्रभावकारी होनेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अनिवार्य हो या सारे देश या जनता पर एक साथ ही लागू हो। एक बहुत-से मायने है जिनमें अनुमति मूलक विधान (permissive legislation) का प्रभाव

अनिवार्य विधान (compulsory legislation) की अपेक्षा अधिन होता है। ददाहरण के रूपमें हम अतर्जनीय विवाहको ले सकते हैं।

आयकरने हमारे समाजमें ऐसी प्रगतिशील मनुष्य बहुत कम हैं जो अपने जीवन साधिका चुननमें जातिका बचन साइनेको तयार हों। ऐसे व्यक्तिवाको राज्य द्वारा अप्रत्यक्ष रूपसे दबावा मिलना चाहिए तथा उनके भाग्य आनेवाली बाधाओंका निराकरण हुना चाहिए।^१ समाज-मुधारने सामान्य प्रत्यक्ष साधनाकी अपेक्षा अप्रत्यक्ष साधन अधिक प्रभावकारी हों।

बुद्धि चुन हुए सत्रास मध्य निषेध लागू करना जमा कि आसकर भारतमें किया जा रहा है निस्सन्देह एक बुद्धिमत्ताका काम है। अब मध्य निषेधको ऐसी तर म लागू करनेका विचार किया जा रहा है। सौभाग्यवश इस विषयमें भारतमें प्रायः सभी धार्मिक समुदास एक मत हैं। इस समय सैनिकों तथा विदेशियोंका इस विधिक दायरे में बाहर रखा गया है जो उचित नही जान पड़ता।

निस्सन्देह मध्य-निषेध राज्यकी आमदनीमें बहुत बढी है गयी है और बहुत-से मास बकार हो गये हैं। राज्यका परराजनीति तरीकस बनाया जाना और चोरीमें रोक जाना अब भी जारी है। कानूनरा लागू करनेवाले अफसराने सब जगह ईमानदारी से काम नही किया है। यह उम्मीद है कि जनताका न केवल साराब पीनेकी बराहिया बढाया जाय बल्कि उस दहरी विधियाका पालन करनेकी सहता भी बनलायी जाय। अभी मध्य-निषेध विधिम बहुत-सी कमजोरिया है। जब भारतमें पूरा तरहमें मध्य निषेध लागू हो जायगा तब इन कमजोरियाका दूर करना सम्भव होगा। सनिकामा भारतमें रहनेवाले विदेशियोंका किसी भी प्रकारकी छूट देनेकी कोई आवश्यकता नही है। अधि-क्रम मध्य-सेवनके अनुमति पत्राका दुरुपयोग रोकन तथा तत्-सम्बन्धी नियमोंका कडागि पालन करनेकी आवश्यकता है। बुद्ध चौकील बगमि मध्य निषेध कानूनका तोड़ना भी एक प्रगन हो गया है। बूरे ही नही अनेक जोखवाले भी इस कानूनका भंग करनेके अपराधी हैं।

यदि जनता ऐसी राज्यवासीस मुक्त रचना चाहती है तो अनेक दुष्पयोगाके आवनून मध्य निषेधकी नीति सफल हो सकती है। परा स्त्रिया और धार्मिक स्थाना में मानव वस्तुआसे व्यवोकी रिया इनमें सहायक हो सकती है। इस कानूनक कारन बकार होतवालाका काममें लगाने रिया मार्कजिनिक कार्योंकी एक विनाय भोजना करती है। राज्य सरकारकी आमनास मध्य निषेधमें जा बढी हानी उसे दूर करने रिया अन्य साधनाका अडाना होगा।

^१ १९५४ में पारित विवाह विधेयक (Special Marriage Bill) के द्वारा अब हिन्दुओंसे शीघ्र रिती की पत्र द्वारा अपना पत्र छोड़ बिना विवाह करना वैध पारित किया जा चला है। १८७७ ई० के कानूनके अनुसार उन्हें गोपना करने की पद्धती थी कि वह रिती भी धनम गही है।

लोगोंको भारतीय सस्कृतिके स्थायी मूल्योंकी शिक्षा देना आवश्यक है जिससे उन्हें पश्चिमी सस्कृतिकी बुराईयोंके बोधे नक़सबी बननेसे बचाया जा सके। मद्य निषेध जैसा कोई भी निषेधार्थक क़दम जब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसके साथ आदेमूलक क़दम भी न उठे। अब पहले-पहल कांग्रेस मन्त्रिमण्डल (१९३७-३९) ने सप्तम जिलेमें मद्य-निषेध लागू किया तो अनेक ताड़ी निकालनेवाले बेकार हो गये और उनकी जीविकाका एकमात्र साधन उनसे छिन गया। फ़ौरन तत्कालीन सरकार को मद्यदूरेके अवकाश-कालके लिए मद्य ध धे बढ़ने पड़ और जो लोग बेकार हो गये वे उनकी जीविकाका प्रबंध करना पड़ा। रासनूद भजन मण्डलियों और चायकी दुकानों का इन्तजाम किया गया। ताड़ी निकालनेवालोंको ताड़ी ताड़ीमें गूँध बनाना सिखाया गया और बहुतोंको सावजनिक सड़कोंके लिए पत्थर तोड़नेमें जुटाया गया। राज्यकी आमदनीमें जा कमी हुई उसे बिजली-बैर लगा कर पूरा किया गया।

सामाजिक सुधारके प्रयोग मद्य-निषेधकी भाँति न केवल सीमित क्षेत्रोंमें सफलता प्राप्त किये जा सकते हैं बल्कि जनताके कुछ विषय वर्गोंमें भी हो सकते हैं। उदाहरणके लिए बाल विवाहकी प्रथा है। यह सर्वविदित है कि १९२९ ई० के बाल विवाह निषेध विधि (जो धारण विवाह विधिये नामसे प्रसिद्ध है) को भग अधिक किया गया है और उसका पालन कम किया गया है। क्योंकि हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक रीति रिवाज इसके पक्षमें हैं। फिर भी इस विधिको देहातमें रहनेवाले ईसाइयोंमें लागू किया जा सकता है जिनमें भी बाल विवाह अनहोने नहीं हैं। ईसाई लोग सभी जगह बाल विवाहको बुरा मानते हैं इसलिए यदि यह विधि शानीय ईसाइयों पर अनिवार्य रूपसे लागू की जाय तो उसका कोई विषय विरोध नहीं होगा। जब यह प्रयोग उनके बीच सफल हो जायगा और लोग इसके सुन्दर परिणामों—सुन्दर स्वस्थ हृदय-गुण और दीर्घजीवन—को देखेंगे तो उनके लिए यह बहुत शिक्षा प्रद होगा।

राजनीतिवत् स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके बाद भारत सरकारने अपने इस निष्कर्षकी मान्यता कर दी थी कि वह धारण विधिको लागू करेगी। विवाहकी उम्र भी बढ़ा कर मङ्गलियोंके लिए १९ वर्ष और लड़कोंके लिए १८ वर्ष कर दी गयी है। पर अभी तक इस पर बड़ाईसे अमल नहीं किया जाता है।

निष्कर्ष है लोगोंको सहायता देनेकी जिम्मेदारी सरकार पर बहुत अधिक है। फिर भी भारतमें इस बारेमें बहुत कम कोशिश की गयी है। यह सही है कि पागलोंकी रगवासीके लिए ऐसे अस्पताल और ऐसी संस्थाएँ हैं जिनका प्रबंध सरकार करती है परन्तु कामने अयोग्य कमजोर दिमाग़वालों के लिए और अप, बहरे पूँगे बूँड़े तथा अममर्ष व्यक्तियोंके लिए जब तक क़रीब ग़रीब क़दम नहीं किया गया है। जनताके पास इतने साधन नहीं हैं कि वह ऐसे लोगोंका प्रबंध स्वयं कर सके। भारतीय अपनी दानशीलताके लिए प्रसिद्ध है परन्तु उन्हें इस बातकी शिक्षा नहीं दी गयी है कि कब और किये दान देना चाहिए। यह हमने भिक्षारीको दान देनेमें

दान देनेवाले की आत्मा को भग्न ही शान्त मिल जाय और भले ही वह यह सन्तोष करे कि वह अपने माकी जीवनके लिए पुण्य कमा रहा है परन्तु धार्य उसे यह नहीं सूझता है कि बिना सोचे-समझे दान देनेसे सामाजिक समस्याएँ मुश्किलोंके बजाय और अधिक उन्नत होती हैं। नील मागना भारतमें एक बड़ा सामाज्य पैदा बन गया है।

इस विवेचनाके फलस्वरूप इस बातकी जाँच कर लेना भी जरूरी है कि सामाजिक मुद्दोंके हलमें स्वेच्छासे किये गये प्रयासोंका क्या स्थान होना चाहिए। इंग्लैंड जैसे देशमें जहाँकी जनता भारतकी अपेक्षा वहाँ अधिक एक राष्ट्रीय है जहाँ गिनावा स्तर ऊँचा है और आम निभरताके आगने जहाँके राष्ट्रीय जीवनमें बहुत बड़ा काम किया है एमी अनेक गुणदाएँ और कल्व हैं जो किसी न किसी गिनाम आवश्यक सामाजिक सुधारका काम किया करते हैं। उस देशमें जनताके एच्छिक सप सामाजिक प्रयागोंकी प्रयोगगानाएँ होती हैं और उनकी समिधा तयार कर देने तथा उसकी उपयोगिता सिद्ध कर देनेका काम जब काम उनके बूतेके बाहर हो जाता है तब सरकार आगे बढ़कर उस कामकी करने लगती है। परन्तु भारतमें अवस्था इससे बिल्कुल भिन्न है। जनता के नागरिक विचारोंका स्तर बहुत नीचा है और नागरिक उत्तराधिकारी भावनाका अभी विकास ही हो रहा है।

इस सबके बावजू यह कहना होगा और और देकर कहना होगा कि सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेमें निष् सरकार पर ही धारित होना मूल्यता है। परिवार स्कूल कॉलेज समाचार पत्र व्याख्यान-मंच सिनेमा पिक्टर् मेडिया और सन-क्लूके काम आदि सबको सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेमें सक्रिय हो जाना चाहिए। जिन सामाजिक कुटीरियोंके सामने जनता मुँहसे सर मुकाती बली आ रही है उनकी बुराइयोंको सन्तुलापूर्वक समझानेमें बड़-बड़ इतवार स्पग-चित्र और नाट्य-नीताएँ तथा अनभिन्न तीव्र चित्रना मह-चित्रा योग दे सकते हैं यह हम अभी समझ नहीं पाते हैं।

ऊपरकी विवेचनाका निष्पन्न हम निम्नलिखित सिद्धान्तों और कायपद्धतियोंके रूपमें कर सकते हैं

(१) राज्य को कुछ भी करे उसे हम बातचा ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तिगत और उत्तराधिकारी और सामाजिकमानकी भावना मध्य न होने पाये।

(२) राज्य अथवा किसी एच्छिक-सप द्वारा किया जानेवाला समाज-सुधारका काम रसम-आपनी जैसा (formal) और यांत्रिक (mechanical) नहो होना चाहिए।

(३) सामाजिक बुराइयों पर सीधे-सीधे चे कर देने बहुतया अधिक सफलता नहीं मिलती। एमी हामनोमें अग्र-पक्ष साधन अधिक प्रभावकारी हो सकते हैं।

(४) सामाजिक-विधान विज्ञ-कर ऐसे साक्षर-शोध देशोंमें जहाँ की जनता शिक्षित हो लोहमजने बहुत आग बड़ा हुआ नहीं होना चाहिए यद्यपि साक्षरता स्तर ऊँचा करनेके लिए सामाजिक विधान स्वयं भी एक मन्त्रमूर्त साधन बन सकता है।

(५) साधारणतया स्वेच्छाप्रेरित सघोंको ही सामाजिक प्रयोगोंकी प्रारम्भिक प्रयोगशाला बनना चाहिए।

(६) प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सरकारोंकी अपेक्षा स्थानीय स्वायत्त सस्थाएँ जैसे नगरपालिका जनताके सुख-सुधारका काम बहुत अधिक कर सकती हैं क्योंकि वे सामाजिक समस्याओंके सम्पर्कमें अधिक रहती हैं।

समाजका समाजवादी स्वरूप

(The Socialistic Pattern of Society)

समाजवादी समाज और कल्याणकारी राज्य भारतका लक्ष्य थापित हो चुका है। लक्ष्य की प्राप्तिके लिए यह जरूरी है कि समाजमें पायी जानेवाली वृत्रिम सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ मिटायी जायें और समाजका पुनर्निर्माण ध्याय और समानताके आधार पर किया जाय। इस कामको पूरा करनेके लिए हम विधियोंका सहारा लेना होगा और लक्ष्यकी प्राप्तिमें विधियोंका योग दिन प्रतिदिन अधिकाधिक होगा। भारतीय संविधान (१९४९) छद्म-श्रुतको राज्यके विरुद्ध एवं अपराध घोषित करता है और उसका निषेध करता है। छद्म-श्रुतको मिटाने और हरिजनों विछेड़ बर्गों और बंबाईली लोगोंके बच्चोंको गिनाके सभी अवसर देनेके यथासम्भव प्रयत्न किये जा रहे हैं। देग भरम मंदिर अछूतोंके लिए खोल दिये गये हैं।

आर्थिक-क्षेत्रमें द्वितीय पंचवर्षीय योजनाका लक्ष्य ८० लाख से अधिक सड़क बनाने का कामकी जगहों पैदा करना है। छोटे तथा कुटीर उद्योगोंको आर्थिक तथा अन्य प्रकारकी सहायता दी जा रही है। अधिकाधिक संख्यामें उद्योगोत्पाद राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है।

राजकीय उद्योगों और सिंचाई कार्योंकी सहायता बढ़ा दी जा रही है। अमीरात और गरीबोंके बीचकी खाई पाटनेके लिए और बड़ी-बड़ी सरकारी योजनाओंके लिए आवश्यक धन जुटानेके निमित्त मये-मये कर लगाये जा रहे हैं। इस्टेट ड्यूटी एक्ट (Estate Duty Act) के अनुसार मृत व्यक्तियोंके सम्पत्तिको कुछ भाग राज्यको मिल जाता है। सम्पत्ति कर (Wealth Tax) तथा व्ययकर (Expenditure Tax) के कानून भी लागू हो गये हैं। महंगाईके भत्ते स्थायी हो गये हैं। हो सक्ता है कि भविष्यमें राज द्वारा व्यक्तियोंकी अधिकतम और न्यूनतम आय निर्धारित कर दी जाय।

गिनाये क्षेत्रों में भारी परिवर्तन हो रहा है। ग्रामीण गिनाया सरकार द्वारा सम्भव प्रोत्साहन दे रही है। प्रारम्भिक गिनाया विस्तारित हो रहा है। सामाजिक गिनाया पर भी उचित ध्यान दिया जा रहा है। माध्यमिक और विनियमित गिनाया पुनर्गठन हो रहा है। सामान्य गिनाया और अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। प्राविधिक (technical) और व्यावसायिक (vocational) गिनाया तथा स्त्री गिनाया

पर विचार ध्यान दिया जा रहा है। वैज्ञानिक और व्यावसायिक विषयोंके अनुसंधान करने के लिये आवश्यक विधासके लिये भी सरकार प्रयत्नशील है।

जनताका स्वास्थ्य सुधारणके लिये भी बहुत कुछ किया जा रहा है। नये-नये प्रभूति एवं निगुपानन के शौकी स्थापना की जा रही है। सन्तति निरापक सम्बन्धम जनताको प्रोत्साहित किया जा रहा है और दूध दुध मरुताम मोग उभम सान उठा रह है। क्षम कुछ आदि रागा का समूल नष्ट करतका प्रयत्न हो रहा है। हर सान नये-नये मेडिकल कनिष्ठ और अस्पताल खुलत जा रह है। अन्धा और अन्ध प्रचारक अपाग सगाकी मेल ज्ञान पर विचार ध्यान दिया जा रहा है। देशम दूध क अन्धनका बगलक प्रयत्न हो रह है। प्रथम पक्षधरोंके योजनाके आगिरी सान चार वर्षमें नारन्म अन्नका उत्पादन बालीन ताल टन बनाया है। फिर भी आन्धवन अप्रती कमी है। इस कमी का कारण यह है कि आबादी बनी जा रही है और अधिकांश गाँवों में और दूसरे मोठे अनाजक स्थान पर गहू और चावल खान ना के।

सरकार भारतीय सम्पत्ति भारतीय नत्त सानु विपक्षता आगि पुनर्जीवन करतका प्रयत्न कर रही है। यवक-समन्ताह ता आप निन न्ना ही करत है। अन्धम मन्धन नव-जीवनके मणप दिवाई नोद रह है।

संगठनमें अन्ध सामाजिक विधान एवं सडालिक प्रान-मात्र नहा रह गया है जिस पर विचार और राजनीति ही ध्यान न्ना हा। यह व्यावहारिक राजनीति और सामाजिक जावनक हर क्षम अधिहार जना रहा है। निम्नलिखित दृष्टिमान प्रगति जारा रही और जनताम प्रगतिनिन सन्तनाप्रमि मन्धराका अन्ना हागि सन्धम दिया ना निरन्ध अधिप्रम नारनका स्वरूप बन बन जायगा।

समाजवादका मूल्यांकन (Appreciation of Socialism)

हम एक ऐसे युगमें रह रहे हैं जिसमें समाजवादकी या तो घोर निन्दाकी जाती है या फिर उसकी अत्यधिक प्रशंसा की जाती है। इस विषय का वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंके माते यह हमारा कतव्य है कि हम इसे सहानुभूतिपूर्वक परन्तु समाजवादके आगमके उसको व्यावहारिक रूपमें असम करें और मालूम करें कि जो कठिनाइयाँ उसमें होती हैं व समाजवाद का अभिभाग्य भग है या वेबल परिस्थितियों के कारण पैदा होती है। यदि समाजवादके समर्थनमें लिये जानेवाले सारे परम्परागत तर्क असत्य सिद्ध हो जाते हैं तो भी उसकी मूल भावना स्वल्प और सुन्दर है।

यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि इस विषयका शास्त्रीय अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी भी अपनी रुचि-अरुचि और पूर्व निश्चित धारणाआवे शिकार बन जाते हैं। जर्मन अर्थशास्त्री रोशर (Roscher) कहते हैं कि समाजवाद 'उन प्रवृत्तियोंका पोषक है जो सामाजिक हितका हितना अधिक ध्यान रखना चाहती है जिसका मतलब के स्वभावके अनुकूल नहीं है। इसमें तो सन्देह नहीं कि इस परिभाषामें मूल प्रश्नको टाल दिया गया है। इसका निपट बौन करेगा कि क्या मनुष्यके स्वभावके अनुकूल है और क्या नहीं है? मानव-स्वभाव की दुहाई देकर अपनी अधर्मध्वजा छिपानेवाले आलसी लोग कम नहीं हैं। हर्नॉ (Hearnshaw) जैसे विद्वान् प्राज्ञेवर भी उस समय अपनी पूर्व निश्चित धारणावे शिकार बन जाते हैं जब वह यह कहते हैं कि सनकी और अपराधी ही ऐसे दो वर्ग हैं जो समाजवादकी ओर आकर्षित होते हैं।

समाजवादकी अनेक-रूपता (The many sidedness of Socialism)
समाजवादकी कोई एक ठीक परिभाषा देने की कठिनाईका मुख्य कारण उसकी अनेक रूपता है। मानिक और मजदूरने बीष मूनापकी मासदारीसे लेकर 'पैराल पैराल' (paternalism) तक—जिसमें यह आशा की जाती है कि वह व्यक्ति के लिए सब कुछ करते—सब कुछ समाजवाद के भीतर आ जाता है। एक आधुनिक बटु आलोचकका कहना है कि समाजवाद 'अनेक छत्रोंवाला छत्र है—जब तक एक छत्र बाटो तक तक उठने स्थान पर दूसरा छत्र निजस आता है।

बादलिनका कहना है 'जहां आदर्श बल्यता नहीं होती वहां लोग नष्ट हो जाते हैं। समाजवादको हम आदर्श बल्यता मान सकते हैं 'यदि समाजवादके बिरोधी इसे बारी बल्यता मानते हैं। समाजवाद एक दर्शन थार एक धर्म है वह जीवनकी एक पद्धति है। इसलिये समाजवादको कोई एक सामर्थ्य परिभाषा देना अथवा एक ध्यान स्पष्टकर नगानुना समाजवादी कायक्रम पद्धतिने ही तैयार कर देना मामान

नहीं है। यह एक सजीव, सक्रिय आन्दोलन है जिसकी सम्भावनाओंकी कोई सीमा नहीं है। समाजवाद एक बनी-बनायी योजना या निश्चित व्यवस्था नहीं है जो सदैव बसनेवाली परिस्थितियोंमें मेल न खा सके। समाजवाद समाजके कुछ लोगोंके बजाय सब लोगोंका हित चाहता है। राजनीतिक स्वतंत्रता—स्वतंत्रताके लिए चलन जाने संघर्ष—का अगला क्रम समाजवाद है। लोकतंत्रीय देशोंमें हम लोगोंको जो असमाजवादी स्वतंत्रता मिली हुई है वह केवल भूना मरनेकी स्वतंत्रता है।

समाजवादकी परिभाषा (Definition of Socialism) समाजवादकी साम्प्रदायिक मर्यादा अन्धवी परिभाषा सेलर्स (Sellers) ने की है। उनका कहना है कि 'समाजवाद एक ऐसा लोकतन्त्रवादी आन्दोलन है जो समाजमें एक ऐसा अधिक संगठन स्थापित करना चाहता है जिससे जनताको हर समय व्याप्तम्भव अधिकतम ग्वाय और स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। ह्यूगन (Hughan) ने समाजवादकी परिभाषा इस प्रकारकी है समाजवाद सबूतोंका राजनीतिक आन्दोलन है जिसका लक्ष्य उत्पादन और वितरणके मूल साधनों पर सामूहिक प्रभुत्व और नाबतन्त्रीय व्यवस्था लागू करके घोषणाका अर्थ करना है।

समाजवादो विचारोंका विकास (Development of Socialistic Ideas) यद्यपि समाजवाद शब्दका प्रयोग पिछली शताब्दीके तीसरे दशकमें ही शुरू हुआ था कि भी समाजवादी विचार उतने ही पुराने हैं जितनी पुरानी हमारी सभ्यता है। समाजवादको हम आर्थिक संक्रमण हुई औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) और विचारोंके क्षेत्रमें हुई फासीसी राज्य क्रांतिवा मध्यम परिणाम कह सकते हैं। पिछली शताब्दीके मध्य तक समाजवाद बहुत कुछ स्वप्नवादी (utopian) रहा। इस प्रारम्भिक समाजवादक प्रमुख धारणाता मूर (More) ओवेन (Owen) फोरियर (Fourier) और सेंट सिमॉन (Saint Simon) थे। यह सभी लोग आस्थावादी और विवेकवादी थे। उनका विश्वास था कि वह समता बनाकर और स्वयं उदाहरण उपस्थित करके राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादकी स्थापना कर देंगे। समाजवाद और साम्यवादमें स्पष्ट अन्तर करनेका कोई प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। वह लोग जिस आन्दोलन समाजकी स्थापना करनेकी आशा करते थे वह वास्तविक साम्यवादी था।

समाजवादके इस प्रारम्भिक आन्दोलनकी और स्वप्नवादी स्वप्नवादी काय मार्क्स (Karl Marx) और एंगेल्स (Engels) ने सम्मकर इसे एक जनतन्त्र आन्दोलन बना दिया जिसका आधार उनके कथनानुसार वैज्ञानिक था। मार्क्स समाजमें ही आन्दोलनकारी थे तथा समझाने-बुझाने और एकाकी प्रयोगों पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने समाजवादको एक सर्वहारा आन्दोलनका रूप दिया और उसे निश्चित रूपसे राजनीतिक बना दिया। उन्होंने वर्ग-युद्धकी धारणाका प्रतिपादन किया और घोषणाकी कि बर्गोदारोही सगल मेनेका महाजनोको ध्याय मेनेका और पूजी

वर्तमान व्यवस्था सक्रमणकी है। इसमें समाजवाद अपने सही स्वरूप में आ रहा है। एक ओर समाजवाद और व्यक्तिवाद और दूसरी ओर समाजवाद और साम्यवाद के बीच मध्यम पड़ा रहा है। कुछ स्वार्थी लोगो ने हा म हा मितकर यह कहना सही नहीं है कि मार्क्स आदि समाजवाद के पथप्रदर्शक थे और अब भी हैं। समाजवाद (Socialism) और अन्य व्यवस्थाएँ (Socialism and Other Systems) के बीच की भिन्नता बताने के लिए हमें यह बतानी होगी कि समाजवाद (Socialism) क्या है। समाजवाद (Socialism) का अर्थ है समाज के सभी सदस्यों के बीच समानता और समान अधिकारों का अभाव। समाजवाद (Socialism) का अर्थ है समाज के सभी सदस्यों के बीच समानता और समान अधिकारों का अभाव। समाजवाद (Socialism) का अर्थ है समाज के सभी सदस्यों के बीच समानता और समान अधिकारों का अभाव।

[illegible]

है। शक्ति मायाका आत्मना धार धार बराबर हाता चला जाय। समाजवादी ध्येयनिगम मानव मानव कल्याण की अधिक महत्त्व देता है। समाजवादी उत्पन्नता उत्पन्नता मानव ध्येय-सत्य न मानकर लक्ष्य मानता है और इस मनका समझन करना है कि आत्म-विकासक साधन और ज्ञानसर सदैव समान रूपसे मिलने चाहिए।

अपनी विद्वत्शोष (Encyclopædia Britannica—११वाँ संस्करण) में समाजवादी परिभाषा इस प्रकार की गयी है वह नीति या सिद्धान्त जिसका उद्देश्य है वन्द्योप सामाजिक अधिकार सत्ताके माध्यमन सम्पत्तिका बाँटकी अपना अधिक न्यायपूर्ण वितरण और नम वितरण को पूरा करने का अधिक उत्पन्न। समाजवादी निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपायोंमें सम्पत्ति अधिक उचित वितरण और अधिक सामाजिक नियमन करनेका प्रस्ताव करते हैं।

- (१) महत्त्वपूर्ण उद्योगों और सेवाओं का सार्वजनिक प्रमुख तथा नियन्त्रण सारना।

- (२) उद्यानावा सवामन व्यक्तिगत नाभकी दृष्टि न करवे सामाजिक वातावरणासाठी दृष्टि करना।

- (३) व्यक्तिगत मानव उद्देश्य हटाने के स्थान पर सामाजिक सेवा उद्देश्य की स्थापना करना।

समाजवा एका एसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जा युद्ध के बजाय भाईचारा पर और आन्तर्विकाश साधनों के लिए प्रतिभागितात्मक मध्यम बजाय उन्मादन और वितराग सश्रम विवेकपूर्ण पारम्परिक मध्यम पर आधारित होगा। इस सहायका उद्देश्य उन समा साधकों दिन होगा जा सामाजिक तथा मानसिक बान द्वारा उद्यम आम मनु हैं। शिन्तन मजदूर दाने म्म सम्य तक पहुँचने के लिए जा गुमाव रख है उनम स युद्ध दह है

- (१) राज्य न्यूनतम वेतन (minimum wage) का मसौदा बनाना

- (२) उद्योगों का सांकेतिक नियमन और

- (३) राष्ट्रीय अर्थनीति (National finance) में शामिल माना तथा अतिरिक्त सम्पत्ति (surplus wealth) का सावधानीपूर्वक हिस्सा में उपभोग करना।

समाजवादसे लाभ (Advantages of Socialism) ग्रन्थ का विवरण
है कि समाजवादी व्यवस्था में निम्नलिखित बाधाओं पर विचार किया जा सकता है।

- (१) जहाँ सम्भव हो सके तो प्रभुत्व व नियन्त्रण का अधिकार स्थानीय स्तर पर स्थानिक लोगों को सौंप देना।

- (२) विज्ञानों पर शुद्ध का ज्ञानवर्ती ज्ञान सम्पत्ति का बकायी राष्ट्र और मध्यम (middlemen) का विज्ञान मनषा सम्पत्ति कर उद्योगों में मुख्य व्यक्ति बनना।

- (१) प्रतिभागिदार सुमात्र बिरोधी शर्तोंको समाप्त करना ।

- (४) सामाजिक सुरक्षा व्यवस्थारहित निराश्रित पुनर्वसन सम्बन्धी व्यापक योजनाओंके अन्तर्गत पूर्णतः निर्धन लोगोंका समावेश करना।

(५) उपयोगी शिक्षा और मनचाहा काम धुननेके लिए अधिक अवसर देकर जनताकी प्रगुप्त शक्तियाँ और सामर्थ्यका उपयोग करना ।

(६) श्रम बचानेवाले साधनोंको वास्तवमें श्रम बचानेवाले साधन बनाना ।

(७) हर व्यक्तिके लिए उचित अवकाशकी व्यवस्था करना और सामाजिक हरामखारीको समाप्त करना ।

(८) सारारिज और मानसिक दृष्टिसे स्वस्थ समाजका निर्माण करना ।

समयमें समाजवादका अर्थ होगा हानिकारक प्रतियोगिताकी समाप्ति पूँजी पतियोंका अन्त और जमींदारी की समाप्ति ।

इन सब सामाजी आगा हम समाजवादकी स्थापना होने पर कर सकते हैं। परन्तु समाजवाद पर सहानुभूति पूर्वक विचार किये जानेके पहले यह जरूरी है कि समाजवाद में जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं उन्हें हल कर लिया जाय।

समाजवादकी कठिनाइयाँ (Difficulties of Socialism) आलापका का कहना है कि समाजवादका परिणाम एकसत्तावाद (authoritarianism) और बहुत बड़े पैमाने पर नौकरशाही का नियंत्रण होना है। व्यक्तिगत व्यापारका स्थान सरकारी कारखानों और गोदामों से लेगा। हर व्यक्ति राज्यका नौकर हो जायगा। हर वस्तु की संपत्ति के आगटे सरकारके पास रहा करेगा और इन आगड़ों के आधार पर ही यह निश्चय किया जायगा कि कौन वस्तु कितनी बनायी जाय या पैदा की जाय। सरकारी अधिकारी सामान्य उनका नाम बतलावेंगे और हर एकको मिलने वाला पारिश्रमिक और अवकाश निश्चित करेंगे ।

यद्यपि समाजवाद में विरुद्ध उक्त आपत्ति काज़ी सबल है फिर भी लोकतन्त्रीय समाजवादने साथ ध्याय करनेके लिए हमें यह कहना पड़ेगा कि जनता अपने लिए जो कह सकती है उसे सरकारकी व्यवस्था नहीं कहा जा सकता। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि सरकार किसी भी वन विधायक साधन न रह कर समस्त जनताके हवाका साधन बन जाती है और इसका प्रयाग जनताने अपने सामने लिए करना सीख लिया है। मज़दूर संघों और राजनीतिक संस्थाओंमें नियंत्रणकी तिन पद्धतियों का विकास धीरे धीरे हो रहा है उन पद्धतियोंका प्रयाग आवश्यकतासे अधिक बढ़नवाली अधिकार-वृत्ति का रोकनेके लिए निश्चित रूपसे किया जायगा । (सेमर)

समाजवाद के विरुद्ध यह भी आरोप लगाया जाता है कि समाजवाद वर्गयुद्धका उपयोग करता है। कहा जाता है कि वह स्वार्थभूमक भौतिकवादी और उपयोगितावादी है। समाजवाद पूँजीपतियों पर सर्वहारा वर्गका आक्रमण है। इस आपत्तिके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि वर्गयुद्ध समाजवादी सिद्धान्त न होकर मार्क्सवादी सिद्धान्त है। यदि आज हम कुछ समाजवादियों के भाषणोंमें वर्गयुद्ध का समर्थन पाते हैं तो इसे भाषण-जाना और बोट पानकी जान समझना चाहिए न कि एक निश्चित सिद्धान्त। इनके अतिरिक्त आपुनिक व्यक्तिवादी सामाजिक व्यवस्था में एक दूसरे प्रकार का वर्गवादी युद्ध चल रहा है। कुछ बड़ा-बड़ा कर इस युद्धका समुद्रिधामी वर्गका सर्वहारा वर्ग पर आक्रमण कहा जा सकता है।

समाजवादका मूल्योंके

समाजवाद कुछ पाद-म व्यक्तिओंके कल्याणका अंगीकार करता है या मानव अधिकारोंका समर्पण करता है।

समाजवादके विरुद्ध एक ओर आपत्ति यह है कि समाजवादमें उत्पादनके लिए आवश्यक प्रेरणा नहीं मिलती। कहा जाता है कि व्यक्तिगत प्रेरणा उद्योग और स्वतंत्रताके अभावमें उत्पादनका समय कम हो जायगी। इस आपत्तिके उत्तरमें यह पूछा जा सकता है कि इस प्रकारकी चका चलका क्या यह मतसब नहीं है कि हम मानवस्वभावका बहुत ही नीचा कागिना मानते हैं। क्या यह जल्दो है कि मनुष्य को कुछ करे वह स्वायत्त ही प्रति होकर करे? जैसे-जैसे मनुष्यमें सामाजिक भावना बढ़ती वैसे-वैसे व्यक्तिगत सामकी अन्तर्गत व्यक्ति दूसरे प्रकार उद्दामका जागरूक करना क्या सम्भव नहीं हो सकता? और आज भी क्या हम नहीं देखते कि जैसे-जैसे हम अपने सामाजिक जियोंका अनुभव अधिकारिक करने जाते हैं वैसे-वैसे नैतिक पथोंकी हा तरफ़ नैतिक भावना-मूलक पुरस्कार भी हम काम करनेके लिए प्रेरित करते हैं। बट्टेज लेन का कहना है कि हममें जो मूलभावना सन्तुष्ट रहनेके लिए बचन रहती है वह हमारा 'रचनात्मक प्रेरणा' (creative impulse) है। प्राप्तिपर हॉकिम भी साम्य यही बात कहते हैं। उनका कहना है कि मनुष्यका जो भावना सन्तुष्ट रहनेके लिए आह्वान रहता है वह है 'व्यक्तिगत साम' (the will to power) या आत्म अभिव्यक्ति (self expression)। क्या अन्तर्गत सामाजिक अनुसार काप करना या अनन्तता करना स्वयंसे एक पुरस्कार नहीं है?

कनाकनी यह माहका प्रश्न का जाता है कि समाजवादमें कुल मिलाकर उत्पादन कम हो जायगा। यदि यह सब भी हाँ ता क्या यह जल्दो है कि उत्पादन कम होनेका हम बहुत बड़ा सकट मनें? हम हमेशा उत्पादनके ही विचारत क्या परेशान रहें? क्या कानूनमात्यान्तर्विरोध पर भी ध्यान देना आवश्यक नहीं है? भविष्यकी समस्या उत्पन्नकी अन्तर्गत विरोधकी अधिक है।

यह भी एक बिना जाता है कि बड़े-बड़े उद्योगोंकी व्यवस्था उनकी विद्यमानता के कारण राजकीय आधार पर नहीं हो सकती। यह कहा जाता है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें हम यह पाया नहीं कर सकते कि बिना बड़ा उद्योग हाँ उद्योगी हाँ अधिक विज्ञानसम्पन्न उद्योग सुचालन हाँ। इस तरह उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि कम-से-कम कुछ साम्य राष्ट्रीयकरणका अंगीकार आवश्यक (municipalisation) अधिकतम आवश्यक हाँ सकता है। परन्तु प्रश्न काप साम्य आद और ठारका प्रश्न करता है उसी प्रकार जैसे-जैसे साम्यका प्रश्न करने अनुभव बढ़ता जाय वैसे-वैसे साम्य प्रश्न बन खान रस जरीय-आधान और जन-विप्लव प्रश्न का प्रश्न अन्तर्गत हाथमें से सकता है।

समाजवादके आदर्शोंका कहना है कि समाजवाद सामाजिक जीवन की नीचे निच कर बचकर करनेवाली व्यवस्था है। उनका कहना है कि आज निम्न हमारे समाजमें कुछ भावना और बाकी गरीब है परन्तु समाजकी व्यवस्था में भी मोक्ष समान काप

- GETTLE R. G — *Introduction to Political Science*—Chs XXIV and XXV
- GILCHRIST, R. N — *Principles of Political Science*—Chs XIX and XX
- GOLLANCZ VICTOR—*Our Threatened Values*
- KOESTLER ARTHUR—*The Yogi and the Commissar*
Edited By LEWIN JOHN—Christianity and the Social Revolution
- LEACOCK S — *Elements of Political Science*—Part III
- MACIVER R. M — *The Modern State*—Ch V
- SIDGWICK H — *Elements of Politics*—Chs IV IX and X.
- WILSON W — *The State*—Ch XV

अधिकार-सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of Rights)

अधिकार क्या है? अधिकार हम कसे प्राप्त हुए है? अधिकार और अनधिकारमें क्या अंतर है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनमें एक साधारण नागरिक और राजनीति शास्त्रका अध्ययन करनेवाला विद्यार्थी बाने ही समान रूपसे रुचि लेते हैं।

इस विषय पर विचार करनेसे पहले हम तीन प्रारम्भिक बातोंको यत्न देना चाहते हैं। अधिकार-सम्बन्धी किसी भी विचार धारामें ये तीनों बातें पायी जानी चाहिए। पहली बात तो यह है कि अधिकार और कर्तव्य आपसमें घनिष्ठ रूपसे जुड़ हुए हैं अर्थात् प्रत्येक अधिकारके साथ एक उत्तरदायित्व भी होता है। क के प्रत्येक अधिकारके साथ स का यह कर्तव्य जुड़ा हुआ है कि वह उसके अधिकारका स्वीकार करे जैसा कि स्वर्गीय श्री बी० श्रीनिवास सास्त्री ने अपने 'कमला व्याख्यान माला' (Kamala Lectures) में कहा था कि अधिकार और कर्तव्य ने भिन्न दृष्टिकोणसे देना जानेवाला एक ही तरक है। वे एक सिक्केके दो पहलू हैं। अधिकार कर्तव्यों पर आश्रित रहते हैं। अधिकारोंका महत्त्व बर्नब्यासी ही दुनियामें होता है (८१ ११९)।

दूसरी बात यह है कि हर अधिकारका सामाजिक आधारणी जरूरत होती है। हम मान्यतावे बिना अधिकार घोषे दावे रह जाते हैं। अधिकारोंका अस्तित्व गून्पम महा होता। उनके लिए समाजकी स्वीकृति जरूरी है। सामाजिक स्वीकृतिका अर्थ केवल वैधिका स्वीकृति महा है यद्यपि बहुधा वैधिका स्वीकृति उत्तम धामित रहनी है और रहनी चाहिए भी। सामाजिक स्वीकृतिवे पीछ एक नैतिक आधार भी होना चाहिए। उत्तम आधार सामान्य हित हुना चाहिए। समस्त अधिकारोंके अन्तिम रूपमें बिनी सामान्य उद्देश्य या नैतिक अच्छाईमें सम्बन्धित होना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि अधिकार स्वार्थरूढ दावा नहीं है। यह एक निस्वार्थ अभिलाषा (disinterested desire) है। इसे सार्वजनिक रूपमें कार्योचित किया जा सकता है। अपने अधिकारोंका दुर्भावपूर्वक प्रयोग करनेमें हम सार्वजनिक सेवा करते हैं और अब हम हमारेके अधिकारोंके निग मटने हैं ना यह हो सकता है कि ऐसा

करना हम व्यक्तिगत हानि अथवा असुविधा उठानी पड़। किसी भी सन्ध अधिकार या आधार व्यक्तिगत कामना नहीं है। अधिकार तो तथ्य और मुक्ति की बात है वह बलप्राप्ति और कामनाकी बात नहीं है (The matter is one of fact and logic and not of fancies and wishes) (५ १९७)।

प्राचीन समाजों में साधारणतया व्यक्तिगत अधिकारों का अधिक मायता नहीं दी जाती थी। व्यक्ति किसी बात का अधिकार तो तब तक नहीं कर सकते थे। वे उस बात के लिए केवल प्रार्थना कर सकते थे या दया की भीषण माग सकते थे। इस विपरीत वर्तमान लोकतंत्रीय समाज अधिकारों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। फ्रांस की राज्य क्रांति ने दान नहीं मागा था। उसने व्यक्तिगत अधिकारों की मांग की थी (१० १५२)। आयरलैंड और भारत के भविष्यता की भांति आधुनिक युग के कुछ संविधानों ने अपने नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दे रखे हैं। अधिकारों की प्रवृत्ति बढ़ने की होती है। विशेष अधिकार (privileges) भी समय बीतने पर सामान्य अधिकार बनने की क्रांति करते हैं। नये अधिकार भी बहुधा पैदा होते रहते हैं जैसे काम करने का अधिकार हस्तांतरित करने का अधिकार हस्तांतरण विनियमों में अपनी नौकरी बनाये रखने का अधिकार आदि।

समय-समय पर अधिकारों के बारे में नया सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं उनमें से निम्नलिखित पाँच सिद्धान्त मुख्य हैं

(१) प्राकृतिक अधिकार-सिद्धान्त

(२) धार्मिक अधिकार सिद्धान्त

(३) अधिकारों का इतिहासीय सिद्धान्त अथवा वह सिद्धान्त जो रीति-रिवाजों के अधिकारों का आधार मानता है

(४) अधिकारों का सामाजिक-अभ्यास या सामाजिक कार्य-साधकता (social expediency) सिद्धान्त और

(५) अधिकारों का आनुवंशिक या व्यक्तिगत सिद्धान्त।

१. प्राकृतिक-अधिकार सिद्धान्त (The Theory of Natural Rights)
अधिकारों के सम्बन्ध में यह सबसे पुराना सिद्धान्त है। इसका आरम्भ मूलानुयाय के समय से होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार मनुष्य का स्वभाव से ही मिले हैं। अधिकार मनुष्य में निहित हैं। अधिकार मनुष्य की प्रकृति से ही भंग नहीं होते। उनसे सरोर की रक्षा का रण। अधिकार का अधिपत्य सिद्ध करने के लिए किसी सम्पत्ति को ही आधार नहीं आवश्यकता नहीं है। वे स्वयंमिद गत्य हैं। जरूरत रण मान की है कि मनुष्य में इन अधिकारों का उपयोग करने की सामर्थ्य है। अधिकार तथ्य अवस्था से पैदा होते हैं और कुछ साधने अनुसार तो वह सामाजिक अवस्था में भी पैदा हो सकते हैं। अधिकार मनुष्य के जन्म से साथ ही उत्पन्न होते हैं। उनका प्रमाण हर जगह और किसी जगह भी दिया जा सकता है। मोर का कहना है कि यह मनुष्य जन्म से ही स्वाधीन और विचारवान है। दूसरे बिना भी व्यक्ति यह अधिकार

नहीं दिया है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी आत्माआवा पालन करनेके लिए मजबूर कर सके। इसी प्रकार जीवनका अधिकार, स्वतन्त्रताका अधिकार विवेकका अधिकार और अपने विवेक पर अमल करने का अधिकार आदि सभी प्राकृतिक अधिकार हैं।

प्राकृतिक अधिकारोंके इस सिद्धान्तन मनुष्य जाति के विकासमें बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया है। पश्चिमो जन्मकाल से जॉन लॉक (John Locke) और थॉमस पेन (Thomas Paine) ने इस सिद्धान्तका बहुत उपयोग किया है। व्यावहारिक राजनीतिमें अमेरिका और फ्रांसके सांख्यिक संघर्षों पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा है। ब्रिटीश (संयुक्त राज्य अमेरिका का एक राज्य) के संविधानमें कहा गया है सभी मनुष्य प्राकृतिक ही समान रूपसे स्वतन्त्र और स्वाधीन हैं और सबको कुछ जन्मनिष्ठ अधिकार प्राप्त हैं। समान का निमाण करते समय किसी भी व्यक्ति द्वारा भावी पीढ़ियोंको इन अधिकारों में बाधित नहीं किया जा सकता। ये अधिकार हैं सम्पत्ति पालन करने उस पर अपना स्वामित्व ज्ञायमान करना जीवन और स्वतन्त्रताका उपभोग करना तथा जीवनमें गुण और गुणवत्ता को बर्धन करना और उसे प्राप्त करना (६६ ४)। सन् १७९१ ई० और सन् १७९३ ई० की फ्रांसीसी घोषणाआम भी इसी प्रकारका वाक्य करी गयी है। १७ ३ ६० की घोषणामें स्वतन्त्रता समानता सुरक्षा और संपत्तिक अधिकारता मनुष्यके महत्वपूर्ण प्राकृतिक अधिकारोंमें गिनाया गया है। अमेरिकी स्वाधीनताका घोषणा (१७७६ ई०) में इन सत्त्वोंको स्वतन्त्र मिष्ट माना गया है कि मनुष्य जन्म ही समान हैं तथा विघाताने सबका कुछ अविच्छिन्न (inalienable) अधिकार हैं य हैं जिनमें जीवन स्वाधीनता और सुखकी प्राप्ति अधिकार भी हैं।

सामाजिक संविधान सिद्धान्तके लेखक आमतौर पर इस सिद्धान्तमें समर्थक हैं। उनका अनुमान है कि आरम्भमें ही मनुष्यके कुछ प्राकृतिक अधिकार हैं और संविधान करते समय वे अपने उन अधिकारोंमें से कुछको अपनेग एवं उच्च न्यायालय इसलिये गौण बना है कि उनके लिये अधिकारोंकी रक्षा हो सके। सौंके विचारमें यह तथ्य किष्टुन स्पष्ट है। सामाजिक संविधान सिद्धान्तका समर्थन करते हुए भी हॉग का दृष्टिकोण किष्टुन निम्न है। उनके अनुसार व्यक्तिने प्राकृतिक अधिकार व्यक्तिनी प्राकृतिक गरिमा है। उनका कहना है कि प्राकृतिक अवस्थामें हर व्यक्ति हर वस्तु पर एक दूसरे के सीर पर भी अधिकार है (३२ अध्याय १४)। प्राकृतिक अवस्था किष्टुन जानवरोंकी अवस्था है।

हॉग और के विचार सामाजिक संविधान सिद्धान्त के निर्वातानोंके विपरीत-रुत है। मनुष्य जीवन और पालन जीवन दोनोंके विकासका अध्ययन करने के बाद यह हम नहींके पर पहुँचे हैं कि समान स्वाधीनताका अधिकार सभी मनुष्योंका मौलिक अधिकार है। इस स्वाधीनताके अन्तर्गत हर मनुष्यकी अपना मनचाहा बात करनेका अधिकार है। इस स्वाधीनताका अन्तर्गत हर मनुष्यकी अपना मनचाहा बात करनेका अधिकार है। इस स्वाधीनताका अन्तर्गत हर मनुष्यकी अपना मनचाहा बात करनेका अधिकार है।

प्राकृतिक अधिकारोंके सिद्धांतने सत्रहवीं और अठारवा सताविंशतिमें बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है और आज भी वह निर्जीव नहीं है। दुनियाके बहुत-से भागोंमें भोजन करने और निवास-स्थानका अधिकार काम या जीविकाका अधिकार और वोट आदि देनेके राजनीतिक अधिकारोंकी मांग दुकतापूर्वक की जाती है और उनमें प्राकृतिक अधिकारोंका-सा बल रहता है।

आलोचना

(१) इस सिद्धांतकी सबसे स्पष्ट आलोचना यह है कि प्राकृतिक शब्दकी परिभाषा करना असम्भव नह। तो बर्नि अवश्य है। श्री डी० जी० रिची (D. J. Ritchie) ने प्राकृतिक अधिकारों पर एक पूरी पुस्तक लिख डाली है और उन्होंने बने बने अर्थ गिनाये हैं जिनमें इस शब्दका उपयोग किया जाता है। जिन अर्थोंमें उन्होंने इसका उपयोग देखा है उनमें से कुछ ये हैं

(१) प्रकृति = समस्त विश्व

(२) प्रकृति = मानवतर बिंदु (The non human part of the universe)

(३) प्रकृति = आदर्श—या पूर्ण उद्देश्य (The ideal or completed purpose)

(४) प्रकृति = मौलिक अपूर्ण (The original the incomplete)

(५) प्रकृति = सामान्य या औसत (The normal or average)

इस स्थितिमें हमारा यह पृथक् स्वाभाविक है कि प्राकृतिक अधिकारोंकी क्या करते समय उक्त विभिन्न अर्थोंमें से किस अर्थमें 'प्रकृति' शब्दको ग्रहण करें ?

जब हम इस प्रश्न पर और अधिक विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि 'प्राकृतिक' शब्दका उपयोग निम्नलिखित अर्थोंके विरोधमें होता है

(१) कृत्रिम या बनावटी (artificial) और परम्परागत (conventional) के विरोधमें (२) आध्यात्मिक या दलीके विरोधमें (opposed to spiritual or to revelation) (३) नागरिक राज्य (civil state) के विरोधमें। दूसरे अर्थोंको छोड़कर—बर्नोकि उससे हमारा यहां सम्बन्ध नह। है हम यह आसानीसे देग सकते हैं कि इन सापेक्ष शब्दों (relative terms) को कोई निश्चित अर्थ देना निम्नना बठिन है। प्रो० हॉकिंग की विरोधाभासित (paradoxical) भाषामनुष्य के लिए कृत्रिम बनना ही प्राकृतिक या स्वाभाविक है। बपड़ेंका पहनना ओ पहन कभी कृत्रिम या आज स्वाभाविक है। यदि प्राकृतिक शब्दका अर्थ प्रकृति की समूची त्रिपा-यद्धतित है—तो उसका साधारण अर्थ है—सा हमारी सम्म अवस्था उनकी ही प्राकृतिक है जिन्नी कि हमारी जगती या बर्बर अवस्था थी। प्राकृतिक और आदिम (primitive) को समानांतर मान मनेका कोई कारण नह। है। डायोजेनीस (Diogenes) प्राकृतिक बने रहनेके लिए एक काउम रहना था और हम भाग परामें

एते हैं। यह जरूरी नहीं है कि प्रकृति में और नोर्नचनन (convention) में परस्पर विरोध हो। नागरिक राज्य (civil state) उनका ही प्राकृतिक है जितनी सम्प्रदायों की स्थिति (pre-civil state) थी।

यूनान के स्टोइक-दानिकों (Stoics) का अनुसरण करते हुए सिसरो ने प्राकृतिक राज्य का प्रयोग उन भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किया है जो हर मनुष्य के हृदय में परमात्मा और प्रकृति द्वारा प्रतिष्ठित की गयी हैं। इसीको साधारण भाषा में अन्तःकरण की भाषा कहा गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह मान्यता भी ऊपर बताये गये अन्य मान्यताओं की तरह आन्तरिक (subjective) अर्थात् व्यक्तिगत की शक्ति विचार और दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। कुछ लोग पत्नी का पीटना ठीक उसी प्रकार उचित समझ सकते हैं जिस प्रकार कुछ दूसरे लोग पत्नी की प्रतिष्ठा करना ठीक समझ सकते हैं। स्टोइक लोग और सिसरो के अनुयायी प्रकृति की समझारी (commonsense) या सर्वमान्य राय को अग्रिम लेते हैं। यह अर्थ भी बहुत समझौदा नहीं है। क्योंकि एक ही समझारी लोगों की सम्बन्ध में है दूसरे हर व्यक्ति की समझारी उसे अलग अलग नियम पर पहुँचानी है (The trouble with commonsense is that it is not common and its verdict varies with individuals)।

(iv) जब हम देखते हैं कि प्रकृति और प्राकृतिक मान्यों का अर्थ निश्चित नहीं है और उनका प्रयोग अनेक अर्थों में होता है तो हम आश्चर्य नहीं होता कि प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन इस प्रश्न पर एकमत नहीं है कि प्राकृतिक अधिकारों में कौन कौन-से अधिकार शामिल हैं। इसीलिए प्राकृतिक अधिकारों की कोई एक सम्मति स्थापित नहीं की गयी है। कुछ लोग राज्य प्रथा का औचित्य इस आधार पर सिद्ध करते हैं कि वह प्राकृतिक है। दूसरे लोग इस अप्राकृतिक और कृत्रिम मानकर इसकी निन्दा करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुष प्राकृति में ही समान हैं दूसरे इसे मानने से इनकार करते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि मनुष्य प्राकृति में ही उत्पन्न होते हैं दूसरों का विश्वास है कि मनुष्य प्राकृति में उत्पन्न होते हैं। कुछ लोग व्यक्तिगत सम्पत्ति को एक प्राकृतिक अधिकार मानते हैं दूसरे इसका बिल्कुल विरोध करते हैं। जब हम स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर विचार करते हैं तो हम विभिन्न मतों की शिखर देखते हैं और सभी प्राकृति पर आधारित होने का दावा करने हैं। एक-मनोवैज्ञानिक बहु-मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों के प्रथम और अन्तिम विवाह-सम्बन्ध (transient marriage relations) समीक्षा समय पर प्राकृति के आधार पर और निम्न जीवन की उपमा देकर किया गया है। इन सब बातों के कारण हम रिचर्ड (Richard) के इस मत से सहमत हैं कि यदि प्राकृतिक अधिकारों को मान्यता दी जाये तो यह सिद्ध है कि प्राकृतिक अधिकारों का अर्थ निश्चित नहीं है और यह सिद्ध नहीं किया जा सके कि प्राकृतिक अधिकारों का अर्थ निश्चित नहीं है (१६ १०४)।

(v) जिसका हम प्राकृतिक अधिकार कहते हैं अर्थात् वह हमें दूसरे से विराधी मान

हैं। प्रासीसी राज्य ज्ञान्ति ने स्वतन्त्रता समानता और बहुलत्वकी घोषणा मनुष्यके पूरा अधिकारोंके रूपमें की थी जिनको स्वतः सिद्ध सत्य (self evident truths) माना जाता है। लेकिन जब हम उनको व्यवहारमें लाते हैं तो हमको अनगिनत बाधनाइयों का सामना करना पड़ता है।^१ पूरा स्वतन्त्रता तथा समानताकी किसी भी व्यक्ति गंगत और वियेकनील व्यवस्थामें कोई स्थान नहीं मिल सकता है। अगर हम समाज को पूरा स्वतन्त्रता दे देते हैं तो फौरन ही असमानता फैल जाती है। दूसरी ओर अगर हम पूरा समानता से शुरू करते हैं तो स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। प्राकृतिक अधिकार का सिद्धान्त हम कोई ऐसा विश्वसनीय तरीका नहीं बताता जिससे कि समानता और स्वतन्त्रता समझ हो सके (The theory of natural rights cannot give us a sure or self-evident way of reconciling liberty and equality)। इसलिये हमें इन समस्याओंके लिए दूसरी ओर देटना पड़ता है। सम्पत्ति के प्रश्नको लीजिए। यदि सम्पत्ति पर सबका अधिकार है जैसा कि प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्तका समर्थन करनेवालोंकी धारणा है तो हम यह जानना चाहिए कि इस अधिकारसे क्या तात्पर्य है? क्या इसका तात्पर्य व्यक्तिगत सम्पत्तिसे है? यदि हाँ तो क्या व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार अपनी सम्पत्ति का खेव देना अधिकार है? क्या अपनी सम्पत्ति का अपनी इच्छाके अनुसार उपयोग करनेका अधिकार यह है कि वह व्यक्ति उस सम्पत्ति का दुरुपयोग भी कर सकता है? उदाहरणके लिए क्या किसी दूधवालेका यह अधिकार है कि वह दूधकी बीमर ठेकी करनेके लिए कुछ दूधको नालियामें बहा दे? क्या किसी मिन मारिजका इस बातका अधिकार है कि वह अपने मजदूरोंको पूर्व सूचना न्ये बिना जब चाहे मिन बद कर दे? ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिनका उत्तर प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त नहीं दे सकता। प्रोफसर हॉकिंग उचित कहते हैं कि मरे प्राकृतिक अधिकार यह नहीं बताते कि मरे अधिकारोंकी सीमाएं कहा तक हैं।

(घ) प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त का अर्थ यह है कि राज्य तथा अन्य सामाजिक संगठन कृत्रिम होते हैं और उन्होंने मनुष्यों को उन जन्मसिद्ध अधिकारों (Inherent rights) का वंचित कर दिया है जोकि उनको प्राकृतिक अवस्थामें प्राप्त थे। इस विचार के अनुसार मनुष्य ने अधिकारोंके रूपमें वे पुरानी चीजें पायी हैं जिन्हें वह लो चुना था (Rights represent according to this view the recovery of a lost inheritance)। यह एक गंभीर विचार है। राज्य एक प्राकृतिक विराम है वह एक कृत्रिम रचना नहीं है। राज्यको अनाधिकार दखल मोजाना (intruder) या बलाग हारी (usurper) किसी प्रकार भी नहीं टहना जा सकता है। मर्यादा बनावनी

^१ उपसमानता अधिकार जैसा एक रूप ट अधिकार भी सब आधुनिक राज्यों द्वारा नहीं दिया जाता। 'मनीफेस्टो मानव अधिकारोंका घोषणा पत्र' (Declaration of Human Rights) सम्पूर्ण राष्ट्रों के सम्मेलन द्वारा पारित किया गया है जिसमें कि वह एक परम्परा बन गई है।

नग्न होना। वह हमारे नैतिक विचारोंकी मनुष्य है (वास्तव)। प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्तवा मनुष्यन जिनके अतिवादी व्यक्तिवाद (extreme individualism) होता है जिसका उपयोग अराजकतावादी और रुढ़िवादी दोनों ही ने शरार किया जा सकता है।

(४) इस सिद्धान्तकी वास्तविक कल्पना या जति यह है कि हमें यह मान लिया गया है कि समाजम अलग भी हम अधिकारों और कल्याणका उपभाग बन सकते हैं। यह एक गलत विचार है। हमारे जा भी अधिकार हैं व इसीलिए है कि हम समाजके सम्पत्ति हैं। समाज न बाहर हमारे पास स्थितता हो सकती है पर अधिकार नहीं। समाजम पहलेकी स्थितिमें अधिकारोंकी कल्पनाका वाद अब नहीं है। इसका कारण यह है कि अधिकार का कोई मनुष्य नग्न होना यदि हमने सम्बन्धित कर्तव्य भी न हो। और अधिकार-मनुष्यका यह जो समाजम हो मनुष्य है। 'अधिकारों की उत्पत्ति मनुष्यके सामाजिक प्राणी होनेके नाते हुई है' (७८ १३६)। एक सामाजिक व्यवस्थाकी सम्पत्ति ही अधिकारोंकी आधारशिला है और इसीलिए सम्पत्ति अवस्था या सामाजिक स्थितिमें पाने अधिकारोंकी कल्पना अपर्याप्त है। सामाजिक के प्राणी में अधिकार एक ऐसा स्वयं का दावा है जिसका समाज मानना है और राज्य लागू करता है (५ १९१)।

(५) डॉ॰ ने प्राकृतिक अधिकारोंके सिद्धान्तकी आलोचना आदित्यवादी जति कोनेकी है उनका कहना है कि इस सिद्धान्तमें अधिकारोंके स्वरूप पर ध्यान न देकर प्राकृतिक स्वरूप पर अधिक ध्यान दिया गया है। यह एक सही आलोचना है। प्राकृतिक सिद्धान्तको माननेवाले प्राकृति की परिभाषा करने पर बहुत ध्यान देते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि 'अधिकार' की परिभाषा भी तो उनकी ही आवश्यक है - अगर उसमें अधिक नहीं। मानव जीवन की सामाजिक सभ्यता अभिनय करने में ही अधिकार सार्वभौम होता है।

इस सिद्धान्तमें समस्या - अगर किसी हुई कल्पनाके बावजूद प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्तमें बाकी सम्पूर्ण है। अगर प्राकृतिक अधिकारोंमें हमारा तात्पर्य उन अधिकारों से है जो पाने प्राकृतिक कालम हमारे पास पैंतो यह एक मूलभूत विचार है। पर अगर हम प्राकृतिक अधिकारोंका अब उन आत्मा या नैतिक अधिकारोंके रूपमें से जो हम मनुष्यता के लिए और जिसकी सामने रखते हुए हम मनुष्यता माननी आशा करना कर सकते हैं तो यह धारणा महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार उदाहरण के नाम करके अधिकार एक प्राकृतिक अधिकार इस अर्थमें है कि हर मनुष्यके लिए समाजम प्रत्येक मनुष्यको अपने भावन बनने और मनुष्यके लिए जीविकोपार्जन पर्याप्त साधन और अवसर मिलने चाहना है। परन्तु यह अब से नहीं ता है कि मनुष्यको यह अधिकार प्राकृतिक कालम प्राप्त था। अब हम प्राकृतिक अधिकारोंकी धारणा उन परिस्थितियोंके अर्थमें कर सकते हैं जो मनुष्यके व्यक्तिगत विकासके लिए आवश्यक हैं चाहे वे परिस्थितियाँ प्राकृतिक या सामाजिक हों या

और किसी प्रकार उत्पन्न हुई हो (१४ २५४)। सकल साधारणतया प्राकृतिक अधिकारोंके न तो यह अर्थ लिये गये हैं और न उनका इस अर्थमें प्रयोग ही होता है। प्राकृतिक अधिकारका सर्वोत्तम अर्थ है—वह अधिकार जो मनुष्यके नैतिक उत्थान या विकासके लिए अर्थात् उसे वांछित मनुष्य बनानेके लिए आवश्यक हों। जैसा कि लास्की ने कहा है कि अधिकार वे ऐतिहासीय परिस्थितियाँ नहीं हैं जो मानव जाति को अपनी आदिम अवस्थामें प्राप्त था और जिन्हें वह छोड़ चुकी है।

२. अधिक अधिकार सिद्धान्त (The Legal Theory of Rights) इस सिद्धान्तके अनुसार अधिकार राज्यकी सृष्टि है। हम जो विधिते मिलता है वही हमारा अधिकार है और जो कुछ विधि हमें नहीं देती वह हमारा अधिकार नहीं है। अधिकार का स्वतः कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्यके अपने-आप से कोई अधिकार नहीं होते। अधिकार तो देश की विधि पर आश्रित होते हैं और उसी से उत्पन्न होते हैं (Rights are not absolute They are not inherent in man at all They are relative to the law of the land)। हमारे जीवन स्वतन्त्रता और सम्पत्ति आदिक अधिकारोंका राज्य ही निश्चिन करता है। अधिकार कृत्रिम हैं।

यह सिद्धान्त प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्तके विपरीत है। अधिक अधिकार सिद्धान्त के समर्थकोंका कहना है कि तथाकथित प्राकृतिक विधियाँ या तो देशकी विधियोंसे मेल खाती हैं या मेल नहीं खाती। अगर वे मेल खाती हैं तो वे अनावश्यक हो जाती हैं और अगर वे विरोधी होती हैं तो अमान्य हो जाती हैं। अतः दोनों ही हानिताम्य हम उनको छोड़ सकते हैं। हममें कोई आश्चर्य नहीं कि अधिक अधिकार सिद्धान्तके समर्थक अल्प प्राकृतिक अधिकारोंको ध्वस्त करके कहते हैं।

टॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes) के विचारोंमें भी हम इस सिद्धान्तके कुछ सूत्र मिलते हैं। उनमें अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के पास मौलिक अधिकार आत्म रक्षाका है। हॉब्स का विचार है कि व्यक्तिकी अपना राज्य इस अधिकारका अधिक अच्छी तरह लागू कर सकता है। इसी कारण सविज्ञान होने पर सब व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने सभी अधिकारोंको (आत्म रक्षाने अधिकारोंको छोड़कर) सम्प्रभुको सौंप देने हैं और फिर जो अधिकार प्राप्त उन्हें देगा है वही उनके अधिकार होते हैं। जिन प्राकृतिक अधिकारों पर विधि रोक नहीं लगाती वे व्यक्तिके पास बन रहते हैं। पर इच्छा यह मनमन्य नहीं है कि जीवन और मृत्यु पर सम्प्रभुके अधिकारोंका अन्त हो जाता है। वह जब चाह सम्प्रभु बन सकता है और प्रजा की स्वतन्त्रता को सीमित कर सकता है। प्रजाको उन्हा बाधा का अधिकार होता है जिन पर विधि न रोक नहीं लगायी है।

मासोक्षता

(क) हम यह माननेको तैयार नहीं कि राज्यकी आज्ञा (decree) ही किसी बातका ठीक और उचित बना मननी है। हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या विधि

पुसछारी और भ्रष्टाचारको भी उचिन बना सकती है? अथवा क्या विधि मती प्रथा को फिरसे प्रतिष्ठित कर सकती है? यह ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर स्पष्ट हैं। इन कारण यह स्पष्ट है कि विधिकी भी अपनी सीमाएँ हैं। सास्की ने तो यहाँ तक कहा है कि अधिकारोंको राज्यकी स्वीकृतिनी आवश्यकता नही है। वन्मके अधीन नहीं हैं। यह मन तो बलितानी है। स्वेसरके विचारानुसार राज्य अधिकारोंको बनाता नहीं है उनकी रक्षा करना है। एन० वाइल्ड (N. Wilde) व अनुसार राज्य अधिकारों को बनाता नहीं है। यह केवल उन्हें मान्यता प्रदान करता है और उनकी रक्षा करना है। अधिकारोंका अस्तित्व स्वयं अपने आप रहता है उन्हें विधि का रूप चाहिए न्याय मा नहीं। विधि द्वारा उन्हें इसलिये लागू किया जाता है कि वे अधिकार हैं वे विधि द्वारा लागू होनेकी बजहम अधिकार नही बन जाते। हमारे विचारम हमारा कोई दावा इसलिये अधिकार नही बन जाता कि उसे विधिकी रूप द दिया गया है वरन् वह हमारा अधिकार इसलिये है कि वह नैतिक दृष्टिके उचिन व स्वायत्त है। एक आदर्श अधिकारमें विधिकी स्वीकृति और नतिकता दोनों ही बाँटें होनी चाहिए।

(क) यह कहना कि राज्य ही एवमात्र अधिकारोंकी मुष्टि करता है, राज्यका निरंकुश बना देना है। राज्यको हम ऊँचा स्थान देने का तैयार हैं लेकिन उसको इतना ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता। पारिभाषिक और सामुदायिक रूपम अल्प राज्यकी सम्प्रभुता सर्वोच्च है पर फिर भी उसके ऊपर रीतिया परम्पराओं अनिहास और नतिकता पर आधारित कुछ व्यावहारिक बाधन भी हैं। सास्की का कहना है 'अधिकारोंकी प्रतिष्ठा मिश्रित विधानकी अपेक्षा अभ्यास और परम्परा पर अधिक आश्रित रहती है। विधिकी निमाण भी बहुत कुछ समाजके परम्परगत नियमों पर आश्रित रहता है। एसा भी अक्सर होता है कि रीति रिवाजोंका व्यवस्थित रूप ही विधि बन जाता है। न्याय बहुत-से मामलास समाजकी रीतिया और परम्पराओंका अनुगमन करता है। इस कारण यह कहना कि अधिकार केवल विधिके द्वारा ही प्राप्त होते हैं गलत है।

प्रत्येक देशकी विधियामें सहायन होते रहते हैं। नसीम यह स्पष्ट है कि विधि ही अधिकारोंको एवमात्र बनानेवाणी नहीं है। विधियोंमें भी ऊँचा स्थान हमारा उचित और अनुचितका जान है। लॉर्ड न उचित कहा है कि 'अधिकारोंकी धारणाएँ पहले किसी प्रकारकी नैतिक व्यवस्था जरूरी है। नैतिक व्यवस्थाके अभावम नैतिकता प्रभाव दावे (assertions) और प्रयत्न आदि हो सकते हैं पर न अधिकार नहीं हैं (A moral order of some kind is the necessary presupposition of rights. Apart from it there may be powers influences assertions and efforts but they are not rights)। वे आज कहते हैं 'अधिकारोंका आधार-स्तम्भ वह संप्रदाय और ओचित्य है जो अनिवार्य और अनुचितके विपरीत होता है। प्रो० हॉब्स के दृष्टिके विधिकी निमी समय का स्वप्न है और जो शोका के निमित्त बन गया है बीच अन्तर रहता है।

३ अधिकाराका इतिहासीय सिद्धान्त (The Historical Theory of Rights) अधिकाराका इतिहासीय सिद्धान्तका सारांश एक वाक्यमें यह है कि इतिहास अधिकार की सृष्टि करता है। इस सिद्धान्तका मत है कि अधिकार रीति रियाजाका निष्कारा हुआ स्वरूप है। हम इस बातको मंती मांति जानते हैं कि बहुत दिनासे चालू रीति रियाज कुछ समय बाद अधिकारोंका रूप ले सते हैं। यदि किसी व्यक्तिका अपने जन्म निम्न पर अपने किसी मित्रसे कई वर्षोंमें उपहार मिलत बन आ रहूँ तो वह उसे अपना अधिकार-सा मानन लगता है। कुछ उपहार एक रियाज बन जाता है और लोग उस एक हककी तरह पाने की आशा करन लगते हैं। आम रास्ते पर चलनेका अधिकार एक परम्परागत अधिकार है। सत्ताके मामलेमें गुजारा तय करनेमें सम्बन्धित व्यक्ति जिस दंगकी जिम्मी बितानेका भागी है इसका ध्यान रखा जाता है न कि जीवनके सामान्य स्वर्षका। जसा कि रिची ने कहा है हम प्रायः यह देखत हैं कि जिन अधिकाराके बारेमें लोग यह साधने हैं कि वह उन्हें मिलने ही चाहिए व ऐसे ही अधिकार होते हैं जिनके वह सम्पन्न होते हैं या जिनके बारेमें वह परम्परा हावी है—चाह वह चलत हो या सही—कि व उन्हें कभी प्राप्त थे। रियाज ही प्रारम्भिक विधि है (६६ ८२)। अनेक तथ्यापत्ति प्रारम्भिक अधिकाराकी जब हम छानबीन करत हैं तो देखत हैं कि व एस दाव हैं जिन्हें 'बहुत पुराने और अटूट रियाजाका समर्थन प्राप्त होता है (६६ ८२)। दूसरी ओर जिन दावाकी उत्पत्ति आधुनिक हार्ता है या जिनका व्यापक प्रचार नहा होता उन्हें चलन (convention) कहत हैं।

गडमण्ड बर्क ने कहा है कि फ्रांसकी राज्य शान्तिका आधार मनुष्यके कुछ भाव गुणों (abstract) अधिकार व जबकि इंग्लैण्डकी राज्य शान्तिका आधार अग्रजके रीति रियाजा पर आधारित अधिकार व। इस कथनमें बहुत सत्यता है। इतिहासीय तौर पर फ्रांसकी राज्य शान्ति उन परिस्थितियोंमें बढ़ी थी आ अङ्गारकी घातकी व प्रामम थी पर शान्तिवे नारे व स्वतंत्रता समानता और भ्रातृत्व जो पूरे मानव समाज पर लागू होने हैं। दूसरी ओर इंग्लैण्डकी राज्य शान्ति बचन उन अधिकारा की पुनर्प्राप्ति थी जिनका उपयोग अग्रज लोग शुरूमें ही करत आ रहूँ और जो मग्ना चार्टा (Magna Carta) और 'पेण्टन ऑफ़ राइट्स' (Peuton of Rights) में ध्येय विषय जा चुक व। कुछ समयाने इंग्लैण्डने मारे सार्वभौमिक इतिहासको स्वतंत्रताके अन्वये 'अधिकारा' के लिए किये गये मण्डपका इतिहास माना है।

आलोचना

निस्सन्देह हमारे बहुत-से अधिकार रीति-रियाजा पर आधारित हैं पर सभी अधिकाराका मूल्य रीति रियाजोंमें बतमाना सत्तु अत्युक्ति है। प्राच्युर समनर का कहना है किमी भी जातिके रीति रियाज किमा भी बातको उचित बना सकने है।

हम इस दृष्टिकोणमें सहमति नही है। इसकी आज्ञाचना करते हुए हॉकिंग पूछते हैं 'दास प्रथा जब ज्ञानूनसे जायज थी तब क्या वह उचित थी? क्या बाल-हत्या उचित थी? इन प्रश्नोंके उत्तर स्पष्ट रूपमें नही म हैं। उनका रायमें यद्यपि 'दास प्रथा' सत्कारके अधिकारों में प्रचलित थी फिर भी वह कभी उचित नही रही। परदास प्रथाको अपमानाहत रूपसे उचित कहा भी जा सकता है। क्या उचित है और क्या अनुचित, इसका विचार भी ता समयके साथ बदलता रहता है इसलिये एक समय था जब वह उचित थी पर इस युगमें अब कि मनुष्य नैतिक दृष्टिमें अधिक विरसित हो चुका है वह उचित नही है। इस दृष्टिकोणमें एक कठिनाई यह है कि अगर अधिकार का हमेशा रिवाजोंके अनुसार हा रहता है तो सुधार असम्भव है। सती प्रथा और बहुपत्नीयता का बन्ध किया जाना 'गारण' ज्ञानून और हरिमनाका मंदिर प्रवेश बहुत कुछ देशके रीति-रिवाजोंके विपरीत है। फिर भी समझदार शासकोंने बिना किसी हिचकिचाहटके इन विषयोंका समापन किया। प्रायः हर हॉकिंग ठीक ही कहते हैं कि यह कहना कि रीति रिवाज हमारा ठीक हान है उतना ही भूलनापूर्ण है जितना कि यह कहना कि विधि किसी चीजका उचित बना सकती है। इसमें आगे भी एक और कमी है और वह है व्यक्तिस्वत्ता सिद्धान्त (the law of personality)। प्रा० हॉकिंग आगे बढकर फिर कहते हैं कि इतिहासीय सिद्धान्त या तो हमें भाग प्रदान नही करता या फिर अपने भाग देता है। इसलिए जब तक कि स्वतंत्र रूप में व्यक्तता करने उस पर प्रभाव न डाला जाय तब तक वह एक व्यक्ति सिद्धान्त ही है। इतिहासकी उपयोगिता की जा सकती पर अपने इतिहास पर भरोसा भी नही किया जा सकता (३६ ७)। यह विषय ही ऐसा है कि इतिहास हमारे सम्बन्धमें एक पुनर्मान्यता या जोचियकी कमी नही बन सकता।

४ अधिकारोंका सामाजिक कल्याण या सामाजिक कल्याण सिद्धान्त (The Social Welfare or the Social Expediency Theory of Rights) सामाजिक कल्याण सिद्धान्तके अनुसार अधिकार सामाजिक कल्याणकी आवश्यकताओंके रूपमें हैं। अधिकारका निर्माण समाज करता है। रॉस्को पाउण्ड (Roscoe Pound) और प्रा० चैट्री (Chaffee) जैसे इस सिद्धान्तके समर्थकोंका कहना है कि विधि रीति-रिवाज और प्राकृतिक अधिकार आदिवा सत्य समाजका हिस्सा या भाग होना चाहिए। प्रा० चैट्री का कहना है कि अधिकारोंका निश्चय हिंस्र संयुक्तता द्वारा है। उदाहरणके लिए भाषाका अधिकार अंगीकृत नही है। इस अधिकारका निश्चय सामाजिक हिंस्रता के द्वारा ही किया जाता है।

उपयोगितावादी आमतौर पर अधिकारोंके इस सिद्धान्तका समर्थन करते हैं। वे अपने और भिन्न दोनों ही उपयोगितावादी इस सिद्धान्तका स्पष्ट समर्थन किया है। उनका यह समर्थन (१) और रीति रिवाज या बाहरी संसार का मानने के विरोध में और (२) मनुष्यके हृत्परी प्राकृतिक इच्छाओंकी मनमानी अभिव्यक्ति के विरोध में है क्योंकि इनका उपयोग बुराई के समर्थन में भी हो ही किया जा

सबता है जब बुराईयावा विचार करनेमें (६६ ८७)। वक्तव्यकी बसोती के रूपमें उन्होंने 'अधिकसे अधिक' लोगोंमें अधिकसे अधिक कल्याण का सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है। उनका विश्वास है कि उपयोगितावा निश्चय विवेक या अनुभव द्वारा किया जा सकता है।

उपयोगितावादी विचारोंको बहुत ही संशोधित रूपमें मानते हुए सास्की ने उपयोगिताको अधिकारोंकी बसोती कहा है। उन्होंने अधिकारोंको उपयोगिताकी परिभाषा राज्यके सभी सदस्योंके लिए उसका महत्त्व (४७ ९२) कह कर की है। उनसे अनुसार अधिकारोंकी कसौटी उनकी उपयोगिता है (४७ ९२)। राज्यको सही दारोंका स्वीकार करना चाहिए जो इतिहासके अनुभवोंके अनुसार अस्वीकृत रह जाने पर घातक सिद्ध हो सकते हैं (४७ ९३)। हमारे अधिकार समाजसे अलग और स्वतन्त्र नहीं हैं बल्कि समाज ही निहित हैं। यह अधिकार हम इसलिए मिले हैं कि हम अपनी और साथ ही साथ समाजकी भी रक्षा कर सकें (६६ ९४)। इस प्रकार अधिकार और कर्तव्याका आपसमें सम्बन्ध है। हम अधिकार इसलिए मिले हैं कि हम सामाजिक सम्बन्ध प्राप्त करनेमें अपना सहयोग दे सकें। हम असामाजिक कार्य करनेका अधिकार नहीं है। कीमत चुकाये बिना हम कुछ भी प्राप्त करनेका हक नहीं है। इस प्रकार कर्तव्य अधिकारमें निहित है। (Function is thus implicit in right) (४७ ९४)।

सास्की बड़ी चतुराईसे सामाजिक कल्याणके इस सिद्धान्तके साथ आदर्शवादी सिद्धान्तोंको जोड़ देते हैं। यह कहते हैं अधिकार सामाजिक जीवनकी वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभावमें आमतौर पर कोई भी व्यक्ति अपनी सर्वोत्तम स्थिति का नहीं पहुँच सकता (४७ ९१)। अथवा 'अधिकार वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभावमें एक नागरिक वह पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता जो उसके लिए सम्भव है।

आलोचना

अधिकारोंके सामाजिक कल्याण सिद्धान्तमें बहुत कुछ प्रगतिशील है। अब तक हमने जिन चार सिद्धान्तों पर विचार किया है उन सबमें यह सिद्धान्त सबसे अच्छा है। फिर भी इसमें कुछ टुटियाँ हैं —

(क) निस्सन्देह साक्षरित अधिकारोंकी अच्छी कसौटी है। पर कठिनाई यह है कि सामन आती है जब हम 'साक्षरित' या 'लोक-कल्याण' की व्याख्या करने बैठते हैं। 'साक्षरित' या 'लोक-कल्याण' का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ है अधिकतम अधिक लोगोका अधिक से अधिक मुख्य बहुमतका स्वार्थ लोक-सम्मति या या कुछ सरकार की दृष्टिमें सार्वजनिक हित हो यह? यदि हम इनमें से किसी एकका 'साक्षरित' या 'लोक-कल्याण' मान लें तो भी अधिक बारी सिद्ध नहीं होता क्योंकि यह सब स्पष्ट भी अस्पष्ट और अनिश्चित है। अधिकतम अधिक मुख्यकी कोई माप नहीं हो सकती। समूचे समाजकी कोई चेतना या हा ही नहीं सकती।

(ग) इस सिद्धान्तकी दूसरी वृत्ति यह है कि सामाजिक कल्याण हमारे व्यक्तिगत अधिकारोंमें हस्तक्षेप कर सकता है। यह सिद्धान्त हम इस स्थिति तक ले जा सकता है कि समाजके अत्यधिक कल्याणके लिए किसी व्यक्तिको माड़ी हानि पट्टेव जाना उचित है—ज्यात् उद्देश्य ही साधनके औचित्यका मिट्ट कर रहा है। व्यवहार में हमारा परिणाम यह हो सकता है कि सामाजिक हित के लिए किसी सामान्य व्यक्तिगत अधिकारका इनकार किया जाय। सामाजिक कल्याण साधनता के सिद्धान्त (principle of social expediency) पर अमल करता उत्तरनाक है। सौभाग्यसे अधिकतर व्यक्तिगत अधिकार सामाजिक कल्याणक अनुरूप ही हान है। कठिनाई वहीं उत्पन्न होता है जहाँ दानोंमें संघर्ष होता है। संघर्ष हान पर सामाजिक कल्याण सिद्धान्तके पोषक व्यक्तिके हितकी अपेक्षा समाजके हितका ही पक्ष करनेको बाध्य है। प्रोफ़ेसर हॉर्किंग हम सम्बन्ध में एक उप-नौ-सेनापति (rear admiral) की कहानी बताते हैं। नौ-सेनापति से पूछा गया कि यदि उससे सेना की सामान्य शक्तिका बनाव रखनके लिए उसके अधीनस्थ एवं निरपराध व्यक्तिको बलिदान करनेको कहा जाय तो वह क्या करेगा। उसे यह उत्तर देने में जरा भी संकोच नहा हुआ कि वह उस व्यक्तिका बलिदान कर देगा। यदि प्रेसमूहकी मूर्खता और सामाजिक अन्यायसमकी प्रतिष्ठाके लिए एक व्यक्तिका बलिदान ही करना पड़ा तो कौन-सी बड़ी बात है ?

हमारा विचार है कि यह एक उचित दृष्टिकोण है। बड़ा तो बड़ा सामूहिक आवश्यकता हर चीजकी सही नहा बना रखनी। संयुक्त राज्य अमेरिकाके उच्चतम न्यायालयका एक मुद्दे इसका हम विषय पर बहुत प्रकाश टाँकता है। एक जहाज के टूटने पर उसके नाविकों में भूला मरन में बचनेके लिए अलग एक छापीको मारकर रखा गया। न्यायालयका फैसला था कि उस व्यक्तिको किसी हालतमें भी नहा मारना चाहिए था। एन० वाइल्ड के अनुसार यदि समाज ही अधिकारका निमाता है तो व्यक्तिकी कक्षा भी रखा नहीं हो सकती और वह समाजकी निरनुप इच्छाके विरुद्ध गरीब भी नहीं कर सकता (८१ १२४)।

४. अधिकारोंका आकाशवादी या व्यक्तिवादी सिद्धान्त (The Idealistic or Personality Theory of Rights) इस सिद्धान्तक अनुसार अधिकार के बाहरी परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्यके आन्तरिक विचारोंके लिए आवश्यक हैं। इसीक अनुसार ब्रॉग (Brague) ने अधिकारोंको विवेकपूर्ण जीवनके विकासके लिए आवश्यक बाहरी परिस्थितियाँ माना है (२९ ३३)। उहा की तरह हेरीकी (Henrici) कहते हैं कि मनुष्यके व्यक्तिगतकी पूर्णताके लिए जो भी भौतिक परिस्थितियाँ आवश्यक हैं उनकी रक्षाके लिए जो कुछ जरूरी हो वही अधिकार है (२९ ३३)। एन० वाइल्ड का कहना है कि अधिकार कुछ बाह्यिक करने में सुविधा और सर्व-संगत स्वाधीनता का दावा है (८१ ११५)। इसका अर्थ यह हुआ कि अधिकारोंके बिना कोई भी मनुष्य उस गरीब पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सकता है जिसे प्राप्त करनेकी उम्मेद पोषिता जाती है। किसी व्यक्तिका सबसे बड़ा अधिकार उसका व्यक्तिगत अधिकार है। इसके

अर्थ यह है कि प्रत्यक्ष मनुष्यका यह कर्तव्य और अधिकार है कि वह अपनी क्षमता या शक्तियों स्वतन्त्रतापूर्वक विवक्षित करे। अन्य सभी अधिकार इस मौलिक अधिकारसे उत्पन्न होते हैं। यहां तक की जीवनका अधिकार स्वतन्त्रताका अधिकार, सम्पत्तिका अधिकार जैसे महत्वपूर्ण अधिकार भी चरम अधिकार (absolute rights) नहीं हैं। यह व्यक्तित्वके अधिकारसे सम्बंधित हैं। हम जीवित रहनेका अधिकार सभी तक है जब तक कि जीवित रहना हमारे सर्वांग्य विकासके लिए जरूरी है। हमें आराम-हृष्टा करनेका अधिकार नहीं है क्योंकि हम सभी भी यह दृढ़तासे नहीं कह सकते कि हमारा जिनका अधिकार अधिक विकास सम्भव था वह हो चुका है। अतः विकास की गुंजाइश न रह जाने से जीवित रहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जिस क्षण हम अपने अधिकारोंका दुरुपयोग करें समाजको हमसे यह अधिकार छीन लेनेका पूरा-पूरा हक है। चीन के अनुसार अधिकार वह शक्ति है जो कि किसी मनुष्यके लिए नैतिक जीव के रूप में उसके व्यवसाय और कर्तव्यको पूरा करनेके लिए आवश्यक है (२९ ४३)।

यह सिद्धान्त अधिकारोंको एक उच्च नैतिक दृष्टिकोणसे देखता है। अधिकार वह शक्ति है जिनका दावा हम समाजसे नैतिक स्तर पर कर सकते हैं। अधिकारों का मूल मनुष्यके मस्तिष्क या हृदयमें है। अधिकार वह शक्ति है जो समाज हमें इसलिए देता है कि हम दूसरोंसे मिलकर सार्वजनिक हित—हमारा अपना हित प्रियका एक अभिन्न अंग है—की सिद्धि कर सकें। हम सच्चाईको हम पहले भी यह कहकर व्यक्त कर चुके हैं कि हर अधिकारके लिए समाजकी स्वीकृति आवश्यक होती है। इसीसे हम और अधिक स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि जब सभी भी हम किसी अधिकार का दावा करते हैं तब हम निम्नलिखित दो बातोंका ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो यह कि हम समाजको यह बताना सकें कि जो अधिकार हम चाहते हैं वे हमारे विकासके लिए अति आवश्यक है और दूसरे यह कि हम इन अधिकारों को मांगकर किसी दूसरेके समान विकासके अधिकारोंमें हस्तक्षेप नहीं कर रहे हैं। उदाहरणार्थ जब हम जीवनके अधिकारको मांगते हैं तो इसका अर्थ यह है कि (क) हम किसीसे इस स्वत्व (दावा) को मांग कर रहे हैं (ख) हम दूसरोंसे यही या इसी प्रकार के दावोंको माननेके लिए तयार हैं और (घ) हम समाजको यह मौन आश्वासन (tacit undertaking) देते हैं कि हम इस अधिकारका अपने सर्वोत्तम और सही हिससे उपयोग करेंगे। इसी अर्थसे हम इस कथनको भी स्पष्ट करना चाहिए कि अधिकार और कर्तव्य आपसमें सम्बंधित हैं। इस तरह अधिकारारी प्राप्ति समाज की सम्पत्ति ही होती है। किसीका मनमाना बुरा करनेका अधिकार नहीं है। जैसा कि एन. वाय्न्ड लिखते हैं अधिकार कार्य करनेकी स्वतन्त्रता है जो मनुष्य को इसलिए प्राप्त होती है कि उसका समाजमें एक निश्चित स्थान है और सामाजिक व्यवस्थामें वह कुछ कार्योंका पूरा करता है (८१ १२)।

हमारे सामने तथ्यका हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि हर अधिकारका

आधार एक विवेकशील और उत्तरदायित्वपूर्ण भावना या इच्छा होती है। मनुष्य या अनुमरणाधिकार इच्छा अधिकार नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति या समुदायके सामने हम अपनी इच्छा उपस्थित करते हैं उसकी किसी इच्छा तथा हमारी इच्छाओं में होना चाहिए। प्रो० हॉकिंग के कथानुसार 'अधिकार कोई भी ऐसी इच्छाको पूरा करनेका दावा है जो सावजनिक हितों अनुकूल हो।' चूंकि प्रत्येक उचित अधिकारका आधार नैतिक हाथा है इसलिए हम किसी भी अधिकारकी पूर्तिकी मांग इस भावनाके साथ कर सकते हैं कि जिस व्यक्तिसे या जिस पर हम यह दावा पग कर रहे हैं उस पर हमारा पूरा जोर है। अने ही हम धारण सबसे अधिक कमजोर हैं। भविष्य और मेमनेवाली कहानीमें ममनेके मास पर अक्सर ही भेदियेका 'प्राकृतिक' अधिकार प्राप्त या परन्तु ममने ने भेदियेके अन्तस्त्वकी सर्वोच्च भावनास विवेक और नैतिकताकी अनीन का थी। इसी तरह हम उन दावास हन्तगत नहीं करना चाहिए जो हमारे लिए अहित है। क्योंकि ऐसा करनेस हम अपने विवेकका उत्पन्न करते हैं तथा अपने व्यक्तिस्वके सिद्धान्तको सोडते हैं। डा० हॉकिंग कहते हैं कि जब एक व्यक्ति किसी दूसरेके सिद्ध अधिकारका दावा करता है तब वह उस व्यक्तिसे कहता है 'यदि तुम मेरे अधिकारोंमें दखल देने हो तो तुम अपने ही कर्ण्य स्वयं पर आपात करते हो।' दास प्रणामें दास रखनेवालाकी हानि दासोंसे अधिक होती है। दासका कष्ट काजी हूँ तक धारण होता है। परन्तु दास रखनेवालोंकी नैतिक और आत्मिक हानि होती है। अगर हम दूसरेके अधिकारोंको आन्तरिक दृष्टिसे देखते हैं तो हम अपनी शक्तिका आन्तर करते हैं। एक निरदराय व्यक्तिकी हत्या करके हम अपने ही किसी सम्बन्धी हत्या करते हैं।

सातकी बिहाने आन्तरिक और सामाजिक त्वरोपिडाको आन्तरिक मिला दिया है अधिकार सम्बन्धी अना धारणमें बहुतवाणी तन्त्र सम्मिलित कर गेते हैं। इस प्रकार उनसे अनुसार अधिकारके तीन अनिवार स्वरूप हाते हैं (१) व्यक्तिका हित या स्वार्थ (२) विभिन्न गुणों या वीका हित (आवसायिक आर्ग) और (३) समाजका (राष्ट्र का) हित (४० १४१)।

आपौचना व मूल्यांकन

(क) सब सिद्धान्तों पर अच्छी तरह विचार करनेके लक्ष्य अधिकारोंका आन्तरिकी या व्यक्तिव सिद्धान्त ही सबसे अधिक अनुकूल जान पड़ता है। अन्तिम एक समय उत्पन्न होती है जब हम व्यक्तिवकी धारणको व्यवहारमें माने का प्रयत्न करते हैं। यह पूछा जा सकता है कि राज्य किस मन्त्रालयस उन परिस्थितियोंको निश्चित करेगा जो हर मनुष्यके पूर्ण विकासके लिए जरूरी है? क्या व्यक्तिवका विचार आन्तरिकार एक आन्तरिक विचार नहीं है? हम दूसरोंके विचारोंके बारेमें क्या जानते हैं? यह निश्चय है जारी आरम्भित है। हमारा उत्तर इन

आपत्तिपक्षों के लिए यह है कि आदर्शवादी सिद्धान्तों के अनुसार राज्य मनुष्यों के जीवन को सुन्दर बनाने के लिए सब कुछ देने का दावा नहीं करता। यह मानते हुए कि प्रत्येक मनुष्य में विकास करने की जितनी सामर्थ्य है उसना विकास वह करना चाहता है राज्य कुछ न्यूनतम अधिकार मनुष्यों को देता है और मनुष्यों को उन अधिकारों के प्रयोग करने की पूरी स्वतंत्रता रहती है। राज्य यह मानता है कि मौलिक अधिकार हर व्यक्ति के लिए एक समान होने चाहिए। उनको प्राप्त करने के बाद ही भद्र उत्पन्न हो सकता है।

(४) हम यह सोच सकते हैं कि सामाजिक कल्याण सिद्धान्त और आदर्शवादी सिद्धान्त अधिकारों के सम्बन्ध में काफी हद तक एकसे हैं क्योंकि व्यक्ति का हित और समाज का हित आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं।^१ लेकिन जब कभी भी व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में विरोध होता है तब आदर्शवादी सिद्धान्त एक ओर जायगा और सामाजिक कल्याण सिद्धान्त दूसरी ओर। आदर्शवादी सिद्धान्त किसी भी व्यक्ति का प्रतिदान किसी दूसरे के विकास के लिए किया जाना मंजूर नहीं करता। यह सिद्धान्त राज्य के इस विचार से सहमत है कि किसी मनुष्य को किसी दूसरे की उद्देश्य पूर्ति का साधन मात्र नहीं माना जाना चाहिए। यह सिद्धान्त हर व्यक्ति से आप्रहं करता है कि वह अपने और दूसरों के बीच की मानवता को उद्देश्य माने उस केवल साधन मात्र न समझे।

(५) इस सिद्धान्त की अनेक प्रमुख विशेषताओं में से एक विशेषता यह है कि इसमें एक अधिकार को चरम अधिकार (absolute right) माना गया है। वह अधिकार है व्यक्तिगत अधिकार और सब दूसरे अधिकारों को उससे उत्पन्न हुआ माना गया है। प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त में बहुत से चरम अधिकार माने गये हैं और घायल सिद्धान्त में एक भी चरम अधिकार नहीं माना गया है। चूंकि व्यक्तिगत सिद्धान्त में एक ही चरम अधिकार है। इसलिए इसमें कोई आन्तरिक विरोध नहीं है जैसा कि प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त में है। इसके अनिश्चित इस सिद्धान्त में अधिकारों की एक सूची कसौटी भी दी गयी है जिस पर हमें विश्वास किया जा सकता है और इसीलिए यह अधिकार इतिहासीय और सामाजिक कल्याण के सिद्धान्तों से ऊंचा माना गया है। सभी मनुष्यों का एक चरम अधिकार है और वह है व्यक्तिगत अधिकार। वह कभी भी बदलनवाला नहीं है। वह देश और काल के प्रभाव से भी मुक्त है। जैसा कि डॉक्टर हॉकिंग कहते हैं कि परमाणुओं के विस्फोट भी यह अधिकार नहीं उलटता है। उन्होंने अमरत्व के सम्बन्ध में यह तर्क दिया है कि ईश्वर या सृष्टि का रचने वाला—जो भी हमारा इस जीवन के लिए उत्तरदायी है—स्वयं अपनी लाज रक्षने के लिए हमें हर एका अवसर देने के लिए विवश है जिससे कि अपने उत्थान या विनाश

^१ मास्ती ने ठीक ही कहा है मैं केवल राज्य के लिए ही जीवित नहीं हूँ और राज्य भी केवल मेरे हित के लिए ही नहीं है (४७ ९४)। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे के लिए है और दोनों ही एक दूसरे की भलाई चाहते हैं।

अधिकार-साधनी सिद्धान्त

के लिए जो समय हमने इस पृथ्वी पर आरम्भ किया है उसे हम पूरा कर सकें तथा अपने व्यक्तित्वके उद्देश्यनी सिद्धि कर सकें।

SELECT READINGS

- BOIANQUET B — *The Philosophical Theory of the State*—Ch VIII
Section 6
BURNS C D — *Political Ideals*—Ch VII
GILCHRIST R N — *Principles of Political Science*—Ch VI
GREEN T H — *Lectures on the Principles of Political Obligation*—
Section A
HOCKING W E — *Law and Rights*
LASKI H J — *A Grammar of Politics*—Ch III
LORD A R. — *The Principles of Politics*—Chs VIII &
RITCHIE D G — *Natural Rights*
WILDE, N — *The Ethical Basis of the State*—Ch VI

विशिष्ट अधिकार

(Particular Rights)

(क) जीवनका अधिकार (The Right to Life)

जिन विशिष्ट अधिकारोंका हम विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे वह हैं जीवन स्वतन्त्रता सम्पत्ति तथा समानताके अधिकार, राजनीतिक अधिकार तथा राग्यने प्रतिरोध का अधिकार। इन सब अधिकारोंमें से जीवनका अधिकार सबसे अधिक मौलिक है क्योंकि इसके बिना मनुष्यके अन्य अधिकार हो ही नहीं सकते। टी० एच० ग्रीन के अनुसार जीवनका अधिकार और स्वतन्त्रताका अधिकार दोनों मिलकर एक अधिकार बनते हैं जिसको कि हम स्वतन्त्र जीवनका अधिकार कहते हैं। स्वतन्त्रताके बिना जीवन बहार है, और दूसरी ओर जीवनका जो उपयोग हम करते हैं उसीसे हमें जीवनका अधिकार मिलता है। अतः स्वतन्त्र जीवनके अधिकारका नैतिक आधार किसी समाज का सदस्यता होनेकी मनुष्यकी योग्यता है अर्थात् व्यक्तिगत बन्ध्याणकी ऐसी धारणा हो जिसमें उसका हित दूसरोंके हितके साथ घुला मिला हो (२९ १५६)।

यह आश्चर्यनी बात है कि स्वतन्त्र जीवन जैसे मौलिक अधिकारकी भी बहुत पीरे पीरे स्वीकार किया गया है। प्राकृतिक समाजोंमें जीवनका अधिकार मनुष्यको मनुष्यके रूपमें नहीं दिया गया था बरन् उसे परिवार या जातिके नाते यह अधिकार प्राप्त था। इस धारणामें जो परिवर्तन हुआ उसका श्रेय निम्नलिखित तीन कारणोंको दिया जा सकता है रोमन न्याय (Roman equity), जिसने मनुष्यके अधिकारोंको किसी भी राग्यसे स्वतन्त्र और पृथक् रूपमें स्वीकार किया था प्राकृतिक विधि का सिद्धांत जो सब मनुष्यों पर लागू होता है और जिसका प्रचार स्टीवन सोफा (Stoics) ने किया और ईसाई धर्मकी विश्व-व्यापक धारणा (२९ १५६)। इसी प्रगति होनेके बाद भी आधुनिक समाजोंमें इस अधिकारको केवल नियन्त्रात्मक दृष्टि से ही स्वीकार किया गया है। आज हम अधिकसे अधिक इस वादकी विधि बना देते हैं कि किसी मनुष्यका उपयोग किसी भी दूसरे मनुष्य द्वारा उसकी इच्छाने विरुद्ध एक साधनके रूपमें नहीं किया जायगा पर हम मनुष्यको किसी भी सामाजिक उत्पत्तिके गूरा करनेका अवसर नहीं देते हैं (२९ १५९)।

स्वतन्त्र जीवनके अधिकारका आधार मनुष्यमें अपनी रक्षा करनेकी स्वाभाविक

बिगिण्ट अधिकार

प्रवृत्ति और सामान्य मनुष्यम जीव हत्या करनेकी स्वाभाविक अनिच्छावा हुना है। प्रवृत्तियों और भावनाओंके आधार पर ही अधिकारोंकी व्यवस्था करना बहुत ही कठिन है। किसी अधिकारके माने जानेसे पूरे समाजको विश्वास होना चाहिए कि वह अधिकार मनुष्यके विकासके लिए बहुत ही जरूरी और समाज के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। और फिर प्रवृत्तियों और भावनाओंको ही अधिकारका आधार माना जाय तो फिर यज्ञम एक दूसरेकी मारकाट करनेम और जानबूझ कर हत्याए करनेमे जो सत्परता दिखायी जाती है उसका विरमपण हम नैम करें। इसलिये जीवनका आधार प्रतिबन्धामे रहित नहै। उमक अस्तित्वम औचित्यका समपन उसी ह्म तक दिया जा सचना है जिस ह्म नव उमका उपयोग व्यक्तिने प्राप्त विज्ञानम नया समाजके हित म हो।

जीवनक अधिकार में निहित धारणाए (Implications of the Right to Life)

१ जीवन रहनेका कर्तव्य (The Duty to Live) जीवनके अधिकारम जीवित रहनेका कर्तव्य भी दिया है। मनुष्यका अपना जीवन समाप्त कर देना नता व्यक्तिगत विचारम ही उचित है और न समाजके विचारमे ही। यही कारण है कि आत्महत्या की कोशिश करने पर प्रत्येक देशम सजा दा बानी है। व्यक्तिगत दण्ड कोश यह बाई नहै बना सनता कि उसका अपनी योग्यताके अनुसार पूरा विकास हो चुका है। जब तक जीवन है तब तक आत्मा है। इतिहासम हम ऐसे बहुतमे मनुष्यके उदाहरण मिलते हैं जिनम उनका मानसिक विकास उनके शरीर सिमित हो जाने पर भी होना रहा था। ऐसे ही उदाहरण हैं जब कि मानसिक विकास तो नहीं होना पर मनुष्यकी जाग्रताएँ एव उनके विचार अनिश्चित बान तक विकसित होत रहते हैं। इसलिये अधिकारम मामनाम बाई यह नहै कह सनता कि उसका विकास सब सब गया है। आत्महत्या के अधिकतर मामनाम मनुष्य अपने जीवनसे हारकर अपनी कायदा दिनाता है। आधुनिक विचारधाराम आत्महत्या करना बनी भी उचित नही माना गया है। अमाध्य रोगके कारण की जानेबानी आत्महत्याआधी बात दूसरी है।

समाजकी दृष्टिमे भी आत्महत्या करना बुरा है। ऐसा कि गितकार्ट ने कहा है प्रत्येक जीवन समाज-जन्माकी दृष्टिमे मनुष्यम है। इस कारण अपन जीवन दा अन्य किसीके जीवनको सम्यक् कलेका अर्थ एमे व्यक्तिगतको नह करता है जिसके अधिकार भी हैं और कर्तव्य भी। सेण्ट थॉमस एक्वाइनस (St. Thomas Aquinas) की मान आत्महत्या स्वयं अपने प्रति समाजके प्रति और परमात्माके प्रति अपराध है। हम मर्षि से अधिक यहो कर सनते हैं कि आत्महत्या को समाज कर दे नह सनदन किसी भा मान नह दिया जा सनता।

२ हत्या न करने का कर्तव्य (The Duty not to Commit Murder)

यदि एक व्यक्ति को जीवित रखने का अधिकार है तो उसका यह कर्तव्य भी है कि वह दूसरों की हत्या न करे। हत्या केवल एक नैतिक अपराध ही नहीं है बल्कि विधिक दृष्टि से भी यह एक भयानक अपराध है। क्या हत्यारे को मृत्युदण्ड देना उसके जीवित रखने के अधिकार को छीनना है? वास्तव में हत्या करने वाले मनुष्य को जीवित रखने का कोई अधिकार ही नहीं है। उसने जो असामाजिक कार्य किया है उससे उसने अपने जीवित रखने के अधिकार को खो दिया है। इस कारण वह केवल इस अधिकार का दावा कर सकता है कि वह समाज को एक सामान्य सन्स्य की भाँति पुनः वापिस कर दिया जाय ताकि वह सार्वजनिक हित के साधन में अपना सहयोग दे सके। इन अधिकार को परावर्तन का अधिकार (reversionary right) कहते हैं।

मृत्युदण्ड के विरोधियों का कहना है कि ऐसे मामले भी कम नहीं होते जिनमें निरपराध व्यक्ति को मृत्युदण्ड मिल जाता है और अनेक अवसरों पर हत्याएँ बहुत अधिक उत्तेजना दिलाये जाने पर उन्मत्तावस्थामें की जाती हैं। इसके अतिरिक्त उनके निम्नलिखित तर्क भी हैं— (क) मृत्युदण्ड का समाज पर बहुत बरा असर पड़ता है। इससे मानव जीवन का मूल्य कम हो जाता है और लोग मानव जीवन के दृष्टि से प्रति उदासीन हो जाते हैं। (ख) मृत्युदण्ड उस बर्बर युग की देन है जब मनुष्य प्रतिहिंसा की भावना से व्यवहार करता था। (ग) बहुत-से हत्यारे उत्तरदायित्व की भावना से हीन होते हैं और अपने द्वारा किये गये अपराधों की मफ़ करती नहीं समझ पाते और (घ) मृत्युदण्ड हत्याओं को रोकने में अधिक सफल नहीं हुआ है। इन सब तर्कों के चल पर मृत्युदण्ड के विरोधियों का कहना है कि समाज को चाहिए कि हत्यारे को मृत्युदण्ड देने के बजाय उसका सुधार करे।

इन तर्कों का मूल्यांकन करते समय यह कहना ही पड़ता है कि इन तर्कों का आधार जीवन को भौतिक अस्तित्व मात्र (mere physical existence) मानने वाली भ्रान्त धारणा है। समाज अपने एक ऐसे सन्स्य के जीवन को बनाये रखने के लिए जिम्मेदार नहीं है जो दूसरों के जीवन पर आघात पहुँचाना है। जो व्यक्ति दूसरे की सम्पत्ति के कारण उसकी हत्या करता है वह अपने जीवन रखने के अधिकार को खो देता है। वह एक शिकारी जानवर से भी गया जाता है इस कारण उसकी जीवा रक्षा करना गुणत भावना मात्र है। यह धार्मिक तर्क बिल्कुल ही व्यर्थ है कि मनुष्य सभी भी मनुष्य के योग्य नहीं होता और मृत्युदण्ड व्यक्ति को पश्चात्ताप करने के अवसर दे बिजु कर देता है। वास्तव में तथ्य यह है कि ऐसा व्यक्ति जीवन रखने के योग्य ही नहीं है।

बहुधा यह तर्क किया जाता है कि हत्या करने समय हत्यारे का मानसिक गन्तुमन ठीक नहीं रह सका होगा। "म सम्बन्धमें यह जान बहुत ही महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य है कि यदि हम हत्यारे के साथ उदारता से ही व्यवहार करना चाहते हैं तो हमें यह सिद्ध करना होगा कि उसकी मानसिक स्थिति हत्या-नर्मते पृथक् बिगरी हुई थी।

प्राप्त होता यह है कि जब अग्य सभी बहाने असम्भव हो जाते हैं तब पापनपनका बहाना किया जाता है। यदि हत्याका कोई उद्देश्य नहीं है तो यह तक किया जा सकता है कि सम्बन्धित व्यक्तिने हत्या नहीं की है पर यह तथ्य उसके साथ उदारता करनेका कारण नहीं हो सकता। यदि हत्या बिना किसी उद्देश्यके की गयी है तब तो अपराध और भी गम्भीर हो जाता है। यदि हम प्रकारके व्यक्तिप्राप्तो निष्पराध मानकर छोड़ दिया जाय तो परिणाम यह होगा कि जितना अधिक अमानवीय अपराध होगा उतना ही अधिक अपराधियोंको पापनपनके बहाने दण्डों छत्रावरण मिलना शुरू। यदि हत्यारेका पापनपन अस्माया हो तब तो उसके साथ कुछ उपायोंका व्यवहार करनेका कारण भी है उसे एक क्षमतावान् व्यक्ति (potential person) मानकर उसके साथ वसा व्यवहार किया जा सकता है जैसा एक बच्चेके साथ किया जाता है जो भविष्यमें एक सामान्य मनुष्य होनेके योग्य है। परन्तु यदि वह असाध्य पापल है तब तो वह एक मयकाव्य पण है और इसमिष्ट अज्ञा होगा कि विधि को अपना काम करने दिया जाय।

सर हर्बर्ट स्पेंसेन का विचार है कि हत्यारेको मृत्यु-दण्ड मिलनेसे हत्या किय गय व्यक्तिके सम्बन्धियों और मित्राकी स्वाभाविक उत्तरेता और उनके दुस्तरों दुःखना संतोष प्राप्त होता है जितना अग्य किसी प्रकारके दण्डसे नहीं हो सकता। वह मृत्यु-दण्डको हत्याका एक प्रभावशाली निरोधक मानते हैं। उनका कहना है कि बन्धु-भ्राता हत्याएँ याचना बनाकर और साव समझकर की जाती हैं। यदि सर स्पेंसेन की चेतना तो वह आधुनिक विधिसे कुछ इस तरह संवर्धित करें कि कुछ अन्य पृष्ठित अपराधोंके लिए भी मृत्यु-दण्ड दिया जाय।

ऊपर मृत्यु-दण्ड के पक्ष और विपक्ष में जो कुछ कहा गया है उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कमसे कम मानव विकासकी वर्तमान स्थितिमें सा हत्याके अपराधमें मृत्यु-दण्ड ही न्यायाचित है। फिर भी हमें इस बातके लिए विचार धारणा करनी चाहिए कि मृत्यु-दण्ड जहाँ तक हो सके नियन्त्रित रहे। हत्यासे छान अपराधों पर मृत्यु-दण्ड देना किन्तु संशय है। हत्या से कम अपराधों पर मृत्यु-दण्ड न दिया जाने से अपराधियोंको इस बातकी प्रेरणा मिलती है कि जहाँ तक हो सके वह हत्या न करें ताकि अपने का मृत्यु-दण्ड से बचा सकें।

अभी एक बार हम कुछ अनिश्चित अपराधोंके लिए मृत्यु-दण्ड देने पर विचार करते हैं बहा हम दूसरी ओर चाहते हैं कि अनिश्चित दण्ड (indeterminate sentences) की प्रणालीका अधिकसे अधिक प्रयोग किया जाय। किसी सुनिश्चित और भावना व्यक्तिका मृत्यु-दण्डके स्थान पर आज मृत्यु-दण्ड देनेमें कोई सुधार नहीं है क्योंकि मृत्यु-दण्ड की भाँति आज मृत्यु-दण्ड की सजा से या मनुष्य स्वभाव सामाजिक जीवनसे परे हो जाता है और उस सामाजिक जीवनसे मिलनेवाले नैतिक विकासके अवसरोंसे वंचित हो जाता है (२९)। अतः आज मृत्यु-दण्डका अधिक प्रयोग नहीं है जब कुछ समय बाद अपराधीको उसके चरित्रमें सुधार होने पर मुक्त किया जाय।

१ आत्म रक्षाका अधिकार (The Right to Self-defence) प्राप्यमाना जाता है कि जीवित रहनेके अधिकारमें जीवन रक्षाका अधिकार भी शामिल है। किसी मामलेमें जीवन रक्षाके लिए जितनी शक्ति प्रयोग की गयी वह उचित थी या नहीं इसका निर्णय न्यायालया पर छोड़ दिया गया है। प्रचलित विचारधारा यह है कि आत्म रक्षा तो उचित है पर आक्रमण नहीं। इस सम्बन्धमें कठिनाई यह है कि आत्म रक्षा और आक्रमण जसे बातों की परिभाषा करना सदैव आसान नहीं होता। यह सिद्ध करनेके लिए कि इन दोनोंमें से कौन उचित है हमें यह जानना चाहिए कि किसकी रक्षा की जा रही है और किस पर आक्रमण किया जा रहा है (६९ १२०)।

अब एक प्रश्न यद्वाके सम्बन्धमें सामने आता है। क्या राज्यके लिए उचित है कि अपने किसी नागरिक से बहे कि वह अपने जीवनकी माहुरि युद्धमें दे द? क्या यह उसके जीवित रहनेके अधिकार' में हस्तक्षेप नहीं है? यौन के अनुसार अधिकतर युद्ध शासकोंकी महत्वाकांक्षाओंके कारण राष्ट्रीय अभिमानके कारण एवं आर्थिक लाभ के कारणोंसे होते हैं। अब यह कहना कि राज्योंने बीच सधप अनिवार्य है प्रगट है। युद्ध इसलिए जरूरी नहीं है कि राष्ट्रोंका अस्तित्व है वरन् वह इसलिए जरूरी हो जाते हैं कि सावजनिक अधिकारोंकी प्रतिष्ठा और उनमें आगसी मत उत्पन्न करनेके कर्तव्यको राज्य पूरा नहु। करते हैं (२९ १९)।

हीगल की विचारधारा बिन्तुन प्रिय है। उनका कहना है कि युद्ध से व्यक्तिके जीवनमें राज्यकी सर्वशक्तिमत्ता (omnipotence) साबित होती है। राष्ट्रके देवत्वमें यह विश्वास व्यक्तिकी स्वतंत्रताको नष्ट कर देता है। कबल देग और मानू भूमि या ही महत्त्व रह जाता है।

बासायने न युद्धकी नतिजताका विचार राज्यके अधिकारों के रूपमें किया है। युद्धका मौलिक सिद्ध करनेमें उन्हें सैनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती। वह राज्यके व्यक्तिपर और उसने नतिक उत्तरदायित्व पर विश्वास करने है। वह मिराते हैं कि जब जीवन और व्यक्ति जीवनके दावाम सधप पैदा हो जाता है तब हर व्यक्ति और उसका प्रतिनिधि व्यक्तिपर और सामूहिक दोनों रूपों में यह जानता है कि उसे क्या करना चाहिए—अर्थात् उसे युद्ध-नियमों के अन्तर्गत रहना चाहिए। बासायने के अनुसार राज्य नैतिक हितोंका रक्षक है और उसे अपने कर्तव्योंको ईमानदारीमें पूरा करना चाहिए (५ २) चाहे ऐसा करनेमें कुछ व्यक्तिपरताका अहित ही क्या न हो।

इस सम्बन्धमें इतना कहना काफी है कि उत्तर दलीलों पर विश्वास नहीं होता। आधुनिक युद्धोंमें मानव-आननमें और छिपी हुई कार्रवाइयां होती हैं। युद्ध सामारणतया नियंत्रित होते और दशावादीसे भरे होते हैं। इन युद्धोंमें आर्थिक व्यवस्था नष्ट होती है और जीवन तथा विचारोंका प्रभुत्व उपबाध होता है। इन युद्धोंमें व्यक्तिपरता या व्यक्तिपरके समूहोंको बलप्रयोग करने अपना मतसब सिद्ध करनेकी प्रेरणा मिलती है। आधुनिक युद्ध बिनाबिकार बिनाबिकार असीमित आपत्तोंके कारण नैतिक दृष्टिसे बहुत ही निन्द्य, आर्थिक विचारोंमें व्यर्थता हानिकार और राजनीतिक विचारोंमें आत्मघाती

होते हैं। इन सब बातों के कारण हम बच्चे की तरह यह कहना चाहें कि यह 'युद्ध और सावधानी' की ही मूल न्याय है और इसलिए लोकतंत्र की मूल्य स्थान पर किसी दूसरे साधन को साज निवासना चाहिए (१० २९५)। जब तक राष्ट्र में यह भावना रहती है कि आपसी मतभेदों को अन्तर्गत न्याय युद्ध द्वारा ही दूर किया जा सकता है, राष्ट्रीय विद्या अन्य किसी उपाय से मुक्त न्याय नहीं जा सकती तब तक यही मानना चाहिए कि राष्ट्र अपने जीवन की आवश्यकता में ही है यद्यपि उनका विकास नहीं हुआ है।

४ सन्तति उत्पन्न और अत्यन्तम् अल्पसंख्यक अधिकार (The Right to Reproduce Life Coupled with the Right to be born without Heavy Handicaps) सामान्यतः मानव के बराबर ही महत्त्वपूर्ण एक और मूल अधिकार है। यह अधिकार है कि सन्तति-उत्पन्न का अधिकार एक 'आवृत्ति' अधिकार जैसा है। फिर भी यह कोई ऐसा अधिकार नहीं है कि जिसका अर्थ अधिकार के रूप में माना जा सके। आधुनिक समाज में यह भाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि सामान्यतः समाज के हितों के लिए और विशेषकर स्वयं समाज के हितों के दृष्टि से वंशानुगत (hereditary) और अस्थायी पापना, मूलों अथवा बहुरी पापा तथा कुछ रागियों आदि को दूर करके अपनी सुखी अथवा अस्थायी राका जाय।

सन्तति-उत्पन्न के अधिकार के साथ ही हम एक ऐसे अधिकार पर भी विचार कर सकते हैं जिसकी भाग अभी तक अधिक नहीं की जाती पर जिस प्रगतिमान समाज में विज्ञान विज्ञानी जन्म स्थान देना ही होगा। यह अधिकार अल्पसंख्यक समाज के अधिकार है। अल्पसंख्यक समाज को अपने में अल्पसंख्यक समाज नहीं होता और इसी कारण अल्पसंख्यक की और समाज की यह विमर्शना ही जाती कि कोई भी ऐसा समाज न हो जिस अल्पसंख्यक के कारण समाज में अल्पसंख्यक स्थान न मिल सके। यदि किसी देश की जनसंख्या अल्पसंख्यक बढ़ती जा रही है तो राज्य द्वारा हम पर कोई व्यावहारिक राका समाया जाना अनुचित न होगा। आधुनिक जापान ने इस गम गिराने तक की राका टहलाना है जिसका समान नैतिक दृष्टिकोण से किता है न्याय जा सकता। चीन का अब जापान का अनुगामी बन रहा है।

अल्पसंख्यक जीवन गुणवत्ता के कारण अल्पसंख्यक अधिकार अल्पसंख्यक है। इसका अर्थ यह है कि जो लोग मूल्य सन्तति उत्पन्न कर सकते हैं उन्हें अधिक अल्पसंख्यक पंग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय और जो निम्न कान्ति हैं उन्हें अल्पसंख्यक करने पर एक दम राका जाय। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए समाज को अपने अल्पसंख्यक समाज को अल्पसंख्यक उत्पन्न करने में मूल्य सन्तति उत्पन्न करने के लिए अल्पसंख्यक समाज को प्रोत्साहित करना है। ऐसे अल्पसंख्यक समाज के लिए राज्य अल्पसंख्यक समाज को अल्पसंख्यक के द्वारा निम्न करना और अल्पसंख्यक समाज के लिए स्वस्थ समाज को राका कराना ही अल्पसंख्यक पूर्णिक विर है। इन्हीं मुद्दों के अनुसार प्रोफेसर लोन्गेर (Prof. Lonergan) का कहना है कि जो अल्पसंख्यक समाज के लिए अल्पसंख्यक समाज

प्रवृत्ति नहीं कर सकता उसे दानी करनेका अधिकार ठीक उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार ऐसे व्यक्तिको जो बच्चे पैदा नहीं कर सकता (६६ १२८)।

महाँ पर व्यावहारिक महत्त्वका एक प्रश्न यह उठता है कि क्या, मूलों अपंगों और असाध्य पागलोंको स्वतंत्र जीवनका अधिकार है? जब वे अपने जीवनका ही अनुभव नहीं कर पाते तब भी क्या उनके जीवनकी रक्षाकी आवश्यकता है? ग्रीन का कहना है कि व्यक्ति जीवनका क्रम जारी रहना है और किसी भी भावी जीवनमें विकासकी सम्भावना है इसलिए ऐसे लोगोंको जीवित रहने देना चाहिए। यह तर्क इसलिए व्यर्थ है कि हमारा सम्बन्ध अभी इस जमाने के विकाससे है न कि किसी भावी जीवनमें होनेवाले विकास से। हम ग्रीन की इस बातको मानने को तैयार हैं कि बहुत-से मामलोंमें यह तय करना बहुत कठिन है कि पागलपन या मूर्खता असाध्य है या साध्य। पर हम उनकी यह दलील माननेको तैयार नहीं हैं कि ऐसे लोगोंको बेचन इसलिए, जीवन रखना चाहिए और उनकी भरी प्रचार देख देख करनी चाहिए कि ऐसा करनेसे मानव स्वभावकी कोमल वृत्तियाँ विकसित होती हैं। यह एक सतत प्रचारणा भावनावादी (sentimentalism) है। फिर भी हमारा विश्वास है कि विद्वानोंके लिए भी जानेवाली जीव-दृष्ट्याने प्रति हमारी पुष्पायी ओ भावना है उसे कायम रखना चाहिए। मानवताके लिए यह जरूरी है। साथ ही-साथ भावी पीढ़ियोंके हितमें यह भी जरूरी है कि बगानुगत अंग असाध्य रोगियों और जन्म-जात अथवा बोटिके अपराधियोंको तब समाजसे अलग कर दिया जाय और जहाँ आवश्यक हो उन्हें ऐसा कर दिया जाय कि वे सतान पैदा न कर सकें। जहाँ आबादी तेजीसे बढ़ रही हो जैसे भारतमें यह उचित होगा कि राज्य ऐसे लोगोंको सजा दे जो भरण-पोषणकी विन्ता किसे बिना तेजीसे बचा पदा करने जाते हैं।

५ काम पानेका अधिकार और आजीविकाका अधिकार (The Right to Work and the Right to Maintenance) आजकल जिस अधिकार पर जिन प्रतिष्ठित अधिकारों पर जोर दिया जा रहा है वह काम करनेका अधिकार है। यह कहा जाता है कि जीवनके अधिकारका अर्थ ही यह है कि व्यक्तिने जीवनको कायम रखा जाय भले ही वह स्वयं अपने प्रयत्नोंसे अपना जीवन को बनाये न रख पा रहा हो। यह सिद्ध करनेके लिए किसी तर्ककी आवश्यकता नहीं है कि समाजमें अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको जीविका के कुछ आवश्यक पदार्थों की आवश्यकता होती है। उन पदार्थोंके अभावमें मनुष्य बहुत जल्दी ही खर पशुओंकी कोठिमें आ जायगा। समाजवादी और अनेक उदारवादी यह दावा करते हैं कि मजदूरको काम पानेका अधिकार है और जब वह बकार हो जाता है तब उसके भरण-पोषणकी जिम्मेदारी समाजकी होनी चाहिए। क्या यह दावा उचित है?

यह तो स्पष्ट है कि समाजको किसी भी व्यक्तिको भूखों नहीं मरने देना चाहिए। मनुष्य ने जो वैज्ञानिक आविष्कार और मोक्ष की हैं और समस्त सभ्यता में जिस सामाजिक चेतनाका विकास हुआ है उनके कारण समाजने भुखमरीको सामूहिक नष्ट

कर देना अब सम्भव होना ही चाहिए। इसका मतलब होगा कि और समाज बातोंके साथ-साथ म्यूनितम वतन विधि लागू हो सामाजिक सुरक्षा जैसे सामना द्वारा समाज के सम्पूर्णमें सम्पत्तिका फिरसे बँटवारा हो विरासन और उत्तराधिकार पर कड़ा नियन्त्रण हो धनी व्यक्तिगणोंकी शक्तिनको निरुत्साहित किया जाय और तब मजदूर तथा सम्पत्तिका दुरुपयोग रोका जाय।

जहाँ गरीबी और बकारीका कारण समाजक दोष हो वहाँ समाजका कर्तव्य है कि वह अपना समुत्पन्न इस प्रकार करे कि नागरिकाका कल्याण हो सक। क्योंकि जैसा सास्की न बताया है 'या तो राज्य स्वयं औद्योगिक शक्तिका इस प्रकार नियन्त्रण करे कि नागरिकोंका हित हो या फिर औद्योगिक शक्ति ही उद्योगपतियोंके हितमें राज्य का नियन्त्रण करेगी (४७ १०९)। मजदूरोंके निर्वन्मपन या आलस्यसे पैदा हान वाली गरीबी और बकारीका समाजक कारण उत्पन्न गरीबी और बकारीसे पूँक समझकर उस पर विचार किया जाना चाहिए।

आधिक-क्षेत्रम हस्तगत न करने (laissez faire) का सिद्धान्त तबही समाप्त हो रहा है। सास्की के शास्त्रमें अद्वारका दानाश्रीक धूमिल राज्य का स्थान पर बासकों दानाश्रीके सामाजिक-सेवा राज्यकी स्थापना की जानी चाहिए (भारतमें हम उन कल्याणकारा राज्य या मंगलकारी राज्य कहेंगे)। अब राज्यका यह विम्वगरी अधिकाधिक सनी होगा कि जो साम काम करनेक सामर्थ्य है और काम करना चाहत है पर काम नही पात उनके लिए कामका प्रबंध करे और जो नूड और मरा काम करनेमें असमर्थ हैं उनके लिए कुछ दूसरा प्रबंध करे। जब राज्य पर यह विम्वगरी होगी कि वह नागरिकोंके लिए कामका प्रबंध करे तो नागरिकाका भी हम बाधक लिए पैदा रहना होगा कि राज्य जो भी काम दे उस बह करे। सास्की लिखत है 'एक प्रधान मंत्रीको पशुपुन हानेके बाद इस बातका अधिकार नही है कि वह अपने लिए प्रधान मंत्रीके स कामकी भाँग करे। समाज हर व्यक्तिक मनचाह कामका प्रबंध नहीं कर सकता। अपना जीवन प्रामम करनेके लिए समाजका कुछ पगथों और सवाभोंकी आवश्यकता होती है। काम पानक अधिकारका अर्थ इसल अधिक और कुछ नहीं हो सकता कि उन पगथों और सवाभोंके बिना आके उत्पन्नम व्यक्ति माग दता रहे (४७ १०६)।

जब व्यक्ति बहार कर दिया जाता है और उन कुछ समय तक काम नही मिल पाता तब राज्य उसके मरणाभ्युत्थानके लिए विम्वगार हो जाता है। हर मुम्भवस्थित राज्यमें एक बहार सहायता का होना चाहिए जिसका कुछ अंश मजदूर साम स्वयं बना करे। सास्की को राज्य बकारीक शिलात बीमाकी नीति राज्यकी धारणाका एक अभिन्न भग है (४७ १०६)। 'असनी पूँजाकी शक्तिके लिए पशुपुन काम करना होगा और बकारीकी अवस्थामें तब उसके लिए शान्त उनेकी व्यवस्था होनी चाहिए जब तक कि उसे फिरसे काम न मिल जाय (४७ १०६)। पर हमारी राज्यमें ऐसी सहायता या ऐसा सहायता-कोष अस्तित्व नहीं है जैसा जिनम सहायता पानेवालाका

अपना कोई योग न हो। इससे निश्चित तौर पर भ्रष्टमगापन मजदूरी और मजदूर-वर्ग का नैतिक पतन होगा।

मजदूरको केवल काम पाने का ही अधिकार नहीं है उसे अपनी मेहनतके लिए उचित मजदूरी पाने का भी अधिकार है (४७ १०७)। अर्थात् मजदूरको इतनी मजदूरी पाने का अधिकार है जो सक्रिय नागरिकता (creative citizenship) के लिए आवश्यक हो। जीवन का आशय निम्न कोटिकी आवश्यकताओं को पूरा करना ही नहीं है बल्कि इससे बड़ी अधिक है (४७ १०७)। सभी व्यक्तियों को मोक्ष बख्श, भवान् अवकाश और सिला संस्तुत तथा अपनम जो सर्वोत्तम है उसने विकास लिए अवसरकी आवश्यकता होती है। किसी भी व्यक्तिको इस स्तरसे नीचे नहीं गिरने देना चाहिए। सास्यो का कहना है कि उचित मजदूरी या वेतनके अधिकार का यह अर्थ नहीं है कि सबकी आय बराबर हो पर इसके अर्थ यह अवश्य है कि कुछ लोगके पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति एकत्र होनेसे पहले सब लोगोंकी जरूरी आवश्यकताएँ पूरी हों जानी चाहिए (४७ १०९)। इसलिये सबसे पहले यह आवश्यक है कि जनता अपने इस अधिकार का अनुभव करे कि अपने परिचय का उचित परिचयमिक पाना उसका अधिकार है (५५ १३५)।

(ख) स्वतंत्रता का अधिकार (The Right of Liberty)

१ स्वतंत्रता का अर्थ

स्वतंत्रताके आदर्शने सभी युगमें मनुष्य पर बड़ा प्रभाव डाला है। स्वतंत्रताके नाम पर अनेक-अनेक शौर्यपूर्ण कार्य किये गये हैं और अचरणीय पुणित अपराध भी। आज भी इस बहुत बम आदर्श है जिनका प्रभाव सोचा पर स्वतंत्रताके आदर्शत अधिक और तीव्र पड़ना हो। स्वतंत्रता मनुष्यके जीवन का विशिष्ट गुण है।

पहले जो कुछ भी लिखा जा चुका है उससे यह ता स्पष्ट ही है कि समाजमें कही

‘संयुक्त राष्ट्रने अपनी आम सभा में १० दिसम्बर सन् १९४८ ई० को मानव अधिकारों का एक घोषणा-पत्र स्वीकार किया। इस घोषणा-पत्र में दस तरहके अधिकार शामिल हैं जीवन स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वाधीनता अधिकार मनमाने ढंगसे गिराने के विरुद्ध जानस भुक्ति निष्पक्ष ग्याय प्राप्त करने तथा घोषनीयताकी स्वतंत्रता आवागमन और निवास तथा सामाजिक सुरक्षाकी स्वतंत्रता काम करनेकी स्वतंत्रता शिक्षा पानेकी स्वतंत्रता राष्ट्रीयताकी स्वतंत्रता पूजाकी स्वतंत्रता का अधिकार भाषा देने तथा शान्तिपूर्वक सभा करनेकी स्वतंत्रता अपने दसरी सरकार से भाग लेने का अधिकार सार्वजनिक या राजकीय पत्र प्राप्त करने का अधिकार राजनीतिक दल में भाग लेने और देने का अधिकार तथा सम्पत्ति रखने का अधिकार।

(देविता एनी मेन्स यूनाइटेड नेशन्स १९५३ संस्करण पृष्ठ २२८)।

भी पूर्ण स्वतंत्रता या स्वाधीनता नहीं हो सकती। केवल अपने व्यक्तिगत बचनहीन पूर्ण विश्वासका अधिकार ही एक ऐसा अधिकार है जो साधारण मनुष्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त होना चाहिए। स्वतंत्रताका अधिकार इसी उद्देश्यकी प्राप्ति के लिए है। किसी भी व्यक्ति को इस बातका अधिकार नहीं है कि वह परिणामोंकी उपेक्षा करके जो मन में चाहे करता जाय।

नकारात्मक अर्थ में स्वतंत्रताका मतलब बचन के अभाव में है। लेकिन इस परिभाषा में यह नहीं कहा गया है कि इस प्रकारकी स्वतंत्रता अच्छी है या बुरी। हम सकारण (positive) स्वतंत्रताकी आवश्यकता है जिसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि वह आत्म विकास (self-development) का पूर्ण अवसर या मनुष्य के व्यक्तित्वकी निरन्तर अभिव्यक्ति का अवसर है। लास्की के अनुसार स्वतंत्रताका अर्थ विज्ञापन करनेकी शक्ति है अर्थात् वह शक्ति जिसके द्वारा हम अपनी पसन्दका ऐसा जीवन व्यतीत कर सकें जिस पर बाह्यक लागू द्वारा कोई भी नियम लागू न हो (४९-११)। स्वतंत्रता इस बातकी गारण्टी और मन दोनों है कि मनुष्यको अपने कार्यों के सम्बन्ध में आत्म-निर्णय का पूरा अधिकार है।

स्वतंत्रता के सम्बन्ध में ज० ए० मिल के विचार

स्वतंत्रता राज्यकी अनेक परिभाषाएँ हैं और हर परिभाषा में नये-नये दृष्टिकोण मिलते हैं। जैसा कि ज० ए० मिल ने कहा है कि पुराने समय में स्वतंत्रता से मतलब शासक के अत्याचारों से मुक्ति या। सार राजनीतिक सगुन को धातु रखने के लिए शासकोंकी चाह जितनी आवश्यकता रही हो लेकिन उनके स्वार्थोंकी जनता के हितों की विरोधी ही माना जाता था। अब जनताकी स्वतंत्रताका अर्थ शासकोंकी शक्तियों निरन्धित और सीमित रखना ही माना जाता था। शासक की शक्तिका नियन्त्रित और सीमित करने के लिए जनता के कुछ राजनीतिक अधिकार या स्वतंत्रताओंको स्वीकार करवाया गया। कुछ ऐसी बातें निश्चिन्त की गयी जो जनता नष्ट करवायी जा सकती थी और शासकोंकी शक्ति पर शक्तिशाली बचन लगाय गया। कुछ समय पश्चात् यह अनुभव किया गया कि जनता के प्रतिनिधियों का राज्य मजिस्ट्रेटों के पक्ष पर नियुक्त किया जाना आवश्यक है। अब हमसे भी काम न चला एक शासक और जनता के बीच एकरूपता रखी गयी और शासक की आकांक्षाओं को जनता के हितों के अनुरूप बनाया गया। इस प्रकार राजकीय शक्ति राज्य की शक्ति बन गयी और व्यावहारिक गृहस्थों के लिए उसका उपयोग हुआ। यहाँ पर हम यह सुनते हैं कि 'स्वतंत्रता का अर्थ सरकार का सोनप्रिय बनाया जाना ही हुआ गया।

परन्तु पीछे ही यह अनुभव किया गया कि स्वतंत्रता इस पर जो मूल-मर्यादिका ही रह गयी और शासक के अत्याचारों का स्थान 'बहुमत के अत्याचार' अर्थात् प्रचलित भावना या मत के अत्याचारों से लिया। यह अत्याचार व्यक्तिगत शासक के अत्याचार से भी अधिक व्यापक और घातक सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता एक बार पुनः प्रदानता प्राप्त

परनका प्रयत्न किया और इस प्रयत्नम एव नवीन प्रकारकी स्वतन्त्रताका जन्म हुआ जिसे व्यक्तिगत या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कहते हैं। अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'स्वतन्त्रता पर' (On Liberty) में मिल् ने इस स्वतन्त्रता पर विचार रूपसे ध्यान दिया है। उनका ध्येय समाजके आन्तरिक व्यक्तिकी रक्षा करना—उसकी शक्ति और सन्तुष्टि भी रक्षा करना—था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके इस रूपकी शास्त्री ने इस प्रकार परिभाषा की है 'जीवनके उन क्षेत्रों में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करनेकी सुविधा जिनमें मरे प्रयत्नाका प्रभाव मुख्यतः मुझ पर ही पड़े' (४७ १०६)।

२ स्वतन्त्रता के विभेद (Types of Liberty)

(क) प्राकृतिक स्वतन्त्रता (Natural Liberty) प्राकृतिक स्वतन्त्रताकी धारणा जगती जीवनकी स्वतन्त्रताका ही दूसरा नाम है। प्राकृतिक स्वतन्त्रताके समयका था कहना है कि मनुष्य प्रकृति ही स्वतन्त्र है और सम्यक्ता ही बढ़ते हुए बंधनों के लिए जिम्मेदार है। वह स्वतन्त्रता के इस कथनका समर्थन करते हैं कि मनुष्य जन्म से ही स्वतन्त्र है पर सब कहीं वह बंधनमय जवाब है। पर ये लोग यह मूल मानते हैं कि स्वतन्त्रता के प्राकृतिक अवस्था और नागरिक राज्यके पक्ष और विपक्ष सभी तर्कों पर विचार करने के पश्चात् स्वयं ही नागरिक राज्य (civil state) के पक्ष अपना निश्चय दिया है। मनुष्य प्राकृतिक-अवस्थामें अपनी पारितोषिक प्रकृतियोंका दास रहता है पर वही मनुष्य नागरिक राज्यमें एक विचारवान् प्राणी बनकर स्वायत्त और नैतिकताके नियमों का मानता है। 'सामाजिक संधि' में मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्वाधीनताको और जा चाहें हथिया लेना अधिारको छोड़ देता है। इससे बहलम उस नागरिक स्वतन्त्रता और अपनी सम्पत्ति पर स्वायत्तता मिलता है (७६ पु० १ अ० ८)। 'निरंकुश स्वतन्त्रता तो निरी अराजकता ही समान है।

किन्तु भी एक अर्थमें प्राकृतिक स्वतन्त्रता की सार्वभौम व्याख्या की जा सकती है। इसका मतलब जीवनके उन क्षेत्रों में है जिनमें व्यक्ति चाहता है कि उसके साथ उस समय तक हस्तक्षेप न किया जाए जब तक वह दूसरोंके मामलों में हस्तक्षेप न करे। चलन-फिरने और स्थानांतरणकी स्वतन्त्रता इसके उदाहरण हैं।

(ख) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (Personal Liberty) हर एक सामान्य मनुष्य

^१ कृता सामाजिक संधि (Social Contract पहली पुस्तक अध्याय ८)। ए ज० लॉक (Political Theory पृष्ठ १८२) का कहना है कि स्वतन्त्रता की पहली महत्त्वपूर्ण श्रेणी 'व्यक्तिगत' शक्ति है और ईसाई धर्म-गुरुजनों ने इस पुरानी धारणाका समर्थन है कि अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें लोग स्वतन्त्र और भावी भावी अराजकताकी स्थिति में रहते थे। प्राकृतिक अवस्था में नागरिक-समाजकी स्थापना करने पर कोई श्रेष्ठ प्रस्ताव करनेके बजाय स्वतन्त्रता राजनीतिक बंधन उचित मानते हैं। थॉमस हॉब्स के धारणा में 'मनुष्यको मनुष्य बनानेके लिए राज्यके संघटनमें अपने संगी-साथियोंके विचार और विवेकपूर्ण नियंत्रणके अधीन ही रहना चाहिए।'।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चाहता है। वह चाहता है कि वह अपनी इच्छा अनुसार रह सके। अपने इस अधिकारको वह बहुत अधिक महत्व देता है कि वह अपनी सन्तिया या उपयोग और अपन जीवनकी सामान्य-व्यवस्थाका निश्चय स्वयं करे। वह चाहता है कि वह अपन मनचाहे ढंगसे अपनी जीविका कमाए और उसकी इस स्वतन्त्रतामें अनावश्यक हस्तक्षेप न किया जाय। जीवनक अपन सास-तरीकाम अपनी चिन्तामें और अपने व्यवसायमें हस्तक्षेप बहुत ही बरा मानूम होता है बिनापकर जब उसकी सन्तिया सामाजिक व्यवस्था और सावजनिक नतिकताके प्रतिभूल नही हाना। अमरिकामें मध्य निपथ विधिका ऐसे सागोन भी विराध किया जिनकी प्रवृत्ति विधि माननकी रही है क्योंकि इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रतामें अनुचित हस्तक्षेप माना गया। भारतवर्षमें भी मध्य-निपथ विधिको बहुतने साग ताड़ते हैं—बिनापकर वे साग जो समाजमें अधिक तौर पर अयल उच्छ वर्गके हैं अथवा अयल निम्न वर्गके। कुछ साग इस ज्ञानूतका ताड़नमें अपनी बडाई समारते हैं। इन्में म हर मनुष्य अपने घरको अपना गढ़ मानता है जिसका अतिचमण कोई भी बाहरी व्यक्ति नही कर सकता। राज्यके अधिकारी भी उसके भकानमें तब ही प्रवेश कर सकते हैं जब ऐसा करने की अनुमति देन की विधि देती हो अथवा नही। कोई भी अधिकारी विधिके विपरीत उसके मरानमें जबरदस्ती नही घुस सकता।

मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका इतना अधिक महत्व देने है कि वह यहाँ तक कहते हैं कि एक व्यक्तिका अपन जीवनके साग प्रयोग करनेकी स्वतन्त्रता उस समय तक हानी चाहिए जब तक कि उसके बायीका दूसरा पर प्रत्यग और निश्चित बरा प्रभाव न पड़े। मिल सा यहाँ तक तैयार है कि सागका क्रिबूल उर्षी सम्भागी और मरारखोरीकी भी अनुमति की जाय बार्ते कि वे इनके परिणाम भोगनेको तैयार रह। पर यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके विद्यान्तको पराकाष्ठा पर पहुचा देता है।

मिल की ही भाँति बर्टेंड रथन भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको बहुत अधिक महत्व देते हैं। इसे वह सर्वोत्तम राजनीतिक सद्गुण मानते हैं। इस विचार धाराका समर्थन करनेवाले विचारक व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको अन्य सभी राजनीतिक अधिकारोंकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। क्योंकि उनकी रायमें एक मनुष्यके सामुदायिक विद्यासके लिए मनाधिकार या पण प्राप्त करनेका अधिकार जितना जरूरी है उससे बड़ा अधिक जरूरी विचारकी स्वतन्त्रता तथा आपण और विचार व्यक्त करने आदि की स्वतन्त्रता है। दागिता अराजकताकारी विचार-धाराके पीछे यही व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका दुर्लक्षणे है। क्पा न महत्त्वपूर्ण दागिता स्वतन्त्रताका धोना मनुष्यता का त्यागना है मनुष्यताके अधिकार और कर्तव्योंको समार्ण कर देना है। मात्र दागिताकी गब कहा निष्ठा की जाती है क्योंकि यह मनुष्य जीवनके समुक्त उद्देश्यको मल कर देती है और मनुष्यका एक जीवन ओझार बना देती है।

(ग) राष्ट्रीय स्वतन्त्रता (National Liberty) बस ता राष्ट्रीयताकी धारणा भोगाहन आधुनिक ही है फिर भी पुरान जमान में ही साग करने वर्ग और

चा, यह दशावृत्ति गतिशील और सही या सरकारकी ओर में। व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी इसमें शामिल है।

(घ) राजनीतिक स्वतन्त्रता (Political Liberty) राजनीतिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य राज्य की व्यवस्था में व्यक्ति के भाग स है अथवा कमसे कम यह बात ठप करने में है कि राज्य की सक्रिय किस प्रकार काममें लायी जायगी। जैसा सास्की न कहा है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य राज्यक मामलात में सक्रिय रहने के अधिकार से है। बिनाप तौरसे इसका अर्थ मताधिकार और सावजनिक पत्राके लिए पढे हानेके अधिकार आदिसे है।

(ख) आर्थिक स्वतंत्रता (Economic Liberty) अगर बनायी गयी तभी प्रकारकी स्वतंत्रतावाले प्राप्त हो जान पर भी जब तक जीवन पर नियंत्रण करनेवाली आर्थिक परिस्थितियाँ पर व्यक्तिगत अधिकार नहीं है तब तक वह निरा दास ही बना रहगा। पिछले बरौम अधिन जनताकी गुणानाके सम्बन्धम बहुत कुछ मिला और उगमे कहा अधिन कहा जा रहा है। जब मजदूर अपना दया पर विचार करता है तो उसके मस्तिष्कम राजनैतिक स्वतंत्रता नागरिक स्वतंत्रता और सांख्यिक स्वतंत्रता से किसीका अधिक महत्व नहीं मितना। एक मजदूरक लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता है। आर्थिक स्वतंत्रता मजदूर को उचित मजूरी लाती है। यह मजदूरका पानक प्रतिशक्तिता तथा अव्यवस्थित उद्योगसे बचानी है। यहो नही यह उत्पादन और व्यापारका उन व्यवस्थावाला नो समाप्त कर देनी है जो मित मानव अपने स्वार्थ क लिए बनाव है और जिनसे मजदूरका नातिक पत्रन होगा है। यह एक ऐसी स्वतंत्रता है जिनसे एसी मुक्तिपात्रक औद्योगिक पद्धतिका विकास होगा जिससे हर व्यक्ति बड़ा उत्पन्न करेगा जिनो उत्पन्न करनेके लिए वह सबसे अधिक मान्य है और वह बड़ी पत्र करेगा जिसकी समावृत्ति चक्रवर्त होगी। जब तक यह स्वतंत्रता नहीं मित जाती तब तक यह नहीं कहा जा सता कि स्वतंत्रताको समस्या पूरी तरहम हन कर ली गयी है। टॉनी (Tawney) का कहना है कि आर्थिक स्वतंत्रताका अर्थ एसी आर्थिक विषयताके अभावसे है जिसका उपयोग आर्थिक दबावके रूपम किया जा सके। तास्की क अनुसार इसका मतलब उद्योगमें सोद्योगसे है। इसका अर्थ अरनी न्दिक रोगी कमानेम उचित महत्व प्राप्त करनेका अवसर और उनको मुक्त न है। (४३ : ६८)'

[illegible]

(३) नैतिक स्वतन्त्रता (Moral Liberty) एक व्यक्तिव पास ऊपर यतायी गयी सभी प्रकारकी स्वतन्त्रता होने पर भी यदि उसे नैतिक स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त है तो उसकी हालत अत्यन्त दयनीय हो जाती है। नैतिक दृष्टि से दास यह व्यक्ति है जो अपने विवेक के विरुद्ध काम करने को विवश होता है। यदि मैं विश्व-व्यापी-अहं (universal I) को हर व्यक्तिगत देखता हूँ यदि मैं स्वार्थ हीन हूँ और यदि प्रत्येक व्यक्तित्व के व्यक्तित्वका सच्चा सम्मान भरे हृदयम है तो मेरी नैतिक स्वतन्त्रता अवश्य ही पूर्ण है। पर यदि इसके विपरीत मैं अपने विश्व-व्यापी अहंको अस्वाकार करने अपने व्यक्तित्वका कुचलता रहता हूँ और बाण्ट के दायाम अपने विवेककी स्वायत्त शक्तिका निरादर करता हूँ तो मैं अपने स्वभावके अधिकतम आवरण अंग दास ही बना हुआ हूँ। नैतिक स्वतन्त्रता उस परस्परके समान है जो समूची मानवी मजबूत बनाता है यद्यपि मैनिपावली जैसे विचारको ने इसकी उपयोग की है। नैतिक स्वतन्त्रता के बिना सामाजिक और राजनीतिक स्वतन्त्रताका कोई बिनाय मूल्य नहीं रह जाता। टी० एच० ग्रीन और बोसावे इस पर अधिक ध्यान देते हैं। आदर्शवाणी विचारक आमतौर पर और हीगेल् बिनाय रूपसे मानते हैं कि इस प्रकारकी स्वतन्त्रता सम्भव प्राप्त हो जाती है।

३ स्वतन्त्रता और सत्ता (Liberty and Authority)

हमारी स्वाभाविक धारणा यह है कि स्वतन्त्रता और सत्ता एक दूसरेसे भिन्न और पृथक् हैं। अठारवीं शताब्दीके व्यक्तिवाद्मे भी यह धारणा ध्येय होती थी जिसके अनुसार राज्यक सभी कामोंको व्यक्तिकी स्वतन्त्रताम हस्तगत माना जाता था। पर यह दृष्टिकोण बिन्दुम गलत है। हमारा अनुभव हम यतनाता है कि स्वतन्त्रताका बनाये रखनके लिए सत्ता किसी न किसी रूपम आवश्यक है। जैसा बिनावा का कहना है स्वतन्त्रताका अस्तित्व केवल नियन्त्रणके कारण ही है। सुनिश्चित और सीमित स्वतन्त्रता ही वह स्वतन्त्रता है जो एक सम्य मनुष्यके लिए सम्भव है। हर व्यक्तिका यह स्वतन्त्रता देना कि उसके मनम आ जाये सो करे अराजकतावाद् है तथा 'प्राकृतिक' अवस्था की ओर मीणा है। प्रोटेस्टेंट सुधारवाणी आन्दोलन (Protestant

इसको भूल जाय कि राजनीतिक स्वतन्त्रता भी एक अच्छी चीज है और न मही उबिन है कि आधिक स्वतन्त्रताके न प्राप्त हो सकनके कारण हम राजनीतिक स्वतन्त्रताका तिरस्कार कर (पृ ३२)। सर्वाधिकारवाणी राज्या (totalitarian states) में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर अनेक राह लगायी जाती हैं जिनम यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि व्यक्तिके लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता कितनी मूल्यवान और प्रिय वस्तु होती है। राजनीतिक अधिकारोंके द्वारा ही—अपने संगठन और मजदूर-सम बनाते तथा गुप्त मननानके अधिकारोंके माध्यमसे ही—अधिक वक्ता एवं के बाद दूसरी सुविधा महीनया प्राप्त हो सकी है।

Reformation) न पावना सत्ताका ना समायोजन किया पर उमर स्थान पर व्यक्तियों की सत्ताका कायम कर दिया। इतिहास हमें बताता है कि मनुष्य एक प्रकारकी सत्तासे अपनेको बचाने के लिए करते हैं परन्तु दूसरे प्रकारकी सत्ताको अपने ऊपर नान्न है।

स्वतन्त्रता और सत्ता एक दूसरेके विरोधी होनेके बजाय एक दूसरेके सम्पूरक और परिपूरक हैं (They supplement and complement each other)। बहुत पहल ही लॉक ने कहा था 'यहाँ कोई विधि नहीं है वहाँ कोई स्वतन्त्रता नहीं हो सकती। हॉब्स का ना यहाँ तक कहना है कि व्यक्ति जितनी ही अधिक स्वतन्त्रता की इच्छा करेगा उतना ही अधिक उसे अपने आपको सत्ताके अधीन रखना होगा। यदि कोई गणतन्त्र बनना चाहता है तो उस पहले समीप समको जानना होगा यदि कोई अपने विचार दूसरे पर प्रकट करना चाहता है तो उसे कोई भाषा पानी होगी और भाषा के व्याकरण के नियमोंको जानना होगा। इनका कर लेनेके बाद ही वह स्वतन्त्र होता है। सत्ताकी का यह बन्ना बिल्कुल ठीक है कि स्वतन्त्रता पर कुछ नियन्त्रण रहनेमें मनुष्य अधिक सुरक्षित रहता है।

जता कि हॉब्स ने कहा है हममेंसे बहुतोंके लिए स्वतन्त्रताका अर्थ विनाशनाश है और विनाशना ही सत्ता है। सारांश यह है कि अधीनताके बिना स्वतन्त्रता नहीं होती। एक मनुष्यका अपने-अपने मस्तिष्ककी अधीनता मानना ही सत्ता है। अपने विचारका विनाश हमारे लिए अधिकारी व्यक्ति जाना है। हममेंसे बहुतोंके लिए स्वतन्त्रताका अर्थ उन बातोंको स्वीकृत होकर करनेका स्वतन्त्रता है जिन कामों को हम सबन अस्वीकार कर सकते हैं। व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्रताकी सीमा बताना हावी है और वह सीमा है उन मामलों में अधिकारीको अधीनता मानना जिसमें वह स्वयं विचार होनेका चाहा नहीं करता। इसलिए विनोदना स्वतन्त्रताके समर्थकी मांग करनी है। इस प्रकार स्वतन्त्रता और सत्ता एक दूसरेके विरोधी होनेके बजाय अनिवार्य रूपसे आपस में सम्बंधित है।

सत्ता के बारे में मायारण तौर पर जो कुछ कहा गया है वह व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध में भी पूरी तरह लागू होता है। राज्य हमारे द्वारा के अनन्त काम करनेवाले नोकरकी भाँति है। राज्य जिस हद तक हमारी इच्छाका अनुपालन के साथ पूरा करता है उस हद तक हम स्वतन्त्र हैं और हम राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त है।

स्वाधीनता और विधि (Liberty and Law) राजनैतिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता और सत्ता के प्रतिष्ठित सम्बन्ध है उसका पता इस वाक्य में लगता है कि सत्ता स्वतन्त्रताको विनाशित होने के बजाय उसके लिए अनिवार्य है। विधि (Law) के बिना व्यक्ति स्वतन्त्रता ही नहीं सकता। रिच (Richey) ने ठीक ही कहा है 'आप बिना विचारके ही कुछ करने के बिना स्वतन्त्रता विधिही ही देव है। वह ऐसा कोई नहीं है जिसका अस्तित्व राज्य के कार्य-कारण पर रह सके (६ १३ १४०)।

सावजनिक हितमें कुछ नियंत्रण आवश्यक है पर इन नियंत्रणोंका उपयोग निष्पक्ष रूपसे होना चाहिए और समाजको उनके औचित्य पर विश्वास होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो स्वतंत्रता और सत्ता एक दूसरेके विरोधी हो जाते हैं। जब तक लोगोंमें यह भावना बनी रहती है कि विधि किसी व्यक्ति या वर्ग विशेषके लिए बाहरी दबाव डालनेका साधन है तब तक असन्तोष और दुःख बना रहगा तथा इसका परिणाम सभी-सभी विरोध भी हो सकता है। इसलिए यदि स्वतंत्रता और सत्तामें सामंजस्य स्थापित करना है तो यह आवश्यक है कि जिस सत्ताकी आज्ञा माननेको हमसे कहा जाय वह उचित और न्यायपूर्ण हो और उसकी आज्ञापालन लोग स्वेच्छासे करें। लोगों के सामने अपने द्वारा बनायी गयी विधि की अधीनता स्वतंत्रता ही है (६७-१९)। चीन कहते हैं कि मनुष्य जब एसी विधिकी पालन करता है जिसको उसने स्वयं बनाया है और उसका पालन वह पूर्णता प्राप्त करनेके लिए करता है तब वह स्वतंत्र ही रहता है। सार्वभौम के इस बचनमें भी यही बात व्यक्त की गयी है कि विधि केवल आज्ञा ही नहीं है वरन् अधीनता भी है (४९-७१)।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक विधिको लागू करनेमें पहले उसके लिए सभी नागरिकोंकी स्वेच्छान्वय स्पष्ट स्वीकृति ले लेना आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति को किसी विधि की महत्ता और उपयोगिता पर व्यक्तिगत रूपसे विश्वास न हो तो भी उस विधिकी अवहलना करने का उसे अधिकार नहीं है। ऐसे अधिकारको माननेका अर्थ अराजकताका बड़ाका देना होगा। हब्स स्पेंसर के राजनीतिक सिद्धान्त में यह सिद्ध कर दिया गया है कि प्रत्यक्ष स्वीकृति (literal consent) का सिद्धान्त अम्यावहारिक है क्योंकि सभी बातों पर सारसम्मति स्वीकृति प्राप्त नहीं की जा सकती। प्रत्यक्ष स्वीकृति का अर्थ है बहुमत द्वारा अल्पमत पर दबाव डालना और इस प्रकार के जबाबका राजनीतिके किसी भी स्वस्थ सिद्धान्तमें उचित नहीं माना जा सकता है। प्रत्यक्ष स्वीकृति को अम्यावहारिक मानकर ही कुछ लेखक व्यक्ति को राजनीतिक अधीनताका आधार मानते हैं तथा मिल की भाँति कुछ अन्य लोगोंने समझौतेका मार्ग ढूँढ निकाला है। जैसा कि बोसॉने ने कहा है यदि हम सक्रिय स्वीकृति (active consent) की मदद न लें तो राजनीतिक अधिकार और स्वायत्तता परस्पर विरोधी बने रहेंगे। सक्रिय स्वीकृति लोक-सम्मति (general will) का ही दूसरा नाम है। हम सिद्धांत का संश्लेषण यहाँ है कि लोगोंमें इस भावनाका विश्वास हो कि राज्यका एक महान नविक उद्देश्य है और राज्यकी इच्छा स्वयं व्यक्तिकी ही इच्छा है या स्वार्थरहित होकर गूढ़ हो चुकी है। जब तक राज्यके कार्य सावजनिक हितमें होने हैं तब तक राज्यकी अवहलना करनेवाले व्यक्ति को स्वतंत्र होनेके लिए बाध्य किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने में उस पर जो बल प्रयोग किया जाता है वह उसने स्वयं ही किया था। सार्वभौम का यह विचार ठीक है कि नियंत्रण बुराई नहीं है। हाँ हमने (invasion) अर्थपूर्ण बुराई है।

४ स्वतंत्रता और समानता (Liberty and Equality)

डु टोक्युवील (De Tocqueville) और साड ऐक्टन (Lord Acton) जैसे स्वतंत्रता के पुकारियोगी विचार हैं कि स्वतंत्रता और समानता एक दूसरे के विरोधी हैं। यह दृष्टिकोण बहुत मान्य हुआ है। फ्रांसक क्रांतिकारी मूल नही था कि उन्होंने स्वतंत्रता समानता और बंधन का नारा बुलन्द किया था। यह तीनो शब्द एक दूसरे के सम्बन्धित हैं। यदि स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य प्राप्त करना है तो यह जरूरी है कि समानता भी किसी न किसी रूप में उसका साथ रहे। ऐसा कहना अथ यह नहीं है कि समाज हर एक व्यक्ति के ऊपर एक निर्जोब और यात्रिक समानता लाद दे। प्रकृति ने सभी व्यक्तियों को एक समान समय नही बनाया है। समानता का अर्थ यह नहीं है कि सभी व्यक्तियों के लिए एक ही व्यवहार^१ एक ही काम और एक ही पुरस्कार रहे। समानता का मतलब है निष्पक्षता (impartiality) और अनुपातिकता (proportionality) अर्थात् बराबर बातों में समानता और विषम बातों में व्यक्तियों में असमानता। इसका अर्थ है कि अर्थ सब बातों में समान हानि हर मरने वाला उठाना ही महत्वपूर्ण है जितना कि किसी भी अन्य व्यक्तिको हित हो सकता है (Rashdall)। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि किसी भी व्यक्ति या वर्ग तथा समुदाय के लिए किसी भी प्रकार के कोई विशेष अधिकार या सुविधाएं न हों। व्यक्ति के हकप्राप्ति के विरुद्ध विधिवी मरणा सबके लिए समान रूप में प्राप्त हों। इस बात का आवासन हो कि सत्ता का उपयोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए न होकर सामाजिक हित के लिए ही होगा और सबको समान अवसर प्राप्त होगा।

अंतिम बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आजकल न जाने कितनी प्रतिभा व्यय हो रही है। एक आदर्श समाज में प्रतिभा को प्रोत्साहन के अभावक कारण नष्ट नहीं हुआ चाहिए (४३ १५४)। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का अवसर मिलना चाहिए कि वह अपने व्यक्तिगत पूरा-पूरा उपयोग कर सके। समाज में असमानताएं रह सकती हैं पर समता का नूनतम आधार रखने के लिए गुप्त हो जाना बाकी ही परिस्थिति के अनुसार दिये जानेवाले वेतन की विभिन्न दरें हो सकती हैं। फिर भी समता की अवधि में असमानताएं स्वाभाविक असम्यक् बना देती हैं।

इस चर्चा का अर्थ यह होता है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर सोच समाज की सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ा है। राजनीतिक सम्बन्धों में व्यक्ति की यह उक्ति व्यापक और परमाणी जाती है कि राज्य के व्यक्ति का मूल एक ही है। एक ही है कि अधिक किसी का नहीं। अर्थात् हर मनुष्य बराबर है। अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि सामाजिक अधिक समानता के बिना राजनीतिक समानता व्यर्थ है। प्राइमर पोल्स

^१ तात्पर्य है कि एक ही सिद्धांत प्राप्त करने के अधिकार का अर्थ यह नहीं है कि सभी नागरिकों को एक ही सीढ़ी मिले। देने का अधिकार है (४३ १५४)।

(Prof Pollard) ने इस सच्चाईको एक वाक्यम इस प्रकार व्यक्त किया है स्वतंत्रता की समस्याका केवल एक ही हल है यह हल समानता ही निहित है। दुर्बल व्यक्ति की स्वतंत्रता धलवानके नियंत्रण पर और गरीबकी स्वतंत्रता धनवानके नियंत्रण पर निर्भर करती है। प्रत्येक व्यक्तिको केवल इतनी ही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए—और उससे अधिक कुछ नहीं—कि वह दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा व्यवहार वह चाहता है कि दूसरे साथ उसके साथ करें। इसी सामान्य आधारगिरी पर स्वतंत्रता समानता और नतिकताका अस्तित्व है (७६ २४७-४८)।

भास्की जो इसी विचारके पोषक हैं लिखते हैं कि राजनीतिक समानता उस समय तक वास्तविक नहीं हो सकती जब तक उसके साथ वास्तविक आर्थिक समानता भी न हो। उन्हीके अपने शासन समानतासे तात्पर्य जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्तिमें उस हद तक एकत्वनासे है जिस हद तक उसे पर्याप्त माना जा सके (४७ १६०)। एक ओर कुछ लोगोंके पास प्रचुर सम्पत्ति होना और दूसरी ओर अन्य लोगों का भूखसे भरना उचित नहीं है। या तो राज्य सम्पत्ति पर अपना प्रभुत्व कायम करे या फिर सम्पत्ति ही राज्य पर अपना प्रभुत्व कायम कर लेगी (४७ १६२)। अधिक दक्षिण उपयोग करनेवाली सत्ता का लोकतंत्रीय नियंत्रणसे अधीन होना चाहिए। यह अपेक्षित है कि प्रत्येक व्यक्तिके लिए एक निम्नतम मानक होना चाहिए और साथ ही एक उच्चतम मानक भी होना चाहिए जिसके ऊपर साधारणतया किसी भी व्यक्तिको उठने न दिया जाय। एक ओर किसी भी व्यक्ति का अधिक स्तर निर्धारित निम्नतम स्तरसे नीचा न हो और दूसरी ओर किसी भी व्यक्ति का स्तर निर्धारित उच्चतम स्तर से ऊँचा न हो।

एक अन्य विचारके लिए भी हम भास्की के श्रेणी हैं और वह विचार यह है कि यदि राष्ट्राव बीच सच्ची समानता लानी है तो सबसे पहले यद्को अर्थव्यवस्था धोषित किया जाना चाहिए। इसके अर्थ हैं कि छात्र बनाये रखनेके लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंका निर्माण हो। अब एक राष्ट्र या कुछ राष्ट्रोंका एक मुटु संसारके कच्चे माल पर एकाधिकार स्थापित कर लेना है और जहाजराती बैरिंग और विन्डो व्यापार पर अपना नियंत्रण कायम कर लेना है तब अनेक राष्ट्राधी स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है।

जहाँ तक भारतका सम्बन्ध है समानताके सिद्धान्तकी भाँति है कि विना जाति भाषा और प्रायः के भेदोंका जितनी जल्दी हो सके समाप्त किया जाय। स्वतंत्रताके वास्तविक नियंत्रणोंकी स्थितिमें बहुत कुछ गुप्तार हुआ है। वे पुरखोंके समान मनमान कर सकती हैं और जुतावम सड़ी हो सकती हैं। कुछ मजिमाओंका दण्डनी प्रणामनीय मवाजाम भी स्थान दिया गया है। विद्यार्थियोंकी गिनती कायम अवसर विवाह सम्पत्ति और उत्तराधिकारमें भी अधिकाधिक समान अवसर दिये जा रहे हैं। दलित वर्गके उत्थानके लिए भी बहुत कुछ किया जा रहा है। उनकी गिनती विना छात्र बुनियादी उधारोंके साथ ली जा रही है और उनमें अनेक मोताका गरीबी दण्ड पर

नियन्त्रण किया जा रहा है। अद्युक्त प्रथा अशुद्धि योगिन का जा चकी है परन्तु लोकमनस प्रबल सम्यक्मनस अभावम इम विधिको कडाईसे लागू न किया जा रहा है।

प्रान्तीय और भाग सम्बन्धी विभागको दूर करनेम भारत अधिका प्रगति नहीं कर रहा है। राज्योका पुनर्गठन बहुत कुछ नायके आधार पर हानर शरण भाषाक आधार पर नये राज्योके निर्माणकी माग हान सर्गी है और फूट पग बनवानो बलिया का गमी लग मिन मयी है। इस पर प्रबल देग भविनी भावना ही विजय पा सकता है। इसका निराकरण अव्यक्त प्रतियोगितायुग राज्यीय मेधाप्रति अनिरुक्त काम के अन्ध अवसरोंकी वृद्धि करके ना किया जा सकता है।

समानताक सिद्धान्त और प्राहृणिक सममानताकी वाग्विक्तनाम सामन्तस्य स्थापित करना समानताका लक्ष्य होना चाहिए।

५ स्वतन्त्रताका राजकीय नियमन (State Regulation of Liberty)

हम पहा ही कई बार कह चुके हैं प्रतिबन्ध हीन स्वतन्त्रता का बार्म भोविष्य नहीं है क्योंकि कुछ भोगोका प्रतिबन्ध हीन स्वतन्त्रता मिलनका परिणाम दूसराकी स्वतन्त्रता का अपहरण होगा। इससे यह निष्पन्न निवन्तना है कि स्वयं व्यक्तिगत हितम तथा समाजके हितम यह आवश्यक है कि स्वतन्त्रता पर कुछ प्रतिबन्ध लगाय जायें। अब हम इस प्रतिबन्ध पर विचार करन जा गाय द्वारा प्रथम रूपम और समाज द्वारा परोक्ष रूपमे लगाय जाते हैं। इन प्रतिबन्धोके उचित या अनुचित होना निम्न हम इस सिद्धान्तमे कर सकन हैं कि राज्य द्वारा बल प्रयोग तथा भक्ति है जब बल व्यक्तिगत द्वारा बिद जानवाने और भी बुरे बल प्रयोगका राखता है।

१. मानव रक्षाका अधिकार (The Right of Personal Security)

हर व्यक्तिका मानवताका अधिकार हाता है। उमे मार डालनेकी स्वतन्त्रता किसी भी व्यक्तिको नहीं होती। अतः मानवताका अधिकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर सर्वम पहा प्रतिबन्ध है। जिसको यह अधिकार नहीं है कि वह मृत्यु पर हमला करे या मेरे दासीका मतमाना उपयोग करे या मुझे स्वयंशुद्धक बनने छिनन रखे। मुझे अधिकार है कि मैं स्थिति रहूँ और अपना इच्छाके अनुसार काम करूँ बगैरे कि मेरे कामोंमे दूसरोंके अहित अधिकारोंमे हस्तक्षेप न हाता हो और सामाजिक व्यवस्थाम खलन न पडता हो। इन सब बातोंका आधुनिक राज्यम स्वाकार किया जा चुका है। दूसरों पर बिद जानवाने आक्रमण पर वह बाध बिदना हा मामूनी कर न हो बिधि बिचार करन। यह भावनाम किया गया चरका भी हमला माना जा सकता है। हिता ब बल यह एक विरुद्ध बिधि हमारी रखा करती है। उदाहरणक बिद बिचार है मुनरा किया मे भविष्यमे हमारे ऊपर बल प्रयोगकी घमसी द ता बिधि हमारी भी मुनराई करती है। बिधि मानव रक्षाका अधिकार रक्षित करती है। जीवन मन्तरेम हाने पर बिधि हम अनुमति नहीं है कि हम अपनी जीवन रक्षाके बिद

और अगल गमल है तब तो यह और भी जरूरी है कि खुलकर विचार और विवाद हो ताकि लोग एक दूसरेसे सीख सकें। एसी हालतोमे विचार विवाद पर रोक लगाने का अर्थ है इस बात का दावा करना कि हमसे कभी कोई भूल हो ही नहीं सकती और अनुभव यह सिद्ध करता है कि कोई भी ऐसा परमसिद्ध नहीं है जिससे भूल न होती हो।

उन सब दते हुए मिल का विचार है कि मनुष्य जानि इतनी समझदार है कि वह सर्वथा मचाईका खुले दिलसे स्वागत करेगी। व इस बात पर ध्यान नहीं देते कि साग अधिकतर अपना विषय तर्कसे अनुसार न करके भावनाके बगीभूत हाकर करते हैं और मध्य समाजम भी कुछ प्रतिगत साग ऐसे होते हैं जो अपनी स्वतंत्रताका उपयोग ठीक प्रकार नहीं कर सकत। अपन समय में प्रचलित हुस्सापन करनेके (laissez faire) सिद्धान्तकी भांति मिन भी यह मान सते हैं कि व्यक्तिगत हित किसी न किसी प्रकार आवश्यकतनव ढंगसे सामाजिक हितमें बल आता है। यह इस साधारण अनुभवका भूल जागे है कि कभी-कभी सत्यका सबल बनानेके लिए असहिष्णुता की अवस्था पार करनी पड़ती है। एक उपयोगितावादी (utilitarian) होनेके नाते उन्हें पूरा स्वतंत्रताकी बात करनेका कोई अधिकार नहा है। उन्हें तो वास्तविक काम साधन (expediency) के दृष्टिकोणसे विचार करना चाहिए। इस सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी समाज अभीमिल विचार-स्वातंत्र्य नष्ट दे सकता।

रेनन (Renan) विचार-स्वातंत्र्यका बहुत अधिक महत्व देते हैं। वह इसे सभी प्रकारकी धर्माप्यताका बहुत बड़ा हल मानते हैं। होंकि का तर्क है कि विचार स्वातंत्र्य मनुष्यके विवासके लिए अनिवार्य है क्योंकि इसी स्वतंत्रता द्वारा मनुष्य विचार प्राप्त करके चकिनगाली बननेका अवसर पाता है। उनका कहना है कि एक स्वस्थ समाजमें सभी विचारोंका अपना महत्व सिद्ध करनेका अवसर दिया जाना चाहिए। प्राणिजोंकी भांति विचाराम भी जीवनके लिए सपर्य और मर्यापि सबल व अस्तित्व का सिद्धान्त लागू होना है। विचारामे सपर्य होनेके बाव भी विचार टिपते हैं जो वास्तविक सबल अधिक सही और सबल होते हैं।

किर भी सभी लोग मानते हैं कि स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट करनेकी भी सीमाए हैं। इन सीमाओंका निर्धारण समाज साक्षमन द्वारा तथा राज्य अपमान जनक मय (libel) निशान्मक भाषण (slander) मानहानि (defamation) ईश्वर निश (blasphemy) और राजपाह (sedition) आदिसे सम्बन्ध बनी हुई विधियों द्वारा करना है। भाषण-स्वातंत्र्य पर बन्धा लगाने समय इस सामान्य सिद्धान्तका पालन किया जाना है कि औचित्यकी सीमाके भीतर ही विचार प्रकट किए जाय और सामाजिक व्यवस्था तथा सावजनिक गणचार के विपरीत न हो।

अपमानजनक सपन और निशान्माषण (Libel and Slander) व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता पर हमला के बराबरी ही नहीं होना। व्यक्तिकी मानसिक कलेश पहुंचा कर भी उसकी स्वतंत्रता पर हमला किया जा सकता है। यह स्पष्ट है

कि इस प्रकारके अपमान विधि हमारी रणा नहीं कर सकती क्योंकि इस प्रकारके अपमान का प्रमाण और परिमाण दाना ही इतने अनिश्चित रहते हैं कि विधि उन पर विचार नहीं कर सकती। फिर भी अपमानजनक सख्त व निम्न आपणक विद्वद् विधि व्यवस्था करने विधि व्यक्ति के मानकी रक्षा करती है। विधि यह स्वीकार करती है कि मान व्यक्ति की एक पवित्र निधि है और वह अधिकतर अमर व्यक्तियों के अस्तित्व में रहता है। इसलिए जब एक व्यक्ति दूसरे पर झूठ ही आरोप लगाता है—चाह आरोप छोटा हो या बड़ा—या किसी अन्य प्रकारसे उसके चरित्र पर आक्षेप करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है। कुछ देशों में किसी व्यक्ति को उसके पण के आयोग कहना या उसकी योग्यता पर सन्देह करना भी दण्डनीय है।

दण्ड से बचने के लिए बचल इतना ही सिद्ध कर देना हुआ काफी नहीं है कि किसी व्यक्ति के विद्वद् कही गयी बात सत्य है। जो आरोप लगाया जाय वह जनहितक उद्देश्य से ही लगाया जाना चाहिए क्योंकि किसी व्यक्ति का सत्य बात कहने पर भी उसी प्रकार दण्ड दिया जा सकता है जिस प्रकार झूठा आरोप लगाने पर।

अपमानजनक सख्त या निम्न आपणक लिए दाहि-पूर्ति (damages) दिसात समय आराप लगानेवाले व्यक्ति के उद्देश्य और जिस व्यक्ति पर आराप लगाया गया हो उसकी प्रतिष्ठा और उसकी भावनाआधा भी विचार किया जाता है। आरक्षण मंजरी काफी देसोम सख्त बारम किंचि कुछ ऐसी है कि जब आराप सत्य भी होता है और उसका सावजनिक महत्व भी होता है तब भी आराप लगानेवाले का दण्ड दिया जा सकता है। तब कुछ विधिकी व्याख्या पर निर्भर करता है। पर साधारण नियम यह है कि अपमानजनक बाय चाह किसी एक व्यक्ति न किया हुआ या चाह किसी समाचार पत्र ने उसे तब तब दण्ड नहीं दिया जा सकता जब तक कि वह मौजूदा विधि के सिद्धान्तों में न आ जाय।

ईश्वर निन्दा (Blasphemy) का सामान्य सिद्धान्त अपमानजनक सख्त तथा निम्न आपण पर लागू होने हैं वे ही धार्मिक और नैतिक प्रभाव के विवेचन पर भी लागू होने हैं। क्रिस्त में ईश्वर निन्दा के मामले पर साधारण अंगलतमि है। एक ग्यायाधीन और जुरी द्वारा विचार किया जाता है जिससे कि मामले की अनधिकृतता और धार्मिक छतरे पर देण सावजनिक जीवन और प्रशस्ति विचार-धारा के अनुसार विचार हो सके (२८ १५०)।

सरकार की आलोचना करने का अधिकार यद्यपि एक अर्थ में राज्य की स्वतंत्रता का अधिकार होता है तथा उक्त तथ्य सत्य है फिर भी स्वतंत्रता राजनीतिक सत्ता का गोमिनी ही रक्षता चाहती है। सामान्य जवाब-समय करने की क्षमता रखना स्वतंत्रता की गारण्टी है। सामान्य के शासन जिस राज्य में अस्तित्व अव्यपित करने के लिये होता है वह भी स्वतंत्रता ही नहीं कर सकती (४९ ९५)। व्यवस्था ही सबसे बड़ी मज्जाई नहीं है और बिना हमारा अनुचित नहीं होता (४९ ७६)। मरिच कोई भी राज्य विधियों का तोषा जाना सहन नहीं कर सकता और किसी भी व्यक्ति को हम

बातकी अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह लोगोंको राज्यकी सत्ताकी अवज्ञा करनेको उन्साये और इस प्रकार राज्यकी सुरक्षाको खतरेमें डाले। हिंसामय और अवज्ञा मूलक कार्य राजद्रोह और बिनाह कानूनने भीतर आ जाते हैं। जब खतरा अप्रत्यक्ष और दूर हो तो राजनीतिज्ञता इस बातमें है कि सहनशीलतासे काम लिया जाय। सास्की तो यहाँ तक कहते हैं कि राजद्रोहने नाम पर विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता पर लगाया जानवाला प्रत्येक प्रतिबंध समाजक हितके विपरीत है क्योंकि आज जो नास्तिकता है वही कल धार्मिक विश्वास बन जाता है अर्थात् कोई बात जो आज बुरी मानी जाती है कल अच्छी मानी जा सकती है। राजद्रोह या देशद्रोहने नामलोकको बायपालिकाके ऊपर छाड़नेसे निश्चयही अधिकारका दुरुपयोग हो सकता है। सास्की के प्रभावशाली दार्शनिक बायपालिकाका भाव असंतुलिततम ग्यायका अभाव है (४९ १११)। मुझ जैसी विषय परिस्थितियोंमें स्वतन्त्रता पर विषय प्रतिबंध लगाया जाना उचित माना जा सकता है। पर सास्की का विश्वास है कि भाषण स्वातन्त्र्यमें मुझक समय भी बड़ी अधिकार निहित रहते हैं जो शान्तिवादीमें रहते हैं। उन्होंने दार्शनिक यदि किसी व्यक्तिका जन्म रसन सावेन की भांति विश्वास है कि मुझ हत्याका दूसरा नाम है तो उसका यह कथन्य है कि वह अपने इस विचारको प्रकट करे भले ही ऐसा करनेसे सत्ताशील सरकारका अनुकिया पैदा हो (४९ १११)।

प्रसक्त स्वतन्त्रता (Liberty of the Press) प्रसक्त सम्बन्धमें विज्ञान और फ्रांस तथा अधिकतर अन्य देशोंकी विधियाँ दो बिल्कुल भिन्न काटिबी हैं। इन दोनोंमें से कौन सी—विज्ञानका या अन्य योरोपीय देशोंकी—पद्धति श्रेष्ठ है यह विचार प्रसक्त प्रश्न है। सॉर्ब मेसजरीज के अनुसार विज्ञान प्रसक्त बिना पूर्व अनुमतिके छापनेकी स्वतन्त्रता है बगैर कि प्रकाशक बिधिके नतीज भोगनेके लिए तैयार रहे। प्रेसके मामलों पर विचार करनेके लिए विज्ञान अक्षतजें नहीं हैं। व्यक्तिगत नागरिकोंकी तुलनामें समाचार पत्रों पर कोई विशेष प्रतिबंध नहीं है।

फ्रांस तथा योरोपके अधिकतर देशोंमें न केवल प्रसक्त सम्बन्धित विज्ञान विधियाँ हैं बल्कि प्रेसके अपराधों पर विचार करनेके लिए विज्ञान अक्षतजें भी हैं। फ्रांसका शासन सिद्धान्त यह है कि सरकारको न केवल उन लोगोंका दण्ड देना चाहिए जो भाषण-स्वातन्त्र्यकी सीमाका उल्लंघन करने हैं बल्कि उसे लोकमतका सही दिशाओंमें संभालन भी करना चाहिए। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि इसावस बचाव अपना धर्म है।

विज्ञान प्रेसकी स्वतन्त्रता जैसा कोई अधिकार कभी भी विधि द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। मसजि प्रेस नियंत्रण (censorship) नहीं है पर राजद्रोह देशद्रोह ईतर निम्न आर्थिक कारणोंके कारण विधियाँ हैं और ये सब प्रेसकी स्वतन्त्रताका सीमा निरूपण करती हैं। इन परिस्थितियोंमें बहुतों यह मान लिया जाता है कि जूरी द्वारा मुद्दामकी सुनवाई होनेसे वाद-विवादकी स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है। विज्ञान समयमें यह सोचना चाहिए कि ज्ञान सही रहा हो पर जनमानस सुगम परिस्थिति बरतने में उतन उद्यम न करे।

रह गया है। पहल उमानेम जिस बंधन तूरा खुन जान य उस बगकी प्रवृत्ति सरकार क विरुद्ध प्रस्ताव देनेका उद्योग था। पर वाजकन अधिकांश तूरी विचार और बात-विबातकी स्वतंत्रताके प्रती नहों मान जान। इसलिए यह सम्भव है कि आज हमें उस पद्धतिको स्थापना पर जो पहल सभी व्यक्तिगत स्वतंत्रताकी रक्षा की— यानी उसम आयुस सुधार नहों निय जान।

वैयक्तिक कार्य (Individual Action) पर मिन क विचार.

काय-स्वातंत्र्य (Liberty of Action) मिन न स्वतंत्रता पर निष्ठ गये अपने निष्पन्न कवन विचार अनिव्यक्ति की स्वतंत्रताका ही समर्थन नह, किया है बल्कि उन्होंने काय करने की स्वतंत्रताका भी समर्थन किया है। मिन न मनुष्य के काय दो प्रकार क बताये हैं (१) आत्मनरक (self regarding) और (२) समाजपरक (other regarding)। उनके अनुसार आत्मनरक काय वे काय हैं जिनका सम्बन्ध कवन काम करनेवाले व्यक्तिम ही होता है तथा समाजपरक कार्य वे कार्य हैं जिनका असर काम करनेवाले व्यक्तिम अथवा अन्य लोगों पर भी पड़ता है। मिन का कहना है कि पहल प्रकारक कार्यम किसी प्रकारका भी हस्तगत नह, होना चाहिए। यह काय किसी व्यक्ति की निजी रुचि ही सम्बंधित हैं। दूसरी काटि अपॉन् समाजपरक कार्यम राज्य विधायक द्वारा और समाज लाकमनक द्वारा हस्तगत कर सकता है। यद्यपि एम भी मान्य हान है जब दानमि स किसीका हस्तगत करना उचित नहीं होता। दूसरे शब्दमि मिन एक शत्रु म पून स्वतंत्रताका और दूसरे शत्रुम सीमित करता समर्थन करत है।

मनुष्यके कार्यात्मिक इस विचारनकी बड़ी बड़ी आलाचना की जा सकती है। कोई भी ऐसा मान्य नह, है जिसका काय मनुष्यके कार्योंका आत्मनरक और समाजपरक दो भागम बांटा जा सक। यदि समाजक जैविक सिद्धान्त (organic theory) में कोई संशय है तो यह कि व्यक्ति और समाजक हिन एक दूसरे पर आश्रित हैं। जा काय बिस्तृत निजी मान्य हान है उनका भी प्रभाव समाज पर कभी न कभी पड़ता ही है। मिन क अनुसार पट्टनशर्मा धाराबजोरी जमागारी आदि व्यक्तिगत कार्य है बाते कि उनके जनस्वतंत्र कडरी अन्यायी नहो रहती और व्यक्ति अथवा कार्यम या परिवारके प्रति अपने कर्तव्योंका पूरा करनेम अभिमत नह, पड़ता। सिद्धान्तके तौर पर आत्मनरक और समाजपरक कार्योंका यह अन्तर चाह, बिजना एक-संगत जान पड़े व्यवहारम निश्चय ही कष्ट-से मौजों पर अमान्य जान पड़ता। और यदि कुछ मान्यमों यह भ्रम सही भी हो तो भी हम यह प्रश्न पुन कटन है कि क्या व्यक्ति हिन और विचारक लिए राज्य या समाजकी कोई जिम्मेदारी नह, है? क्या यह उचित है कि हम व्यक्तिक बुरे मार्ग पर जानेके लिए लकी कूट रहे? हम इस

बातम भिन्न से सहमत नही हैं कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने हितको अच्छी तरह जानता है। हो सकता है कि व्यक्ति अपने वर्तमान सुखका पहिचान स्वयं सबसे अच्छी तरह कर सके पर यह जरूरी नहीं है कि अपने भावी सुख या उस सुखको प्राप्त करने के साधनोंको परख भी वह अच्छी तरह कर सके।

इन स्पष्ट त्रुटियोंके होते हुए भी यह मानना पड़गा कि मनुष्यके कार्योंम मित न आ भू किया है वह व्यावहारिक तौर पर बहुत महत्वपूर्ण है। यथा सम्भव समाजकी ऐसे ही कार्योंका नियंत्रण करना चाहिए जिनका प्रत्यक्ष और निश्चित प्रभाव दूसरा पर पड़ता है। पर यह कोई अमिट नियम नहीं है। आजकमके असीमित कर्मकारीतन्त्र (bureaucracy) के जमानेम और ऐसे समयम जब कि लोग रायकी अप भक्ति म विश्वास करते हैं, मित क सिद्धान्तको पुन ज़ारदार सम्मेलन दोहराया जाना चाहिए।

सामूहिक कार्य (Collective Action) सामूहिक कार्यकी स्वतन्त्रताम सावजनिक सभा करनेका अधिकार, समूहन करनेका अधिकार और बहिष्कार करने हटान करने और घरना देने अधिकार समित है।

सावजनिक सभा करनेका अधिकार अल्पमयम घरने भीतर हानवाली सामाजिक कोई हस्तक्षेप नही किया जाता। यह सभाएं पुलिसकी अनुमति लिये बिना हो की जा सकती है पर सुली आम-सभाया पर पुलिस बिधि लागू होती है। अप्रकी बिधि एसा कोई भू नही मानती और वहाँ एसी कोई बिधि नही है जिसम सावजनिक सभा करनेका अधिकार सभाके मात स्वीकार किया गया हो। सावजनिक सभा करने का अधिकार नागरिककि उस व्यक्तिगत अधिकारस प्राप्त किया गया है जिसके अनपार दशकी बिधिका मानन हुए व्यक्तिवा यह अधिकार प्राप्त है कि वह वहाँ चाह जाय और जा चाह कह। डायसी (Dicey) का कहना सही है कि 'इंग्लैण्डक गबिधानका आधार व्यक्तिगत अधिकार है तथा इनका सबसे अच्छा उदाहरण सावजनिक सभाओं पर लागू हानकाम नियम हैं।

समुदायकी व्यक्तिवाका मुख्य-मात्र माननवाल अप्रकी दृष्टिकापस अनेक कटिनाएँ पैदा होता है। यह अधिक उपपुक्त होगा कि जिस प्रकार यादनीय नेनों की बिधि पद्धतियाँ सभाया और जनुसाके सावजनिक (और प्राय राजनीतिक) महत्वका स्वीकार कर उनके लिए बिद्य नियम बनाती है उसी प्रकार बिग्नकी पद्धति भी जनुमों और सभायाके लिए बिद्य नियम बनाकर इनका महत्व स्वीकार कर। साथ ही समान पद्धतिक पक्षम भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। इणम लोग का दबी हुई भावनायाका प्रवृत्त करनेका मोरा भिनना है और अल्पसंयुक्तकी निवायता और उनकी आवाजायाका व्यक्त करनेका एक प्पट्टकाम मित जाता है तथा एक पक्षके बिपक्ष दूसरे पक्षका समर्थन करनेक क्षमतेसे पुलिस बच जाती है। सामारणतया एक व्यक्ति को अपने बिचार प्रकट करने देना कठिनानी ही है बसते कि बिचार प्रवृत्त करत समय भाग संयमित रह। इसके अनिरिक्त जैसा रिक्की ने कहा है

एक नागरिककी जिज्ञासा यह उभागा अंग है कि उसे एक दूसरेम विपरीत अनर प्रकारक विषार मुननका मिने बाने कि इन विषाराका सारन-भान बननम परम्पर आनाश्र द्वारा या ताद्वनिक गातिर गनरा द्वाा मिर पूननका नोबन न आ जाय (६ - १४)।

[illegible][illegible]

बहिष्कार करने धरना देने और हड़ताल करनेका अधिकार। अधिकार
बहुनिष्ठ राज्य बहिष्कारक सीमित प्रयासकी अनुमति देता है। बहिष्कार सामाजिक,

आर्थिक अथवा राजनीतिक कारणों से किया जाता है। यह मुख्यतः वर्तमान औद्योगिक सम्प्रदाय की देन है। जब केवल एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति बहिष्कार करते हैं तब कोई चिन्ता की बात नहीं होती। पर जब कोई संघ या संस्था बड़े पैमाने पर बहिष्कार करती है तब सामाजिक नियमन की आवश्यकता पड़ जाती है। साधारणतया राज्य बहिष्कार के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करत क्योंकि औद्योगिक सम्प्रदायों की स्वतन्त्रता पर बड़ा प्रतिबन्ध लगाने में (७२ १७९) काफ़ी असुविधाएँ रहती हैं। भारत में जब ब्रिटन के विरुद्ध बहिष्कार का प्रयोग एक राजनीतिक हथियार के रूप में किया गया तब बहिष्कार के अधिकार पर बहुत अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे।

अधिकांश राज्य सान्तिमय धरना देने पर आपत्ति नहीं करते। पर सान्तिमय धरने के असान्तिमय धरने में अन्तर आने की आशंका रहती है और एक मुख्यव्यतिथि राज्य का सान्तिमय और असान्तिमय धरनों के बीच क्या-क्या भेद पूरी सावधानता से अन्तर करना पड़ता है। समझाना बुझाना तो उचित है पर जोर-जबर करना या कष्ट पहुँचाना उचित नहीं है। यह निर्णय करना हमारा आसान नहीं होता कि लाकडावनी द्वारा निषिद्ध या बहिष्कृत वस्तु की सराफ़े रोकने से उद्देश्य किसी दुबाने सामने लट जाता अनुनय है या जबरनस्ती है।

हड़ताल करने का अधिकार भी हाल में ही स्वीकार किया गया है। साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है कि जब लगड़ा तब करने से अथवा सब साधन विफल हो जाय तब हड़ताल ही एक प्रभावशाली तरीका माना रह जाता है। कितीना सहानुभूति में की गयी हड़ताल और आम हड़ताल पर भिन्न भिन्न ढंग से विचार किया जाता है। सासनी आम हड़ताल के अधिकार का समर्थन करने हैं। उनका विश्वास है कि गम्भीर मामलों में आम हड़ताल द्वारा ही निष्क्रिय जनता को मजबूर करने की प्रति धरने उत्तरदायित्व की याद दिलायी जा सकती है। जो सरकार आम हड़ताल की घमरी का मुँहासा करती है वह इस कारण जनता के समर्थन को हथकड़ी नहीं हो जाती कि उसे घमरी ली गयी है (४९ १३३)।

औद्योगिक धर्म हड़ताल चाहे बिजली ही उचित बरत न हो पर यह प्रायः सभी मानते हैं कि जन-सामर्थिकारियों (civil servants) पुलिस और जमकारियों सेल कमचारियों तथा लाकडावनी के मामले में सब अथवा साधारण हड़ताल करने का अधिकार नहीं है। इस बारे में सासनी का विचार बिल्कुल भिन्न है। जन-सामर्थिकारी बवल सरकार का कमचारी ही नहीं है बल्कि वह एक नागरिक भी है (४९ १३८)। इस लिए सासनी का कहना है कि समाज का किसी भी हाल में यह हड़ नहीं है कि वह अपनी सार्वजनिक मजबूरनी स्वतन्त्रता से अधिक महत्व दे। हड़ताल की संस्था कम

‘यही बात विचारों से उभरने के सम्बन्ध में न कहो या रहनी है। विचारों के जो भी विषय हैं उन्हें सम्बन्धित विचारों के सम्बन्ध में समझाने के द्वारा सुनना जाना चाहिए। सम्बन्धित सब और सामाजिक में विचारों की हड़ताल निश्चय अनुपपन्न है।’

करनेके लिए लास्का का सुझाव है कि राज्य आधारभूत धर्म और कामक धर्मोंके बीच एने नियम बनाव कि हर उद्योग और व्यवसाय में भौतिक तथा मानसिक दृष्टि से परिस्थितियाँ बाणी संतोषजनक हों और हर उद्योग और व्यवसायको नाज़ी मानव स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो।

४ धार्मिक विश्वास और व्यवहारकी स्वतन्त्रता (Liberty of Religious Opinion and Practice) धार्मिक विश्वास और व्यवहारकी स्वतन्त्रता एक आपुनिक अधिकार है। धोते ज़मानमें राज्य और धर्म-संघ (church) में बाहुल्यता लागू रहा है पर धनमान युगमें राज्य और धर्म-संघ ही नहीं। अब ही राज्यके विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में समानता स्थापित रहती है। हम कृष्ण व हनुमान धर्मोंमें सहमत हैं जो धर्म हमारे धर्मोंके प्रति सहिष्णु हैं। उनके साथ सहिष्णुताका व्यवहार सबसे बढ़कर करना चाहिए। जब तक उनके सिद्धान्त नागरिक बतव्याक विपरीत न हो जाय। (१७ पु० ४ व० ८)।

ईसाई धर्म सत्राक माय आदेशोंसे भिन्न भाग अपनाता नास्तिकता है और उसके लिए धर्मसंघ ही धार्मिक तरीक़ का ढाँचा दे सकता है। राज्य उस सम्बन्ध में कुछ नहीं करता। पर जब कभी जान-बूझ कर किसी धर्म या सम्प्रदायके विरुद्ध ऐसा प्रचार किया जाता है जिससे सामाजिक व्यवस्थाका उन्नयन हो सकता है तो राज्य हस्तक्षेप करता है और ईश्वर निन्दा सम्प्रदायोंके विधि लागू होती है। धर्म-संघ ऐच्छिक (voluntary) संगठन है इसलिए उस पर वह अनैक बंधन लागू होते हैं जो दूसरे ऐच्छिक संगठनों पर लागू होते हैं। धर्म-संघ मुक्त नहीं। धर्म संगठन टैक्स नहीं लगा सकता तथा लोगोंको धर्म नहीं बना सकता। उस लागू करने बिना या गृह मुक्तके लिए मजबूत या अनैतिक बाधाओंका प्राप्ताधिकार करनेका अधिकार नहीं है। दूसरे धर्मों में नागरिक बतव्याके विपरीत आचरण करनेका उस अधिकार नहीं है।

इसके साथ ही साथ धर्मोंके विरुद्ध स्थितिक़ कारण धर्म-संघ (church) का कुछ ऐसे विरुद्ध अधिकार प्राप्त हैं जो अन्य ऐच्छिक संगठनोंका प्राप्त नहीं होते। धर्म संघ एक बहुत बड़ा सामाजिक आस्थापनाको पूरा करता है और सामान्य उच्च जाति की नीतिना उत्पन्न करता है। धर्म संगठन के रूप में धर्म-संघ एक ऐसा मानव और आस्था की समता उत्पन्न करता है जिसकी राज्यका आस्थापना तो रखती है पर जिसे राज्य स्वयं उत्पन्न नहीं कर पाता (ए० सा० लिखते)। यद्यपि धर्म-संघ अपने आस्थापक बना करता है जगत् यह आस्थापक है कि राज्य उसकी रक्षा करे और उसे प्राप्ताधिकार करे। अधिकार दानमें अनेक प्रकारके उत्पन्न कर विरुद्ध धार्मिक समताका सुरक्षा प्रदान की जाती है। राज्य धर्म-मुक्तताका अपने निरीक्षणमें बिना हस्तक्षेप करने देता है। कुछ देशोंमें राज्य धर्म मुक्तताको कुछ नागरिक बतव्या से बरी रखता है जो ज़ूरी बनना और मुक्त भाग लेना। बहुत-से स्थानोंमें पूजा या उपासनाकी इमारतों पर टैक्स नहीं लगाया जाता। कुछ धर्म सत्राका प्रतिष्ठित धर्म मानकर राज्य द्वारा पूरी या क़ाफ़ी मुक्तता दी जाती है जिसका समर्थन किसी प्रकार भी नहीं किया

जा सकता। अग्रणी जमाने में भारत में इस्तेमाल के चक्का इसी प्रकार की सहायता इस आधार पर दी जाती थी कि यह भारत में रहनेवाले अग्रज वर्ग-चारिमा नागरिकों और समाज के आध्यात्मिक हितों की रक्षा करता है।

आज दिन भारत का दावा है कि यह एक धर्म निरपेक्ष राज्य है जहाँ राज्य का अपना कोई धर्म नहीं है और जहाँ हर व्यक्ति को स्वतंत्रता है कि वह अपने धर्म को मान उससे अनुकूल आचरण करे और उसका प्रचार करे। पर व्यवहार में कुछ विद्वानों लोग और कुछ इस स्वतंत्रता को नियमित करने की कोशिश करते हैं। किसी एक धर्म के बिना के धार्मिक कर्मों का राजनीतिक प्रयोजन की वांछित की जा रही है। एक धर्म निरपेक्ष राज्य का सभी प्रकार का धार्मिक और जातीय राज-पाठ मुक्त होना चाहिए। यदि किसी उत्सव के अवसर पर धार्मिक क्रियाएँ या प्राधनार्थ की जाती है तो उसके लिए सभी सम्मानित धार्मिक नेताओं के सहित स्वीकृति लेनी चाहिए। विशिष्ट रूप से कोई साम्प्रदायिक बात नहीं होनी चाहिए और न कोई ऐसे काम होने दें चाहिए जो किसी वर्ग के धार्मिक विश्वासों के विपरीत हों।

विवेक या अन्तरात्मा का अधिकार (The Right of Conscience) सामाजिक शिष्टता और व्यवस्था को मानते हुए किसी भी धार्मिक विश्वास को मानने और उस पर अमल करने का अधिकार लगभग सब की मान लिया गया है पर विवेक के अधिकार को अभी तक ऐसी जायदाद नहीं मिली है। इस मायतावे नाम से अनेक कठिनाइयाँ हैं। विवेक व्यक्ति की अन्तरात्मा की दिशा हुई आवाज है और वह उस अन्तरात्मा के स्वामी के अनिश्चित और निमोरा नहीं मनायी दे सकती। यदि हम ऐसा अपने विवेक का अनुगमन करने की आज्ञा दी दी जाय तो सामाजिक व्यवस्था खोपट्टा हो जाय। सभी का विचार एक ही बात नहीं होता। इसलिए राजनीतिक मामलों में राज्य जमीन एक सामूहिक सत्ता की उद्भूत पड़ती है जो समाज की सामान्य सम्मति का प्रतिनिधित्व कर सके और जिसका काम यह नियम बनना है कि कौन सी बात सामाजिक हित में है और कौन-सी नहीं। व्यक्ति अपने विवेक अनुसार अपना ही नियम कर सकता है कि कौन-सी बात उसने लिए लिये है और कौन सी हितकर नहीं है और उसका इस स्वतंत्रता में पूर्णतः कोई भी प्रतिरोध नहीं कर सकती। पर यदि व्यक्ति के कार्य समाज-आधारकारी सुरक्षा और बर्न्याण के विपरीत हों तो राज्य हस्तगत कर सकता है और उसे अवश्य हस्तगत करना चाहिए।

बहुत से आधुनिक राज्य पड़ने प्रति आत्मिक विरोध करनेवालों को इन बातों की अनुमति दे देते हैं कि वे मुद्रम भाग न लें। इन लोगों का मुद्रम भाग न लेने की छूट काय साधनता (expediency) के विचार से दी जाती है न कि इन आधार पर कि हम नागरिक। अपने विवेक के अनुसार काम करने की स्वातंत्रता मिलनी चाहिए—विवेक उसे चाह जहाँ से जाय।

५ राज्य का प्रतिरोध करने का 'अधिकार' (The 'Right' to Resist the State) राज्य का प्रतिरोध करने का अधिकार विवेक के अधिकार का ही परिणाम

है। इस पर विचार करने समय हम टी० एच० योन् की पुस्तक 'राजनैतिक दायित्व के सिद्धान्त' (*Principles of Political Obligation Section H*) में प्रकट किये गये उनके विचारों की प्रशंसा करेंगे। निम्नलिखित व्यक्ति को स्वयं इस बात की परामर्श करनी चाहिए कि कोई विधि सामाजिक हिंस्र है या नहीं। यदि उसका निगम यह है कि कोई विधि जनहितम नहीं है तो भी उस न्यायिक कानून का पालन अवश्य करना चाहिए। विचारकर एक एक देश में जहाँ सामाजिक सरकार कायम है और जहाँ बिना अधिकार के बिना ही जनजाति परिवर्तन करवाने लिए अधिकार या कानूनी साधन उपलब्ध हों। जब तक वे विधियाँ हानिकारक या बर्णनीय न हों तो तब तक व्यक्ति को उनका पालन करना चाहिए क्योंकि ऐसा करना उसका सामाजिक कर्तव्य है। पर जहाँ बुरी विधियाँ बर्णनीय या न करनेवाली कोई कानूनी साधन नहीं है या जहाँ सरकार इतनी भ्रष्ट है कि वह सामाजिक हिंस्रों से या व्यक्तिगत स्वार्थों से अधिक महत्व देती है या जहाँ सरकार नागरिकों के अधिकारों की सीमा का उल्लंघन करता है या व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सरकार का प्रतिरोध करे। एक गम्भीर मामला में प्रतिरोध अधिकार यह है कि एक दुःख का कारण हो जाता है।

सरकार का प्रतिरोध करने में वह एक नागरिक का विचार और पर यदि वह नेता है जिम्मेदारिता का पर विचार कर लेना चाहिए —

(क) क्या हम राष्ट्रिय परिपक्वता से सचेत हैं कि सभी सम्भव साधनों का अवलोकन कर चुके हैं?

(ख) जिन लोगों ने सरकार का प्रतिरोध करने की चेष्टा की है क्या वे लोग स्वयं भी यह महसूस करते हैं कि सरकारने उनके साथ अन्याय किया है या केवल जन की भावनाओं को उभारा जा रहा है? या अन्याय सरकारने किया है क्या वह इतना गम्भीर है कि उससे लिए सरकार का प्रतिरोध किया जाय? क्या जनता उन कारणों का भली भाँति समझती है जिनसे अपार पर सरकार का प्रतिरोध करना है?

(ग) जिन लोगों के बीच हम काम करना हैं उनका चरित्र और उनकी मनोस्थिति कैसी है? क्या वे भाव और ज़ाती ही उत्तम हैं या जानबूझकर या या वे ऐसे विचरणात्मक और समझते हैं कि उन्हें सब और सब एक जाना चाहिए? क्योंकि एक बार प्रतिरोध आरम्भ हो जाये वह बड़ा गंभीर हो जाता है कि उसका अन्त सब और वहाँ होगा।

(घ) क्या चरित्र बुरा है? क्या यह अपने अहं भावों से आरंभ होता है? क्या ये साधनों की ओर मार्गदर्शक शिक्षा प्रदान करने का काम कर रहा है?

(च) परिणामों में सम्मिलित क्या है? क्या शासकशासित स्थिति बर्णनीय स्थिति में भी बुरी होती? क्या विधि में होने वाले अंतरों का केवल अन्तर्गत?

दोनों में अन्तर्गत करने हैं कि विचारों में समय इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार और पर विचार न हो सके या मना। जिन्होंने इन बातों को ध्यान में रखा है,

विचार या मननके नहीं। और इसके अतिरिक्त अनेक मामलों में परिणाम ही मतलब होता है कि वह ईसाय सार्वजनिक हित में था या नहीं। ऐसा भी हो सकता है कि अनेक विपत्तियाँ प्रयासों के बाद ही किसी अच्छे कारण में सफलता मिले। अतः प्रत्येक प्रतिकार करनेवाले अधिकार इसका नहीं मिल सकता कि वह अनुमत्त है। प्रायः असह्य असमर्थता ही यह अधिकार होता है कि वह सार्वजनिक प्रतिकार करने में ही सफलता की आशा न हो।

इन सब बातों पर विचार करने के बाद ही इन व्यावहारिक नतीजों पर पहुँचते हैं कि व्यक्ति चाहे जिस पक्ष को माने यदि उसका चरित्र अच्छा है तो अवश्य ही उसमें हानिकारी कुराहट सामने ही अधिक होगी। साधारणतया सर्वोत्तम नैतिक चरित्रों में सर्वोत्तम नैतिक परिणामों की भी आशा की जाती है। देखना हम ही लगाने इसके विपरीत हों।

६. दण्ड देने का अधिकार (The Right of the State to Punish) प्रारम्भिक समय में अत्याचारों का प्रतिहार या तो स्वयं यह पुरुष करता था जिसने साथ अत्याचार किया था या उसकी जाति या कबीला। पर आजकल सभी देशों में यह माना जाता है कि अत्याचारों का अपराधी को दण्ड देना राज्य का काम है। भले ही वह एक अपराधी को दण्ड देना राज्य के लिए दुर्भाग्य की बात न हो। या तो ऐसा लगता है कि किसीको दण्ड देना उसकी स्वतन्त्रता पर बाध है।

यह बात कई बार कही जा चुकी है कि व्यक्ति का स्वतन्त्र जीवन बिताने का अधिकार इस बात पर निर्भर करता है कि समाज का सार्वजनिक हित उसमें किसनी योग्यता है। एक अपराधी समाज विरोधी बृत्तियों का प्रदर्शन करता है इसलिए यह उचित है कि समाज उससे स्वतन्त्र जीवन बिताने का अधिकार हस्तगत करे। समाज के सम्मान के लिए यह आवश्यक है कि उससे सार्वजनिक सम्मान की बृत्तियों का हनन किया जाय। अतः समाज एक बार फिर जगती जीवन की व्यवस्था और अराजकता की स्थिति में पहुँच जायगा।

सैद्धान्तिक स्तर पर दण्ड का औचित्य अनेक दृष्टिकोणों से सिद्ध किया गया है। दण्ड देने से सिद्धांतों को इन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(१) प्रतिशोधवादी सिद्धान्त (retributive theory)

(२) निरोधवादी सिद्धान्त (preventive or deterrent theory) और

(३) सुधार-मूलक सिद्धान्त (reformatory theory)।

इनमें से पहला सिद्धान्त का नाम कुछ असंगत है। इससे प्रतिशोध या बदले की भावना व्यक्त होती है जबकि वास्तव में यह एक ही सार्वजनिक अधिकार प्राचीन धारणा है। प्राचीन दण्डशास्त्र निवारण इस सम्बन्ध में 'जैन' को सीमा या लाने के बाद लाने की नीति पर अमल करते थे। यह व्यवस्था आधुनिक मानवतावादी सिद्धांतों की नीति पर अमल करता है। यह व्यवस्था आधुनिक मानवतावादी सिद्धांतों की नीति पर अमल करता है। यह व्यवस्था आधुनिक मानवतावादी सिद्धांतों की नीति पर अमल करता है।

इन सिद्धान्तों में असा कि बोगाके ने अनेक किया है। अतः (१) दण्ड को

व्यक्तिगत प्रतिशोधका रूप मान लेना और (२) यह दावा कि दण्ड अपराधके बराबर हो। व्यक्तिगत पारस्परिक सम्बन्ध और राष्ट्रीय आपसी सम्बन्ध भी प्रतिशोधकी भावना समान आती है पर व्यक्ति और राज्यके सम्बन्ध यह भावना समान नहीं आता। चीन ने दण्ड-व्यवस्था पर विचार करने हुए कहा है कि दण्ड और प्रतिशोधको कोई सम्बन्ध नहीं है। पर मित्र और बन्नी स्टेफन (Leslie Stephen) इस सम्बन्धको मानते हैं। स्टीफन दण्डको विधि द्वारा स्थापित प्रतिशोध मानते हैं। चीन का धारणाका विरोध यह कहकर करते हैं कि दण्डका आधार ही व्यक्तिगत प्रतिशोधका समाप्त करना है। ऐसे समाजमें जहाँ व्यक्तिगत प्रतिशोधका अभाव दिखाई दे अधिकार हो ही नहीं सकते। दूसरी तरफ दण्ड इस तत्वको पकड़ करता है कि अपराधों में उन अधिकार या अधिकारोंका उल्लंघन किया है जिन्हें समाज स्थापित कर चुका है। इस प्रकार समाज विरोधी कामका सामाजिक परिणाम है। व्यक्तिगत विरोधी व्यक्ति अधिकारोंकी एक ऐसी व्यवस्था की अवहेलना करती है जिसकी रक्षा करना राज्यने प्रामाणिकता मुख्य लक्ष्य है और जिसे समाज सम्माननारी पवित्रताके लिए आवश्यक समझता है। दूसरी अपराधों को दण्ड देनेका अधिकार है। कोई भी व्यक्ति भाग पर अपनी उंगली रखकर यह दावा नहीं कर सकता कि उंगली नहीं जयेगी। इसी प्रकार वह समाजकी ऐसी व्यवस्था—जिसे व्यवस्थाना कहें हम एक भग है—को भंग करके इस बातकी जाणा नहीं कर सकता कि समाज उसके विरुद्ध कोई काम नहीं उठायेगा। अपराधोंका निवारण लोक करनेके लिए दण्ड एक प्रभावशाली तरीका है। भाग लाकर ही वह भले जीवनको अपना सकता है। इस प्रकार दण्ड व्यक्तिकी स्वेच्छाकी ही पूर्ति है। यह अपराधीकी अपनी इच्छा ही है जो उन सामाजिक व्यवस्थाकी प्रतिष्ठा निहित है जिसका वह स्वयं एक मुख्य है और उसकी वह इच्छा ही उसे दण्डके समान बाधित मिलती है। दण्ड व्यक्तिकी अवस्थापना रखता (recalcitrant will का उसकी वास्तविक इच्छा (real will) द्वारा मुफ्त है।

दूसरी दुलाईने बारेमें हम यह बात समझना चाहिए कि राज्यके पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे वह दण्डकी पीड़ा या अपराधकी नैतिक पुनर्जाको आप-सोच सके। तब तब तबका निर्णय निरर्थक नहीं होता। क्या जा सकता उनके अनुपपन्न दण्डकी व्यवस्था का की जा सकता है? क्या कि धर्म ने कहा है कि राज्य दण्डकी पीड़ा और अपराधकी नैतिक अपमानके बीच अनुगत निर्णय कर सके तो मजबूत यह होगा कि हर अपराधने लिए एक निरर्थक दण्ड व्यवस्था करनी होगी। इसका अर्थ होगा दण्डके सभी सामान्य नियमों का समाप्ति (२० १९१)।

हम सिद्धान्तों का समझना यह है कि हममें अपराधों पर ही ध्यान केन्द्रित करना पड़ा है। हमने विभिन्न निराशासक सिद्धान्तों में सभी अपराधियोंको समान रूप से दण्डित किया है और ऐसा करता वास्तविक तथ्योंके सभी सम्बन्धोंको समझना है। किन्तु सिद्धान्त पर हम विचार कर रहे हैं—हमें दण्ड समाजका स्वयं समझना

साधन है। समाज अपनी रक्षा के लिए अपराधीको दण्ड देकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता है।

दूसरा सिद्धान्त की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इसमें समाज की भुक्तिमग्न स्थिति नहीं ली गयी है। जसा कि राशदाली (Rashdall) ने कहा है कि रोष (resentment) और समाज दोनों ही सामाजिक व्यवस्था के माध्यम हैं और दोनों की मात्रा सामाजिक हित के ही आधार पर तय की जाती है। इस सिद्धान्त और निरोधवादी सिद्धान्त में एक दूसरी त्रुटि यह है कि इसमें समाज द्वारा किये जानेवाले निरोध को ही महत्व दिया गया है और व्यक्ति द्वारा किये जानेवाले आत्म-निरोध (self prevention) को भुला दिया गया है। पर दण्ड-व्यवस्था में दोनों ही होने चाहिए।

निरोधवादी सिद्धान्त में सिद्धान्त पर धीन और ब्योमा के न विस्तारपूर्वक विचार किया है। इनके अनुसार किसी दण्ड व्यवस्थामें प्रतिशोध निरोध और सुधार तीनों के साथ ही होने चाहिए। लेकिन इन्होंने निरोध पर अधिक ध्यान दिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार दण्ड का मुख्य उद्देश्य दूसरे सम्भावित अपराधियों को अपराध से विमुख करना ही है। धीन के कारण किसी राज्य का दण्ड देने का उद्देश्य अपराधी को पीड़ा पहुँचाने के लिए ही पीड़ा पहुँचाना नहीं है और न व्यक्तिगत रूप में अपने उस अपराधी को अपराध करने से रोकना है। बल्कि उस अपराध के साथ ही पीड़ा का सम्बन्ध जोड़ देना है कि अगले लोग उस पीड़ा के भय से अपराध करने का साहस न करें (२० १०२)। दूसरे शास्त्र में समाज के सामने एक भयप्रद उदाहरण रखना ही दण्ड का उद्देश्य है। जो भयम इसीलिए सावधानी स्थान में दण्ड देना समझते हैं कि जिसमें उसका प्रभाव देखनेवाला पर भी पड़े। बल्कि समय तक दण्ड देने की इस धारणा को माना गया है। यद्यपि अब इसका प्रभाव कम होता जा रहा है। आजकल भी जब अपराधी किसी मामले में लगी बन्दी सजा देना उसी समझते हैं कि जिससे कि नया साज। पर अंतर पड़े तब वह निरोधवादी दण्ड दे देते हैं। निम्नाहृत ऐसे दण्ड अथवा समाज के एक चलावनी मिन गति है जिससे कि वे ऐसा अपराध न करें। पर यह दण्ड का मुख्य भाग नहीं बल्कि गौण सत्य है।

हम धीन के दस तर्कों को मानने को तैयार हैं कि दण्ड का मुख्य उद्देश्य जनता के मन में किसी अपराध के विरुद्ध दण्ड का आतंक पैदा करना है ताकि आगे ऐसे अपराधों का रस्ता जा सके। यदि हम इस तर्क का मान लें तो इसके माध्यम यह होगा कि जिस मानवी गुण का दण्ड बाधक नहीं जाती जायगी कि उससे समाज को क्या और कितनी हानि पहुँची। बल्कि उसका निश्चय इस आधार पर होगा कि उस अपराध का राजने के लिए जनता के मन में उसका प्रति बिना आतंक उत्पन्न करना आवश्यक है। उदाहरणार्थ हमने अर्थ यह होगा कि अगर प्रोत्साही या हत्या अपराध के बजाय मारपीट-गन्धपी अपराध अधिक हानि करें तो दीवानी के माध्यम प्रोत्साही के अपराधों को अगला अधिक करने के लिए दिया जायगा ताकि स्पष्ट एक तर्कहीन व्यवस्था होगी। अपराध का समाधान का निरंतर एक अधिराज्य के माध्यम किया

जाना है जिसका उन्मेषन किया गया है। चीन यह क्या मान लन है कि समाजम
 त्मे व्यक्ति है जो भविष्यमें हम प्रसारका अपराध करेगा। समाज निरोधका विचार
 मुख्य न मानकर गौण माना जाना चाहिए। निरोध भावनाको गौण स्थान देनेका
 दूसरा व्यावहारिक कारण यह है कि यदि 'पापघी'का दण्ड हम उद्देश्यम देना होगा
 कि उसमें एक का दण्ड देकर वह अन्य लोगों को सामन आतंकजनक स्वरूप रखे तो
 यह स्वामाजिक है कि वह अन्यत्न बँटार लगे ऐसा जावि अवाप होगा और उन
 राजा जाना चाहिए। अपराधीको एक साधारण-मात्र न माना जाकर माध्य माना जाना
 चाहिए।

मुघार मूलक सिद्धान्त आपनित विवेचनम मुपायपूर्वक मिश्रितका बहुत
 अधिक महत्त्व दिया गया है। हम सिद्धान्तक अनन्तर स्वरूप माय उद्देश्य व्यक्ति
 अन्तिम ऐसा मुघार कर्ष उमे पुन समाजम वापि लाना है जिसम वह समाजका
 एक आत्ममग्नमानपूरा सदस्य बन सर। हम सिद्धान्तक कुछ मध्यमक अपराधीको
 एक रोगी मानत है जिसका स्नाय किया जाना चाहिए न कि एक अस्वामाजिक व्यक्ति
 जिसे दण्ड दिया जाय। लम्ब्रोसो (Lombroso) क अनुपादितका कथन है कि
 अपराध एक दधीय व्याधि है एक प्रसारका पाणपण है एक पक्षाघात का अन्तिम
 दुगुण है। हम विचारत अनन्तर जसाक वजाय अस्नाला पायमग्नाना और मुघार
 कर्षका महत्त्व देना चाहिए। हम सिद्धान्तक कुछ अन्य मध्यमक अपराधीके लिए
 सामाजिक परिस्थितिका जिम्मेदार टहराने हैं और कहते हैं कि सामाजिक व्यवस्था
 का अधिक ज़ायतु बनाकर समाजम अपराध विरुद्ध ही मिश्रित जा सकते हैं।

पुराने जमानकी बँडोर और जनचिन्त प्रतियोगात्मिकी प्रतियोगात्मिक रूपम
 मुघारमूलक सिद्धान्त एक स्वयं सिद्धान्त है। पर माय भी हमम वृत्त मधीर भुक्ति
 भी है। सभी अपराधका व्याधि मान लेना अवशिष्टमम दूर माना होगा। सभी
 अपराधी पाण्ड का बन्डोर निमागने महा हान। पाण्डपणने सामन का गड्ड अपराध
 के माननानिमतम एकार उनका दसाक दिया जाना है पर एक सामान्य अपराधीका
 स्नाय नहीं किया जाता हा उसे पुनरागमका स्थान देकर रखा जाता है। उमे दण्ड
 मश्रित किया जाता है कि ज्ञान बावने कि समाजक सम्मन वह दिग्मन्तर है।

हम कोई कहे नग कि कुछ जिम्मेदार आगधार रिक्त अपराधीकी अन्त
 समाज अधिर जिम्मेदार है। पर हम सामन आगधार जिम्मेदार का और
 आगधार के आधार पर बाँट सिद्धान्त जनता गति रग है। अन्तिम अपराध
 अवस्था दण्डम मध्यम हान है।

एक स्वल्प सिद्धांत होता तो एक अपराधियोंका या असाध्य हो आते हैं अनिश्चित समयके लिए कैद बना रखनेका कोई औचित्य नहीं रह जाता क्योंकि उनके मामलाम दण्डका तो कोई अर्थ ही नहीं है।

इस सिद्धांतकी सबसे बड़ी आलोचना यह है कि इसमें व्यक्तिके नतिक उत्थान का स्वरूप गलत ढंगसे समझाया गया है। अपराधीका नतिक उत्थान तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक अपराधी स्वयं सुधारके प्रयत्नमें भाग न ले। चरित्रका सम्बन्ध सुधार तो हमसे होगा है। ग्रीन का यह कहना बिल्कुल सही है कि दण्डका उचित होना या न होना इस बात पर निर्भर करता है कि जिस समाजमें अपराधी ने जीवन बिताया है उसने उसे अपराधी न बननेके लिए मौका दिया है या नहीं। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि दण्डका औचित्य निर्भर करता है (१) सामान्य न्याय व्यवस्थाके योग्य-संगत होने पर (२) अपराधी द्वारा अधिकांशकों की-की समझ देने पर और (३) अपराधीके यह समझ देने पर कि उसने समाजके कुछ जाने कुम अधिकांशका उत्थान किया है। जब तक यह बातें पूरी नहीं होती तब तक बाहरने चाहें जितने प्रयत्न किए जायें अपराधीका नतिक उत्थान नहीं हो सकता।

हमने दण्डके बारेमें जिस दृष्टिकोणका स्वीकार किया है उस व्यक्त करनेके लिए जेम्स सेथ (James Seth) ने अनुशासन' शब्दका प्रयोग किया है। इस दृष्टिकोणमें प्रतिशोध (retribution) निराप (deterrence) और सुधार (reformation) तीनोंके सर्वोत्तम तत्वाका सामंजस्य किया गया है। दण्डका सबसे पहले अयायका निरोधक होना चाहिए। उसमें प्रतिशोध या बदलेकी भावना किंचित मात्रामें न होना चाहिए। दण्ड देनेका उद्देश्य यह होना चाहिए कि 'अपराधीके हृदयमें अवगपकी ऐसी भावना उत्पन्न हो जाय कि वह अपनी पिछली बरादराके लिए सहारा पश्चात्ताप करे और भविष्यके लिए एक नवीन अनुशासन का सुधार करे (५१ १२३)।

परिवारके सम्बन्धमें राज्यके अधिकार (Right of the State in Regard to the Family) हमने स्वतंत्रता और सम्पत्ति' शब्दोंका व्याख्या की है उसमें अनुशासन पारिवारिक अधिकारका विवेचन स्वतंत्रता या सम्पत्तिके अधिकारके साथ किया जाना चाहिए। इन अधिकारोंका धरेल अधिकार भी कहा जाता है। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित सम्बन्ध आते हैं (क) पति-पत्नीका सम्बन्ध (ख) माता पिताका मन्तव्य सम्बन्ध और (ग) मातृत्व तथा नीतिगत सम्बन्ध।

सबसे अधिकार एक अयम स्पष्टिग है कि उनका आधार व्यक्तिगतकी धारणा ही है। परन्तु परिवारके अधिकार दोहरे अयम स्पष्टिगत हैं। इन अधिकारोंका प्रयोग करनेवाले और जिस पर इन अधिकारोंका प्रयोग किया जाता है दोनों ही व्यक्ति होते हैं। परिवारमें अधिकार पंचाकी होता है। यदि पतिका पत्नी पर और माता पिताका मन्तव्य पर अधिकार होता है तो उमके सम्बन्धमें पति का पति पर और मातृत्वका माता पिता पर भी अधिकार होता है। इन अधिकारोंमें एक दूसरेके अन्तिम एक अन्तिम व्याख्यात्मक सम्मानकी भावना निहित रहती है।

[illegible][illegible]

परिवारों के प्रति हमारा मित्रतापूर्ण दृष्टिकोण हमारे और नैतिक धर्म है कि वह
माने परिवारों के प्रति हमारे दृष्टिकोण है। यह हम परिवारों के प्रति हमारे दृष्टिकोण है।

सम्पत्तिकी विशेषताएँ (Characteristics of Property) सम्पत्ति की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—भौतिक पदार्थों पर व्यक्ति का ऐसा स्वामित्व या अधिकार जिसे समाज स्वीकार करता हो। किसी चीज का अपने पास रखना ही स्वामित्व नहीं है। यह तो दूसरा का दिया हुआ अधिकार है। हमारी सम्पत्ति वे वस्तुएँ हैं जिन पर हमारा स्थायी स्वामित्व है और उन वस्तुओं पर हमारे अस्वादा और किसी का मुद्दा भी स्वामित्व नहीं है। जसा कि सिडग्विक (Sidgwick) कहते हैं सम्पत्ति पर पूरा अधिकार का मतलब है कि उस सम्पत्ति का उपयोग करने का हम पूरा अधिकार हैं तथा हमारे अस्वादा और किसी को यह अधिकार नहीं है। इसमें वस्तु को लपट कर देने और अलग कर देने का अधिकार शामिल रहते हैं पर यह ज़रूरी नहीं है कि बसीयत कर देने का अधिकार भी इसमें शामिल हो (७२ ७०)। उनका यह कहना ठीक है कि सम्पत्तिक स्वामित्वम सबसे आवश्यक तब यह है कि किसी वस्तु या पदार्थ का उपयोग दूसरा का कभी कुछ अधिकार न हो।

अब सभी अधिकारों की भाँति सम्पत्ति का अधिकार भी सभी वय होता है जब समाज उसे स्वीकार करता है। समाज की स्वाकृतिक विना किसी भी अधिकार का कोई मूल्य नहीं है। सम्पत्तिक बारे में यह और भी सही है क्योंकि हमारे आधुनिक समाज में सम्पत्ति सहकारी उद्योग (co-operative endeavour) का परिणाम है। अब यह तब निश्चित है कि सम्पत्ति एक प्राकृतिक या नैसर्गिक अधिकार है। समाजवादी विद्वान दूसरे सिरे की बात करते हैं। वह सम्पत्ति का एक समाज की ही सृष्टि मानते हैं। हमारा ता विचार है कि सम्पत्ति का एक महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू भी है। सम्पत्ति का अधिकार हमारा अपरिचित (relative) रहता है वह कभी पूर्ण (absolute) नहीं है। सम्पत्ति एक निश्चित स्वामित्व है और इसका दावा समाज के बहाने बिना कभी नहीं किया जा सकता।

आधुनिक समाज में सम्पत्ति का अर्थ गति हो गया है। एक अर्थ में सम्पत्ति स्वतंत्रता की पुष्टि होती है क्योंकि यह स्वतंत्र जीवन के अधिकार का परिणाम है। दूसरे अर्थ में सम्पत्ति स्वतंत्रता पर रोक भी लगती है बिना घर महंगे करने वाले साधारण स्वतंत्रता पर। सम्पत्ति अपने स्वामी का साधन जीवन और भाग्य पर असीम अधिकार देती है। सम्पत्ति का शक्ति अर्थ का प (पैसा) पर स्वामित्व परन्तु अब उसका अर्थ समझने की दृष्टि से हो गया है—पैसे के माध्यम से व्यक्ति को स्वामित्व। होमरसम कहते हैं कि आधुनिक व्यक्ति परिस्थिति ने सम्पत्ति का अनन्त बहुमूल्य साधन उपकरण लिए न रखकर अपार सम्पत्ति का कुछ पैसे के साधन गतिविधि लिए निर्भर कर गया है।

व्यक्तिगत सम्पत्तिक वय और विपक्ष सहकारिता का विरोध (The Case for and Against Private Property Summed up)

व्यक्तिगत सम्पत्तिक रहनसहन के मूल्य के मूल्य गुरुत्व की भावना रहती है। आगे के

भौतिक समाज सम्पत्तिहीन और भूमिहीन मनुष्यकी हालत कृत्रिम मानाएँ दास से भी गयी बीती है। जिस व्यक्ति की खोज-खबर रखने वाला कोई नहीं होता उस व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ बहुधा नया मरने की स्वतंत्रता होती है। सम्पत्ति मनुष्य को अपने भविष्यका प्रबंध करनेके योग्य बना देती है और पारिवारिक स्वतंत्रताका एक महत्त्व आधार होती है।

एक सम्पत्तिवान् व्यक्ति का अधिक हिमालय की अधिक म्यामिन्स पर निर्भर करता है। इसलिए वह किसी भी एक नव मिडान्तकी बाध में नहीं बहता या समाजम प्रान्तिकारी परिवर्तन माना चाहता हो। सम्पत्तिवान् विचारणीय और विवेचनीय व्यक्ति होता है।

सम्पत्ति स्वतंत्रताकी भावनाका प्रोत्साहित करती है। जिस व्यक्ति के पास साधन होते हैं उसे इन बातोंको आश्चर्य माना नही रहती कि वह एक काम करना स्वीकार करे जिन्हें वह पसन्द न करता हो। नास्का का कहना है कि एक सम्पत्तिवान् मनुष्य अपने जीवनका बनागुन बना सकता है। वह अपने साधनका उपयोग करना विज्ञान और साहित्यके विकासके लिए कर सकता है। यहाँ पुरानी सामाजिक धारा तब उसकी पहुँच रहती है और वह रचनात्मक जीवन में आगे लगे समय रहता है।

अरलू के कथनानुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति अपने स्वामिका उत्तर और दानगान बननेका अवसर प्रदान करती है। जहाँ कि आन्तर्वाशिका कहता है सम्पत्ति के अधिक विकास और व्यक्तित्वकी अनिवार्यता सहायता मिलता है। व्यक्तिवादी या का यह दावा सत्य है कि मनुष्यका काम करनेके लिए सबसे अधिक प्रभावकारक प्रोत्साहन सम्पत्ति ही मिलता है। नूता मरनेका हर ही मनुष्यको बहुधा नाना प्रकार परिपक्व करनेके लिए मजबूर करता है। रसे (Raleigh) कहते हैं कि भूमि और पानी की व्यवस्थामें सम्पत्ति एक अनेक कारक है जो एक सागर द्वारा निजी आधार पर सबसे अधिक सुगमताओं और कुशलतापूर्वक बिना जा सकते हैं जो व्यक्तिगत रूप से अपने लाभके लिए उनका उत्तर काम करनेको तैयार रहते हैं (१४ १११)। यह आगे कहते हैं कि यह एक जानी-बूझी बात है कि व्यक्तिगत व्यापारिकारी अन्तर्गत अधिकारी कम कम क्रियाशील कम भित्तिवादी और सुधारक लिए कम हो रहे रहता है (१५)।

एक बात यह और है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का स्वामिक मनुष्यम सुख और उत्साहको जितनी गहरी भावना उत्पन्न करता है उतनी गहरा सुख और उत्साहको भावना अन्य किसी प्रकारका स्वामिक नहीं दे सकता। व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्राप्ति पीनता सेना बना सकता है। कम से कम कुछ अर्थों पर व्यक्तिगत सम्पत्ति मनुष्यकी सामर्थ्य जानी जा सकती है। व्यक्तिगत सम्पत्ति उस स्वयं अधिकार और नैतिक शिक्षाका विस्तृत रूप है जिसका अर्थ है कि जोहार उपाय मिलता है कि जो उसका प्रयोग कर सके।

यहाँ व्यक्तिगत सम्पत्तिके सम्बन्धमें हम प्रचारके अनेक तर्क मिल जा सकते हैं बड़ा हमके विरोधमें और भी अधिक कहा जा सकता है। समाजवादी माना जाता है

वि व्यक्तिगत सम्पत्तिम युद्ध एसा अनिवार्य युद्धद्वयों है कि उन्हें गिना प्रबुद्ध जनमत या सामाजिक विधानके ही द्वारा ही नही किया जा सकता।

इस सम्पत्ति इन्वार नही किया जा सकता कि व्यक्तिगत सम्पत्ति धनवान और निधन व्यक्तिगत बीमारे भूता स्थायी बना देती है। असमानता असमानता ही उत्पन्न होती है और भयंकर भी बढ़ता है। साक्षी का यह कहना सही है कि 'एसे समाज का जो निधन और धनवान बन रहा हो और जिसमें निधन व्यक्ति या की सम्पत्ति अधिक है जानूँगा नीच पर है टिका हुआ समानता चाहिए (४७ १७६)। सम्पत्ति जहाँ एक ओर अपने स्वामीने मनम मुद्राकी भावना पैदा करती है वहाँ दूसरी ओर यह उस विलासप्रिय और आनंदी भा बना देती है। जिन साधकों महान्त करने की आवश्यकता नही रह जाती वह प्रायः अपना समय और व्यक्ति रचनात्मक कार्यों में नही लगाते। चरित्र के पिशाच निर बुद्ध व्यक्तिगत सम्पत्ति आवश्यक हो सकती है पर अमीनिम व्यक्तिगत पूँजी का और उसमें मनुष्याके जीवन और भाग्य पर निरन्तर अधिकार का विभीषण भी समयन नही किया जा सकता। इस धान का कोई एक-संगत कारण नही है कि कोई व्यक्ति उत्पादन में साधन पर स्वामित्व का दावा करे। व्यक्तिगत सम्पत्ति के हर सम्भव स्वरूप का समयन करना—जैसे अमीनित धन दान और विरासत आदि का समयन—विस्तृत स्पष्ट बेईमानी है और इसमें समयन पर किसी का विचार नही हो सकता।

एक बात और है। यह आवश्यक नहीं है कि निम्नी नामसे ही हम परिधम करने का प्रस्ताव ले लें। लॉड हाउस का कथन है कि 'राज्य की सत्ता अपने आपका दूसरों से अधिक योग्य सिद्ध करने का दण्ड एक दिमागी काम करने वाले व्यक्तिगत विचारों से हनका उतना ही बड़ा कारण हो सकती है जितना बड़ा कारण सम्पत्ति इकट्ठा करने की भावना हो सकती है। प्लेन ने तो मूल का और न स्वयंश्री के उसमें यह धारणा की थी कि किसी मन पर कामका पूरा करना या जनता की सेवा करना स्वयं अपने आप ही पुरस्कार है।

प्रायः यह स्वीकार किया जाता है कि सम्पत्ति का स्वामित्व वहाँ तक उचित है जहाँ तक उसका सम्बन्ध समाज की सेवा है। किन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति के बहुत-बहुत सम्पत्ति भी यह बात माननी हो पड़ेगी कि स्वामित्व और सेवा बहुत पाड़ा ही सम्बन्ध है। भाग और पूँजी का सिद्धान्त हमें यहाँ तक बंधन का नहीं करता। कभी-कभी यह अस्तिर और चंचल रहता है। जैसा कि साक्षी ने कहा है हम यह बात नहीं मान सकते कि कदाचित् अमीनियाम गुणकारी और गरीब भरण अमीन ग्राह्यकी जागरण भाग है इसलिए अमीनियाम का नाम भरणवान और दुनिया में अमीन साक्ष्य का प्रचार करने का व्यापारी समाज की बर्णकारी सेवा कर रहा है।

सम्पत्ति के इतिहासकी राज करन पर हम मानूँगे कि सम्पत्ति का बिनाप कर भू-सम्पत्ति का कोई प्रतिष्ठापूर्ण इतिहास नहीं है। इस स्वामित्वकी कुछ जहाँ हम इतिहास में मिलती हैं।

निम्नोक्त आधुनिक युगम व्यक्तित्वगत सम्पत्तिने अपरिमित उत्पन्न किया है समृद्धि और सुविधाय वृद्धि की है मगरके प्राकृतिक साधनाका अधिकसे अधिक उपयोग किया है और भौतिक सम्पत्ताम आच्छादनक उत्पत्ति की है। पर जीवनकी इस भौतिक प्रगतिका अर्थ यह नहीं है कि जीवनने नैतिक और आध्यात्मिक धर्म भी उतनी ही उत्पन्न हुई है। आधुनिक तत्त्वाका मूल्य और महत्त्व बहुत कुछ गिर गया है और चारा-बार सम्पत्ति और शक्तिकी पूजा की जाती है। आधुनिक समाजका संगठन ही कुछ ऐसा है कि इससे व्यक्तिगत सामग्री भावनाका ही उत्तेजना मिलती है। यह व्यवस्था अनुप्यता शक्ति और सम्पत्ति के लिए अपने साधनात्मक प्रियमागिता करता सिगानी है। यह व्यवस्था यह नहीं सिगानी कि अनुप्य सामाज्य उद्देशका प्राप्त करनेम दूसरोंसे सहयोग करना हुआ आग बढ़। साधारण जनताके लिए ता इस व्यवस्था ने स्वनात्मक सापरिकता अत्यन्ध बना दी है। भौतिक धर्म भी विकासने अवसर अब उतन अधिक नहीं रह गया है जिनन वह हासने पिछने बर्षोंम था। हम भौतिक विकासकी चरमावस्था तक लगभग पहुँच चुके हैं।

सास्त्रीने वर्तमान व्यवस्थाक विराधम अथन तरौका निरकर इन प्रभावघाती कारणों म किया है। हम चाहें जिस दृष्टिकोणसे देखें वर्तमान व्यवस्था अपूर्ण सिगानी देनी है। मताईपानिक दृष्टिकोणसे यह व्यवस्था इसलिए अपूर्ण है कि अधिकांश लोगोंकी इससे बचन भयकी भावनाका ही उत्तेजना मिलती है और इन प्रकार उनके यह धर्मा गुण नष्ट हो जाते हैं या मानव जीवनक पूर्ण विकासम सहायता पहुँचाते हैं। नैतिक दृष्टिकोणसे भी यह व्यवस्था अपूर्ण है। कुछ ठाँ इसलिए कि इसम अधिकार उन सामाजिको विनन है जिहान उन अधिकाराका पानक लिए कुछ भी नहीं किया और कुछ इसलिए कि जहाँ यह अधिकार उन सामाजिको विन है जिहान इसके लिए परिश्रम किया है वहाँ सामाजिक महत्त्वक साथ उनका कोई आनुपातिक सम्बन्ध नहीं है। यह व्यवस्था समाजके एक बगरी घन समुदायके समता भागी बनाकर एक समुदायसे समृद्ध जीवन विज्ञानका अवसर छान मती है। यह व्यवस्था अधिकांश दृष्टिकोणसे भी अपूर्ण है क्योंकि समाजम जा सम्पत्ति उत्पन्न होती है उसका विनरण इस व्यवस्थाम एक बगरी नष्ट हो पाता कि जा मान उस सम्पत्तिका उपयोग करता है उन्हें स्वल्प और मुरगित जीवन विज्ञानका अवसर विन सक। इसका मतीका यह हुआ है कि अधिकांश सामाजिको निष्ठा इस व्यवस्था पर से उठ गयी है। कुछ मात्र इस व्यवस्थाका पुर्णकी दृष्टिकोणसे नहीं अधिकार जनता इसम कोई अप्पाई नहीं पाती। यह व्यवस्था राज्यकी भी वह बान करनेका प्रतिन नहीं करती जिसके द्वारा राज्य समृद्ध हो पाता है (४१-२१६)।

उपयोग करमेंकी शक्तिम अनुसार विनरण (Distribution According to the Power to use)

प्र० हॉब्स ने सम्पत्तिम प्राप्ताशी सिद्धान्तका व्यावहारिक रूप देते हुए
१५-२०० पृ०

सम्पत्तिवे ऐसे वितरणका समर्थन किया है जिनमें व्यक्तिकी उपयोग करनेकी शक्तिके अनुसार वस्तुएँ बाँटी जाती हैं। उनका मत है कि सम्पत्ति उनका मिले जो उसका उपयोग सबसे अधिक कर सके। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मूल अमीगके विलास और प्रश्रय बर्बादीने व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यवस्थाको लोगकी दृष्टि में जितना नीच गिराया है उतना किसी और दूसरे कारण न नहीं।

उपयोग करनेकी इस क्षमताकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। समाजकी आर्थिक व्यवस्थामें जो सबसे नीचे स्तर पर है उनमें वस्तुआवा वितरण उनकी आवश्यकताके अनुसार हो। जो आर्थिक चीजकी सीढ़ी पर यानि मध्यम वर्गमें हैं उनमें वस्तुआवा वितरण उनकी अजन करनेकी शक्तिके अनुसार हो और जो आर्थिक व्यवस्थाकी चोटी पर हैं उनमें वस्तुआवा वितरण उनकी उपयोग करनेकी शक्ति के अनुसार हो।

वितरणके इस सिद्धान्तमें बहुत-सी अच्छाइयाँ हैं। यह हर व्यक्तिको इस बातकी प्रेरणा देता है कि वह स्वयंको अपने लिए तथा समाजके लिए उपयोगमूलक अधिकतम अधिक उपयोगी सिद्ध करे। यह सिद्धान्त हर व्यक्तिको इस बातका पक्का अवसर देता है कि वह अपनी परोपकारी बढिबा अधिकसे अधिक उपयोग कर ले। इस सिद्धान्तसे समाजके अयोग्य सभ्य बर्बाद हो जायें और उपयोगी सभ्य एक बनी सभ्य बच जायेंगे। और अन्तमें इस सिद्धान्तसे यह सत्य भी पूरा हो जायगा कि योग्यता अपुरस्कृत नहीं रहनी चाहिए।

उन मद्धान्तिक अच्छाइयोंके होने के भी इस सिद्धान्तका व्यावहारिक रूप देना अत्यन्त कठिन है। यद्यपि कई दृष्टियाँ चरम व्यक्तिवादी दृष्टिवाणकी भाँति यह सिद्धान्त काफी अच्छा है फिर भी यह परास्त प्रतापीन नहीं है। इसके अनिश्चित यह भी भाँसा है कि इसमें परिणामस्वरूप अधिक समर्थ और उद्योगीन व्यक्ति तथा असमर्थ व्यक्तिोंके बीच अनिश्चित असमानता उत्पन्न हो जाय क्योंकि किसी भी व्यक्तिकी सामाजिक उपयोगिता या अनुपयोगिता आसानी से जाना नहीं है।

फिर भी उपयोगिताकी सामर्थ्य (ability to use) का आदमी की सहायता से सहाय भरण समाजवादीकी स्थापनाकी प्रतीक्षा है जिस बिना ही हम 'मायपन वितरण' की एक ऐसी योजना तयार कर सकते हैं जिस पर तुल्य अर्थ विज्ञा जा सक। मूल अक्षर आदि जानिय विकासकी दृष्टि से अवांछनीय लोगोंको समाजके निम्नतर स्तर में रखा सकते हैं। उन्हें हम क्षय समाज में अलग कर सकते हैं उनमें सम्पूर्ण बढि पर रोक लगा सकते हैं और साथ ही सभ्य जीवन में 'यूननम आवश्यकता' उनमें लिए पूरी कर सकते हैं। दूसरी श्रेणी में हम उन लोगोंका रग मारते हैं जो दूसरे पर आश्रित रहते हैं जैसे बुढ़ और दुबल व्यक्ति। उनमें लिए भी हम सभ्य जीवनकी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करनी होंगी। अन्त में श्रमिकों का हम कमत कम इनाम देते हैं जो अच्छा जीवन बिताते हैं लिए आवश्यक हो और बराबर इस बातका प्रयत्न भी करेंगे कि अन्त में श्रमिकों का जीवन श्रमिकोंकी श्रेष्ठि में आ जायें। मध्यम

कगरे लिए हम माग और पूतिके सिद्धान्तको लागू रहने देंग और साथ ही इस बातका भी ध्यान रखेंगे कि इस सिद्धान्तमें जो स्वामाधिकार चुगियाँ हों उन्हें रखा और सुधारा जाय। उस नामके लिए समान अवसरके सिद्धान्तका प्रयोग किया जायगा। निम्नलिखित प्रमुख वृद्धि बाना आयकर (progressive income tax) और क्रमशः बढ़नवाला उत्तराधिकारकर (graduated inheritance tax) आदि इसके साधन होंगे। अधिक छोटी परसे लोगोंमें उपयोगकी सामग्री का सिद्धान्त पूर्णरूपेण लागू किया जायगा। यदि पाइ या रॉकफेलर जमा कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्तिसे मनुष्य जातिरी सवासे लिए और भी अधिक सम्पत्ति पैदा कर सकता है तो हम उसे बँसा करदे देंग। पर यदि इसके विपरीत वह अपनी सम्पत्तिका उपयोग एकत्र अपने स्वार्थके लिए करता है या किसी अन्य प्रकारसे सम्पत्तिका दुरुपयोग करता है तो हम विधि या जनमत या दोनों ही के द्वारा उससे लिए उस सम्पत्ति पर अधिकार बनाये रखना असम्भव कर देंग।

SELECT READINGS

ARISTOTLE—*Politics*

BOSSAQUET B.—*The Philosophical Theory of the State*—Chs. III VI, VII & VIII and Introduction to Second Edition

BURNS C. B.—*Political Ideals*—Ch. XII

CARLYLE, A. G.—*Political Liberty*

CARVER, T. N.—*Essays on Social Justice*

DICKINSON G. L.—*Justice and Liberty*

GETTLE, R. G.—*Introduction to Political Science*—Ch. IX.

GILCHRIST R. N.—*Principles of Political Science*—Chs. VI & VII

GREEN T. H.—*Principles of Political Obligation* Sects I I L A & B

HOCKING W. L.—*Law and Rights*

HEGEL, G. W. F.—*Philosophy of Right*

HONNHOUSE L. T.—*Elements of Social Justice*—Ch. VIII

JOAN C. E. M.—*Liberty To-day*

JASKI H. J.—*Liberty in the Modern State*

LASKI H. J.—*A Grammar of Politics*—Chs. III IV & V

LEACOCK S.—*The Unsolved Riddle of Social Justice*

MILL, J. S.—*Liberty*

MILTON J.—*Ancipietica*

OPPENHEIMER—*The Rationale of Punishment*

PLATO—*Republic*—Bks I IV

Property its Duties and Rights (a symposium)

RASHDALL, H — *The Theory of Good and Evil*—Vol I
Chs VIII & IX

RITCHIE D G — *Natural Rights*—Chs VII XII & XIII

ROUSSEAU J J — *Social Contract*—Book I

RUSSELL, B — *Roads to Freedom*

SETH, J — *Ethical Principles*

SIDGWICK H — *Elements of Politics*

SPENCER, H — *Justice*

WILLOUGHBY W W — *Social Justice*

सम्प्रभुता (Sovereignty)

१ सम्प्रभुताकी परिभाषा (Definition of Sovereignty)

सम्प्रभुता राजनीति-शास्त्री सबसे महत्वपूर्ण धारणाओंमें से एक है। पर यह भी सच है कि राजनीति शास्त्रने और किसी देश पर हमला अधिक विवाद और भ्रम उत्पन्न नहीं हुआ जिसना इस देश पर हुआ है। सम्प्रभुता शब्दका प्रयोग कई प्रकारसे होता है और इन प्रयोगों की बीच स्पष्ट भेद भी नहीं किया जाता। 'सुवैरणी' (Sovereignty) शब्द सटिन भाषाके 'सुपरनस' (superanus) से बना है जिसका अर्थ है 'ऊपर' या 'सर्वोपरि'। सम्प्रभुताका तात्पर्य प्रायः स्वतन्त्र राज्यमें एक ऐसी अन्तिम सत्ता से है जिसने आज फिर कोई असील नहीं होती। यह सत्ता देशके बाहरी और आन्तरिक सभी मामलोंमें सर्वोपरि होती है। देशके भीतर किसी भी व्यक्तिको या व्यक्तिवाले किसी समूहको सम्प्रभुताके निषेधके विरुद्ध काम करनेका कोई अधिकार नहीं है। बाहरी मामलोंमें भी सम्प्रभुता सर्वोपरि होता है। यह स्वयं ही अपना हकारी है। यह अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून प्रथाओं और दस्तूरोंको माननेके लिए वैश्विक तौर पर बाध्य नहीं होता। सम्प्रभुताकी परिभाषाएँ बहुत-सी और अनेक प्रकारकी हैं। पश्चिमी वैज्ञानिकों से सबसे पहले सम्प्रभुताका एक व्यवस्थित निदान्त स्थापित करनेवाले बोदो (Bodin) ने इसकी परिभाषा इस प्रकारकी है नागरिकों और प्रजा पर ऐसी सर्वोच्च सत्ता जिस पर विपरीत निषेध न हो। पचास वर्ष पश्चात् ग्रोतियस (Grotius) ने सम्प्रभुताकी परिभाषा इन शब्दोंमें की 'एक निजी व्यक्तिमें निहित सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति जिसने कार्य किसी दूसरेके अधीन न हों और जिसकी इच्छाका कोई उत्तरदायक या प्रतिनिधि न कर सके। यह किसी राज्य पर लागू करनेकी अधिक शक्ति है।

आधुनिक लेखक 'डुगुय' (Duguit) का कहना है कि जहाँमें आमजोर पर सम्प्रभुताका अर्थ लागू समझते हैं 'राज्यकी यह शक्ति जिसके हक पर राज्य मान्य देता है यह राज्यके अन्तर्गत राष्ट्रकी शक्ति है यह एक अधिकार है जिसके हक पर राज्यमें रहनेवाले सभी व्यक्तियोंको बिना किसी धार्मिक आचार्य की आज्ञा है। अधुनिक लेखक 'बुगोस' (Burgess) सम्प्रभुताको व्यक्तियों और व्यक्तियोंके

सधों पर मौलिक (original) परमपूण (absolute) और असीम (unlimited) अधिकार बताते हैं। दूसरे स्थान पर वह सम्प्रभुता को लोगोवा आगे देने और उनका पालन करनेकी स्वतन्त्र और मौलिक शक्ति कह कर पुकारते हैं। पोल्टन (Pollock) ने सम्प्रभुताकी परिभाषा इस प्रकार की है सम्प्रभुता वह शक्ति है जो न तो अस्थायी है और न किसी दूसरेके द्वारा दी गयी है और न वह किन्हीं ऐसे नियमोंके अधीन है जिन्हें वह बदल न सके। विलोबी (Willoughby) का कहना है सम्प्रभुता राज्यकी सर्वोच्च इच्छा है।

क्रानेनबर्ग (Kranenburg) के अनुसार यह राज्यकी प्रवृत्ति होती है कि वह दूसरा पर अपनी इच्छा बिना किसी शर्तके लागू करे क्वाकि शासन करनेकी यही परिभाषा है और शासन करना राज्य का मौलिक काम है (४५ १३९)।

यूरोपीय लेखक कार्डे मालबर्ग (Carrede Malberg) लिखते हैं (Theorie generale de l'etat vol I p 70) कि सम्प्रभुता कोई शक्ति नहीं है बल्कि वह एक 'गुण' है एक शक्तिकी यह सर्वोच्च विनिष्ठा है—यह सर्वोच्च इसलिए है कि यह किसी दूसरी शक्तिको न तो अपने ऊपर स्वीकार करती है और न अपने बराबर मानती है। लुफुर (Le fur) अपनी पुस्तक *L'etat federal* में लिखते हैं याहरी सम्प्रभुता उन अधिकारोंकी सम्पूर्णताका ध्येय करनेके लिए एक मरिष्ठ शब्द है जिनके द्वारा आन्तरिक सम्प्रभुता विदेशी राज्यास सम्बन्धम अपने आपका ध्येय करती है (पृष्ठ ४६५)।

गुडरिड अमेरिकी समाज-शास्त्री गिडिंग्स (Giddings) अपनी पुस्तक (*The Responsible State*) में लिखते हैं सारे सम्प्रभुताम एक ही ऐसा दूसरा शब्द नहीं है जिसके साथ उससे अधिक ध्यान देने लायक हो जितना आध्यात्मिक मायाविदों (metaphysical jugglers) द्वारा सत्ता शब्दके साथ रखा गया है। विधि वेत्ताओं (jurists) और राजनीतिक सिद्धान्तियों (theorists) ने अत्यन्त सतर्कता और मेधा के साथ अपना अस्तिव्य भावपूर्ण सम्प्रभुताम लगाया और सम्प्रभुता राजनीति-शास्त्रके लिए एक ऐसी वस्तु बन गयी जो जल या वन कहें भी नहीं किसी समय नहीं थी।

डोनेल्ड एक० रसल (Donald F Russel) सम्प्रभुताकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं 'राज्यके भीतर सबकुछ बड़ी शक्ति और सर्वोच्च सत्ता जो विधि या अथ किसी भीदस सीमित न हो क्योंकि अथवा वह न तो सर्वाधिक राजनीतिक शासकीय शक्ति और न सर्वोच्च।

सोल्टाउ (Soltau) सम्प्रभुताको 'राज्यकी शक्ति का निरन्तर अन्तिम अधिकार शक्ति का उपयोग बताते हैं। रूसो (Rousseau) गुडरार (Gougar) आदि अपनी पुस्तक (*Introduction to Political Science*) में लिखते हैं 'राजनीतिक विज्ञान भी सिद्धान्तम सम्प्रभुताकी चारणा सम्बन्धम शान्ति चाहिए। अथवा उदाहरण के लिए सम्प्रभुता सिद्धान्त सामाजिक तथा राजनीतिक मर्यादों और मानवीय प्रवृत्ति

सम्प्रभुताकी सार्वभौमिकतामें मुक्त होनेका एक ही स्पष्ट उदाहरण मिलता है। जैमावि गिलक्राइस्ट (Gielchrist) ने कहा है कुछ देशोंमें बूटनीतिज प्रतिनिधियों को यह राज्याधिकार सम्प्रभुता (extra territorial sovereignty) प्राप्त होती है। गिलक्राइस्ट इस सम्बन्धको इस प्रकार व्यक्त करते हैं 'किसी भी देशमें राजद्रोहावास उस देशकी सम्पत्ति है जिस देशका प्रतिनिधित्व वह राजद्रोहावास करता है। राजद्रोहावासके सम्बन्ध अपने देशकी विधियोंके अधीन होते हैं। पर अमतिपत्रमें यह अन्तर्राष्ट्रीय गिण्टिताकी बात है और इसे सम्प्रभुतासे वास्तविक मुक्ति नहीं कह सकते। यदि कोई राज्य चाहे तो अपनी सम्प्रभुताका प्रयोग करते हुए इस प्रकार दिये गये विनोदार्थिकारों और मुविषाओंको बापस ले सकता है (२८ ११०)।

३ अल्लेनबिलिटी या अविच्छेद्यता (Inalienability) यदि सम्प्रभुता परमपूर्ण और असीमित है तो यह बात भी समझमें आती है कि वह अविच्छेद्य होगी। कोई भी सम्प्रभु राज्य अपनी मौलिक विनोदताओंमें से किसी एक विनोदताको भी अपनेको नष्ट किये बिना नहीं छोड़ सकता। एक अमेरिकी लेखक लीबर (Lieber) लिखते हैं कि जिस प्रकार एक वृक्ष अपने उगने और पनपनेके अधिकारको नहीं छोड़ सकता अथवा जिस प्रकार एक व्यक्ति अपना विनोद किये बिना अपने जीवन और व्यक्तित्वको अपनेसे अलग नहीं कर सकता ठीक उसी प्रकार राज्य भी सम्प्रभुतासे अलग नहीं किया जा सकता। एक राज्य अपने भू प्रदेशके कुछ भागको दूसरे राज्यको दे सकता है। जब एक राज्य ऐसा करता है तो वह अपने उत्तम प्रयोजन पर अपनी सम्प्रभुता को दूसरे राज्य को सौंप देता है। पर इससे उसकी सम्प्रभु-व्यक्ति समाप्त नहीं हो जाती। उसके बाद वा सम्प्रभु बचता हो जाती है जिनका दो विभिन्न प्रयोग पर अधिकार होता है। इसी प्रकार किसी सम्प्रभुता या शासन द्वारा गरी छोड़ देनेका यह अर्थ नहीं होना कि उस राज्यमें सम्प्रभुताका अन्त हो गया। जब एक नाममात्रका शासन अपना पालन करता है तो केवल शासनमे स्वल्पमें अन्तर आ जाता है (२८ १११)।

किसी सम्प्रभुताकी अविच्छेद्यताके समर्थक थे। उनका कहना था कि शासनका हस्तान्तरण किया जा सकता है पर इच्छाका नहीं। सम्प्रभुता राज्यके व्यक्तित्वका मूलभूत है और उसको अलग करना आत्महत्याक समान है।

४ स्थायित्व या स्थायीता (Permanence or perpetuity) सम्प्रभुता उतनी ही स्थायी है जितना कि स्वयं राज्य। जब तक राज्यका अस्तित्व बना रहता है तब तक सम्प्रभुता बनी रहती है। दाना एक दूसरेमें अलग नहीं हो जा सकते। किसी राजा या राष्ट्रपतिकी मृत्यु या पदच्युत होनेका अर्थ यह नहीं है कि सम्प्रभुता समाप्त हो गयी। सम्प्रभुता सुरक्षित हो उठने का एक पण्डित व्यक्ति के शपथ में आ जाती है। यह केवल शासनमें व्यक्तिद्वारा परिवर्तन होता है। इसमें राज्यके अन्त अस्तित्वमें कुछ भी अभाव नहीं आती (२८ १११)।

५ अविभाज्यता (Indivisibility) सम्प्रभुताकी अविभाज्यता उगरी परमपूर्णताका सर्व-संगत विनोद है। अन्य विनोद है कि 'यदि सम्प्रभुता परमपूर्ण

नहीं है तो किसी राज्यका कोई अस्तित्व ही नहीं है यदि सम्प्रभुता विभाजित है तो एक ही व्यक्ति राज्यका अस्तित्व हो जाता है (२४ २)।^१

कृप वक्तावली (pluralists) इस विचारके विरोधी हैं। वे लोग सम्प्रभुताको राज्य और राज्यके भीतरके उन अन्य सत्ता और व्यक्ति-समूहोंमें विभाजित करते हैं जो मनुष्यके विभिन्न हितोंको रक्षा करते हैं। यदि इस विचारका व्यवहार हमें साधा जाय तो उसका अन्तिम परिणाम यह होगा कि राज्य द्विध-मिश्र हो जायगा। दो लोग बहुत बानी नये हैं वह भी कभी-कभी विभाजित सम्प्रभुता (divided sovereignty) के सिद्धान्तका समर्थन करते हैं—विशेषकर मध राय में। हारबर्ट विन्चिप्लान्डके मूल पूर्व अध्येत ए. एल. लोवेल (A. L. Lowell) प्रभावशाली प्रमाण कहते हैं कि एक ही नू प्रणाम हमारे सम्प्रभुताका अस्तित्व सम्भव है जो एक ही प्रजातन्त्र का विभिन्न भागोंमें अपने-अपने आश्रय देने हों (२ १३३)। इसी तरह लॉर्ड ब्रायस (Lord Bryce) का कहना है कि यदि सम्प्रभुता का सम्बन्ध सत्ता-व्यवस्था में अर्थात् एक दूसरे से सम्बन्धित गहरावरकी गतिविधि में विभाजित की जा सकती है (२२ १७५)। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मसलोंके अस्तित्व में मूल्य राज्य अमरिकाका वह मामला है जिसमें बहाके सर्वोच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि जहाँ तक उन अधिकारों और शक्तियोंका सम्बन्ध है जो राज्याध्यक्षोंके अधिकार धारण गयी है वहाँ तक संयुक्त राज्य (United States) का सम्प्रभुता प्राप्त है और जो अधिकार और शक्तियाँ राज्यके विभिन्न मंत्रियों की गयी हैं उनके सम्बन्ध में सम्प्रभुता प्राप्त है। इसमें मित्र विचार समर्थक काल्हुन (Calhoun) तथा अन्य अनेक विचारक अमरिकाकी उन परिस्थितियोंकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि सम्प्रभुता जो कि एक अविभाज्य इकाई है अमरिका में कृप मामलों में राष्ट्रीय सरकार के शक्त और कुछ दूसरे मामलों में राज्य सरकारके शक्त करनेका अधिभार करता है। दूसरे शब्दों में मध सरकारों और राज्य सरकारोंके बीच सम्प्रभुताका व्यवहार रहा हुआ है। यदि सम्प्रभुता उस पराग शक्ति में निहित है जिसमें दोनों सरकारोंकी अधिकार शक्तियों को निश्चय करनेकी शक्ति है और जो उन शक्तियों और अधिकारोंका इन सरकारोंके बीच विभक्त है इस प्रकार बाँट सकती है कि इनमें से विभाजित अधिकार उन मध या बह मध (२२ १७८)।

हम पूरा विश्वनाश विचार कहते हैं प्रभावशाली प्रमाणों में प्रसार है सम्प्रभुता एक समूची शक्ति है। उसका विभाजन करनेका अर्थ नष्ट करना है। विभाजित राज्य में सम्प्रभुता सर्वोच्च शक्ति है। आधा सम्प्रभुता का शान्त बनना उनका ही अन्तर्गत और शांतिपूर्ण है अब आधा प्रमाण (half reason) या आधा विवेक

^१ टीनेल (Tietzel) अन्ता पुस्तक (Festschrift, Vol. I, १९२९) में लिखते हैं कि एक ही राज्य अमरिका है जिसमें सम्प्रभुता विभाजित है। विभाजित राज्य की शक्ति ही उसी शक्ति है अमरिका का शक्त करने के।

(half triangle) कहना (२२ १७३)। अबवा दूसरे गम्नाम यह समझनम तो कोई कठिनाई नहा है कि सम्प्रभुतास सम्बन्ध रखनेवाली ध्वजियाकी किस प्रकार विभाजित किया जाय जिस प्रकार एक विभागवा एक्के हाथाम और दूसर विभाग का दूसरके हाथाम सीप दिया जाय या किस प्रकार सम्प्रभुताको एक व्यक्ति कुछ व्यक्तिवा अथवा अनेक व्यक्तियोमे निहित किया जाय। पर यह विचार ता असम्भव सा लगता है कि किसी प्रकार सर्वोच्च सत्ता सम्प्रभुताका विभाजित किया जा सकता है (२२ १७३)।

३ सम्प्रभुताके विभिन्न अर्थ (Different Meanings of Sovereignty)

१ नाममात्र की सम्प्रभुता (Titular Sovereignty) सम्प्रभुता शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थोंमें होता है और इन विभिन्न अर्थोंका अन्तर न समझनम भ्रम उत्पन्न होता है। नाममात्रकी सम्प्रभुता (titular sovereignty) गम्नाम प्रयोग उम राजा या राजतनीय शासकके लिए किया जाता है जो किसी समय वास्तवम सम्प्रभु था परन्तु अब बाकी समयम वास्तविक सम्प्रभ न रहार नाममात्रका सम्प्रभ हुआ गया। इंग्लैण्डका राजा सम्प्रभ (sovereign) कहलाता है लेकिन उसकी सम्प्रभुता नाममात्र की है। वास्तविक शक्ति ता बहुत समय पहन ही दूसरके हाथाम चली गया थी। अतः राजाकी सम्प्रभुता एक निरी कहानी है।

२ वैधिक सम्प्रभुता (Legal Sovereignty) प्रायः वैधिक सम्प्रभुता और राजनीतिक सम्प्रभुताके बीच अन्तर किया जाता है। वैधिक सम्प्रभुता राज्यम सर्वोच्च विधि बनानेवाली शक्ति है। केवल उगावे आग विधिहाने हैं। वह धार्मिक नियों नैतिक सिद्धान्त और जनमतके आगेका उत्तमपन कर सकती है। एसा सम्प्रभु इंग्लैण्डम सत्तमहित सम्राट (king in Parliament) है। डापकी के अनुसार सत्त वैधिक रूपमे इनकी सर्वशक्ति-सम्पन्न है कि वह एक बचको पूरी उम्र का धारित कर सकती है मरनेक बाद भी किसी व्यक्तिसे राजाहवा अपराधी बना सकती है वह विषाचारम (illegitimate) बचका योग्य (legitimate) धारित कर सकती है अथवा उचित समय तो वह किसी व्यक्तिवा उमर ही मायवम व्यापारी बना सकता है (२२ १६२)। वैधिक सम्प्रभुता सम्प्रभुता-सम्बन्धी पारिता की धारणा है। यह वही निषाधक (determinate) व्यक्ति है जिसकी कया आस्टिन ने सम्प्रभुता की अपनी व्याख्या की है। आगर्न नरन उहा विधियाका मानने हैं जा एमी सम्प्रभ सत्ताम उत्पन्न होती है।

वैधिक सम्प्रभुताकी विषयताएँ ये हैं (१) यह निषयधामक (determinate) और निषिद्ध होती है (२) यह निषा एक् व्यक्ति या व्यक्ति-मू, म निहित रह सकती है () यह निषिद्ध रूपम सगर्नित रूप और विधि द्वारा माय होती है (४) बचन यह ही वैधिक गम्नाम राज्यकी सत्ताकी धारणा करती है (५) इसकी

भाषाण न मानक अथ ज्ञान हैं विधि का मानना और इसविषय स्पष्ट पाना (६) अधिकारोंकी उत्पत्ति अभीमे जानी है और (७) यह परम्परा अमीमिन और सर्वोच्च हाता है।

राजनीतिक सम्प्रभुता (Political Sovereignty) इस शब्दकी परिभाषा करना उतना आसान नहीं है। एक साक्षरप्रवाण नाम जब कि विधिक सम्प्रभु सबसे बड़ा विधि बनानेवाला और लागू करनेवाला होता है वही उसके पीछे जनता की हवा रहती है जो सभी प्रकारकी अधिकार सत्ताका अन्तिम और परम स्रोत है। यह वह सत्ता है जिसका प्रयत्नक विरुद्ध कोई अस्ति नहीं है। डायसी (Dicey) के शब्दोंमें जिस सम्प्रभुता का बोध साफ माना है उस पीछे दूसरा सम्प्रभु रहता है। इस सम्प्रभुके नामसे विधिक सम्प्रभु का मिर हा धरना पड़ता है। उसी समयके अनुसार वही जिन राजनीतिक सम्प्रभु है जिसकी इच्छा अन्तिम रूपसे राज्यके नागरिक मानते हैं (१२ ६६)। जिनका यह विश्वास है कि इस प्रकार करते हैं सामग्री वह समस्त प्रभावकारिण शक्ति (influences) जो विधिक पाछ रहता है (The sum total of the influences in a state which lie behind the law)।

जब हम राजनीतिक सम्प्रभुताका कोई महीन परिभाषा देना प्रयत्न करते हैं तो बड़ा भ्रम पैदा होता है। यह अस्पष्ट और अनिश्चित (indeterminate) है। यह कोई ठोस वस्तु नहीं है जिस निश्चित रूपसे निपारित किया जा सक। यह दोष जहाँ प्रत्यक्ष या गूढ़ साक्ष्य है विधि और राजनीतिक सम्प्रभुता के बीच-बीच एक ही हुमा करती है। महीन अधिकार दोगों जहाँ लक्षणप्रवाण है वहाँ प्रतिनिधि मूलक या अप्रत्यक्ष साक्ष्य है। अब विधिक सम्प्रभुता और राजनीतिक सम्प्रभुता अलग प्रयोग हैं। कुछ स्पष्ट राजनीतिक सम्प्रभुताका मार्गिक समावेश कुछ आम जनतामें कुछ लोक-सम्प्रभुता (public opinion) तथा कुछ साक्ष्य और कुछ लोग उसे उन साक्ष्यों की शारीरिक शक्तिसे मानते हैं जो संवत्सारीक शक्ति कर सकते हैं। इन सभी दृष्टिकोणोंमें साक्ष्य एक ही है और यह वही असम्भव है कि इनमें से कोई एक शक्ति सहायित्व पूरा कर सकता है। इस प्रयोग के लिए कुछ समय सम्प्रभुता। उसका विधि अबी तक ही महीन माना गया है और राजनीतिक सम्प्रभुताका धारणा कि यह ही है। स्पष्ट है कि विधिक सम्प्रभुता पाछ एक राजनीतिक सम्प्रभुता मानना प्रयत्न करना सामान्य की नुकी धारणा का भ्रम कर जाता है और यह सम्प्रभुताका प्रभाव की सुधारणा बना देता है (२४ १२)। इस प्रकार लैकोक (Lecock) लिखते हैं 'यह है हम धारणा की रूप पर विधिक शक्ति का ज्ञान है वही है हम धारणा की ज्ञान है (२१ ११)। एक चीज जो विद्वानों में बहस है कि वह सम्प्रभुता का विधिक है जो एक बरीन और सहायक शक्ति माना है। सम्प्रभुता साक्ष्यमय निश्चय का इससे शक्ति की सम्प्रभुता की महीन विधिक सम्प्रभुके निश्चय पर भ्रम

मान्य है। लेकिन वे न तो अधिक सम्प्रभुकी भांति निश्चित होती हैं और न सगठित ही। एक मुख्यवस्थित राज्यके लिए आवश्यक है कि उसमें अधिक सम्प्रभुकी सर्वोच्च सत्ता हो जिसकी आज्ञाओंका पालन अधिकांश नागरिक स्वभावतः करते हों। साथ ही साथ जनताके मनचाहे परिवर्तना को अधिक तरीकेसे साधू करनेके लिए जहाँ तक सम्भव हो अधिकसे अधिक अवसर मिलना चाहिए।

४ लोकप्रिय सम्प्रभुता (Popular sovereignty) लोकप्रिय सम्प्रभुता राजनीतिक सम्प्रभुताका स्वाभाविक विकास है। जनप्रिय सम्प्रभुताके सिद्धान्तके अनुसार अन्तिम सत्ता जनताके हाथमें रहती है। इस सिद्धान्तका प्रतिपादन मध्ययुगमें मार्सीलिया ऑफ पडुआ (Marzio of Padua) और विलियम ऑफ ओकम (William of Ockam) जैसे सेल्वर्गेने किया था। अठारवीं सताब्दीमें यह सिद्धान्त इसो के उपने'गों का आधार बना। रूमा ने 'स सिद्धान्त की घोषणा डेवैकी चोट पर की (२२ १६४)। उन्नीसवीं सताब्दीमें लोकतन्त्रके विकासके साथ इस सिद्धान्तको यहाँ तक बन मिला कि सभी स्वतन्त्र देशोंमें यह मान लिया गया है कि जनता ही राजनीतिक अधिकार सत्ताकी अन्तिम अधिकारक या मालिक है। अधिक सम्प्रभुता यदि ज्ञान-भूषणकर लगानार जनताकी इच्छाओंका विरोध करती रह तो वह अधिक समय तक नहीं टिक सकती क्योंकि अन्तिम हालतमें जनता बल प्रयोग कर सकती है और चाहति करके एक नवीन सरकारकी स्थापना कर सकती है। आजकल 'जनताका नियन्त्रण और लोकप्रिय शासन' शब्दोंका प्रयोग लोकतन्त्र शब्दके पर्यायके रूपमें किया जाता है। इस प्रमाणसे यह साफ प्रकट हो जाता है कि अधिक सम्प्रभुता पर समूची जनताका अन्तिम नियन्त्रण किस ह' तक रहता है।

यद्यपि लोकप्रिय सम्प्रभुताका सिद्धान्त बहुत ही आकर्षक है और उससे ज्ञाताकी अहं भावना भी सन्तुष्ट होती है पर जब हम इस धारणाका काल्पनिक करने और उसे एक निश्चित अर्थ देनेका प्रयत्न करते हैं तो कठिनाइया उत्पन्न हो जाती हैं। जितना ही अधिक हम उस पर विचार करते हैं उतना ही अधिक कठिन उसकी परिभाषा करनेका काम होता जाता है। राजनीतिक सम्प्रभुता की गभीर अन्वेषणाएँ इस पर भी लागू होती हैं। लोकप्रिय सम्प्रभुताकी परिभाषा करनेमें जनता शब्दके निम्नलिखित दो सम्भावित अर्थ विवेक जा सकते हैं (क) जमागति अनियोजित समूची जनता (the total unorganized indeterminate mass) (ख) निर्वाचक मण्डल (the electorate)। यह स्पष्ट है कि जनता शब्दका जो पहला अर्थ है उसके अनुसार जनता सम्प्रभु (sovereign) नहीं हो सकती। दूसरे अर्थमें यदि जनता को किसी भी मानमें सम्प्रभु मानना है तो वह वास्तव में अधिक तरीकाग ही काम कर सकती है। गार्नर (Garner) के शब्दांश 'असंगठित सार्वजनिक' सहित जनता परिभाषा की जाती है तो यह उस समय तक सम्प्रभु नहीं बन सकता जब तक उस पर अधिकार शब्द में शिवा जाय—ठीक उन्नी प्रकार अर्थ कि विधायिकाके सम्मानका कोई पररामो और अधिष्ठित प्रभाव विधि नहीं बन सकता (१२२ ६५)। व्यावहारिक तौर पर

जन प्रिय सम्प्रभुताका अर्थ गान्धिवर समयमें लोकमन और मुझ समयमें शान्तिहीन दक्षिण अफिर नही जान पन्ता (२४ १ ०)।

उपर्युक्त व्याख्याका ध्यानमें रखते हुए लोकप्रिय सम्प्रभुता और राजनातिक सम्प्रभुतामें अन्तर कम अन्तर रह जाता है। गिम्पारान् जो इस अन्तर पर बहुत अधिक जोर देते हैं वे यह हैं कि लोक प्रिय सम्प्रभुता व्यावहारिक दृष्टिसे राजनातिक स्वाधानका अथवा जनता द्वारा नियंत्रण से समान है। लोक प्रिय सम्प्रभुताका अर्थ जनताकी इस गतिमय व्यवस्थाका अधिकार जनताके प्रतिनिधियों द्वारा विधायिका का नियंत्रण और जनता द्वारा चुने गये संसदीय अथवा नीति पर नियंत्रण आदि निहित है। इससे विपरीत गम्प की राय है जनताकी सम्प्रभुता एक धार्मिक अन्तर्बिषय है। तास्वी का कहना है कि राजनीतिक सम्प्रभुता का अर्थ यही अर्थ मान्य होता है कि समाज की भाँति अगली ओर का समूह जनमूहके हितोंका सर्वोच्च स्थान मिले। लेकिन इससे तो समझा हर नही होता ही बिना अवश्य छिड़ जाता है।

लोकप्रिय सम्प्रभुताकी परिभाषा करनेमें हम चाहें जितनी भी कठिनाई क्या न हो पर हम सिद्धान्तमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान दें।

(क) सरकारका अस्तित्व स्वयं अपने बलपूर्वक नही है। उसका अस्तित्व जनताके बलपूर्वक है।

(ख) यदि जनताकी इच्छाएं जान-बूझकर कुचली जाती हैं तो शान्तिहीन सम्भावना रहती है।

(ग) लोकप्रिय सम्प्रभुताके लिए आम जनता की व्यवस्था बराबर रहनी चाहिए।

(घ) जहाँ-जहाँ चुनाव स्थानीय स्वायत्त मामलों में लोक निर्णय (referendum) लोक आदेश (initiative) और प्रत्यावर्तन (recall) के द्वारा सरकार का प्रत्यक्ष रूपसे जनताके प्रति जिम्मेदार बनाना चाहिए।^१

(ङ) सरकारको अपनी अधिकार सीमा का प्रयोग प्रत्यक्ष रूपसे लोक निर्णय के विधानोंके अनुसार करना चाहिए और मनमाने ढंगसे काम नही करना चाहिए।

^१ लोक निर्णय (Referendum) लोक आदेश (Initiative) प्रत्यावर्तन (Recall) ये सब पद्धतियाँ हैं जो लोकप्रियता अधिक प्रयोग बनाने तथा सरकार की नीति-निर्णय पर जनताका अधिक नियंत्रण रखने के लिए अन्तर्नीय होती हैं।

लोक निर्णय (Referendum) इस पद्धति के अनुसार किसी विधेय का स्वीकार करने या कार्य-विषय बनने के पश्चात् उस पर पूरे निशेध समूहों की सम्मति ली जाती है। इस पद्धति के अन्तर्गत विधेय विधायिका द्वारा स्वीकार किये जाने पर भी तब तक मान्य नहीं होता जब तक उसे मतदाताओं का एक निश्चित बहुमत स्वीकार न करे।

लोक आदेश (Initiative) इसके अनुसार मतदाताओं की एक निश्चित संख्या किसी एक विषय पर विधि-निर्माण की या वर्तमान विधि में परिवर्तन की मांग

५ विधिसम्मत (ज्ञान्ती) और वास्तविक सम्प्रभुता (De jure and De facto Sovereignty) सम्प्रभुता वास्तविकताका प्रश्न है और इसलिए कभी कभी विधिसम्मत (de jure) और वास्तविक (de facto) सम्प्रभुता के बीच भेद किया जाता है। विधिसम्मत (de jure) सम्प्रभु अधिक (legal) होता है अर्थात् विधि उसे सम्प्रभु मानती है तथा वास्तविक (de facto) सम्प्रभु वह है जिसकी आज्ञा जनता वास्तविक मानती है—उसकी चाह कोई विधि स्थिति हो या न हो। वास्तविक सम्प्रभुता गौरीरिक्त बल या घमके बल पर टिक सकती है पर विधि सम्मत सम्प्रभुता का आधार विधि होना है और विधि उम यह अधिकार देती है कि वह अपनी आज्ञाका पालन करावे। विधिसम्मत और वास्तविक सम्प्रभुता का अन्तर विरोध के दिन में बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। कुछ जातियाँ केवल सभ्यता के सामन यत्न या शासन करने वाले व्यक्तियों में कुछ परिवर्तन ही करती हैं पर कुछ जातियाँ पुराने अधिक सम्प्रभु को एकदम समाप्त करके उसकी स्थान पर नए सम्प्रभु को स्थापित करती हैं। ऑस्टिन ने वास्तविक सम्प्रभुता और वैधिक सम्प्रभुता में कोई अन्तर नहीं माना था क्योंकि ऑस्टिन का कहना है कि सरकारें वास्तविक और विधि सम्मत तो ही सकती हैं लेकिन वेध और अवध का प्रयोग सम्प्रभुता के लिए नहीं किया जा सकता। वास्तविक सम्प्रभुता को अवध मानना गलत है। क्योंकि सम्प्रभुता का तात्त्विक ही वह व्यक्ति है जिसके बल पर लोगों को अपना आज्ञाकारी बनाया जा सकता है। हर देश की आन्तरिक शांति और व्यवस्था के हित में यह आवश्यक है कि विधिसम्मत और वास्तविक सम्प्रभु एक ही हों। और यदि ऐसा न हो तो राज्य ही राज्य नहीं बल्कि अधिक समय तक नहीं रहना चाहिए। दूसरे सामन व्यक्ति और राज्य के बीच में होना चाहिए। जैसा ही एक वास्तविक सम्प्रभु (de facto sovereign) अपने आपको स्थायी रूप से प्रतिष्ठित कर लेता है उसकी अधिक स्थिति भी बनन लगती है और अन्त में वह विधिसम्मत सम्प्रभु बन जाता है।

इसका एक ही उदाहरण पाल है। चीन में प्यांग-बाई-सांग का सामन समाप्त कर देने के बाद तुरन्त ही साम्यवादी सरकार वास्तविक और पर सम्प्रभु हो गयी थी। वह आज तक सामनारुद्ध है और बाई भी उसकी गलाका चुनौती देने वाला नहीं है। अतः देश में जिनमें भाग्य भी साम्य है उसे साम्यता प्रदान की है

करती है। मन्त्रालयों को तो उम विधि की रूपरेखा और उसका विवरण सभी कुछ बनना दे। अपना पाठों में प्रस्तावित विधि का सामान्य उद्देश्य विधायिका का बनना है और उसी विधि का विवरण तैयार करने का काम गौर दे। दाना ही हाना में विधायक (bill) पर जनता की राय ली जाती है। वह विधायक सभी लागू होता है अर्थात् विधि (law) बनता है जब मन्त्रालयों का अनुमति उस स्वीकार कर लेता है।

प्रयापन (Recall) इस पद्धति में अनुमति जब कोई विधायक निराकर मन्त्रालय का आदेश या सम्पूर्ण विधान में होता है तो उम उमकी अवधि समाप्त हो तो पूर्ण तिर में चुनाव लड़ने के लिए मजबूर किया जाता है।

कनक स्वर्ण की लकीरें, मण्डपों के अंदर और विधि सम्पन्न दानों का सम्प्रभना का गे पुनः मानी जा सकती है।

४ सम्प्रभुताकी स्थिति (Location of Sovereignty)

राजनीति-शास्त्र की विद्यार्थीय त्रिण सम्प्रभिताकी स्थितिकी प्रथम बहुत कठिन है। प्रसिद्ध विचारका न इस प्रश्नपर विभिन्न मतस्थि है। मन्त्र का कहना है कि इन विचारकाने अनगार सम्प्रभिताकी स्थिति प्रथम इस प्रकार है

(१) राज्यकी जननाम

(२) उक्त मन्त्रालय जिनमें राज्यक भविष्यमान बनाने या उसमें परिवर्तन करनेका अधिकार अपिवात् है।

(३) राज्य शासनम जा किंचि बनानवांनी अधिक संस्थां हीं उनके सर्वांगीण रूपम (३४ ३८)।

इनमें पहले दृष्टिबाण पर अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नही है। सामान्य सम्प्रभुताकी विवेचना करते समय हमने उन अनेक आलोचनाओंका जिक्र किया है जो इस दृष्टिबाणके सम्बन्ध में की जाती हैं परन्तु दो दृष्टिकोणोंका हम सामान्य नही टाल सकते हैं। जहाँ तक ब्रिटिश सम्बन्ध है वहाँ तक सावधानीके विधि (constitutional law) और पारित महत्वावद्ध विधि (statute law) में कोई अन्तर नही किया जाता। अतएव वही सम्प्रभुताकी स्थितिका नियम करना बख्ति नही है। ब्रिटिश संविधान मनीना है। वह अपरिवार संविधानकी तरह पारा तरफ़ जय । यह है। वरिष्ठ मन्त्रिमण्डल मन्त्रिमण्डल (Parliament) जिसमें राजा (king) हाउस ऑफ़ लार्ड्स (House of Lords) और हाउस ऑफ़ कॉमन्स (House of Commons) शामिल हैं सम्मिलित हैं। यह (Parliament) कोई भी विधि बना या रद्द कर सकता है। इसलिए उस विधि सम्प्रभु कहा जाता है। राजनीतिक सम्प्रभु मनीनी जनता या सभी लोग निर्वाचक-मण्डल है।

अमेरिका में मन्त्रिपरिषद् बहुत अधिक अल्प (small) है इसलिए बहो मन्त्रिपरिषद् की स्थिति निर्णय करना आसान नहीं है। अमेरिका में अल्प और परमभूत विधि अधिकार तथा राज्यपाल है जो न राज्य अथवा मन्त्रिपरिषद् के विधायिका (legislatures) का ही प्राप्त है। उनका जो भी काम मन्त्रिपरिषद् की सीमा में आता है उसका विधि व्यवस्था द्वारा उसे ठीक करना है। इसलिए उनमें मन्त्रिपरिषद् की स्थिति न है। मन्त्रिपरिषद् की स्थिति उस मन्त्रिपरिषद् है जो मन्त्रिपरिषद् में गठित करने का अधिक अधिकार प्राप्त है। अमेरिका में मन्त्रिपरिषद् का पक्ष पक्ष इस संस्था का है इस प्रकार करता है जब सभी मन्त्रिपरिषद् (Congress) के दो भागों में दो विधायक मन्त्रिपरिषद् के सम्पूर्ण सभा (Congress) इस मन्त्रिपरिषद् में गठित करने का प्रस्ताव पक्ष करेगी अथवा दो-विधायक मन्त्रिपरिषद् के प्रत्येक पक्ष देने पर विधायक मन्त्रिपरिषद् के प्रस्ताव रखने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन

करगी। इन दाना ही दशाओंमें यह सङ्गोधन जब तीन चौथाई राज्याकी विधान सभाओं द्वारा स्वीकृत हो जायग अथवा सम्मेलनमें तीन चौथाई राज्यों द्वारा स्वीकृत हो जायग तब वह संविधानका एक अंग बन जायगा और सभी अर्थोंमें प्रामाणिक समझा जायगा। स्वीकृतिका दोताम स कोई भी एक तरीका बाधस द्वारा प्रस्तावित किया जायगा।

रूचक (Roucek) तथा अन्य भागवा कहता है अमरिकास राज (checks) और सन्तुलन (balances) की जा प्रथा है यह सरकारी किसी भी एक शाखास सम्प्रभुताकी स्थिति नहा होने देतो। शुरूम अमरिका एक मिली जुली (mixt) या विभाजित सम्प्रभुताकी बात करत थ। वे लाग भिन्न भागमें सर्वोच्च न्यायालय, विधि बनानेवाली सस्था विधिका साधु करनेवाली सस्था और विधिम सङ्गोधन करनेवाली सस्थाओंका सम्प्रभु बताते थ। बसाग तो यह भी कहत थ कि सम्प्रभुता सभ सरकार और राज्य सरकारोंके बीच बगी हुई है। हामिल्टन (Hamilton) और मडिसन (Madison) गहरी सम्प्रभुताकी बात करते थ। १७९२ म चिशोम (Chisholm) बनाम जॉजिया वाले मुकदममें सर्वोच्च न्यायालयने इसे मजूर कर लिया था। इस सबके बारेम कनिगाई यह है कि शुरूम अमेरिकाके लाग यह नहीं समझ सके कि सविधाना वितरण सविधाना विभाजन नहीं है।

गहन और कुछ अर्थ लेखक उस दृष्टिकोणके विरोधी हैं जिसम वैधिका सम्प्रभुता को संविधान बनान और उसम संस्थापन कर सकनेवाली सस्थास निहित समझा जाता है। उनका सबसे बड़ा तर्क यह है कि संविधानका निमाग और संगापन करने वाली सस्थाओंका अधिकेशन लगातार नहीं होना रहता। उनका अधिकेशन ता आवश्यकता नुसार बनाया जाता है। इस प्रकार बहुत सी अवधिया म ये सस्थाएं बि-कुल अक्रिय रहती हैं। इसलिए राज्यकी सम्प्रभुता इन सस्थाओंम हा ही नहीं सबकी बवाकि सम्प्रभुता हमेशा सक्रिय रहती है। ये लोग विधि बनानेवाली सस्थाओंके सकलित रूपम सम्प्रभुताकी स्थिति मानत हैं। इन सस्थाओंम निम्नलिखित शामिल हैं (२४ १०२)

(१) विधायिका (Legislature)—राष्ट्रीय राष्ट्र-मण्डलीय (commonwealth) और स्थानीय।

(२) न्यायालय (Court)—यहाँ तक यह विधिवारा निमाग करते हैं न कि केवल व्याख्या और उसका प्रयोग करनेकी स्थितिम।

(३) कार्यपालिकाके पदाधिकारी (Executive officials)—यहाँ तक बहु अध्यादेशों (ordinances) घोषणाओं (proclamations) आदिके द्वारा विधि बनाने हैं।

(४) सम्मेलन या सभाएं (Conventions)—जब कि वह वैधिका अंगस विधि-निर्मात्री परिषदोंके रूपमें काम करने हैं। उदाहरणक तिल विधिरूपक बनाना गया साधनिक-सम्मेलन।

(५) निर्वाचक मण्डल (The Electorate)—जब कि यह साक निर्णय (referendum) अथवा जनमत (plebiscite) के अधिकारका उपयोग कर रहा हो (२४ १०)।

इस दृष्टिकोण अनुसार सम्प्रभुताम सरकार उन अंगोंका छाड़कर जा कुछ प्रशासन ही सम्हाल पायेगी। यह विधान (२४ १०३)। मन्त्रोंके अनुसार इस दृष्टिकोणकी सबसे बड़ा विधान यह है कि इसन सावधानिक विधि (constitutional law) और परिनियम विधि (statute law) के बीच और सरकार के विभिन्न अंगोंके बीच कोई भेद नहीं किया गया है। इसका अन्तर्गत नागरिक सम्प्रभुता के सिद्धान्तके समान ही इसमें यह स्वीकार किया गया है कि आपुनिक नागरिकीय राज्याने सम्प्रभुताकी दृष्टिसे राज्यके नागरिकोंमें बनी हुई है और उनमें द्वारा उनका उपयोग होता है। संविधान-निर्माण-सिद्धान्त (constitution making theory) की भाँति इसमें यह स्वीकार किया गया है कि सम्प्रभुता एक अधिकार प्रणाली है और उसका प्रयोग अधिकार के अन्तर्गत प्रयोग किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण जा अस्पष्टता और विचारकी गतिविधि है वह इसमें नहीं है। साथ ही साथ दूसरे दृष्टिकोणमें जो अधिकार भाव सूत्रता (legal abstraction) है और जिसमें सम्प्रभुताका बहुत पीछे पसीने कर उसका अस्तित्व ही साथ नष्ट कर दिया है उसमें भी यह दृष्टिकोण साफ बच जाता है (२४ १०६)।

मन्त्रों द्वारा बनायी गया विधानात्मक अधिकार यह सिद्धान्त सन्तुष्ट नहीं जान पड़ता। इसमें मूल ही राज्य और सरकारका समानता बचा भारी धम किया गया है। विधि बनानेवाली विभिन्न संस्थाएँ राज्यकी आवश्यकताएँ एकता (organic unity) की प्रतीक हैं। वे राज्यकी सम्प्रभुताके विभाग नहीं हैं। विधि बनाने के अधिकार उन्हें प्राप्त हैं वह प्रत्यक्ष अधिकार (delegated powers) हैं। इसलिए सम्प्रभुताकी स्थिति उसमें नहीं है। सम्प्रभुता उस संस्थामें है जो संविधानको बना सकती है उसमें संशोधन कर सकती है और अन्तर्गत दृष्टिकोणों को उन विभिन्न अंगोंमें बाँट सकती है जो उसकी इच्छाको प्रकट करते हैं।

डॉनाल्ड ई. रसल (Donald E. Russell) का कहना है कि एक पक्षी निष्पक्ष निजाला जा सकता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में तो सरकारका कोई अंग विशेष और न कोई एक व्यक्ति या गुण सम्प्रभुताके अधिकारोंका पूर्ण रूपसे प्रयोग करता है। वह इस विचारका भी शक्य मानता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका सम्प्रभुता है ही नहीं। अपना दावा है कि जब तक वह बचती रहती है। यह धर्म इस विचारका ही है कि साथ साथ और सरकार के बीच अन्तर समझने में अक्षम रह है। सम्प्रभुता का बिना होता है और वह किया व्यक्ति का होती भी जा सकती है। मन्त्रों यह विचार अथवा सोचना और सम्प्रभुताका बिना दोनो एक चीज नहीं है। राज्यके भीतर सम्प्रभुता के प्रयोगका अन्तिम सात राज्यकी संरचना सम्प्रभुता ही है। मुख्य अधिकारी तो राज्य है और सरकार तो राज्यका एक हिस्सा है।

भारत में इस समय सम्प्रभुता संविधान में निहित है।

५. जॉन ऑस्टिन का सम्प्रभुता सम्बन्धी सिद्धांत (John Austin's Theory of Sovereignty)

ऑस्टिन अपनी पुस्तक *Lectures on Jurisprudence* में लिखते हैं सम्प्रभुता और स्वतंत्र राजनीतिक समाज की धारणाओं को मिलाकर इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है 'यदि एक निश्चित उच्च कोटि का मनुष्य जो स्वयं अपने समान किसी दूसरे मनुष्य की आज्ञापालन करने का अभ्यासी न हो और जिसकी आज्ञापालन समाज के अधिकांश लोग स्वमात्र करते हों तो वह मनुष्य उस समाज में सम्प्रभु है और वह समाज (उस मनुष्य सहित) राजनीतिक और स्वतंत्र समाज है। जिसकी एक उच्च व्यक्ति द्वारा निम्न कोटि के लोगों का दिया गया आदेश बहा गया है। ऑस्टिन के अनुसार विधि उन नियमों का एक संचयन रूप है जो राजनीतिक दृष्टि से अधीन व्यक्तियों के लिए राजनीतिक दृष्टि से उच्च स्तर का व्यक्ति या सम्प्रभु बनाता है। समाज का बहुमत उच्च कोटि के मनुष्य के आदेशों का पालन मुख्यतः इसलिए करता है कि उस उच्च कोटि के मनुष्य में अपने अधीन व्यक्ति या व्यक्तियों पर असीम दबाव डालने की शक्ति होती है (प्रथम संहिता २२६ १८६९ का संस्करण)।

ऑस्टिन के सम्प्रभुता सम्बन्धी सिद्धान्त में ध्यान देने योग्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने शक्ति अथवा बल को ही निर्णायक स्वरूप माना है। उनके विचार में विधि अथवा अधिनियम या 'यामका' तो प्रश्न ही नहीं है। यदि रूखा इच्छा पर जोर देते हैं तो ऑस्टिन शक्ति पर जोर देते हैं (५७ ३५०)। इस कारण धोसांक का कहना है ऑस्टिन की सम्प्रभुता सम्बन्धी धारणा शक्ति पर आधारित है हम आदर्शवादियों के विचार में सम्प्रभुता समूची जनता की इच्छा पर आधारित है (५ ५५)।

टी० एच० सीन ने ऑस्टिन और रूसो के सम्प्रभुता सम्बन्धी प्रत्युत्तर विरोधी सिद्धान्तों में मूल पैठाने की कोशिश की है। उनका कहना है कि रूसो के विरुद्ध ऑस्टिन का यह मत ठीक है कि सम्प्रभुता एक ऐसे निश्चित व्यक्ति या व्यक्ति समूह में निहित रहती है जिसमें विधियों को लागू करने और जनता द्वारा उनका पालन कराने की क्षमता होती है और जिस पर किसी प्रकार का अधिक नियंत्रण नहीं चल सकता (२९ ९७)। सीन का कहना है कि जब पश्चिमी देशों में सम्प्रभुता का यह निश्चित अर्थ माना जा चुका है तब रूसो ने सम्प्रभुता की स्थिति एक अनिश्चित सार्वजनिक इच्छा के बराबर अपने पाठकों को भ्रम में डाल दिया है। पर ऑस्टिन के विचार की तुलना में रूसो का यह कहना ठीक है कि सम्प्रभुता की आज्ञाओं का पालन करने का मुख्य कारण भय नहीं है बल्कि यह विचार है कि इन आज्ञाओं का माना जाना सामाजिक सम्बन्धों का हिस्सा है और व्यक्तिगत सम्बन्धों में सार्वजनिक सम्बन्धों का अभिन्न अंग है। दूसरे शब्दों में एक निश्चित प्रमाण व्यक्ति की आज्ञा इसलिए मानी जाती है कि उस सार्वजनिक इच्छा का प्रतीक समझा जाता है। सम्प्रभु दबाव अपने ही असीमित शक्ति का प्रयोग नहीं करता। अपने सामान्य हिंसा के सम्बन्ध में जनता की निश्चित धारणाओं के साथ सामंजस्य

हा ता आतिरकार उसकी शक्ति का आधार है (२९ ९६)। सम्प्रभुकी अधिकार-सत्ताकी स्वाइजिडा प्रत्येक व्यक्तिगत दितम सम्प्रभुका भय मात्र नहा टहराया जा सकता है। वह कुछ निश्चित उद्देश्याकी सिद्धि के लिए सामान्य इच्छा है (२९ ९६)। यदि यह इच्छा सक्षम नहीं रह जाती अथवा सम्प्रभुक आदेशों से उसका सत्य जाता है तो साग सम्प्रभुकी आशा मानना भाग्य बन देगा।

सम्प्रभुता-सम्बन्धी अनेक दृष्टिकोणकी सबसे अच्छी व्याख्या जॉन ऑस्टिन ने की है। उनकी व्याख्याम बर्णानिक स्पष्टता और पूर्णता है जो बहुत ही प्रभावपूर्ण है। उनकी व्याख्याका निम्नलिखित चार सीधे सादे प्रमेय (propositions) में दिया जा सकता है

- (१) प्रत्येक राज्य (जिसे ऑस्टिन स्वतंत्र राजनीतिक समाज कहते हैं) में एक ऐसा निम्न उच्चतर मनुष्य होता है जिसकी आज्ञा समाजके बहुसंस्क नागरिक स्वभावतः मानते हैं।
- (२) यह उच्चतर मनुष्य जो कुछ भी आज्ञा देता है वही विधि हाता है और उसके आदेशोंके बिना कोई विधि नहीं बन सकती।
- (३) इस उच्चतर मनुष्यकी शक्ति, जिसे सम्प्रभुता कहते हैं अविभाज्य है।
- (४) यह सम्प्रभु-शक्ति परमपूर्ण होती है और उस पर प्रतिषेध नहा लगाया जा सकता।

आलोचना

(१) आलोचकोंने ऑस्टिन की इन सभी बातोंकी कड़ी आलोचना की है। फिर भी वेता कि नाइ न कहा है कि इनमें से हर एकमें कुछ महत्वपूर्ण सत्य या अर्थसम्प है।

(२) ऑस्टिन ने सबसे पहला जिस 'निम्न उच्चतर मनुष्य' की बर्णना की है उसकी आलोचना सर हेनरी मैन (Sir Henry Maine) ने अपनी पुस्तक *Early Institutions* में की है। उन्होंने लिखा है कि पूरे अनेक साम्राज्योंमें एनी कोई चीज है ही नहीं जिसमें ऑस्टिन का 'निम्न उच्चतर मनुष्य' कहा जा सके। उदाहरण के लिए पञ्जाबके निम्न राज्यमें रमजीत सिंह ने अपनी प्रजा पर निर्भर अधिकार बने थे। उनके छात्र छोटे आदेशाका उन्मूलन करनेका दण्ड पाँसी या अंग अंग हाता था। पर वह भी समाजकी प्रमाण्य विधि (customary law) के अधीन रह और उन्होंने कभी कोई ऐसा आदेश नहीं दिया जिसकी बर्णना ऑस्टिन ने करने विफलता की है। प्रचार के द्वारा शक्ति-निर्वाह-युगोंकी देन होती है और किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को उसका भेद नहीं दिया जा सकता। इसलिए यह स्पष्ट है कि जिस सम्प्रभुकी बर्णना ऑस्टिन ने की है वह राज्यके अस्तित्व के लिए अनिवार्य नहीं है क्योंकि यह कहना तो एकदम स्पष्ट है कि नहीं वही ऑस्टिन

की धारणा का सम्प्रभु नहै। यहाँ या तो अराजकता है या प्राकृतिक व्यवस्था (१४ ८८)। जॉन चिपमन ग्रे (John Chipman Gray) का कहना है कि समाज के वास्तविक शासकों का दूरपर पता नहै। लगाया जा सकता (४७ ५६)।

(४) हिंसा एक निश्चित उच्चतर व्यक्ति की स्थिति मान्य करना आसान है। पर जब इस सिद्धान्त को पूर्व प्राचीन निरुत्सु राग्या अथवा अमेरिकाने सविधान पर लागू किया जाता है तब इसमें सहायता नहै मिलती। फिर भी हम साह के इस विचार से सहमत हैं कि यदि किसी राज्य में सर्वोच्च शक्ति की स्थिति निर्दिष्ट करने में कठिनाई होती हो तो इससे माने यह सही है कि हम इस शक्ति के अस्तित्व को ही मानने से इन्कार करें। व्यवहार में तथा सिद्धान्त में एक ऐसी परम सत्ता को स्थापित करना सम्भव है जिसके आगे कोई अतीत न हो सके (१४ ८८)। हाँ सचता है कि इस लोच से उनका साथ न हो जिनका इसके लिए परिश्रम करना पड़।

(५) यह सिद्धान्त बिल्कुल ही भावमूल्य और वैधिका है और इसमें सम्प्रभुता के दार्शनिक पक्ष का कोई विचार नहीं किया गया है। साम-सम्मति (general will) का ही आजकल लोकतन्त्रवादी राज्यों का आधार माना जाता है। जैसा कि गान्ध ने कहा है यह उच्चतर व्यक्ति (अर्थात् ऑस्टिन का सम्प्रभु) न तो साक्षर निष्पक्ष दण्डा हो सकता है जैसा कि म्हा ने सोचा था न जनता का समूह ही हो सकता है न निष्पक्ष मण्डल और न जनमत न नैतिक भावना न सामान्य विवेक न परमात्मा की इच्छा आदि। उस तो एक निश्चित व्यक्ति या सत्ता होना चाहिए जो स्वयं किसी वैधिका प्रतिष्ठा के अधीन न हो (२२ १७९ ८०)।

(६) और फिर यदि सम्प्रभु की अधिकार सत्ता का आकाश बल स्वभावन ही मानी जाती है तो फिर सम्प्रभु अधिकार सत्ता का असीमित मानना यथि-नागत नहीं जान पड़ता।

(७) ऑस्टिन की दूसरी मायका यह है कि एक निश्चित उच्चतर मनुष्य के रूप में सम्प्रभु सर्वोच्च विधि निर्माता है। वह जो भी आदेश देता है वही विधि है। प्रत्येक समाज में आदेशमूलक विधियों का ही साथ ही साथ पानेवादी पुरानी प्रथाओं और परम्पराओं का धारण जिनका पालन होता है ऑस्टिन का कहना है कि सम्प्रभु का अनुमति देना भी उसका आदेश है। इसका उदाहरण हिंस्र की सामान्य विधि (common law) है जिसका अस्तित्व प्रथाओं पर है और जिनको धारण करने वाला जिनका उपयोग और गवर्नर उस समय होता है जब अंगलन उनका प्रयोग करता है (२८ ११५)। यह कहा जा सकता है कि हिंस्र का मन्त्र अपनी मन्त्रों का साथ उस सामान्य विधि की अनुमति देता है और जब चाह उसमें मनमाना परिवर्तन कर सकता है पर यह बेवनासिद्धांत है। वास्तविकता यह है कि सम्प्रभु अपनी मुरगाई। उनसे हम बिना सामान्य विधि में अधिक परिवर्तन नहीं कर सकते।

अब हम पहले प्राचीन साम्राज्यों पर विचार करने हैं तो हम यह पाते हैं कि उनमें भी स्पष्टकारी शासक की शक्ति विधि बनाने की हद तक नहीं पहुँचती थी।

न सम्राज्याका कार्य अधिकतर राजस्व इकट्ठा करना और सैनिक भर्ती करना था। सम-समय पर यि जानवान विंग आयेगे न बलब बहु कोई दूसरी विधि लागू नहीं करत थे। उन्होंने कभी प्रमाणन विधि का यायालयावे द्वारा लागू नहीं किया (२९ १०)। जो याने जनता का साधारण जीवन का नियमन करती था उनमें निरतुन राजों न कभी हस्तगत नहा किया। ये याने अनिच्छा होती था और किसी निम्नन व्यक्ति या व्यक्ति समूहम नियन नहीं रहनी था। और याने इहे किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूहमें स्थित माना भी जाता था जो वह सम्मिलित रूपसे पुनोहिता अथवा प्रमाणन धमक व्याख्याताआम परिवार सहित परिवारवे प्रधानामे और परिवारकी सीमा का बाह्य अधिकार रखनवाली ग्राम पचायनाम माना जाता था (२० १०)। गणपम आस्टिन का सिद्धान्तम मत यह है कि सभी प्रकार की विधिय का बबन आग्य मान लिया गया है और केवल गति पर ही अन्तरतमे उपायन जार निधा गया है। उनका सिद्धान्तम सम्प्रभुकी प्रधानता केवल आगेगमूलक विधि काक्षत्रम है और उनका सिद्धान्त केवल यथिव दृष्टिग ही लागू लिया जा सकता है नकि अथवा अनिवार्यतमे नहीं। आगेगमूलक विधि का निर्माता कृपम हा सम्प्रभ गरीब और अनियंत्रित है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि अस्टिशन का सम्प्रदाय विधिवश एवमात्र निमाणा नही है। दुग्गी (Duggi) ता यहाँ तक कहते हैं कि राज्य विधियाँ नही बनाता बल्कि विधियाँ ही राज्यको बनाती हैं। उनका कहना है कि विधि तो सामाजिक आवश्यकताओं अनिवार्यतामात्र हैं। लास्की की भाषाम विधिशास्त्र (Juris) का लिए भी यह मोक्षना कि विधि एक आण्यमात्र है परिभाषाओं उम द्वार यह पट्टवा देना है जहाँ गिष्टना समाप्त हो जानेवाली हो। उन्हाहरणके लिए यह कहते हैं कि मन्त्राधिकार की विधि आण्य नही है।

(१) ओरिन्टल की सींगरी मानना यह है कि सम्प्रभुता अविभाज्य है।

[illegible]

हुआ करता (५४ = ९)। इसमें मालूम होता है कि सम्प्रभुता विभाजित की जा सकती है। इसका उत्तर ऑस्टिन ने अनुयायी यह दमे कि केवल विधायी सम्प्रभु (legislative sovereign) ही वास्तविक सम्प्रभु है क्योंकि कायपालिका और न्यायापालिका प्रायः उसके आदेशोंका पालन करती हैं। पर समुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशोंके बारेमें क्या कहा जायगा जहाँ एक आधारभूत विधि (fundamental law) है जिसे विधान (legislation) के साधारण तरीकेसे नहीं बदला जा सकता। ऐसे मामलोंमें हम यह मान सकते हैं कि विधिते सम्बंधित विभिन्न साधारण और विशेष अंगके पीछे एक प्रगुप्त शक्ति रहती है जो अपने अधिकार और शक्तियाँ इन को दिये रहती है और सिद्धान्त अपने इन अधिकारों और शक्तियोंपर फिर वापस ले सकती है (५४ = ९)। पर ऐसी शक्तिको—जो जनता ही हो सकती है—कभी कोई स्वभावतः आज्ञापालन नहीं प्राप्त होता सिवाय इसके कि जनता स्वयं अपने एजेंटोंके माध्यमसे अपनी आज्ञाओंका पालन करती है (५४ = ९)। ऑस्टिन के समर्थनमें यह कहा जा सकता है कि कर्तव्यका विभाजन हो सकता है पर इच्छाका नहीं। इच्छा तो एक इकाई है। राज्य आत्म विरोधी रूपसे काम नहीं कर सकता। उद्देश्य एक ही होना चाहिए वह चाहे जितना मिश्रित क्यों न हो। इस दृष्टिसे व्याख्या करने पर यह सही है कि सम्प्रभुता अविभाज्य है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि राज्यकी एकता अनिवार्य है।

(ख) अधिक सम्प्रभुता और राजनीतिक सम्प्रभुताके बीचके अन्तरका अर्थ भी कभी-कभी यह समझा गया है कि सम्प्रभुताका विभाजन हो सकता है। ऑस्टिन इस तथ्यको जानते थे कि ब्रिटेन की जनता या बहुसरयव सर्वसाधारण लोग जैसाकि वह उन्हें कहते हैं—सम्प्रभुताके शासीन हैं। पर क्योंकि ऑस्टिन वैधिक और राजनीतिक सम्प्रभुताके बादके अन्तरको नहीं समझ पाये इसलिए उन्होंने जनताका भी वैधिक सम्प्रभुका एक अंग मानने की भूल की है। गिस्त्राइस्ट के अनुसार ऑस्टिन विभिन्न प्रकारसे यह कहते हैं कि

(१) पार्लियामेण्ट या संसद सम्प्रभु है

(२) राजाट अभिजात वर्ग (peers) तथा निर्वाचक-मण्डल सम्प्रभु है

(३) पार्लियामेण्टके अंग हो जाने पर निर्वाचक-मण्डल सम्प्रभु है

(४) हाउस ऑफ़ कॉमन्स (House of Commons) को शक्तियाँ प्राप्त हैं जो

(क) 'यासमुक्त' (free from trust) हैं

(ख) ग्यासगारी (trustees) हैं (२८ = ११६)।

(४) ऑस्टिन का चौथा प्रमेय यह है कि सम्प्रभुता परमपूज्य और असीमित है। बहुलवादियोंने इस बिचार की बहुत कड़ी आलोचना की है। जो बहुलवादी नहीं है उन्होंने भी स्वीकार किया है कि सम्प्रभुता वैधिक दृष्टिसे असीमित हो सकती है पर राजनीतिक और इतिहासीय प्रतिबंध उसे चारों ओरसे घेरे रहते हैं। सम्प्रभुता असीम शक्ति और अनन्त अधिकारको वे लोग विधि-शास्त्रकी भावकल्पना-मान मानते हैं।

(क) ब्लन्त्स्ली (Bluntschli) का कहना है 'सम्य सव्य' गतिमान नहीं है क्योंकि बाहर वह व्यय राज्योके अधिकारोंसे और भीतर स्वयं अपनी प्रवृत्ति और व्यक्तिगत सम्पत्तियोंके अधिकारोंसे सीमित है। इसी प्रकार बयम का कहना है कि राज्यकी सम्प्रभुता व्यय राज्यके साथ की गयी सन्धिपरसे सीमित है। ब्रिटिश संसदकी सम्प्रभुताके बारेमें लेब्लसी स्टीफन (Leslie Stephen) कहते हैं कि वह बाहर और भीतर दोनों ओर से सीमित है। 'भीतरसे सीमित होनेका कारण यह है कि विधायिका कुछ निश्चित सामाजिक परिस्थितियोंकी उपज है और समाजका निर्धारण करनेवाली शक्तियाँ वह भी निर्धारित हैं। बाहरसे सीमित होनेका कारण यह है कि विधि लागू करनेकी उसकी दक्षिण सीमाकी विधि माननेकी प्रेरणा पर निर्भर है और यह प्रेरणा स्वयं सीमित है। यदि विधायिका यह निगम कर कि नीची आंशवात सभी वक्ताओंसे मार झामना चाहिए तो ऐसे वक्ताओं को बचाये रखना सरकारानुनी हो जायगा। पर एसी विधि बनाने वाली विधायिका पागल ही नहीं जायगी और वह प्रजा जन और मूल होगी जो एसी विधिसे आग सिर मुका दे (७५, १८३)।

इस सारी आलोचना का उत्तर ऑस्टिन के अनुयायी यह कहकर देते हैं कि ऊपर बनावे गये प्रतिपाद्य नैतिक हैं अधिक नहीं और वह स्वयं अपने ऊपर लागू किये गये हैं। अधिक दुष्टि में राज्य सव्य गतिमान है (५१-५१)।

(ग) रीति रिवाजों द्वारा लगाये जाने वाले प्रतिबन्धों की खोज पहले की जा चुकी है। संसार के कुछ भागों में रीति रिवाज वास्तविक प्रतिबन्ध लगा देते हैं। यह कहना कि पन्नाब में राजा रणजीत सिंह ने प्रजाओं का अपनी अनुमति दी थी यह कहने के बराबर है कि पाठक गुरुत्वाकर्षण के नियम (law of gravitation) को काम करने की अनुमति देता है। रणजीत सिंह ने रीति-रिवाजों को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि उन्हें बलना उनके बूते की बात नहीं। ऑस्टिन इस आलोचना का उत्तर यह दे सकते हैं कि सम्प्रभुता सम्बन्धी उनही परिभाषा बल सम्म्य राज्यों पर लागू होती है अप-सम्य अपवा आत्म-समाजों पर नहीं। पर कहना है यह है कि सम्म्य राज्यों में भी यह परिभाषा समझे कम कुछ अलग तब माय बलना-मान है। सर जेम्स स्टीफन (Sir James Stephen) निगते हैं 'जिस प्रकार प्रवृत्ति में कोई परिपूर्ण वृत्त (perfect circle) नहीं है अथवा पूर्णतः कठोर वस्तु (rigid body) नहीं है या कोई पूरी यांत्रिक व्यवस्था नहीं है जिसमें कोई भय नहीं हो या समाज की कोई ऐसी अवस्था नहीं है जिसमें पाप केवल व्यापक शक्ति के नियमों से काम करते हों उसी प्रकार प्रवृत्ति में कोई ऐसी सम्प्रभुता नहीं है जो परमपूर्ण हो (५१-५७)। असीमित अधिकार दक्षिण नहीं होगी। आना-गारी राज्यों में भी ऐसे अनन्त प्रभाव होते हैं जो सम्प्रभुता पर प्रभाव डाला करते हैं। एक स्वतंत्र व्यवस्थित राजनीतिक समाज में एक प्रभुता के निबोधको राजनीतिक सम्प्रभुता कहा है।

ऑस्टिन जिन बातों के लिए बहुत बचने से बच थीं (१) विधि और नैतिक

मान्यताओं के बीच भेद करना और (२) आत्ममूलक विधि (positive law) और रीति-रिवाजों के बीच भेद करना। यद्यपि सम्प्रभुता की उनकी परिभाषा सही और पड़िताऊ हो सकती है, फिर भी सामाजिक परम्पराओं के रूप में प्रतिप्रियावाद का जो बोलबाला है उसको सुधारण में वह कल्याणकारी काम करती है। ऑस्टिन के व्यावहारिक उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह भी था कि अधिक व्यवस्था को रीतिरिवाजों के निर्जीव बोझ से मुक्त किया जाय।

(ग) सम्प्रभुता की परमपूर्णता के सिद्धान्त पर सघवाद (federalism) की ओर से भी आपत्ति की जाती है। यह कहा जाता है कि ऑस्टिन ने जिस समय अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था उस समय आपत्तिक राज्य अपने प्रारम्भिक काल में ही था। इसलिए यह सर्व स्वीकार्य होता है कि ऑस्टिन का सिद्धान्त एकात्मक राज्य (unitary state) पर बाढ़ जितना लागू हो किन्तु मध्यामक राज्यों पर तो वह बहुत कम या बिल्कुल ही नहीं लागू होता। संघ राज्य में सम्प्रभुता की स्थिति निश्चित करना कठिन भले ही हो पर असम्भव नहीं है। गन्त धारणाओं इसीलिए पैदा हो जाती हैं कि लोग राज्य और सरकार को ही समझने में भ्रम कर बैठते हैं।

(घ) कुछ लोग यह कहते हैं कि सम्प्रभुता सम्बन्धी ऑस्टिन का सिद्धान्त वैधिक निरकुशता का उत्पन्न करेगा। ऑस्टिन ने वहन ही समझ लिया था कि इन प्रकार की आलोचना होगी। पर उनका यह कहना ठीक था कि सर्वोच्चता की एमी कोई नीचे तक ऊपर तक गूँथला नहीं हो सकती न सप्टाओं का एका बार्द समझन सगठन हो सकता है और न सम्प्रभुता की एमी कोई श्रृंखला बन सकती है जो अनन्त (infinity) की कोटि तक बढ़ती चली जाय (२२ १८१)। यह ध्यान रखना चाहिए कि परमपूर्ण सम्प्रभुता का सिद्धान्त प्रतिपादन करने में ऑस्टिन का उद्देश्य उद्गीर्णशी शताब्दीक ब्रिटिश व्यवस्थापन में होनेवाले गुपारक साहाय्य देना था न कि निरकुश शासन का फिरसे जीवित करना (३०)। उस समय के रूढ़िवादी (conservatives) कायम की गुपार-योजनाओं के विरोधी थे और ऑस्टिन इस प्रकार के आलोचना के बेलत यही कहते हैं कि रीतिरिवाजों का निदम आदि राज्य की विधियों में न तो स्वतंत्र है न उनसे ऊपर है। ये सब राज्य की विधियों के अधीन हैं। इसलिए सर्वोच्च विधायिका वैधिक दृष्टि में सर्वव्यापक (omnicompetent) है।

(ङ) सारणी १ अमीमिन और अनन्त सम्प्रभुता के सिद्धान्त की पारिभाषिकपूर्ण आलोचना बहुतवा और अन्तर्गटीयतावाक दृष्टिकोण की है। सामाजिक इतिहासीय अनुभवों आधार पर उद्घाटन में सिद्ध किया है कि कहीं भी 'रिमी' की सम्प्रभुता अमीमिन अधिकारवाकित नहीं करती और समाज में अधिकार वरगने के प्रयत्न का प्रथम कारणों की स्थापना ही हुआ है। वह ठीक ही करता है कि ब्रिम्न की संगण (पार्लामन्ट) का व्यावहारिक तौर पर निरकुश अधिकार नहीं है। यद्यपि दृष्टि में संगण तथा मन्त्रालय व्यवस्था की अवस्था का यह मानना है कि व्यावहारिक तौर पर वह अपने अस्तित्व का गन्तर्व्य हाथकर ही लेगा कर सकते हैं। अन्त में उन

गमे कार्योमें उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। (४७ १८)। आस्त्रीय दृष्टिकोणमें विचार करने हुए नाम्बी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यद्यपि ऑस्ट्रिन के सिद्धान्तकी रूप रत्ना मुरी तब है पर उगका उत्त्व समाप्त हो चका है।

तास्वी एक बहुजनवादी और अन्तर्राष्ट्रीयतावादीके रूपमें सम्प्रभुताको सार्वभौमिक दूसरे शब्दोंके हितमें तथा अन्तर्राष्ट्रीयतावादके हितमें सीमित रखना चाहते हैं। उनका कथन है कि कुछ अर्थोंमें दूसरे शब्दोंकी शक्ति भी उतनी ही भौतिक और पूरा है जितनी स्वयं राज्यकी। वह लिखते हैं अपने-अपने क्षेत्रमें यह सच सम्प्रभु राज्य में काम नहीं है (४७ १०)। इसलिए यह धारणा कि अधिकार मत्ता न केवल सीमित है बल्कि उस मामिले होना चाहिए राजनैतिक ज्ञानकी एक आधारभूत मायता है (४७ ६)।

तास्वी का कहना है कि मानवता के हित में भी सम्प्रभुता का सीमित होना आवश्यक है। वह इस तत्त्वको नवी भानि समझते हैं कि सब-शक्तिवादी स्वतंत्र राज्यों का आपस में प्रतिस्पर्धी होना बिना ही शान्ति और एकताके लिए घातक है। गमाल के राष्ट्रों का परस्पर एक दूसरे पर आधिपत्य रखना औरदार गुल्म समर्थन करते हुए वह कहते हैं निश्चित छोर पर एक एक स्वतंत्र और सब-शक्तिमान राज्य की कल्पना मानवता के हितों के प्रतिबुद्ध है जो अपने सम्बन्धों में सरकार के प्रति पूरा उत्तराधिकारी का माग करता है और जो अपना शक्ति से लोगों को उत्तराधिकार बनाता है। हमारे सामने समस्या यह नहीं है कि हम मानवता के हितों और विश्व के हितों को एक दूसरे के अनुकूल बनायें। समस्या यह है कि हम व्यवहारसंशोधन करें कि विश्व की नीति में मनुष्यता हित निहित रहे (४७ ६४)।

नाम्बी की इस आलोचना पर हम अगले उक्त अध्याय में अलग से विचार करेंगे जिसमें बहुजनवादी विभिन्न शक्तों पर विचार किया गया है। उस समय इतना कहना ही पर्याप्त है कि वधिष दृष्टिकोण में ऑस्ट्रिन का सिद्धान्त सही है। यह सिद्धान्त स्पष्ट और नकलगत है यद्यपि इसमें अधिक सम्भार विवरण नहीं किया गया है। इस सिद्धान्त की बल-शक्ति आलोचनाओं केवल जागरूकता और धारणाओं के कारण की गयी हैं।

राज्यों तथा संविधानों का वर्गीकरण (Classification of States and Constitutions)

१ राज्यों का वर्गीकरण

‘राज्या का वर्गीकरण’ और ‘सरकारों का वर्गीकरण’—इन दो सम्भावितियों में से किसका प्रयोग अधिक उपयुक्त है—इस विषय पर राजनीतिज्ञ विचारका म कुछ मतभेद है। गिलमार्श्ट ‘सरकारों का वर्गीकरण’ सम्भावनी को पसन्द करते हैं। वे लिखते हैं निश्चित तौर पर सभी राज्य एक ही से हैं। विद्यार्थी को यह याद रखना चाहिए कि ‘राज्य का स्वरूप’ वास्तवमें ‘सरकार का स्वरूप’ है।^१ हम ‘राज्या का वर्गीकरण’ निम्नलिखित इसलिए पसन्द करते हैं क्योंकि ‘राज्य’ के बिना ‘सरकार’ हा ही नहीं सकती। जैसा कि नीचे पिछले अध्याय में बताया जा चुका है सरकार राज्य का केवल एजेंट या यंत्र है।

विलोवी के इस कथन में राज्यों के वर्गीकरण की बुद्धिमत्ता पर संका प्रकट की गयी है ‘तन्वत् य मत्र एव ही से हैं—उनमें हर एक और सबकी विशेषता सम्प्रभुता है।’

(क) प्लेटो और अरस्तू

राज्यों का वर्गीकरण एक आधुनिक विचार नहीं है। यह विचार राजनीतिज्ञ चिन्तन के उन दो आचार्यों—प्लेटो और अरस्तू—के युग से जन्मा जा रहा है जिन्हें ज्ञानियों के आचार्य कहा गया है।

इस राज के अनुशा होने के कारण प्लेटो अपने वर्गीकरण में दृढ़ नहीं हैं। अपने चर्चों रिपब्लिक (*Republic*) और स्टेट्समैन (*Statesman*) में उन्होंने दो भिन्न प्रकार के वर्गीकरण दिये हैं। सामान्यतः यह निम्नलिखित तीन प्रकार के राज्यों की वर्णन करते हैं

(क) सर्वोपरि विचार अथवा तर्क का राज्य। इसको प्लेटो विचार-राज (ideocracy) कहते हैं। यह पूरा ज्ञान का राज्य है इस राज्य में अगली सम्प्रभु

^१R. N. Gilchrist op. cit., p. 225.

^२W. W. Willoughby 'The Nature of the State' h. XIII

मान ही है। प्लेटो का विश्वास था कि उमा राज्य कभी नहीं रहा। फिर भी यह एक ऐसा आदर्श है जिसके लिए राजनीतिक प्रयत्न किये जा सकते हैं। इस आदर्शको कभी-कभी एक सर्वत्र दार्शनिकका राज्य अथवा आदर्श राजतन्त्र कहा जाता है। अथ अबसुरों पर उम आदर्श बुलीन तत्र कहा गया है।

(स) वे राज्य जहाँ अपूर्ण मान है। ऐसे राज्यामें विधिया आवश्यक होती हैं। मनुष्यकी अपूर्णताके कारण विधिया जरूरी हो जाती हैं। प्लेटो की पुस्तक 'लि सॉज' (The Laws) में लिखित तोरने यही दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। अपनी पहले की पुस्तक 'दि रिपब्लिक' में प्लेटो ने एक आदर्श राजतन्त्र (अथवा एक आदर्श कुलीनतन्त्र) का पसन्द किया है जिसमें कोई विधिया नहीं होंगी यत्कि सर्वत्र दार्शनिक राजा ही समय-समय पर आदेश जारी किया करेगा। पर ऐसे राजाओंको ढंड पानम असमर्थ हो जान पर धागे ने अपनी आन्की पुस्तक 'लि लाज' में विधियाका समर्थन किया है।

(ग) वे राज्य जिनमें मानका अभाव है। वे अज्ञानके राज्य हैं। इन राज्यामें विधिया होती हैं पर उनका पालन नहीं किया जाता है।

इस प्रकार प्लेटो ने राज्योंका जो वर्गीकरण किया है उसका आधार है एमे राज्य जहाँ विधियाका पालन किया जाता है और एमे राज्य जिनमें विधियाका पालन नहीं किया जाता।

गिटाइस् ने इस विषयका निम्नलिखित धार्य इस प्रकार स्पष्ट किया है

	राज्य जिनमें विधिया पालन होता है।	राज्य जिनमें विधिया पालन नहीं होता है।
एक व्यक्तिका शासन	राजतन्त्र (Monarchy)	निरंकुश या आतंतायी शासन (Tyranny)
कुछ व्यक्तिगणोंका शासन	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	अल्पतन्त्र या स्वार्थीतन्त्र (Oligarchy)
अनेक व्यक्तियोंका शासन	उदार या नरममोक्षतन्त्र (Moderate Democracy)	अतिवादी मोक्षतन्त्र (Extreme Democracy)

प्लेटो का पदानुगमन करनेवाले अरस्तू अपने गुरुकी ओरोंका अधिक यथार्थवादी थे। उनके वर्गीकरणके आधारपरिमाणमूलक और पुनर्मूलक दाता थे। अर्थात् उनका आधार था उन लोगाकी संख्या जिनमें सम्प्रभुता निहित थी और वह संख्या उद्देश्य जिसके प्रति उस गतिविधि संचालन होता था। जिन राष्ट्रोंका उद्देश्य सबके जीवनका धन्यापन है वे सच्चे या सामान्य राज्य हैं। इस संश्लेषमें हम जानेवाले राज्य भ्रष्ट राज्य हैं। इस प्रकार अरस्तू ने राष्ट्रोंका जो वर्गीकरण किया है वह चार्ट द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

संविधानका रूप	सामान्य राज्य या सर्व जनिक कल्याणकी चप्टा करना है।	भ्रष्ट राज्य या सब जनिक कल्याणकी उपेक्षा करते हैं।
एक व्यक्तिका शासन	राजतन्त्र (Monarchy)	निन्दित शासन (Tyranny)
कुछ व्यक्तिओंका शासन	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	अल्पतन्त्र या स्वार्थीतन्त्र (Oligarchy)
अनेक व्यक्तिोंका शासन	समाजतन्त्र (Polity)	माजतन्त्र (Democracy)

उक्त वर्गीकरणकी ओर अधिक ध्यान देने पर तो कहना होगा कि राजतन्त्रमें एक व्यक्ति सबसे हितम साधन करना है। जब वह व्यक्ति मरता है तब शासन न करते अपने ही हितम साधन करने लगता है तब वह शासन भ्रष्ट होकर निरनुष्ठान शासन हो जाता है। जब कुछ लोग सारजनिक कल्याण के लिए शासन करने हैं तब वह कुलीन तन्त्र शासन होता है। जब जब कुछ लोग जनताकी भावार्थ के लिए शासन करते हैं तब वह समाजतन्त्र (polity) या उन्मत्त माजतन्त्र (mild democracy) होता है। तब तब जब अपने समूह के हितम ही साधन करने लगते हैं तब वह शासन माजतन्त्र (democracy) या भीड़का शासन हो जाता है। संश्लेषित या संश्लेषित शासन या समाजतन्त्र (polity) या उन्मत्त माजतन्त्र (mild democracy) का प्रयोग होता है उस शासन के लिए अरस्तू ने समाजतन्त्र (polity) शब्दका प्रयोग किया है। जिसका अर्थ जनतन्त्र या समाजतन्त्र

इस प्रकार राजतन्त्र सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व एण्डनायर (consuls) बुनीतनत्रवे सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व परिषद् (senate) और लोकतन्त्रीय सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व जनप्रिय सभाएं करती थीं। ये तीनों संस्थाएँ एक दूसरेके विरुद्ध राय और सन्तुलनका काम करती थीं और उसका परिणाम स्थायित्व और मृदुता होता था।

पोलीबियस का अनुगमन करनेवाले सिसरो (Cicero) ने भी कोई नयी बात नहीं बही। पोलीबियस की भांति उन्होंने भी मिथिन सचिवालय और रोम तथा सन्तुलन की व्यवस्थाकी प्रशंसा की। उन्होंने केवल एक नयी बात यह कही कि सरकारके तीनों अंग स्थायित्वके लिए आवश्यक तीन सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करने हैं। इस प्रकार राजतन्त्र धार्मिक अथवा अधिकार-सत्ताक सिद्धान्तका परिपक्व संशोधन और प्रभावके सिद्धान्तका तथा जनप्रिय सभाएँ स्वतन्त्रताक सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व करती हैं। तीनों सिद्धान्तोंके उचित अनुपातमें संयुक्त क्रिय जाने पर व्यवस्था और स्थिरता आती है। पोलीबियस की भांति सिसरो का भी विश्वास था कि सरकारके तीनों रूप अपने भ्रष्ट रूपोंके साथ एक-दूसरेकी तरह एक दूसरेके बाद आते रहते हैं। कुछ स्वरूपोंमें सिसरो राजतन्त्रको सर्वोत्तम बुनीतनत्रको मध्यम और लोकतन्त्रको सबसे सरल मानते थे।^१

मारोपीय इतिहासके आधुनिक युगके आरम्भमें जीन बोडिन (Jean Bodin) का आधुनिक कालका प्रथम महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दार्शनिक माना जा सकता है। उन्होंने धर्मोंका वर्गीकरण उन साम्राज्यी संस्थाओंके आधार पर ही किया जिनके हाथ में राज्यकी सम्पत्ति संचित रहती है। जब सत्ता एक व्यक्तिके हाथमें रहती है तब शासनका रूप राजतन्त्र होता है। जब सत्ता नागरिकाकी बहुसंख्याके नाम से हाथमें रहती है तब शासन बुनीतनत्र होता है और जब सत्ता नागरिकाकी बहुसंख्याके हाथमें रहती है तब लोकतन्त्र होता है। बोडिन ने राजतन्त्रके यह तीन प्रकार बतलाये हैं (१) शुद्ध राजतन्त्र (royal or pure) (२) तानाशाही राजतन्त्र (despotic) और (३) आतंजामी राजतन्त्र (tyrannical)।

अपनी पुस्तक लेवियाथन (Leviathan पृष्ठ ९६ ९७) में हॉब्स लिखते हैं जब केवल एक व्यक्ति प्रतिनिधि हो तब राजतन्त्र है जब प्रतिनिधि एक या मिसलको इच्छा साम्राज्यी सभा हो तब वह लोकतन्त्र या जनप्रिय शासन है जब जबतक एक ही इच्छाकी सत्ता हो तब वह बुनीतनत्र है। इनका ही कहना पर्याप्त है कि हम वर्गीकरणमें कोई नयी बात नहीं है। यदि सुचना ही करना है तो यह कहना होगा कि अरस्तू द्वारा किए गये वर्गीकरणकी अगला यह वर्गीकरण निम्नपाटिका है—अरस्तू के अनुसार राज्यन संघाननका उद्देश्य वर्गीकरणका महत्त्वपूर्ण आधार है। हॉब्स अपने वर्गीकरण का आधार जबतक हमें ज्ञानमें मानते हैं कि सम्प्रभुता एक व्यक्ति बुद्धि व्यक्तियों या अनेक व्यक्तियोंका निहित है।

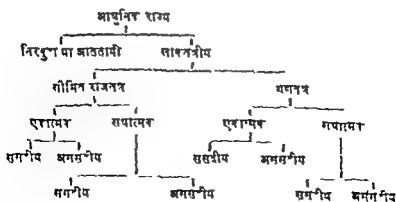
साक ओर हॉब्स में कोई मौलिक भेद नही है। साक राज्याका वर्गीकरण राजतन्त्र, अल्पतन्त्र और सामन्तन्त्र में करते हैं। वह राजतन्त्र या तान्त्रिक प्रभारका बतनाते हैं—बगानु गन राजतन्त्र और निर्वाचित राज्यतन्त्र।

माउन्टस्यू (Montesquieu) ने राज्याका वर्गीकरण इस प्रकार किया है (१) गणतन्त्र (क) साकतन्त्रीय गणतन्त्र और (ख) कुलीनतन्त्रीय गणतन्त्र (२) राजतन्त्र और (३) निरकुलतन्त्र। इन सभी सरकारों में पीछे एक प्रकार और स्थापन (sustaining) शक्ति होती है। साकतन्त्र पाछे जनसेवा की भावना रहती है। कुलीनतन्त्रका आधार सत्यका मिद्वान्त है राजतन्त्रका आधार सम्मान है निरकुल शासनका आधार भय हाता है।

अरस्तू ने राज्याका जो वर्गीकरण किया है उसे ब्लुन्चली (Bluntschli) मौलिक वर्गीकरण मानते हैं और इस वर्गीकरणमें चौध प्रकारका राज्य भी जाइ दत है जिसे वह धर्मतन्त्र (theocracy) कहते हैं। धर्मतन्त्रके भ्रष्ट रूपका वह उपासकतन्त्र (idolocracy) कहते हैं।

आधुनिक समयक लेसका में ज० ए० आर० मरियन (J. A. R. Marriott) सविधानका वर्गीकरण इस प्रकार करते हैं—(१) एकात्मक और मध्यात्मक (२) दृढ़ (rigid) तथा लचीला (flexible) (३) राजतन्त्रीय और अध्यात्मक। वह साक्षात्मेक उत्तरदायी अथवा मन्त्रिमण्डलीय सरकार की भी खर्चा करते हैं।

लीकोक (Leacock) निरकुल तथा साकतन्त्रात्मक राज्योंके बीच स्पष्ट अन्तर करते हैं। वह साकतन्त्रीय राज्याका (क) सीमित राजतन्त्र और (ख) गणतन्त्र में विभाजित करते हैं। इन दोनोंका यह फिर (१) एकात्मक और (२) संघात्मक में विभाजित करते हैं। और इनको फिर बड़ा प्रकारा मन्त्रीय और अमन्त्रीय में विभाजित करते हैं। गिनकाइस्ट द्वारा बनाया गया निम्नलिखित चार्ट इन सारे विभागोंका स्पष्ट कर देना है



साइत जेस्त और मरियट द्वारा सुभाषा गया आपुनिक राज्यों का वर्गीकरण^१

	विभेदका आधार	क	ख
१	राज्यके कार्य-भार सम्बन्धी धारणा	उत्तर	समाधिकारवादी (क) साम्यवादी (ख) फासिस्ट (fascist)
२	राजनीतिक संगठन का स्वरूप		
१	राज्य का स्वरूप	एकात्मक	संघात्मक
२	संविधान का स्वरूप	लचीला	दृढ़
३	निर्वाचन-मण्डल का स्वरूप	(१) घटकर बना धिकार (२) एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र	(१) सीमित बना धिकार (२) बहु सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र
४	विधान मण्डल का स्वरूप	द्विपक्षात्मक (क) निर्वाचित अथवा अंगन निर्वाचन द्वारा सम्मेलन (ख) अनिर्वाचन द्वितीय सम्मेलन	एक पक्षात्मक
५	कार्यपालिका का स्वरूप	संसदात्मक	असंसदात्मक
६	न्यायपालिका का स्वरूप	विधि राज्य (The Rule of Law)	प्रशासकीय विधि

दो वर्गीकरण निम्नलिखित दो विचारों पर आधारित है

- (१) राजकाय-मंत्र और
- (२) राजनीति-समन्वय स्वरूप।

उक्त पाठकी सहायता से स्ट्रॉन्ग (Strong) अथवा तथा मानीया संविधानों का वर्गीकरण इस प्रकार करने हैं

मजबूती संविधान

जानकारी संविधान

उत्तर	उत्तर
राज्य-मंत्र	एकात्मक
संविधान	मजबूत
मजबूत संविधान	मौलिक संविधान
	(तीसरे वर्ग-मंत्र)
एक-संस्थापित विधान-मंत्र	एक-संस्थापित विधान-मंत्र
द्वि-संस्थापित विधान-मंत्र—	द्वि-संस्थापित विधान-मंत्र—विधान-मंत्र
अविधान-मंत्र द्वितीय मंत्र सहित	विधान-मंत्र सहित
संविधान-मंत्र कार्य-विधान और	संविधान-मंत्र कार्य-विधान और
विधान-मंत्र (The rule of Law)	प्रशासनिक विधि

जॉर्ज श्वार्ज़ेनबर्ग (George Schwarzenberger) ने राज्यों का वर्गीकरण राष्ट्रीय राज्य (national state) और बहु-राष्ट्रीय राज्यों (multi-national states) में किया है। उनका कहना है कि बहु-राष्ट्रीय राज्यों का निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है (१) राजकाय राज्य (उदाहरणार्थ प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व ऑस्ट्रिया-हंगरी) (२) सामंजस्य राज्य (उदाहरणार्थ १९१९ तक ऑटोमन साम्राज्य) (३) औपनिवेशिक राज्य (४) राष्ट्रसंघीय राज्य (५) संघात्मक राज्य और (६) कृत्रिम संघात्मक राज्य (pseudo-federal state)।

२. संविधानों के स्वरूप तथा परिभाषा

संविधान का स्वरूप

संविधान राज्य सर्वोच्च-निर्णायक राज्य है अतः यह सर्वोच्च-निर्णायक संविधान के रूप में जाना जाता है। अनेक संविधान विभिन्न हैं अथवा अनिश्चित कुछ हैं अथवा मर्यादित। प्राचीन संविधानों के सम्बन्ध में हमारी धारणा यही होती है कि वे

निश्चित होता है। पर सविधान अनिश्चित भा हो सकता है और अनिश्चित हात हुए भी लिखित सविधानकी भांति ही उपयोगी सिद्ध होना भी सम्भव है।^१

बूवियर (Bouvier) ने अपने विधि शब्दकोष (Legal Dictionary) में सविधानकी परिभाषा इस प्रकारकी है किसी राज्य की वह मौलिक विधि जो उन सिद्धान्तोंका निर्देश करती है जिन पर सरकारकी नींव टापी जाता है जो सम्प्रदायिक व्यवहार और उपयोगका नियमन करती है और जो निर्देश देती है कि य दानिया किन किन से यात्रा और व्यक्तिगतों की जा सकती है और किस प्रकार उनका उपयोग किया जायगा।^२ जार्ज कॉर्नवाल लुस (George Cornwall Lewis) लिखते हैं सविधान शब्द समाजमें सम्प्रदाय दानिकी व्यवस्था और विवरण अर्थात् सरकारके स्वरूपका संकेत है।^३

सविधान राज्यका सामान्य ढाँचा निश्चित करता है। सविधानको हम राज्य का ढाँचा कह सकते हैं। इस विषयके अधिकारी चार्ल्स बार्गोड (Charles Borgeaud) इस प्रकार कहते हैं 'सविधान वह मौलिक विधि है जिसके अनुसार किसी राज्यकी सरकार संगठित होती है और जिसके अनुकूल व्यक्तियों अपना नैतिक पुरुषार्थ साथ समाजके सम्बन्ध निश्चित किए जाते हैं। सविधान एक लिखित संकेत (written instrument)—एक सम्पूर्ण आलेख या कई आलेख जिस किसी निश्चित समयमें सम्प्रदाय दानिकी द्वारा स्वीकृत व लागू किया गया हो—हो सकता है अथवा वह अन्यायिक रूपमें अधिक विधायक अध्यादेशों द्वारा स्वीकृत व लागू किया गया हो—हो सकता है अथवा और भिन्न लोग तथा असमान महत्त्ववाली सीनिरिवादावा निश्चित परिमाण हो सकता है।

सविधानकी आवश्यकता

अमरीकी क्रांतिके पढ़ने की लिखित सविधानकी आवश्यकता अनुभव की जाती थी और यह जरूरी समझा जाता था कि सविधान एक मान्य मूल्य (fundamental document) का रूप है। पर जन-जन १७८७ साल की बातचीत में यह विचार अधिकारित जड़ पड़ना गया कि हर राज्यका एक सविधान होना चाहिए और उस सविधानको समस्त जनताकी स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए। अब तो सविधानका संरक्षण का अपार ही माता जाता है। सविधान की आवश्यकता निम्नलिखित विभिन्न कारणोंसे होती है

^१ The Elements of Political Science by Alfred De Gr 112 p 279 (Alfred A. Knopf New York 1922.)
^२ Ibid.
^३ Use and Abuse of Political Terms p 6
 The Origin of Written Constitution—Political Science Quarterly Vol. 11 p. 612.

(१) मौलिक विधि (fundamental law) के द्वारा सरकारकी शक्ति का पर अंगुण समावेश किया।

(२) व्यक्तिक हितों में सरकारका नियंत्रण करने के लिए।

(३) वयमान और भावी पीढ़ियोंको मनमानी न करने देने के लिए। जॉन एडम्स (John Adams) जेम्स मदीसन (James Madison) तथा अमेरिकी संसद के यादावयवे जनक यादावीगमि ए. एच. ब्रां दूसरेने इस दृष्टिकोण पर जोर दिया है। दूसरी ओर जफ्फन (Jefferson) चाहते थे कि हर संविधानकी अवधि सीमित होनी चाहिए।^१

आज अधिकांश विद्वान् शुल्ड (Schulze) की इस रायसे सहमत हैं कि 'राज्य बहुमतके अधिकार रखनेवाले हर समाजका संविधान अवश्य होना चाहिए अर्थात् एक सिद्धान्तकी सहिता हानी चाहिए जो सरकार और उसकी प्रजाके सम्बन्ध निर्धारित करे और जिससे अनुसार राज्य अपनी शक्ति का प्रयोग करे। संविधानहीन राज्यकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।'^२

३. संविधानों के भेद

(क) लिखित संविधान

संविधानका ये युगवा आरम्भ अमेरिकी संविधानसे होता है। उन्हें अन्य देशों ने अमेरिकाका अनुकरण किया है। संविधानका परिवर्तनका दण्ड-शास्त्र सेन गया है जिसे अधिक नैतिक और सामाजिक दृष्टिकोणसे युक्ति संगत बनाया जाया है।

लिखित संविधान वह है जिसमें अधिकार धाराएँ एक विधिसे लिखित आचरण में अवस्था की जानेवाले व्यक्त रहती हैं। यह एक सामान्य कृति और उस प्रयत्नका परिणाम है जिसके द्वारा वे मौलिक सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं जिनसे अनुसार सरकार गठित होगी और चलायी जायगी।^३

लिखित संविधान एक ही सलग (document) में ही संकलित है जिस पर एक ही तारीख पड़ी होती है जैसे अमेरिका भारत और बर्मा आदि संविधान अथवा विभिन्न तारीखोंसे तैयार किये गये कई सन्धियों में भी हैं। संकलित है जैसे फ्रांस और आस्ट्रियाका संविधान। लिखित संविधानका न देगोंमे प्रायः विभिन्नी दो सहिताएँ होती हैं—एक कानून और संसद तथा दूसरी व्यवस्थामूलक और अदीनस्थ। पर लिखित संविधानका न देगोंमे यह विधान हटया नहीं पाया जाता है।

^१ Cris. & op. cit. p. 30

^२ Deutsches Staatsrecht Vol. I p. 17

^३ J. Brown: The Constitutional Convention. Carver: op. cit., pp. 377-10.

(ख) अलिखित संविधान

अलिखित संविधान वह संविधान है जिसमें सब नहीं तो अधिकांश अधिनियम या सिद्धान्त कभी लिपिबद्ध नहीं किये गये और सभी किसी एक विधिबद्ध संलेख अथवा सार्वसम-सहिताम संप्रहित नहीं किये गये। अलिखित संविधान अधिकतर रीति रिवाजों 'मायापीछोंके निर्णयों और समय-समय पर स्वीकृत गौतिक महत्वके विधेयवासि मिलकर बनता है। अलिखित संविधानका संविधान परिषद या अन्य कोई मस्या यथायक समाप्त नहीं कर सकती। एम. मैकिन्तोश (Sir James Macintosh) के इस कथनको सिद्ध करते हैं कि संविधानोंका विकास होता है वे बनाये नहीं आते।^१ किन्तु संविधान अलिखित संविधानका सबसे अच्छा उदाहरण है।

लिखित और अलिखित संविधानोंमें संविधानके वर्गीकरणको अपर्याप्त और राजनीतिक दृष्टिये महत्वहीन कहा गया है। इन दोनोंमें जो अन्तर है वह प्रकारका अन्तर न होकर केवल मात्राका अन्तर है क्योंकि सभी लिखित संविधान समय बीतने पर अलिखित ताकाम बोलिल हो जाते हैं। जैसा कि ब्राइस ने कहा है लिखित संविधान व्याख्याओं द्वारा विवक्षित निर्णयों द्वारा परिवर्धित और रीति रिवाजों द्वारा संशोधित हो जाते हैं।^२ हमारा अनुभव हम बतलाता है कि सभी सिद्धान्तोंको किसी भी एक लिखित संलेखमें लिपिबद्ध कर देना असम्भव है और एक लिखित संविधानमें होते हुए भी प्रमाण बनपती ही है।

इसलिए संविधानोंका लिखित और अलिखितमें वर्गीकरण करना न केवल अवनानिव है बल्कि भ्रम पैदा करनेवाला भी है। इस वर्गीकरणका परिणाम यह होता है कि कुछ अलिखित संविधानोंको लिखित संविधानोंकी श्रेणीमें और कुछ लिखित संविधानोंको अलिखितकी श्रेणीमें रखना पड़ना है। इसलिए यह सुझाव दिया गया है कि संविधानके सातके आधार पर महा बल्कि संविधान और सामान्य विधिये सम्बन्धोंके आधार पर संविधानोंका वर्गीकरण करना अधिक उपयोगी और वैज्ञानिक होगा। इस कमीतिवे आधार पर संविधानोंका वर्गीकरण सभी संविधान सभा दृढ़ संविधानमें किया जाता है।

(ग) लचीला (flexible) संविधान

वे सभी संविधान लचीले संविधान हैं जिनमें सामान्य विधियोंकी सहायता को अधिनियम द्वारा नहीं हुानी और जिन्हें उन्ही प्रकार परिवर्धित या संशोधित किया जा सकता है जिस प्रकार साधारण विधियोंको परिवर्धित या संशोधित किया जाता है।

^१ Ibid p. 208^२ Constitutions p 7

का वह एक संवेगवत् स्वयं ही या बहुत-सा प्रयासों के रूप में। एम संविधान लिखित होने पर भी सचीन होने हैं और इच्छानुसार उननी ही आमानीसे बन जा सकत हैं त्रितीय आमानोम साधारण विधि बना जातो है। त्रिन् और कुछ ह तक भारतके संविधान इसी धामें आत हैं।

(घ) अनम्य या दृढ़ (rigid) संविधान

वे संविधान जिन्हें एक विशिष्ट संस्था द्वारा बनाया जाता है त्रिन्का स्थिति साधारण विधियोंसे उच्चतर होती है और त्रिन्का साध पद्धति ही परिवर्तन विधा जा सकता है अनम्य अतिरिक्तनाल या दृढ़ संविधान कहना है। यदि हम अमेरिका आस्ट्रेलिया या स्वाइजरलैण्डके संविधानोंमें संशोधन करनेका पद्धतिका सावधानीसे अध्ययन करें तो यह बात स्पष्ट हो जायगी। संशोधन करनेका प्रणाली अत्यन्त कठिन होत है कारण हा सन् १७८९ में स्थावर विध आनेके बाद आर तक अमेरिकी संविधान केवल पचीस बार संशोधित हुआ है और आस्ट्रेलियाका संविधान सन् १९०१ से १९५५ तक केवल तीन बार संशोधित हुआ। यद्यपि उसमें संशोधन करनेके लिए संसद के दो-तीन विधायक दो-तीन विधायक संविधानमें परिवर्तनके प्रति यह दृष्टिकोण संशोधन प्रणालीमें परिणित होने हैं। पहले संविधान बनानेवालोंका विश्वास था कि संविधानके साथ बहुत जल्दी-जल्दी रचना-रचना अपान उसमें परिवर्तन नही करना चाहिए। पर आश्चर्य प्रवृत्ति यह है कि संविधानोंके लिए एक सुलभ पद्धतिका व्यवस्था होना चाहिए जिससे कि आसी पद्धतिवा विगत पाठिका द्वारा पहलेम ही बोधी न जा सकें।

निम्न संविधान प्रायः दृढ़ और अनिवार्य संविधान प्रायः सचीन होते हैं। अब हम दृढ़ और निम्न संविधान तथा सचीने और अनिवार्य संविधानोंके गुण दोषों पर विचार कर लेना चाहिए।

निम्न संविधानके गुण यह हैं कि—

- (१) दृढ़ और सुनिश्चित होते हैं।
- (२) यही सावधानी और साध-विचारसे स्थापित किये जाते हैं।
- (३) मारकानि भाषादेशों अथवा विधाविवाही निर्दुष्टतासे अनम्य होत या बन जाते बन रहत हैं।

(४) स्थायी और स्थिर होते हैं।

और वे (२) स्थिति की गुणा तथा उनका अविचारोंसे बनाय रचना में मन्ने हैं।

दोष

- (१) निम्न संविधान एक राष्ट्रके अनेक भागों और राजनैतिक विभागोंको

एक ही संसिद्धमें संघट सेनेवी कोटिदा करता है। जसा कि मानर ने कहा है कि सिमित संविधान तैयार करनेका यह प्रयत्न एक व्यक्तिके शरीर पर उसके भावी विकास और परिवर्तित आकारका विचार किये बिना ही एक योगाक फिट करनेके प्रयत्नके समान है।

(२) सिमित संविधानमें संशोधन करना कठिन होता है। रुढ़ता और रुढ़िवादका बहुत आग बढ़ जानेसे दुर्बलता पदा होती है और राष्ट्रीय हितोंको हानि पहुँचती है। इस सबका परिणाम हानि भी हो सकती है।

(३) लिखित संविधानके अंतर्गत 'यापपात्रिकावा' मुख्य काम यह मानून करना जाता है कि देशकी विधि संविधानकी धाराओंमें अनुकूल है या नहीं। 'यापपात्रिका' का अर्थ कड़िवाही होते हैं इसलिए यह समयकी भावनाकी उपेक्षा करते हैं। पर हममें संयुक्त राज्य अमेरिकामें ऐसा नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ अमेरिकाके सर्वोच्च न्यायालयने सन् १९५५ में निर्णय दिया था कि रस भेद करनेवाले स्त्रुत संविधानके विपरीत हैं। पर सामान्यतया हम भारतीय के इस कथनसे सहमत हो सकते हैं कि न्यायाधीशको यह अधिकार देना कि वे विधायिकाकी इच्छाओंकी अवहृन्ना कर सबों उन्हें राज्यकी निर्णायक शक्ति बना देना है।^१

असिमित संविधानके गुण निम्नलिखित हैं

(१) असिमित संविधान आधुनिक गतिशील समाजकी बन्नगी हुई परिस्थितियोंके अनुकूल बनाये जा सकते हैं।

(२) इस नमनशीलताके कारण संविधानकी अवहृन्ना करनेका प्रसोन्न दूर हो जाता है। और सार्वजनिक आकांक्षाओंका पूरा करने और नातिर्पण करनेका अधिक उपाय मिल जाता है।

(३) जैसा कि ब्रादस ने कहा है कि इस प्रकारके संविधानोंमें उनकी रूप रेखा भंग किये बिना सब-जामीन परिस्थितिका कायना करनेके लिए मोड़ या बढ़ाया जा सकता है। सबदबाल समाप्त हो जाने पर वे फिर अपने पूर्व रूपको ठीक उसी वेड़की तरह प्राप्त कर लेते हैं जिसकी डालारो किसी सवारी निम्ननेक लिए एक ओर मोड़ दिया जाता है।^२

असिमित संविधानमें निम्नलिखित दोष होते हैं

(१) ऐसे संविधान अस्थिर और निरन्तर बन्नगयान होते हैं।

(२) स्थिति और राजनीतिक दनायी गुण और तरफते अनुसार उन्हें संशोधित किया जा सकता है।

(३) ऐसे संविधान कभी-कभी 'असमर्थके हाथके गिल्ली' बन जाते हैं।

(४) कुछ लोगोंका कहना है कि ऐसे संविधान लोकतंत्रोंकी अपेक्षा कुम्भितंत्रों के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

^१ H. J. Ladd: A Grammar of Politics p. 301

^२ Jackson op. cit.

एम्मान (Esmein) और जस्टिस जमिस्न (Justice Jameson) दोनों का विचार है कि निम्नलिखित संविधान परम्पराकी दुई भावना और बाहरी स्वरूपका चेतना बातें सामाजिक तथा अधिकांश उपयुक्त हैं। हमारा अनुभव हमें यह बतलाता है कि इस राष्ट्रके लिए निम्नलिखित संविधान अधिक उपयुक्त है जिसमें राजनीतिक चेतना न हो और जो नागरिकताय अधिकारोंकी सुरक्षाक लिए सज्ज न हो।

एक सामान्य निम्नलिखित संविधानमें निम्नलिखित बातें होना चाहिए।

(१) नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारोंका आत्मतया नागरिकोंकी स्वतंत्रता का दृढ़ निश्चय कर राष्ट्रका अधिकार समाका सीमित करे।

(२) सरकार पर सत्ता और उसकी पररेता निश्चय करनेवाली धाराओं का सरकार के हर अंग अधिकार और कृत्य उनका सामाजिक सम्बन्ध और उनका तथा निरापेक्ष सम्बन्धोंकी बीचका सम्बन्धका निश्चय करे।

(३) संविधानमें समाधान करनेकी उचित व्यवस्था। हम बारम्बार जानकरी यह धारणा है कि कानूनवान का अधिक सामाजिकता का बल बलवान पाठों पर न हो जानना चाहिए। संविधानके समाधानकी व्यवस्था सुरक्षित होना चाहिए तथा इस सम्बन्धमें जनतामें समझ-समझ पर परामर्श भरे रहना चाहिए।

संविधानका सम्बन्ध कितना बड़ा हो इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं है। पहलेके संविधान उदाहरणोंका अध्ययनका संविधान मौलिक सिद्धि के सामान्य सिद्धान्तोंका स्थिर करने तक हो करनेका सीमित रहता है। लेकिन सामान्य जनमानस संविधानोंमें एक धाराओंको या कानून में समाहित कर लिया जिसे सामान्य विधि कहना ही उपयुक्त होगा। इस प्रवृत्ति के कारण आपनिक संविधानोंका सम्बन्ध सम्बन्ध तथा नारा-अवस्था हो गया है। अनु १४ में बना भारतीय संविधान जिसमें ३०२ धाराएं तथा ८ अनुसूचियां (schedules) हैं समझकर सबसे बड़ा संविधान है। दूसरी सामान्य-गुणकी केवल दो-तीन समझों पर बल अधिक विवरण देनेका संविधानोंकी निम्न करने हैं पर कानून के जनरलकी नोंकोंका करना है कि संविधानमें निम्नता ही अधिक विवरण हो करना ही अच्छा।

४ एकात्मक तथा महात्मक राज्य

संविधान के अनुसार आका विवरणोंका आधार पर तथा कानून और स्थानीय सामान्य सामाजिक सम्बन्धोंके आधार पर आपनिक संविधानोंका वर्गीकरण सामान्य तथा महात्मक सरकारोंमें किया जाता है।

एकात्मक व्यवस्था में कानूनकी समूची सामान्य-सिद्धि संविधान नाम कानून सरकारका ही हो जाती है। स्थानीय सामान्य न कानून कानून के अधिकार और स्वायत्तता की कानून सरकारोंका प्राप्त करते हैं बल्कि उनका अधिकार का कानून सरकार पर ही निम्न करता है। एकात्मक राज्यकी प्रमुख विशेषता यह है

(१) एकात्मक राज्य एक ही कानून और एक ही सरकार होती है। कानून

सरकार और स्थानीय सरकारों के बीच शक्ति का वितरण या विभजन नहीं होता। शक्ति का केवल एक ही स्रोत होता है तथा इच्छा भी एक ही होती है।

(२) प्रशासकीय सुविधा के लिए एकात्मक राज्य इकाइयों में बंट रहे हैं। इन इकाइयों के विभाग, प्रान्त, जिला या कम्यून आदि कहते हैं। इन्हें कुछ सीमित स्वायत्त शासन प्राप्त रहता है। वे केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वेच्छापूर्वक बनाये जा सकते हैं। उनसे बनाने या भिंटाने में सविधान का हाथ नहीं रहता।

(३) इस वास्तविकता को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि इन स्थानीय सरकारों को भी शक्ति और स्वशासन प्राप्त रहता है वह सीमित नहीं होता। वह शक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गयी होती है और उसीकी इच्छा अनुसार घटायी या बढ़ायी जा सकती है।

(४) सन्धियों में एकात्मक राज्य में स्थानीय अधिकारी केन्द्रीय व्यवस्था के नियंत्रण में ही होते हैं। ये केन्द्रीय सरकार द्वारा इसलिये बनाये जाते हैं कि वे केन्द्र के लक्ष्यों की तरह स्थानीय प्रशासन चलायें।

एकात्मक राज्य के गुण

(१) एकात्मक राज्य देश भर में एक कोने में दूसरे कोने तक विधि नीति और प्रशासन में एकत्व स्थापित कर सकते हैं। इस एकत्वता से देश भर के लिए एक सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था करने में सहायता मिलती है।

(२) देश की सुरक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एकात्मक राज्य की शक्ति और दृढ़ता विशेष रूप से दिखायी पड़ती है। इसका कारण यह है कि एकात्मक राज्य में अधिकार-सत्ता का संघ नहीं होता। जैसे जानेवाले काम में उत्तरदायित्व का भाग या भ्रम पैदा नहीं होता अधिकार क्षेत्रों का अतिव्रमण नहीं होता तथा ऐसा दावा काम या दोहरा गठन आदि नहीं होता जिसे सुरक्षा संभाला और ठीक न किया जा सके।^१

(३) एकात्मक राज्य का संगठन गणराज्य राज्य की ओर सरल और कम शक्तिशाली होता है क्योंकि उसमें दोहरे तहसीली विभाग और सेवाएँ नहीं होंगी।

(४) एकात्मक संविधान त्रिपक्षीय तरीके से धारण करने के लिए जिनके नियामी एक व्यक्ति हैं अधिक उपयुक्त है।

एकात्मक राज्य के दोष

(१) एकात्मक व्यवस्था का एक बड़ा दोष यह है कि उसमें सुदृढ़ प्रादेशीय और क्षेत्रीय संस्थाओं का अभाव रहता है। स्थानीय नीतियों का संयोजन और मामलों का

निपटारा वहाँ से दूर बठ अधिकारी करत है।

(२) प्रांतीय और स्थानीय मामलों की जिम्मेदारियों के क्षेत्रीय सरकार पर बाँट दिये जाते हैं। इससे परिणाम सम्बन्धी है। इन मामलों में अधिकारी दरी और नीचे की ही प्रभावित होता है।

(३) क्षेत्रीय अधिकारियों को बहुधा स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं का आवश्यक ज्ञान नही होता। इससे यह होना है कि स्थानीय हितों को हानि पहुँचती है।

(४) एकात्मक राज्यों की प्रवृत्ति स्थानीय पहचानों (imitative) को दबा देने तथा सामाजिक सम्बन्धों के विकास के विरुद्ध होने की होती है। दृढ़ स्वायत्तता के आगे और स्थानीय स्वतंत्रता के प्रभाव को एकात्मक राज्यों में कमजोर नही करत।

संघात्मक राज्य

जहाँ कि गानर कहते हैं संघात्मक राज्य में समूचा नागरिकीय शक्ति एक केन्द्रीय सरकार और उन राज्यों अथवा प्रांतों के बीच विभाजित रहती है जिनका निर्माण मध्य बनता है। शक्ति विभाजन का कार्य या तो राष्ट्रीय संविधान द्वारा किया जाता है या उसका निर्माण करने वाले समूह के मौखिक विधि द्वारा।^१ फ्रेमिन्टन के अनुसार संघात्मक राज्य राज्य का बहु संघर्ष है जो नये राज्य का निर्माण करता है। या फिर राज्य की परिभाषा के अनुसार राष्ट्रीय एकात्मता और राज्यों के अधिकारों में बँटवारे का बहु राजनीतिक तरीका है।

संघ की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

(१) राज्य एक होता है पर उसमें सरकारें अनेक होती हैं।

(२) क्षेत्रीय सरकार तथा राज्य या प्रांतीय सरकारों में नागरिक शक्ति का औपचारिक विभाजन तथा विभक्त होता है।

(३) एक निश्चित संविधान होता है जो सर्वोच्च होता है।

(४) संविधान के विवरण राज्य या क्षेत्रों के विधान (legislation) या अन्य कार्य अथवा होता है। प्रत्येक राज्य करने के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया जाता है। यह न्यायालय बहुधा संविधान के अंग के रूप में कहते हैं।

(५) संघ संविधान अंग्रेज़ों के अनुसार (१८) राज्यों के जिसमें कि अंग्रेज़ों की शक्ति में दान करें।

(६) संघ विभिन्न राज्यों या प्रांतों के उन अधिकार क्षेत्रों में सरकारों के अधिकार क्षेत्र संविधानों में निहित है।

संघ राज्य की संरचना

संघ राज्य की संरचना के अंगों में दो अंग हैं जो राज्य के अंग हैं

में मिल जानसे जाती है। ये राज्य रीतिव्यवस्था आर्थिक सुरक्षाके लिए एक सामान्य सरकार बनानेके उद्देश्यसे एवम मिसते हैं। स्विटजरलैण्ड समुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रिलिया इसके उदाहरण हैं। वर्तमान भारतीय संघ इस नियमका अपवाद है। इसका निर्माण एक एकात्मक राज्यको कई स्वायत्त इकाइयोंमें बांटकर हुआ है।

गणका निर्माण चाहे उसे हुआ हो उसकी सुदृढ़ता और स्थिरताके लिए निम्न सिद्धांत याते आवश्यक हैं

(१) मिलजोनेकी इच्छा। संघ राज्य बननेसे पहले यह आवश्यक है कि विभिन्न राजनैतिक इकाइयोंमें लोगोंमें अपने सामान्य हितोंकी सिद्धिके लिए आपसमें मिलकर एक केन्द्रीय सरकार बनानेकी इच्छा हो।

(२) लोगोंमें आपसमें मिलनेकी इच्छा ता हो पर एक हो जानेकी इच्छा न हो। अनिवार्य सामान्य मतसंको छोड़कर अन्य मतनाम अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता कायम रखनेकी प्रयत्न इच्छा गणकी इच्छाओंमें होनी चाहिए। पर मिलनेकी इच्छा सभी न हो कि इकाइयों अपना व्यक्तिगत अस्तित्व समाप्त कर एकात्मक राज्यकी स्थापना करनेको तैयार हों।

(३) भौगोलिक सामीप्य—संघ बनानेकी इच्छा इकाइयोंके भौगोलिक तौर पर एक दूसरेसे मिल होनेका गणका निर्माण आसान हो जाता है। यदि इकाइयों एक दूसरेसे दूर होती हैं तो संघ निर्माणकी इच्छा ठीक प्रकारसे पूरी नहीं की जा सकती।

(४) इकाइयोंमें असमानता न हो। कोई भी इकाई इतनी सघन और प्रभावशालिनी न हो कि वह बांध अन्य इकाइयोंकी स्वाधीनता न करे।

(५) जनता राजनीतिक अधिकारोंमें भागीदार होनी चाहिए। जनताकी राजनीतिक शिक्षा उच्च स्तरकी होनी चाहिए। गणकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि जनता केन्द्रीय और स्थानीय दोनों सरकारोंके प्रति निष्ठावंत महत्त्वको समझे और उन दोनों सरकारोंमें किसी प्रकारका परस्पर विरोध न होने दे। जनता दोनों सरकारोंकी विधियोंको माननेका इच्छा हो। व्यापारिक अधिकारोंको बिना सीमा पर अवरुद्ध माना जाय। भागमें राज्यांक पुनर्गठन करनेकी स्वेच्छा या शक्ति न होना चाहिए। उक्त यह गिना होता है कि हमारे देशमें अब भी बांध एक साथ हैं जिनमें राष्ट्रीय विचार बांध हो कम और या भी न हो तथा स्थानीय विचार अधिक हैं।

संघमें संविधानोंका विभाजन

संघ राज्यमें गणकारी संविधान विभाजन का सिद्धांतके आधार पर है। यह यह है कि जो मगन राष्ट्रीय महत्त्वके होत हैं और जिनमें नियमन और नियंत्रणता एकताका आवश्यकता होती है वे संघ मगन का जग गणकारी दिये जात हैं। जो

मध्य सामान्य हितों नहीं होते हैं वह स्थानीय सरकारों का सुपुर्ण कर दिये जाते हैं। वे और द्वा-रा-याम दानितका विभाजन निम्नलिखित तीनमें से किसी भी एक तरीके से किया जा सकता है।

(१) केन्द्रीय सरकारके अधिकार संविधानमें स्पष्टतः बता दिये जाते हैं। साथ अधिकार राज्योंके पास छोड़ दिये जाते हैं। अमेरिकाम ऐसा ही हुआ है।

(२) इसका उल्टा तरीका भी अपनाया जा सकता है जहाँ कि कनाडामें किया गया है। राज्योंके अधिकार संविधानमें लिखित कर दिये जाते हैं तथा अवशिष्ट अधिकार (residual powers) केन्द्रके पास छोड़ दिये जाते हैं।

(३) केन्द्र और राज्यों दोनोंके अधिकार लिखित कर दिये जाते हैं। इसके साथ अवशिष्ट अधिकार केन्द्रके पास रहते हैं। जागतम ऐसा ही हुआ है। भारतमें अधिकारोंकी तीन सूची है। एक सूची है केन्द्र अधिकारोंकी। दूसरी सूची है राज्योंके अधिकारोंकी। तीसरी सूची है उन अधिकारोंकी जिनका प्रयोग केन्द्र और राज्य दोनों ही कर सकते हैं। यह सूचीका समकालीन सूची (concurrent list) कहते हैं। यह तीसरी सूचीमें दिये गये अधिकारोंके सम्बन्धमें यदि केन्द्र और राज्यमें मतभेद होता है तो केन्द्रीय सरकारका प्राथमिकता मिलती है।

सब राज्योंके गुण

(१) यह छोटे और बड़े और राज्योंको आपसमें मिलकर एक बड़ा राज्य बनाने का अवसर देता है। इन राज्योंका अपना स्वतन्त्र और पूर्ण अधिकार्य भी कायम रह जाता है।

(२) राष्ट्रीय एकता और स्थानीय स्वतन्त्रता दोनोंका अच्छा संतुलन एक साथ रखने के कारण मध्य उन बड़ी जनसंख्यावाले राज्योंके लिए विना सामान्यक होने हैं जिनमें विभिन्न जाति, मनुष्य और भाषाओंके लोग रहते हैं।

(३) एक राज्यमें मधीय व्यवस्था ही मधो-मधो (centripetal) और विपटन गति (centrifugal) संतुलनमें सामंजस्य स्थापित कर सकता है। मधरा महत्त्व भारत में देकरे लिए विना है बड़ा भाषा, जातीयता और जातीयताकी समस्या है।

(४) मधरे कारण नीति, शिक्षा और प्रशासनमें जहाँ एकताकी आवश्यकता होती है वहाँ एकता और जहाँ विभिन्नताकी आवश्यकता है वहाँ विभिन्नता सम्भव है।

(५) राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक प्रयोगोंके लिए मध्य सरकार मध्य अस्वीकृत है। भारतमें मध्य-निर्णय तथा कई अन्य सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रोंमें मौलिक धारामें सामूहिक है। उनके परिणामोंका सारथानीय अध्ययन और मूल्यांकन किया जा रहा है।

(६) विभिन्न द्वाइयाके निवासियोंको स्थानीय स्वतन्त्रता देकर सावजनिक कार्योंमें जनताकी भाविकी मध्य बढ़ाया देता है।

(७) अधिकाराने विभाजनके कारण मध्यम केन्द्रीय सरकार पर से प्रशासनका बाज कुछ हल्का हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कामके निपटानेमें देरी लगाने या साल फीते (red tapism) की सया बमचारी तन्त्र (bureaucracy) की प्रवृत्ति कमजोर पड़ जाता है।

(८) साठ द्वाइस के बयनानुसार मध्यम एक निरंकुश शासन द्वारा जनताके अधिकार हड़प लिये जानेका खतरा नष्ट रहना।

संघ राज्यके दोष

(१) सीबॉक्स की राय है कि 'राजनीतिक दृष्टिसे और विभिन्न मामलाम सघने अपनेको वास्तविकता की सिद्ध किया है पर आर्थिक दृष्टिसे और आन्तरिक मामलाम सघ कमजोर साबित हो रहा है। पर अमेरिकाकी बढ़ती हुई शक्ति और सम्पन्नताको देखते हुए सीबॉक्स का यह कहना सही नहीं मान्य होना कि मध्य आर्थिक तौर पर और धरेसू मामलोंमें कमजोर होता है।

(२) कुछ लेखकोंका कहना है कि 'केन्द्रीय मामलोंमें सघ कमजोर होता है। पर हमका अनुभव हमें बतता है कि यह बयन सही नहीं है। कोई भी यह नहीं कह सकता कि अमेरिका इस या भारतकी वद्वैतिश नीति कमजोर और कमजोर है। और य मभी सघ ही है।

संघके वास्तविक दोष निम्नलिखित हैं

(१) विधायी नीति और प्रशासनिक विभिन्नता।

(२) केन्द्रीय और राज्यमें बाहरे सरकारी मन्त्र राजनीय सेवाएँ और विभाग और हमने उन्पन्न होनेवाली ऐनोमिया।

(३) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारमें अधिकार क्षेत्रके बारेमें सम्भावित संघर्षका मनरा।

(४) प्रशासनका भारी व्यय।

(५) विरुद्धता मनरा।

५. प्रसंघान (Confederations)

अब हम मध्य और प्रसंघानके अन्तरको समझना चाहिए। प्रसंघान भी राज्यका मध्य होता है। प्रसंघान और मध्यम अन्तर यह होता है कि प्रसंघानका निर्माण कुछ विभाग और निम्नलिखित भागोंमें मिल कर किया जाता है मध्य शासक निम्न नहीं। प्रसंघानका निर्माण करनेवाला राज्य सम्पूर्ण बन रहता है जब कि मध्यमें अलग-अलग रहने वाले राज्य केन्द्रके अधीन होते हैं।

प्रसंगान्त प्रमुख लक्षण निम्नलिखित होते हैं

- (१) प्रसंगान्त बनानेवाले राज्य या इकाइया अपनी सम्प्रभुता बनाय रखती हैं। साथ-से जिनसे सम्बन्ध होने हैं उससे ही राज्य होता है।
- (२) प्रसंगान्त कोई सामान्य सरकार नहीं होता।
- (३) विभिन्न इकाइया अपने-अपने कानून स्वयं बनाती हैं और उन्हें अपने-अपने क्षेत्र में लागू करती हैं।
- (४) प्रसंगान्त अस्थिर होता है और किसी भी समय भंग किया जा सकता है।
- (५) प्रसंगान्त के रूप का परिणाम है जबकि सब संविधान पर आधारित होता है।
- (६) प्रसंगान्त सम्मिलित हान वाले इकाई राज्यों की अन्तराष्ट्रीय स्थिति बनी रहती है। वे अपने सम्प्रभु राज्यों के राजनयिक (diplomatic) सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। सब राज्यों के इकाई राज्यों के लिए यह सम्भव नहीं है।
- (७) प्रसंगान्त की इकाइयाय यदि मजबूत दिख जाता है तो वह अन्तराष्ट्रीय मजबूत होता है। सब राज्यों की इकाइयाय का कुछ मजबूत होता है।
- (८) प्रसंगान्त स्थापित सामान्य संस्था इकाई राज्यों की सरकारों के सम्बन्ध रखती है। जनताग उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। पर सब राज्यों के केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध सीधा जनताग रहता है।

SELECT READINGS

- DICEY A. V. — *The Law of the Constitution*
 FINER H. — *Theory and Practice of Modern Government* — Vol. 2
 GARNER J. W. — *Political Science and Government*

सरकार का संगठन

(Organization of Government)

सरकारके अंग का परम्परागत पुनर्व्यवस्था विधायिका (Legislature) कार्यपालिका (Executive) और न्यायपालिका (Judiciary) इन तीन विभागों में हुआ है। विधायिका राज्य की इच्छा को प्रकट करती है कार्यपालिका इस इच्छा को कार्यान्वित करती है और न्यायपालिका राज्यके अनुचित हुक्मोंको पक्ष में लाने की रक्षा करती है संविधान की व्याख्या करती है और ऐसी विधियाँ को अर्थ में घोषित करती है जो संविधानके अंग नहीं होती।

हम इस अध्यायमें सरकारके इन अंगों पर विचार करेंगे।

विधायिका

(The Legislature)

सरकारके विभिन्न अंगों में से (विधायिका एक शासनप्रणाली का) विधायिकाको सबसे अधिक महत्व और गौरव प्राप्त किया जाता है। पर हमेशा ही ऐसा नहीं रहा है। जैसा कि प्रकट करने हैं पुराने जमानमें कानून बनाया जाता था जो लोग उसे बनाते थे। वे लोग विधि (folk law) की जो समझमें प्रचलित प्रथाओं पर आधारित होती थी। इन विधियों को राजा निष्काशना सरकारी तथा घोषित कराया जाता था। जैसे जैसे समय बीता गया जैसे-जैसे राज विधियोंका महत्व कम होना गया और विधियों का प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए राजा-बारिणी द्वारा नियमित सम्मेलनों और आदेशों द्वारा किया जाता था। पर वे इनके स्थायी नहीं थे किन्तु निरन्तर विधियों और उनका अंग भी उनका आधार नहीं था। कुछ समय और बीतने के बाद विधियों का प्रतिष्ठा जमीन द्वारा बनायी जान लगी। ये जमीनें बहुत कुछ प्रतिनिधि सम्मेलनों के समान थीं। अन्तर्गतता समूह और समूहों के सम्प्रभावों का उदय हुआ।

यह देखते-देखते संसदीय व्यवस्था का विकास हुआ जिसमें राजा के अधिकारों की सीमाओं को लागू करने के लिए विधान पत्र की आवश्यकता होती थी उसकी मजूरी पाने के लिए हुआ था। उस समय समूहों की सम्मति कोई शक्ति और प्रभाव की बात नहीं थी किन्तु शीघ्र ही प्राप्त करने, बल्कि बहुत एक शक्ति प्राप्त होगी

॥ साव निर्देश यक्षत्पिक हाता है। इन मामला म साव निर्देश तभी लिया जाता है जब मतदाताआ अथवा सचनी इकाइयांनी एक निर्दिष्टत सदया सोव-निर्णय निय जानेकी माँग करनी है। पर दूसर मामला म विगपवर सावधानिक संगोचनाके मामलामे साव निर्णय अनिवार्य होता है। ऐसा ही आस्ट्रलियाम भी है।

लोक निर्देशना स्वरूप निषेधात्मक (negative) है। क्योंकि यह विधायकों को स्वीकार अथवा अस्वीकार भर करता है। इससे विपरीत तोक्तात्मा (initiative) का स्वरूप सश्रियात्मक (positive) है। क्योंकि उसमें मतदाता स्वयं विधि बनाना आदेश देकर विधि निर्माण में अग्रगण्य बनते हैं। इस पद्धतिसे अनुसार माताओं की एक निश्चित समस्या का किसी एक निश्चित समस्या पर विधि निर्माण की मांग करनी होती है। मतदाता चाह तो उस विधान की स्मरण और उसका विवरण सभी कुछ स्वयं ही तयार कर लें अथवा चाहें तो प्रस्तावित विधान का सामान्य उद्देश्य विधायकों को बता दें और उसीसे विधान का विवरण तयार करने का काम माँग दें। दाना ही हानतम विधि जिस जाने पर उस पर जनता की राय ली जाती है। उस विधि तभी माना जाता है जब मतदाताओं का बहुमत उस स्वीकार कर ले। अमेरिका में राष्ट्रीय लोक निर्देशना संस्था लोकनिर्देशना अधिनियम है।

जब किसी भू प्रदेयका एक राज्यसं दूगरे राज्यका हस्तान्तरित करना होता है या जब उस भू प्रदेय से नये राज्यका निर्माण करना होता है तब उस प्रदेशकी जनताकी राय जाननेके लिए जनमत-संग्रह (plebiscite) की व्यवस्था की जाती है। योराप म यह व्यवस्था अठारहवीं शताब्दीके अन्तसे काममें लायी जा रही है। सन् १९६५ में जनमतसंग्रह कपनस्वरूप हो जमनीका सार प्रदेश वापस लिया गया था। वगे ता यह व्यवस्था साबितनवाणी मायूम हाती है पर वज्रमान युगमें जनमत-संग्रहक नाम पर बहुत अधिक धमकी और भयका उपयोग किया गया है उदाहरण स्वरूप आस्ट्रिया और चेकोस्लावाकियामें। भारत में कश्मीरमें जनमत-संग्रह करानका यत्न किया था पर कुछ अमाध्य कठिनाइयानें उसे रोक लिया है। सन् १९५६ में साटा परिषद् ने इस बात पर ज़ार दिया था कि मधेन राष्ट्र सभक सन्वाधधानमें जनमत-संग्रहका नाम सीमितता होना चाहिए।

प्रत्येक विधि-निर्माणवा मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र सार्वजनिक सेवाएँ संयोजित की जाती हैं। राष्ट्रीय प्रशासनिक प्रणाली में यह प्रणाली सामान्यतः प्रारंभ की जाती है। जैसा कि स्विट्जरलैंड के विभाग और प्रान्त (cantons) में। पर बहुत-बहुत देशों में निम्न सार्वजनिक और स्थानीय स्वशासन की परम्पराएँ स्विट्जरलैंड के समान नहीं हैं। इस प्रणाली में सामान्यतः हानि ही हानि की अपेक्षा आयका है। श्री श्रीनिवास आयकर की राय है कि प्रत्येक विधान विधायिका का गौरव पाने के बजाय सर्व व समर्थ विधान प्रणाली में प्रणाली निम्न होता है। इससे स्वतंत्रता की भावना बढ़ने में काफी सहायता मिलती है। स्वतंत्रता है और राजनीतिक प्रणाली में यह सब प्रणाली साधन है।

विधायिका का संगठन

(The Organisation of Legislature)

राजनीतिके सिद्धान्त और व्यवहार जनों ही में विधायिकाके संगठनकी समस्या पर बहुत अधिक विचार हुआ है। सब देशोंमें विधायिकामें दो सदन होते हैं विधायक सभ्य। प्रान्तों और मण्डलों इत्यादिमें जो मन्त्रवानी विधायिका में अग्रह नहा पाया जाती। भारत के अनेक राज्यात्मक संविधानोंके अन्तर्गत द्विसदनात्मक विधायिका है। द्विसदनीय संविधानात्मक विधायिका का कारण अतिहासीय परिस्थिति निम्न है न कि कोई पूर्व निश्चित योजना। जिन देशों में द्विसदनीय संविधानात्मक शासन प्रणालीको अपनाया है उन्होंने उसकी संविधानात्मक व्यवस्थाका भी मान लिया है।

जिन देशोंमें दो सदन हैं वही यह सुनिश्चित करने चाहते हैं कि इन दोनोंकी रचना अधिकार और कृतत्व भिन्न हो। जिससे दोनों में परस्पर ईर्ष्या और संघर्ष न पैदा हो सके। निचला सदन (जो भारतमें लोकसभा कहते हैं) स्वयं जनता द्वारा ही निर्वाचित होता है। इसके सभ्य जनसभा और स्थानीय मन्त्रियोंके आधार पर चुने जाते हैं। ऊपरी या दूसरा सदन (जो भारतमें राज्यसभा कहते हैं) बहुधा समाजके वर्गों या स्थायी अथवा गपने राज्योंका प्रतिनिधित्व करता है और उसका चुनाव प्रायः प्रत्येक रीतिमें बना होता।

द्विसदनीय सभा (House of Lords) अधिकतर वंशानुगत (hereditary) है। उसका सभ्यों की संख्या कमिंस सभा (House of Commons) के सभ्य की संख्या से अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका के ऊपरी सदन सीनेट में १०० सभ्य होते हैं। अमेरिका के ४८ राज्यों में हर राज्य में दो प्रतिनिधि चुने जाते हैं। १९१३ के बाद में ये लोग प्रत्येक राज्य में सदनके सभ्य निर्वाचित होते हैं। यह एक स्थायी संस्था है। इसका प्रारंभ संवत् १६०७ में किया गया था। संवत् १७८७ की कुछ संस्थाओं का यह निर्वाह भाग प्रति दूसरे वर्ष अद्यतन रह कर जाता है। अमेरिका की सीनेट यदि संसार भरके समस्त ऊपरी सदनो में सबसे अधिक शक्तिमान नहीं है तो सबसे अधिक शक्तिमान सदनमें से एक अवश्य है। स्विट्जरलैंड और ऑस्ट्रिया में दूसरे सदनो का संगठन उन्हीं सिद्धान्तों पर हुआ है जिन पर अमेरिकी सीनेट का। स्विट्जरलैंड का हर कैन्टन में प्रतिनिधि और ऑस्ट्रिया में ९ राज्यों में हर राज्य में प्रतिनिधि दो-दो के दूसरे सदन में भेजा है। अमेरिकी सीनेट की भाँति बनाहारी सीनेटमें भी १०० सभ्य होते हैं। पर वे अमेरिकी सभा पर सर्वत्र प्रभुत्व के द्वारा बनायीं जिन जाते हैं। प्रतिनिधित्व प्रान्तोंके आधार पर न हारद भाग और पर जनसंख्याके आधार पर होता है। बोमर संविधानक संसदन जर्मनी की संसदके ऊपरी सदन (Reichstag) में बनाये गये राज्योंका प्रतिनिधित्व होता है। पर राज्योंका समान प्रतिनिधित्व नहीं

म साव निर्देश वक्तृत्वक होता है। इन मामला म साव निर्देश सभी लिया जाता है जब मतदाता अथवा सभकी इच्छायाकी एक निश्चित सस्या लोक निर्देश लिय जानेकी मांग करती है। पर दूसरे मामलाम विनियमकर सावधानिक सन्निधानके मामलोंम लोक निर्देश अनिवार्य होता है। ऐसा ही ऑस्ट्रलियाम भा है।

साव निर्देशका स्वरूप निपयात्मक (negative) है। क्यानि यह विधयकाको स्वीकार अथवा अस्वीकार भर करता है। इसके विपरीत सोरान्ग (initiative) का स्वरूप सक्रियात्मक (positive) है। क्यानि उसम मतदाता स्वय विधि बनानका आदेश देकर विधि निर्माण म अगुआ बनत हैं। इस पद्धतिके अनुसार मतदाताओकी एक निश्चित सस्याको बिभी एक निश्चित समस्या पर विधि निर्माण की मांग करनी होनी है। मतदाता चाहे तो उस विधानकी स्वरसा ओर उसका विवरण सभी कुछ स्वय ही तयार कर लें अथवा चाहें तो प्रस्तावित विधानका सामान्य उद्देश्य विभायिकाकी बता दें और उसीको विधानका विवरण तयार करनका काम सौंप दें। बाना ही हालतम विधि लिख जाने पर उस पर जनताकी राय ली जाती है। उसे विधि सभी माना जाता है जब मतदाताओका बहुमत उसे स्वीकार कर ले। अमेरिकाक राज्यम लोक निर्देशकी अपेक्षा लोकादेशका अधिक चलन है।

जब किसी भू प्रदेशको एक राज्यसे दूसरे राज्यका हस्तान्तरित करना होता है या जब उस भू प्रदेश से नये राज्यका निर्माण करना होता है तब उस प्रदेशकी जनताकी राय जाननेके लिए जनमत-संग्रह (plebiscite) की व्यवस्था की जाती है। मोराप में यह व्यवस्था अठारहवीं शताब्दीके अन्त से कामम लायी जा रही है। सन् १९३५ में जनमतसंग्रह क फलस्वरूप ही जर्मनीको सार प्रदेश वापस दिया गया था। वसे तो यह व्यवस्था लोकतन्त्रवाणी मालूम होनी है पर वर्तमान युगमें जनमत-संग्रहके नाम पर बहुत अधिक धमकी और भयका उपयोग किया गया है उदाहरण स्वरूप आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकियाम। भारत ने कश्मीरम जनमत-संग्रह करानका बचन दिया था, पर कुछ असाध्य कठिनाइयान इस राव दिया है। सन् १९५६ में सीटो परिषद ने इस बात पर जार दिया था कि संयुक्त राष्ट्र सभके तत्वावधानम जनमत-संग्रहका काम धीमे-धीमे हाना चाहिए।

प्रत्यक्ष विधि निर्माणका मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्र लोकतन्त्रवादी संगठनोंके आदी छोटे-छोटे प्रदेशम यह पद्धति सफलता प्राप्त कर सकती है जैसे स्विट्जरलैण्डके जिलो और प्रान्तों (cantons) में। पर बड़े-बड़े देशोंमें जिनमें लोकतन्त्र और स्थानीय स्वशासनकी परम्पराएँ स्विट्जरलैण्ड के समान नहीं हैं इस पद्धतिसे लाभकी अपेक्षा हानि ही होनेकी अधिक आम्ना है। श्री श्रीनिवास आयंगर की राय है कि प्रत्यक्ष विधान विधायिका का गौरव घटाने का बजाय सक्कत का समयम विशेष रूपस बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। इससे दलबन्दीकी भावना बढ़ने नहीं पाती राष्ट्रीय नीति-सामर्थ्यको बल मिलता है और राजनीतिकी व्यावहारिक शिक्षाका यह सबसे अच्छा साधन है।

विधायिका का संगठन (The Organisation of Legislature)

राजनैतिक सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही में विधायिका संगठन की समस्या पर बहुत अधिक विचार हुआ है। सब देशों में विधायिका में दो सदन होते हैं विधायक पद्धति। प्रान्तों और संघों में इसी प्रकार दो सदनवाली विधायिका सब जगह नहीं पायी जाती। भारत में अनेक राज्यों में नये संविधान के अन्तर्गत द्विसदनात्मक विधायिका है। ब्रिटेन में द्विसदनात्मक विधायिका का कारण ऐतिहासिक परिस्थितियाँ हैं जो कि कोई पूरे निश्चित योजना। ब्रिटेन देश ने ब्रिटेन की संसद के शासन प्रणाली को अपनाया है उन्होंने उसी द्विसदनात्मक व्यवस्था को भी मान लिया है।

ब्रिटेन देश में भी सदन हैं वहाँ यह व्यक्तिगत मानस होता है कि इन दोनों की रचना अधिकार और कर्तव्य भिन्न हो जिससे दोनों में परस्पर ईर्ष्या और संघर्ष न पड़े। निचला सदन (इसे भारत में लोकसभा कहते हैं) स्वयं जनता द्वारा ही निर्वाचित होता है। इसके मुख्य जनगणना और व्यापक मतदाताओं के आधार पर चुने जाते हैं। ऊपरी या दूसरा सदन (इसे भारत में राज्य-सभा कहते हैं) बहुधा समाज के वृद्धों या स्वाधीन अथवा अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है और उसका चुनाव प्रायः प्रायः सीमित नहीं होता।

ब्रिटेन की साद सभा (House of Lords) अधिकतर वंशानुगत (hereditary) है। उसका सदन की सभा कॉमन्स सभा (House of Commons) की सभा से अधिक है। गुरुत्वात् राज्य अमेरिका के ऊपरी सदन सीनेट में १६ सदन होते हैं। अमेरिका के ४८ राज्यों में हर राज्य में दो प्रतिनिधि चुने जाते हैं। १९१३ के बाद से ये लोग प्रायः सभी इस सदन के सदन निर्वाचित होते हैं। यह एक स्पष्टीकरण है। इसका प्रत्येक सदन ६ वर्षों के लिए निर्वाचित होता है। सदन की कुल संख्या का एक तिहाई भाग प्रति दो वर्षों में बदला जाता है। अमेरिका की सीनेट की संख्या अनेक समान ऊपरी सदन अधिक संख्या में नहीं है ता गुरुत्व अधिक संख्या में सदन से एक अधिक है। स्विट्जरलैंड और ऑस्ट्रिया में दुनो सदन का संगठन वही सिद्धान्त पर हुआ है ब्रिटेन पर अमेरिकी भीतर। स्विट्जरलैंड का हर राज्य दो प्रतिनिधि और ऑस्ट्रिया के ९ राज्यों में हर राज्य ६ प्रतिनिधि होने के दुनो सदन में भेजा है। अमेरिकी सीनेट की भी संख्या वही सीनेट भा ९६ सदस्य होते हैं। पर वे प्रतिमंडल की संख्या पर निर्भर प्रत्येक राज्य में दो प्रतिनिधि चुने जाते हैं। प्रतिनिधित्व प्रान्तों के आधार पर न ही जनता के आधार पर जनता के आधार पर हुआ है। वाम संविधान के अनुसार जनता की संख्या के ऊपरी सदन (Richtleg) में जनता के आधार पर राज्यों का प्रतिनिधित्व होता है। पर राज्यों का मतान प्रतिनिधित्व नहीं

दिया गया है। फ्रांसका आजकलका ऊपरी सदन 'कॉन्सिल आफ रिपब्लिक' तीसरे गणतंत्र (Third Republic) की सीनेटकी निर्जीव छाया सी है। इस परिष्कृत ३२० सदस्य हाथ है जिनका चुनाव साम्प्रदायिक और विभागीय सत्थाओं द्वारा वयस्क मताधिकारके आधार पर किया जाता है। फ्रांसका निचला सदन 'नेशनल असेम्बली' (National Assembly) आनुपातिक प्रतिनिधित्वके आधार पर ऊपरी सदनके लिए स्वयं सदस्य चुन सकता है। पर इस प्रकार चुने जानेवाले सत्थाकी संख्या कॉन्सिल आफ रिपब्लिकके सदस्योंकी समूची संख्याक $\frac{1}{5}$ से अधिक नहीं होगी। दक्षिणी अफ्रीकाकी यूनियनम ऊपरी सदनम नामसदगो और निवाचनके सिद्धान्तोंका मिश्रण किया गया है। आस्ट्रलियाके कुछ प्रान्तोंमें ऊपरी सदनक सदस्य जीवन भरके लिए गवर्नर द्वारा नामसद किये जाते हैं। कुछ प्रान्ताम व एव बिनाप और संकुचित आधार पर निर्वाचित होने हैं। नुर्वेमें एव-सदनारमक प्रणाली है।

नार्वे का न्तिाय सदन अनुपम है। नार्वे की 'रोब्सभा स्ट्रूदिग' (Strothing) हर तीसरे साल चुनी जाती है। निर्वाचित होते ही यह सदन अपने सदस्योंम से एक चौथाई सदस्योंका ऊपरी सदन लेगथिंग (Lagthing) के लिए बनता है। बाप सदस्यों को मिलाकर निचला सदन ओडदिग (Odesthing) बनता है। ऊपरी सदन लेदिग को अपनी ओर से विधि बनानेका अधिकार नहीं है। पर ओडदिग द्वारा भ्रम गये विधेयको म बहु संशोधन प्रस्तावित कर सकता है। यदि वे संशोधन स्वीकार नहीं किये जाते और ऊपरी सदन (लेग्निंग) भी अपने संशोधनों पर अड़ा रहता है तो दोनों सदनका सम्मिलित अधिवेशन होता है जिसम निर्णय दो तिहाई बहुमत द्वारा किया जाता है।

भारत के केन्द्रम और कुछ राज्यम दो सदन हैं। केन्द्रे अर्थात् भारतीय संसदके दो सदनका लोक सभा और राज्य सभा कहते हैं। राज्य-सभाके सदस्योंकी अधिकतम संख्या २५० है। इनम से १२ सदस्योंका चला साहित्य समाज-सेवा आदि क्षेत्रोंमें उनकी असाधारण सेवाओंके उपलक्षम राष्ट्रपति नियुक्त करता है। बाप सत्थाका चुनाव राज्यकी विधान सभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्वके आधार पर किया जाता है। राज्यम सीटोंका वितरण संविधानके चौथे परिशिष्ट (Schedule) के अनुसार किया जाता है। राज्य-सभा मरदा कायम रहती है। इसके सदस्योंका चुनाव ६ वर्षके लिए होता है। एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते हैं। इस समय १२ मनोनीत सदस्योंको मिलाकर कुल २१६ सदस्य हैं।

यदि दूसरे सदनकी कोई आवश्यकता है तो उन्हें पहले सदनसे भिन्न होना चाहिए। उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक और जिम्मेदारीसे काम करना चाहिए। निचले सदनके कार्योका सफल संशोधन करनेके लिए उनमें आवश्यक दक्षिण योग्यता और पणपादहीनता होनी चाहिए।

क्या दूसरे सदन आवश्यक हैं ?

दूसरे सदन का सब देशों में पाया जाना इस बात का प्रमाण नहीं है कि वे अनिवार्य हैं। दूसरे सदन के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं।

(१) निम्न सदन द्वारा बनी नीति मान-विषयों के बिना अन्तराष्ट्रीय बनायी गयी विधियों पर इन सदन द्वारा राज समझा है और ऐसा होना बहुत उपाय है।

(२) मध्याह्न सविधानों में दूसरे सदन मध्याह्न इकाई के हिताय रखा करते हैं। इन सदन का तर्कों पर सम्पूर्ण धारणा की गयी है और इस सम्बन्ध में अन्तिम रूप में अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका है।

द्वितीय गणराज्य के उत्तराध म जे० एम० मिल ने यह आकांक्षा प्रकट की थी कि केवल एक सदन के होने से वह निरङ्कुश या अन्तर्गत-रूप हो सकता है और अविभाजित गणित के पक्षानुसंग प्रभाव का राक्षस के लिए दूसरे सदन का होना आवश्यक है। सर फ्रेडरीक्सन का कहना था यही तर्क था कि दूसरा सदन चाह वह जिस प्रकार का हो न हो न हीनम अक्षय्य है। उनका कहना था कि एक मुनरिटल दूसरा सदन प्रतिस्पर्धी मध्याह्न म हाकर एक अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था है। लॉर्ड एक्सेन (Lord Acton) दूसरे सदन के स्थापना के लिए एक आवश्यक सुरक्षा मानते हैं। अन्य विधि निर्माण आवश्यक मति-अनुमति होता है अन्तर्गत का सुरक्षा प्राप्त होती है और बहुत एक अक्षय्य प्रदानावन सदन (revising chamber) का काम करता है।

जि न म बहुदलीय सदन (long parliament)^१ ने अपना अन्तिम बैठका में दूसरे सदन का समान कर देना चाहा था। तब यह भी प्रस्ताव दिया था कि वह सदन भारतीय निशावर-अन्तर्गत स्वतंत्र तथा स्थाई रूप में प्रतिष्ठित करे। पर परिणाम इतना बुरा हुआ कि तब से तब से उसे अन्तर्गती सदन अधिक मजबूत निरङ्कुशता बना था। कन्वेंशन-पार्लियामेंट^२ ने अपना यह मन प्रकट किया था कि नाम के अन्तर्गत लॉर्ड-मन्त्र और कामन्स-मन्त्र द्वारा ही होना चाहिए।

पार्लियामेंट का एक मन्त्रीय अन्तर्गत प्रस्ताव दिया था पर उस एक निम्न प्रस्ताव पर ही छोड़ दिया। हमारे समक्ष ही युक्त न बही प्रस्ताव दिया। पर का अन्तर्गत तब नही निम्न। मन्त्र का कहना है कि इस सम्बन्ध में सन्तुष्ट है कि

^१ लॉर्ड कामन्स सदन (Long Parliament) यह दूसरा सदन के उस अधिसूचना नाम है जो ३ नवम्बर १६४० में पार्लियामेंट द्वारा पारित किया गया था। लॉर्ड कामन्स सदन के मनमन का विचार पर एक सदन के उस समय का ही विचार था।

^२ कन्वेंशन सदन (Convention Parliament) दूसरा ही १६९० और १७०० की मध्याह्न कन्वेंशन सदन कहते हैं कि अन्तिम अधिसूचना द्वारा लॉर्ड कामन्स और पर न सन्तुष्ट अने पर हुआ था।

द्विसदनात्मक प्रणालीके पक्षमें एक अद्भुत एवता दिखायी देती है। पर दूसरी ओर भी एस० एस० आर्यंगर का कहना है कि लोकतन्त्रम द्विसदनवाद (bicameralism) एक जीण-दीण सिद्धांत है। उनका कहना है कि द्विसदनात्मक प्रणालीका कारण लोकतन्त्रम विश्वासकी कभी और अल्पसंख्यकोंका चुन रखनेकी इच्छा है। और इस बातका कोई कारण नहीं दिखायी देता कि लोक-सम्पत्तिका अपनी अभिव्यक्तिके लिए दो साधन खोजने पड़ और साक्षरोंको दो प्रकारके स्वरा में बोलना पड़े। उनका कहना है कि दूसरे सदनोंको इसलिए बना रखा गया है कि 'राजनीतिक दलोंके उन व्यक्तियोंकी महत्वावाक्षाएँ पूरी होनेका अवसर मिले जिन्हें पहन सदनमें स्थान नहीं मिल पाता इसके भीतर नेतागिरीकी हाड कुछ कम हो और साधारण रूपसे पार्टीके प्रभावका दायरा बढ़े। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतके प्रान्तोंमें द्विसदनात्मक प्रथा निहित स्वाधीनता जड़ जमाने और निचले सदनकी सम्भाव्य क्रांति-मूलक प्रवृत्तियों पर रोक लगानेके लिए प्रचलित की गयी थी। निचले सदनकी भू-सम्पत्ति सम्बन्धी प्रवृत्तियोंको रोकनेके लिए स्वाम तौर पर ऐसा किया गया था।

द्विसदनवादके विरुद्ध अबसियस (Abbe Sieyes) का शास्त्रीय तर्क इस प्रकार है यदि दूसरा सदन पहले सदनसे असहमत होता है तो वह शायरती और हानि पहुँचानेवाला है और यदि सहमत होता है तो उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। दूसरे सदन को निरर्थक बनाने वाले तर्क का उत्तर फाइनर ने इस प्रकार दिया है यदि दोनों सदन सहमत होते हैं तो विधिवी म्यापपूर्णता और विवेकशीलता पर हमारा विश्वास और भी पक्का हो जाता है। यदि वे असहमत होते हैं तो लोगोंको अपने दृष्टिकोण पर फिरसे विचार करने का अवसर मिलता है।

निस्सन्देह सैद्धांतिक तौर पर समुचित ढंगसे संगठित दूसरे सदनके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। एक प्रत्यालोचक संस्थाके रूपमें दूसरा सदन विधि निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण योग दे सकता है। अपने संगठनकी विपक्षताओं—सदस्योंकी लम्बी अवधि अधिक अनुभव और निचले सदनकी उत्तजनाओं तथा ईर्ष्या-द्वेषों आदिसे उनकी अनेकाङ्क्षित मुक्ति—के कारण यह सदन विधेयकों पर सभी दृष्टिकोणोंसे बहुत कुछ तटस्थ रूपमें विचार कर सकता है। पर व्यवहारमें तो दूसरा सदन रुढ़िवादिता और कभी-कभी प्रतिक्रियावादी का गढ़ होता है। ब्रिटेनमें अनेक बार लॉर्ड-सभाको तर्क-संगत दृष्टिकोण अपनानेके लिए धैर्यवती दी गई थी और १९११ तथा १९४९ के पार्लियामेण्ट एक्ट ने तो उसे शक्तिहीन-सा बना दिया है। लॉर्ड-सभा अर्थ विधेयकों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती और सामान्य विधियोंके मामलोंमें भी उसके अधिकार कॉमन्स सभा के बराबर नहीं हैं। अब लॉर्ड-सभा अधिकसे अधिक इतना ही कर सकती है कि वह विधि निर्माणको एक चप तक या पार्लियामेण्टसे लगातार दो अधिवेशनों तक रोकें रहे।

यह तर्क हम निस्सार मान्य होता है कि जल्दबाजी में तथा ठीक प्रकार सोचे विचार बिना बनायी गयी विधियों पर रोक लगानेके लिए दूसरा सदन आवश्यक है।

एक विधायक के अनेक वाचन होते हैं। उन पर विधायक समितियाँ विचार करती हैं। विधायक पर गमाचार-पत्र और सावजनिक समा मन्त्रों द्वारा जनता अपना मत प्रकट करती है। ये सब बातें जल्दबाजी में काम किये जानके बिना पर्याप्त सरदाग मालूम होते हैं। इससे अनिश्चित अत्यधिक आवश्यक मुद्धारों के बारे में ऊपरी सन्ध को विसम्य करने का अधिकार देने का अब सम्भवतः अन्तिम रूप में पाठ्य होगा और जन चरान्तिका रास्ता साफ करेगा।

द्वितीय सन्ध के पक्ष में एक और सब यह दिया जाता है कि दूसरा सन्ध सय सिद्धान्त का मौलिक अंग है। पर इस तक पर भी शका की जा सकती है। राष्ट्रों की समस्याओं का राष्ट्रों के विधान-मण्डल मुक्त होते हैं और राष्ट्रहित के मर्यादित राष्ट्रों के हितों की रक्षा के लिए दूसरे सन्धों की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य राष्ट्र अमेरिका का उदाहरण मत हुए हम देखते हैं कि प्रतिनिधि समा (पहला सन्ध) के मुक्तचित्त मीने (दूसरा सन्ध) का राष्ट्रीय या प्रगतिशील नहीं रही है। यह धारणा बना लेना चलन है कि एक सन्ध केवल प्रायः या राज्यार हितों की शोषणा और दूसरा सन्ध राष्ट्रीय हितों की रक्षा करेगा। सम्भावना तो यह है कि दोनों ही सन्धों में प्रान्तीय और राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाले लोग होंगे। इसलिए हम मरियन के इस विचार को अप्रामाण्य मानते हैं कि संप्रति सविधान संरचना के लिए दूसरा सन्ध एक मौलिक और प्रभावशाली स्थापन है।

सारांश यह है कि दूसरा सन्ध आवश्यक है या नहीं इस प्रश्न का कोई ऐसा उत्तर नहीं दिया जा सकता जो सभी अवस्थाओं पर लागू हो। बल्कि कुछ तो घटनाओं पर निर्भर करना है। संयुक्त-राज्य अमेरिका और फ्रांस में द्वितीय सन्धों की स्थापना से निरमल है इन दोनों को कुछ हानि ही होगी। दोनों ही सन्धों में परिपक्व बुद्धि और अनुभव के व्यक्तिओं को आवेगित किया है और उन्होंने विधि निर्माण तथा नीति-निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। साह-समावे मित्र होने से द्वितीय भी समझदार हो जायगा क्योंकि यह सन्ध मरियन और मान तथा प्रजासत्ताक अनुभव का आगार रहा है। कुछ तत्कालीन महत्वपूर्ण प्रश्नों का समीर और निष्पत्ति विवेचन यह सन्ध के कारण सम्भव हो सका है। दूसरी ओर यदि बनाया की नीति का समाप्त कर दिया जाय तो उन देशों को कुछ अधिक हानि न होगी। भविष्य में सविधान बनाते समय दूसरे सन्धों का सामान्य नियम न मान कर आवश्यक मानना चाहिए कि दूसरे सन्धों की व्यवस्था नहीं करने की चाहिए जहाँ इसकी आवश्यकता न हो। समय और धन की बचानी का राजने के लिए यह व्यवस्था का अभाव है कि विधानसभा विधायकों का निचले सन्धों का बार पारित कराना चाय और उक्त पक्ष पर विचारों के साथ विचारों के जाने से पहले आम चर्चा करा दिया जाय।

विधायिका के अधिकार और कृत्य

(Powers and functions of the Legislature)

विधान का काम केवल विधि बनाना ही नहीं है। वे बहुत पर विचार करती हैं

सम्भूतियों (supplies) की स्वीकृति देती हैं और शासनका सामान्य निरोधन करती हैं। विधि निर्माणमय सामान्यतः निचले सदनको अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहता है। वित्त विधायक (finance bills) केवल निचले सदनम ही पार किये जा सकते हैं। भारतम भी ऐसा ही है। वित्त विधायक अतिरिक्त अन्य विधायक अनेक देशोंमें किसी भी सदनम पेश किये जा सकते हैं। दोनो सदनाम परस्पर विरोध होने पर ऊपरी सदनको ही हारना पड़ता है। अनेक देशोंके संविधानोंम दोनो सदनोंके या दोनों सदनोंकी समितियाँके सम्मिलित अधिवेशनकी व्यवस्था है। इन अधिवेशनोंमें नियम एक निश्चित प्रतिपात मता द्वारा ही किय जाते हैं। परन्तुकि प्रायः सभी जगहों निचले सदनके सदस्योंकी संख्या अधिक होती है इसलिए पाँचा उद्दाक पक्षमें पड़ता है।

ब्रिटिश पार्लियामेंट संसदकी सबसे अधिक शक्तिमान संसदम से एक है। उसके अधिकार वहाँ तक हैं जहाँ तक जनमत और निर्वाचक-मण्डल उसे सहन करे। उसने काम सार्वजनिक (constituent) और विधायी (legislative) दोनो ही हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और स्विटजरलैंड म संविधानको बदलनेके लिए एक व्यापक व्यवस्थाकी जाती है। आस्ट्रियाम भी संविधानमें परिवर्तन करनेके लिए एक विशेष प्रक्रियाकी आवश्यकता होती है। फ्रांसम संसदकी प्रणाली अमेरिकाकी अपेक्षा अधिक आसान है यद्यपि उसकी प्रक्रिया बहुत कठिन प्रतीत होती है।

जिन देशोंम संसदीय शासन व्यवस्था है वहाँ संसद प्रान्तीयों द्वारा शासन पर नियंत्रण रखती है। यद्यपि इस सम्बन्धम ब्रिटनम अविश्वासका प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता पर फ्रांसम ऐसा हो सकता है और वहाँ बहुधा मन्त्रिमण्डलको उलटने में इस तरीकेका उपयोग किया जाता है। लोक प्रशासनके सख्त विधायिकाकी तुलना एक व्यावसायिक संस्थाके संचालक मण्डलस करते हैं। दोनोका ही काम निर्देशन, निरीक्षण और नियंत्रण करना है कार्यन्वय करना नहीं। सरकारके प्रशासकीय विभागका संगठन किस प्रकार किया जाय विभिन्न विभागोंके बीच कर्तव्योंका विभाजन कैसे हो और वे किस प्रकार काम करें—इन सब प्रश्नोंका निर्णय करनेका अन्तिम अधिकार संयुक्त राज्य अमेरिकाम सरकारकी विधायी (legislative) शाखा को है।

विधायिकाको विशेषकर उसके ऊपरी सदनका कुछ 'याय-सम्बन्धी' काम भी करने होते हैं। आज भी साँड-सभाका संभाषित साँड चान्सलर ब्रिटेन की सर्वोच्च 'याय-विचारण-सभा' है। वह 'याय-सम्बन्धी' ६ जजों के साथ राज्यके सर्वोच्च 'यायालय'के रूपम काम करता है। वैसे तो प्रिवी काउंसिलकी 'याय-समिति' (Judicial Committee) म इन साँड जजोंके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी बैठते हैं पर समितिका नाम वास्तवम यह साँड ही रहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिकाम प्रतिनिधि-सभा द्वारा राज्य अधिकारीके विरुद्ध लगाये गये अभियोग (impeachments) की सुनवाई सीनेटम होती है। फ्रांसम भी मानें ही उच्च 'यायालय' भी।

कुछ देशोंमें ऊपरी सदनको 'याय-पालिका' म सम्बन्धित कुछ काम भी करने होते

है। संपुर्ण राज्य अमेरिकामें मंत्रियों सर्वोच्च न्यायालयके 'यायाधीनों' राजदूतों वाणिज्य दूता आदि अधिकारियोंकी राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियोंके लिए सीनेटकी स्वीकृति आवश्यक होती है। फासम तीसरे गणनके अन्तर्गत राष्ट्रपति सीनेटकी स्वीकृति प्रतिनिधि-सभाको भंग कर सकता था। पर प्रधाने ऐसा नहीं होने दिया और प्रतिनिधि-सभा अपनी पूरी व्यवधि भर काम करती रही है। अमेरिका में ऊपरी सदन बहुत अधिक शक्तिशाली है। इसके अधिकार करीब-करीब निम्न सदनके समान ही हैं। अमेरिकामें मान्य विधायकोंका प्रस्तावित नहीं कर सकता पर उनमें मनायन कर सकता है। पर वैयक्तिक मामलामें प्रतिनिधि सभाकी प्रेरणा सीनेट अधिक प्रभावशाली है। अपने अनुभव परिपक्वता सम्बन्धी प्रवधि अमर स्वरूप सीमित आकार राजनीतिक संस्थाओंसे अपना सम्बन्ध और विधि द्वारा मिली हुई अपनी अधिकार-सत्ता के कारण दोनों सीनेटकी अधिक प्रतिष्ठा है। फासम दोनों सदनोंके मिलानेवाली सुदृढ़ दल-व्यवस्थाके अभावमें और प्रतिनिधि-सभाके सभ्यके बड़े आचरणने सीनेटको शक्तिशाली बनाया है। फासम सीनेटका इतना अधिक प्रभाव है कि इसकी बातका उन्वयन करनेका साहस किसी भी व्यक्तिमें उत्पन्न नहीं हुआ करता और हर व्यक्तिमें उत्पन्न साधारण तौर पर सीनेटके तीन या चार सभ्य को शामिल किया जाता है। सीनेटका अधिकार है कि वह प्रतिनिधि-सभा द्वारा स्वीकृत कृपाको स्वीकार करे या अस्वीकार करे पंगव या बड़ाये।

विधायिका की कार्य प्रणाली

(Legislative Procedure)

भारतमें विधि निर्माण आसान नहीं है। इसके लिए कुछन आलेखी (draftsmen) की विधायिका सामान्य सिद्धान्तोंको सावधानीसे विवेचना करनेकी और साथ ही साथ प्रत्येक धारा पर विचारपूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता होती है। विन्म हर् विधेयकको प्रथम वाचन प्रतीय वाचन समिति अवस्था (committee stage) सूचनावस्था (report stage) और सुदीन वाचनकी स्थिति का पार करना होता है। विरोधी दलकी मङ्गल सल्लाहकारी बात का राजन और मन्त्रका गमन बचानेके लिए विधान-क्षेत्र (guillotine)^१ आदि विधानका अन्त करने वाले वाचनको अग्रणीया जाता है।

विधिनिरमाकी कार्यवाही पर राजनीतिक दलों तथा 'प्रभाव दायक' दलों का बड़ा असर पड़ता है। राजनीति में बनावट-विचार करने उम्मेदवार पवित्र करने के पूरे उम्मीदवारों इस बातका ज्ञान लभने है कि वे अपनी बात और कार्यवस्था

^१ विचार क्षेत्र (guillotine) विधान-क्षेत्र द्वारा किसी विधेय पर विधायिका में हर् अन्त-विचारके लिए आखरी ताराग या समय निर्धारण कर दिया जाता है। समय पूरा होने ही विधायिका सभागत बात किया जाता है।

समर्पण करेंगे। जब उम्मीदवार व्यक्ति यह वचन दे देते हैं तभी उन्हें दलका उम्मीदवार बनाया जाता है। कभी-कभी किसी विनाय योजनामें रुचि रखनेवाले मतदाताओंके दल उम्मीदवारोंका समर्थन करनेसे पहले उनसे यह लिखवा लेते हैं कि वे उन योजनाओंका समर्थन करेंगे। कुछ संविधानोंमें उपाकरणके लिए समुन्न राय अमेरिकाके राज्य संविधानोंमें इस बातकी व्यवस्था है कि जब विधायिकाका कोई सदस्य निर्वाचक मण्डलका आशिक या सम्पूर्ण विश्वास लो देता है तब उसे फिरसे चुनाव लड़नेके लिए मजबूर किया जाता है। यह नाम विधायिकाकी अवधि-समाप्त होनेके पूर्व प्रत्यावर्तन (recall) द्वारा किया जाता है।

आजकल दत्ता दबाव डालनेवाले गटा और सावजनिक सभाओंकी शक्ति बहुत अधिक है। अतएव अब इस पुराने प्रश्नका महत्व समाप्त हो गया है कि प्रतिनिधि केवल प्रतिनिधि मात्र है या वह अपने विवेकका भी उपयोग कर सकता है। कुछ विचारका की राय है कि प्रतिनिधि एक जीता-जागता टैलीफोन मात्र है जिसे सचवाई और ईमानदारीके साथ वही कहना चाहिए जो कुछ निर्वाचक मण्डल उससे कहलाना चाहता है। यह सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है। एक तो यह व्यक्तिके आत्म-सम्मानको गिरानेवाली बात है और दूसरे कोई पहले यह कैसे मालूम कर सकता है कि चुनाव समाप्त हो जाने के बाद कौन-सी और कौसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाएंगी। इसके अतिरिक्त एक प्रतिनिधिका अपने निर्वाचन-क्षेत्रके प्रति जितना कर्तव्य होता है उतना ही कर्तव्य सम्पूर्ण राष्ट्रके प्रति भी होता है। इसलिए उसे दूसरे प्रतिनिधियों और दलों द्वारा उपस्थित किये गये सभी दृष्टिकोणों पर विचार करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

यद्यपि इस सम्बन्धमें कोई सामान्य नियम नहीं है कि किन परिस्थितियोंमें किसी प्रतिनिधिका कर्तव्य होता है कि वह त्याग-पत्र दे दे फिर भी साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है कि जब कभी वह एक दलको छाड़कर दूसरे दलमें जाय या अपने निर्वाचन क्षेत्रकी स्पष्ट इच्छाके विरुद्ध नीति अपनाये या कार्य करे अथवा चुनाव के समय दिये गये अपने तात्त्विक वचनोंको भंग करे तब उसे त्याग पत्र दे देना चाहिए और फिरसे चुनाव लड़ना चाहिए।

संसदीय पद्धति में सत्तारूढ़ सरकारके बारेमें भी यही बातें लागू होती हैं। फाइनर के अनुसार ब्रिटेनमें निम्नलिखित तीन परिस्थितियोंमें सरकारका भंग किया जाना उचित माना जाता है

(१) जब मौलिक महत्वकी नयी नीति स्थापन करनेकी बात खोधी जाती है जसा कि बाल्डविन (Baldwin) ने १९२३ में किया था। बोनर ला (Bonar Law)-जिनके बाद बाल्डविन प्रधान मंत्री बने थे-चुनावमें घोषणा कर चुके थे कि वह चुगी की दरों (tariffs) में कोई बढ़ि नहीं करेंगे। बाल्डविन बकारोको दूर करनेके लिए सुरक्षण (protection) लागू करना चाहते थे। अर्थात् चुगीकी दरोंमें वृद्धि करना चाहते थे। अतएव चुनावके समय किये गये वादेके विपरीत मौलिक और महत्वपूर्ण नयी नीति अपनानेके पूर्व बाल्डविन ने नये चुनाव करा लेना उचित समझा।

(२) जब सरकारको इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिल जाय कि अब उस पर देश का विश्वास नहीं रहा।

(३) जब दसोंकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि गनिगप पैदा हो जाता है आवश्यक विधानोंके पारित होनेमें बाधा पड़ती है और जब तीस आलोचनाप्रोचें कारण सरकारके लिए प्रतिष्ठापूर्वक सत्ताह्रास बना रहना असम्भव हो जाता है।

समिति प्रणाली (Committee System)

आधुनिक विधायिका अपना अधिकांश काम समितियोंके द्वारा करती है। विधायिका और विधायिकाके अलग अलग होनेसे अमेरिकी कांग्रेस (अमेरिकी समिति) का सारा काम समितियों द्वारा होता है। समितियाँ मुख्य रूप से अपना काम करती हैं। यद्यपि इन समितियोंमें दोनो दलोंके प्रतिनिधि रहते हैं पर बहुमत दल सत्त्व अधिक होते हैं और उसी दलका सत्त्व समितियोंका समारोह होता है। दल सत्त्व एक साथ मिलकर काम करते हैं। मंत्रिमण्डलके सत्त्वोंका कमाना इन समितियोंमें उपस्थित होनेका कहा जाता है पर यह उल्टी नहीं है कि उनकी सत्ता मान ली जाय। कुछ महत्त्वपूर्ण समितियोंके समारोह बहुत मंत्रियोंका भी स्थिति रहते हैं जैसे मापनोपाय-समितियों (committee on ways and means) और सविविनियोग समितियाँ (committee on appropriations) के समारोह। फामुम भी ऐसी ही व्यवस्था है वहाँ पर एक कमानका अध्यक्ष (rapporteur) वितीय मामलोंमें भी मंत्रीका प्रतिष्ठा बन सकता है। इस पद्धतिमें प्रतिनिधि समा प्रभाव और विधि निर्माण दोनोका ही नियंत्रण करती है। ब्रिटेनकी बॉमन्स सभामें समितियोंके समा पत्रियोंको उठना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है ब्रिटेनका अमेरिकी कांग्रेसमें। बॉमन्स सभामें मंत्रिमण्डल उन पर छाव रहते हैं।

सत्र की अवधि (Duration of Parliament)

संसदका कार्यकाल कितना होना चाहिए इस प्रश्नका कोई निश्चित उत्तर नहीं है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि संसदका कार्यकाल इतना होना चाहिए कि प्रतिनिधिमण्डल और जनतामें निष्ठाका सम्पर्क बना रहे तथा इतना लम्बा भी होना चाहिए कि संसद सत्त्व अनुभव प्राप्त कर सके और जनताको उन्नी उन्नी बनाकरे प्रभाव में पड़ना पड़े। निश्चय गगनेरी विधान अमेरिकी जनताने मान लिया संसदका कार्यकाल बहुत ही छोटा लगा है। प्रतिनिधि सभाकी ब्रिटेनका कामकासीके कारणोंसे तो एक कारण यह है कि गगनेरी संसदका बनाव कब का कब

के लिए होता है। ब्रिटेन फ्रांस और जर्मनी में निचने सन्तानों के कायकाल की अवधि कानून द्वारा तय कर दी गयी है। पर इस बात की व्यवस्था भी है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में निचले सन्तानों के कायकाल समाप्त होने के पहले भी भंग किया जा सकता है। ब्रिटन की कॉमन्स सभा की पाँच बपकी अवधि वास्तव में बहुत लम्बी अवधि है। क्योंकि इस अवधि के कारण इस बात की आशंका है कि सदन के सदस्य मतदाताओं की इच्छाओं और आवश्यकताओं से अपना सम्बन्ध न बनाय रख सकें। दूसरी ओर तीन बपकी अवधि जसा कि १९१९ के सुधार में भारत की प्रान्तीय काँग्रेसों के लिए रखी गयी थी बहुत कम है। सत्तीय सरकारों के लिए चार बपकी अवधि सर्वोत्तम है बशर्ते कि इस अवधि के पहले भी सदन का भंग किये जान की व्यवस्था हो। ब्रिटन का सम्राट् पार्लियामेण्ट को भंग करता है पर भंग करने का अधिकार वस्तुतः मन्त्रिमण्डल के हाथ में रहता है।

जहाँ तक दूसरे सन्तानों के कायकाल का प्रश्न है यथानुगत सदन को छोड़कर पाँच सदन का कायकाल—चाह वह प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हों या अप्रत्यक्ष रूप से अथवा उनके कुछ सन्तानों के निर्वाचन और कुछ मनोनीत होने हों जसा कि भारत की प्रान्तीय विधान परिषदों में होगा था—पाँच बपसे अधिक नहीं होना चाहिए। ऐसे दूसरे सदन जो स्थाई संस्था के रूप में काम करते हैं ६ वर्ष तक चल सकते हैं। उनके एक तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते रहते हैं जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत की राज्य सभा में होता है। श्री एस एस० आयगर जिनका उत्प्रेक्ष ऊपर किया जा चुका है कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी विधायिका में दो बार से अधिक जनता का प्रतिनिधि नहीं बनना चाहिए। दो बार से अधिक मौका देने से राजनीति में व्यावसायिकता फैलती है और भाइका टटट बनने को पूरा प्रोत्साहन मिलता है। श्री आयगर का विश्वास है कि ऐसे प्रतिवचन आज हम राजनीति में जो बाधोपन और उत्तरदायित्व की कुण्ठित भावना तथा ज्ञान बचाने और आत्मसन्तोष की प्रवृत्ति दिखाई देता है उस पर रोक लग जायगी। इस दृष्टिकोण के उत्तर में अनुभव और अविरोधता (continuity) के पक्ष में भी कुछ कहा जा सकता है। इसके अलावा एक व्यक्ति को केवल दो ही बार जनता का प्रतिनिधि बनने की अनुमति देने से उन लोगों के लिए द्वार बन्द हो जायगा जिन्हें अवकाश नहीं मिलता और जो राजनीति में प्रतिष्ठित जीवन की आशा रखते हैं। आज की मुख्य समस्या प्रभावशाली स्वार्थी और दबकू सभ्यता का छोटकर बाहर कर देने की है।

विधायकों का वेतन (Salary of Legislators)

अधिकतर आधुनिक सरकारें अपने विधायिका का वेतन देती हैं। अमेरिकी प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट दोनों के ही सभ्यताओं १५ ० डॉलर प्रतिवर्ष दिया जाता है। फ्रांस में भी दोनों सभ्यताओं के सभ्यताओं के वेतन मिलता है। ब्रिटेन में भी मजदूर सभ्यता

आगमन (१९१०) के बाद से कॉमंस सभा के सदस्यों को वेतन मिलना है। भारत में केन्द्रीय विधायिका के सदस्यों को ४०० रु० मासिक वेतन मिलना है और अधिकांश के अलावा २२ रु० रात भर का दिया जाता है। श्री एम. एस. आगरवाल कहना कि वेतन देने की यह प्रथा हानिकारक है क्योंकि इससे बहुत से विधायक अपने दल से लगे रह जाते हैं। सदस्यों का ध्यान सेवा के बजाय वसुधैव कुटुम्बकम् पर लगा रहता है। वे जो स्वार्थ के लिए अपने विचारों को छानने के लिए तैयार रहते हैं। दूसरी ओर यह भी कहा जा रहा है कि यदि हम चाहते हैं कि सभी धर्मों के नागरिक सामान्य रूप से उचित भाग में तो यह उचित ही है कि उनके द्वारा की गई सेवाओं के लिए उन्हें उचित पारिश्रमिक मिले। पर साथ ही वेतन इतना अधिक भी नहीं होना चाहिए जिससे निस्वार्थ सेवा का उद्देश्य अक्षय्य हो जाय। सरकार का सभा विभागाध्यक्ष का नाम करने का पुरस्कार लोक-सेवा में मिलनेवाला सन्ताप और लाला व्यक्तियों के भाग्य निर्माण का विधाधिकार ही है।

विधायकों के विधाधिकार (Privileges of Legislators)

सभी देशों में विधायकों के कुछ विधाधिकार होते हैं। ब्रिटिश पार्लियामेंट और संसद के साथ हुए संघर्ष के पक्षस्वरूप इन अधिकारों का प्रादुर्भाव हुआ। इन विधाधिकारों में भाग्य की स्वाधीनता और दीवानी मामलों में गिरफ्तारी से मुक्ति महत्वपूर्ण हैं। किसी भी राज्य में किसी भी एसी बात के लिए सजा नहीं दी जा सकती जो उसमें सम्मेलन की हो। इसका अर्थ यह नहीं है कि लोग असमर्थ भाषा का प्रयोग करें। उन्हें अंतर भाषा का निष्पक्ष गाने के अध्वन्य द्वारा हाना है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि लोग एक लम्बे भाषण से बिना रुके बात ही न हो। इनका नियंत्रण सम्मेलन (closure)^१ और विधान-सभा (guillotine) द्वारा होता है। विधान सभा और विधाधिकारों के अधिकारों में ४० दिन रहने और ४० दिन बाहर कीवानी मुक्तियों के नियमित सम्मेलनों में गिरफ्तारी से मुक्ति मिलना रहती है। अमेरिकी संसद में सम्मेलन में उपस्थिति रहने और सम्मेलन में आने और जाने के अधिकार दिए रहती हैं। अन्य किसी भी दीवानी मामलों के सम्मेलन में जाने की लक्ष्य नहीं है।

^१ समापन (Closure) सभी-सभी विधान-सभा किसी विषय पर बात बिना हो उगमय इन अधिकारों के अन्तर्गत प्रत्येक विधान सभा के लिए दिया जाने है कि यदि किसी बात के कारण सम्मेलन में आने वाले अधिक समय में और सम्मेलन में आने वाले समय में पूरा करने में बाधा पड़े। इस सम्मेलन में सम्मेलन के बाद पूरे के पूर्व ही सम्मेलन का प्रस्ताव द्वारा उक्त विषय पर बात बिना सम्मेलन कर देना है और सम्मेलन का और विधान सभा के सम्मेलन में आने जाना है। इस सम्मेलन करने है।

विधायिका और कार्यपालिका के पारस्परिक सम्बन्ध (Relation between the Legislature and Executive)

विधायिका और कार्यपालिकाके आपसी सम्बन्धके निम्नलिखित चार विभिन्न स्वरूप होते हैं

(१) अंग्रेजी आदर्शके अनुसार मन्त्रिमण्डल संसदकी कार्यसंचालन समिति (Steering Committee) होता है। मन्त्रिमण्डल ही संसदके समय, नीति, पद्धति और वित्तीय उत्तरदायित्वका नियमन करता है।

(२) फ्रांसीसी आदर्शके अनुसार मन्त्रिमण्डल अपने अस्तित्वके लिए विधायिका पर आश्रित है। फ्रांसीसी आदर्श भी संसदात्मक है। मन्त्रिमण्डलका भाग्य हमेशा विधायिकाकी सनक पर निर्भर रहता है। कोई ऐसे निश्चित सिद्धान्त नहीं होते जिनके अनुसार विधायिका मन्त्रिमण्डलके साथ सहयोग या असहयोग करे।

(३) स्विटजरलैण्डके आदर्शके अनुसार कार्यपालिका दलबन्दीसे मुक्त होती है। उसका कार्यकाल निश्चित होता है। यदि उसके बावों अथवा नीतियोंको विधायिका अस्वीकार कर देती है तो कार्यपालिका इस्तीफा नहीं देती। वह अपनी रीति नीतिमें विधायिकाकी इच्छानुसार आवश्यक सुधार कर लेती है।

(४) अमेरिकी आदर्शमें राष्ट्रपति और प्रतिनिधि सभामें कोई अधिक सम्बन्ध नहीं है। विधायिका और कार्यपालिकाके बीच कोई सहयोगमूलक सम्बन्ध नहीं है बल्कि ऐसी अनेक बातें हैं (विनियमन सीनेटके बारेमें) जिनको लेकर उनमें संघर्ष हो सकता है।

निर्वाचक-मण्डल (The Electorate)

किसी देशके उस जनसमूहको निर्वाचक-मण्डल कहते हैं जिसे मतदानका अधिकार प्राप्त होता है। निर्वाचक-मण्डल अपने इस अधिकार द्वारा ही सरकार बनाते या बिगाड़ते हैं। ऐसा बहुत ही कम होता है कि पूरा देश एक ही निर्वाचन-क्षेत्र (constituency) रहे जैसा कि फासिस्ट इटलीमें होता था। सामान्य प्रथा यह है कि देशका ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रोंमें बाँट दिया जाता है जिनकी व्यवस्था आसानीसे हो सके और जिनकी जनसंख्या लगभग बराबर हो। जिस निर्वाचन-क्षेत्रको केवल एक प्रतिनिधि भजनेका अधिकार होता है उसे एक प्रतिनिधि निर्वाचन-क्षेत्र (single member constituency) कहते हैं। जिस निर्वाचन-क्षेत्रसे एक-से अधिक प्रतिनिधि चुने जाते हैं उसे बहु प्रतिनिधि-निर्वाचन-क्षेत्र (multi member constituency) कहते हैं। ब्रिटन और भारतमें अधिकतर एक प्रतिनिधि-निर्वाचन-क्षेत्र ही हैं। ब्रिटनके हाउस ऑफ कॉमन्सकी ६१५ सीटोंमें से ५७६ सीटें एक प्रतिनिधि निर्वाचन क्षेत्रोंसे ही भरी जाती हैं।

भारतमें स्वतन्त्रताके पहले अल्प-गणत्वकी और विविध हितों जैसे ध्वजवाय भू-स्वामियों आदि के लिए पृथक् निशाचन चेतन था। विधिविधानयोग निशाचन-राज भी अलग था। ये सब बातें सोवतन्त्रके प्रतिकूल थीं और एक गठ राष्ट्रीय तथा सोवतन्त्रवादी राज्यके विकासमें अचाने आनी चा। साम्प्रदायिकता उद्योगकी जीवनका धानक है तथा विविध हित सामान्यवादीके अचानक आ है।

आगीरोंका प्रतिनिधित्व योरापने अनेक देशोंमें कुछ समय पहले तक प्रचलित था। अनेक राजनीतिक मुद्दोंके बहस समय तक 'एक सम्मेलन एक वोट' के सिद्धान्तका आशय निम्न था। मुद्दोंमें सबधृष्ट जरेकी अन्त्य के आशय प्रत्येक की गणना एक हानी चाहिए, किसीको भी एक-ए अधिक नहीं गिना जाना चाहिए। एक ही अवसरिताके होते हुए भी यह मुद्दा सभी सावतन्त्रवादी देशोंमें स्वीकृत हो चुका है। अन्तर्गत १९५० तक बहुजन मतदान (plural voting) की प्रथा थी। इस प्रथाके अनुसार एक व्यक्ति एक से अधिक निशाचन क्षेत्रोंमें वोट दे सकता था। वह उस निशाचन क्षेत्रमें वोट देता था जिसमें वह व्यवसाय करता था या जहाँ कि उसकी दूकान या काराबारके स्थानका विचारया कमसे कम १० पौंड वार्षिक हा। विधिविधानयोग के स्थानक भी सामान्य निशाचन क्षेत्रोंके अतिरिक्त अपना दूसरा वोट विधिविधानयोग निशाचन-क्षेत्रोंके प्रतिनिधि बननेके लिए दे सकते थे। वर्तमान विधि है—एक व्यक्ति एक वोट।

अभी कुछ समय पहले तक स्त्रियोंको मताधिकार प्राप्त नहीं था विशेषकर राष्ट्रीय निशाचनमें। उनके निरन्तर संघर्षमें आन्दोलन और महापट्टक समय प्रांतीय तथा लोक के कारण अन्तर्गत १९१८ में ३० वर्षोंके अधि आयुवाली स्त्रियोंको मताधिकार मिला। १९२८ में दीर्घ अवस्थावाली स्त्री हटा दी गयी और स्त्री तथा पुरुष एक ही बोटिंग आ गये। संयुक्त राज्य अमेरिकामें १९१९ में महिलाओंके १९वें संशोधन द्वारा स्त्रियोंको मताधिकार दिया गया। जर्मनीमें 'बीयरमविधान' में स्त्रियों को मताधिकार दिया गया। फ्रांसमें १९४५ तक तथा इंग्लैंडमें १९६८ तक स्त्रियाँ मताधिकार नहीं दिया गया था। इसका कारण यह था कि स्त्रियोंको मताधिकार देनेसे राजनीतिमें धार्मिक पुर्वाहिनियोंका अतिप्रभाव बढ़ जायगा। एक दूसरे के पोलिटिक क्षेत्रोंमें स्त्रियाँ पहले यह प्रतिबन्ध कुछ समय पहले हटा दिया था। मोडिफिकर रूपसे मताधिकारोंके मामलेमें स्त्री और पुरुष एक समान माने जाते हैं। किसी निवासी भी वोट दे सकते हैं। भारतमें सभी प्रकारके निशाचनोंमें स्त्रियोंका पुरुषोंके समान ही मताधिकार प्राप्त है।

स्त्रियोंका मताधिकार देने जानेका स्थान अन्तर्गत सोवतन्त्र के बाद था कि हमें यह स्वीकार है कि हमें राजनीतिमें मनुष्य सामाजिकस्थान और मानव-राज्य (humanitarianism) का युग आरम्भ होया। पर मताधिकारोंके प्राप्त करने मताधिकारका उद्देश्य पुर्वाहिनियों के लिए कुछ अधिक विशेषपूर्व रूपसे नहीं दिया है। मताधिकारोंके लिए

सर्प कर देने या ब्रूट अनव महिशात्राने अपने इस अधिकारका उपयोग नही किया। फिर भी स्त्री प्रतिनिधियोंकी उपस्थितिके फलस्वरूप और महिलाओं तथा उनका सभा द्वारा देशके सामाजिक जीवनमें अधिक रुचि लेनेके कारण सामाजिक समस्याओंकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। भारत जैसे देशमें स्त्रियोंकी अधिक और सामाजिक असमयताओं (disabilities) को हटाने और बच्चोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

किसी व्यक्ति द्वारा मताधिकार प्राप्त करनेकी अवस्था भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न है। अधिकतर देशोंमें यह अवस्था २१ वर्ष है। भारत और ब्रिटनमें यही अवस्था है। तुर्की और सोवियत रूसमें १८ वर्षकी अवस्थासे ही मताधिकार प्राप्त हो जाता है जबकि बहुतसे मतदाता अपरिपक्व ही रहते हैं। १९१९ के जर्मनीके संविधानमें २ वर्षसे अधिकके स्त्री-पुरुषोंको मताधिकार दिया था। कुछ देशोंमें तो २५ वर्षसे कमके लोगोंको मताधिकार नही दिया जाता। कुछ लोगोंका कहना है कि युवकोंका मताधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। क्योंकि वे अनुत्तरदायी और अपने विचारोंमें उग्र होते हैं। पर प्रायः यह माना जाता है कि २१ वर्षकी अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते युवकोंका अपने चारा ओरके ससारका इतना ज्ञान हो जाता है कि वे समझदारीके साथ अपने मताधिकारका प्रयोग कर सकें। अधिकारियोंमें आमतौरसे अत्यधिक रुचिवांता होती है। इस रुचिवांताको देखते हुए नवयुवकोंकी तथाकथित उग्र सुधारवादी भावनाओंको घुसा नही समझना चाहिए। फिर अनुभवसे ही युवक सीखेंगे।

राष्ट्रीय विधायिकाके लिए चुनाव सन्नेकी अवस्था मताधिकारकी अवस्थासे प्रायः ऊँची रहती है। अमेरिका जर्मनी और फ्रांसमें उम्मीदवारोंका कम-से-कम २५ वर्षका और जापानमें कम-से-कम ३ वर्षका होना चाहिए। ब्रिटन और रूसमें मताधिकार और उम्मीदवारीकी अवस्था एक ही रखी गयी है। भारतमें वर्तमान विधिके अनुसार राज्य विधान सभाओं तथा लोकसभाकी सन्स्थताके लिए आवश्यक आयु २५ वर्ष और राज्य विधान-परिषद् और राज्य सभाके लिए ३ वर्ष है। सन्स्थताके लिए अधिकतम उम्रका निश्चय शायद कही नहीं हुआ। ब्रिटनमें उम्मीदवारोंके लिए यह आवश्यक नही है कि वह जिस निवासन क्षेत्रसे चुनाव चाहता है वहीँका निवासी भी हो पर समुक्त राज्य अमेरिकामें यह आवश्यक है।

आधुनिक सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही सामाजिक समान और वयस्क मताधिकारके पक्षमें हैं। पर कुछ देशोंमें कुछ प्रकारके लोग मताधिकारसे वंचित रखे गये हैं। ऐसे लोग हैं पागल जिनका दिमाग बिगड़ गया हो कुछ खास प्रकारके अपराधी भिखमग (paupers) और दिवालिया। रूसको छोड़कर अन्य सभी देशोंमें विदेशियों का मताधिकारसे वंचित रखा गया है। विदेशियोंको नागरिकता देनेके लिए अधिकांश देशोंमें कुछ नियम बने हुए हैं। प्रायः इसके लिए देशमें कुछ वर्षों तक निवास आवश्यक माना गया है। समुक्त राज्य अमेरिकामें प्रत्येक राज्यमें निर्वाचन सम्बन्धी योग्यताओं के अपने-अपने नियम हैं। कुछ राज्योंमें निवासके साथ नागरिकता और अग्रणी भाषा

माननी परागा आबन्धक है। मविधानक १७ वें मंगलादनम यह कहा गया है कि किसी भी व्यक्तिवा बलत जाति या रसक आधार पर मताधिकारसे वचित नह। बिदा जा सकता। पर दहिता रायोंमे रसक नावना बन्ध अधिक है। वही नीचा सागा का मताधिकारम अनग रसनक निए अनग उपाय कामम साय गय है। दमिण अनावा सय (Union of South Africa) म बाव मांवा मताधिकार प्राप्त नहीं है यद्यपि वे कुत जनमस्याके हैं हैं। अध-नाम मतागताजको भी मावजनिक मय दाताओंका सूचीम १९३६ म हटाया गया है। हिंत्तर क ममदम जमनीने यहूतिया का कई भी राजनीतिक अधिकार दना स्वाकार नहीं बिदा दा। माराके अनक दगामे राष्ट्रीय अन्य मकरवाका मताधिकारम वचित रता दया है। कुछ गामे कुछ शणीक सरकारी नोकरीका भी मताधिकारम वचित रता जाता है। इनम चनाव अधिकारी सुनिक आं है।

प्राय सम्पत्ति और गिगाकी यादनाका मताधिकारके निए आवन्धक माना गया है पर मावजनिक प्राुवाबम सम्पत्ति और गिगाकी माप्पनाका मयामम्बव कमम कम रता गया है। इनके पहा यह मिडान्त या कि बवव उंग सोगाओ बो दनका अधिकार है जिनका दगम कुछ नि चन म्यादा स्वाप हो—जम सम्पत्तिगानी बग। पर इसका दन यह हुआ कि अनक निहित स्वाप दनप्र हा गय और म्याप स्वापी हा बना। इन्म १८० और १८६७ क मुपार विपदने अन्धधिक सम्पत्तिकी माप्पनाक आधार पर लगाय गय प्रतिवपाके विड्डकम्भ उगाया। १९१ तक प्रगा (Prussia) में प्रदग राज्मद ननक आधार पर मनगनाजके तीन बग हांन ५। इम व्यवस्थाके अनुमार प्रदमवगक मनगनाका दूसर बयेंके मनगनाका अंगा सम्मग पार सुनी और ठामर बयके मतागताक मुकाबल १६ सुनी अधिक राजनानिक गतिन प्राप्त थी।

गिगा सम्बधा माप्पनाक बारम धवाय भावाका मापारण पान काडा माना जाता है। भावाका ज्ञान निम्नन्हु एक बन्ध बहा मुविधा है दिर भी निगरनारो ही एक बन्ध बही अमाप्पता नह। मानना बाहित। जैसा कि मागतीय सिद्धिक सम्बधम सांघिन समिति (Lothian Committee) ने निगा है निगरनका यह अर्थ बगारिना है कि जिन अदन ज्ञान या अनुभवकी परिधिम ज्ञानका नामरो पर ममागारीन मय बो ननम आदर्य है। थी गम धीनिधम बागर् बन्ध है अगबागेंमे बिबाका पडने और प्रतिनाग नीतिग और याजनभाके सम्बधम दया और मकीरा बिमपन करनवाय मनाबार-या और ददना पडनेकी दामता स्वय मावजनकी अवन्धक निग अनिवाय है। निराबक-मदनका गित्त करनम राजनानिक दग बन्ध बहा दां दे सकन है।

हम इम पुराने मिडान्तम बिडम नह। करन कि मताधिकारक माप पर बन्ध भी जहा हुआ है कि आवन्धक पडने पर अने बांका मयर्पन दारिदिक बन द्वारा बिग जाय। आग को भी यह शक नही करता कि यहूतवाका पुर्नके ममान

मुद्र-शत्रुका भार वहन न करनेके कारण मताधिकारसे वंचित रखा जाय। इसलिये मताधिकारके लिए सैनिक योग्यता आजकल असंगत है। हर व्यक्तिको सुन्दर जीवन विधानका अधिकार है और इसलिये हर सामान्य व्यक्तिको जो रायका शत्रु नही है, मताधिकार प्राप्त होना चाहिए।

अनेक विचारवादी कहना है कि मताधिकार कोई ऐसा अधिकार नही है जो प्रत्येक नागरिकका अपने आप प्राप्त हो। उनका कहना है कि यह एक विशयाधिकार है जो केवल उही लोगोंको दिया जा सकता है जो इसका प्रयोग सोव हितके लिए कर सकते हैं। इसी आधार पर कुछ लोगोंका तर्क है कि वोट देना केवल एक नैतिक कर्तव्य ही नहीं है बरन् एक अधिक उत्तरदायित्व भी है। इसी कारण स्विटजरलण्ड आस्ट्रिया बल्जियम और अर्जेन्टाइना गणतन्त्रके कुछ प्रदेशोंमें वोट देना अनिवार्य बना दिया गया है। मक्सिमोम यदि कोई व्यक्ति एक बार अपना वोट नहीं देता तो पर्याप्त कारणोंके अभावमें उसे आगामी चुनावमें मत देनेके अधिकारसे वंचित कर दिया जाता है। इस सम्बन्ध में दबाव उठाना ही अनुचित है जितना जय अनेक मामलोंमें। इससे दबाव डालनेका उद्देश्य विफल हो जाता है। वोट न देनेका उचित प्रतिकार दबाव नहीं है बल्कि मतदानमें रुचि उत्पन्न करना और बार बार होनेवाले चुनावोंको कम करना है। अल्ती जल्दी चुनाव होनेसे मतदाता ऊब जाते हैं और उनमें वोट देनेकी अनिच्छा पैदा हो जाती है।

प्रतिनिधित्वका पुराना सिद्धान्त सामुदायिक प्रतिनिधित्वका था। वगैरे तथा जागीरोंके आधार पर जनताके समुदाय बना दिये जाते थे और प्रत्येक वन पथक रूप से वोट देता था। आधुनिक समयमें प्रादेशिक प्रतिनिधित्व (territorial representation) की प्रथा प्रचलित रही है। परन्तु हाल ही में इस प्रथाकी बहुत आलोचना भी हुई है। धोनी-समाजवादिया (Guild-Socialists) और धमिक संघवादिया (syndicalists) आदिका कहना है कि एक ही प्रदेशमें रहनेका अर्थ यह नहीं है कि उसमें रहनेवाले सभी लोगोंके स्वार्थ एक हैं या एक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए कोयलेने खानमें काम करनेवाले एक मजदूरका हित निश्चित रूपसे एक व्यावसायिक यात्री या स्कूल मास्टरके हितकी अपेक्षा बायसेकी खानमें काम करने वाले किसी दूसरे मजदूरके हितसे भेद लावेगा भले ही वह व्यावसायिक यात्री या स्कूल मास्टर उसका पड़ोसी हो और दूसरा मजदूर उससे पचास मील दूर रहता हो। इस तर्कके आधार पर यह दावा किया जाता है कि व्यावसायिक प्रतिनिधित्व (vocational representation) प्रतिनिधित्वकी अधिक सच्ची प्रणाली है। मुसासिनी के अधीन इटलीमें इस प्रणालीका आज़माया गया था। निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह पद्धति प्रादेशिक प्रतिनिधित्वकी अपेक्षा अधिक अच्छी सिद्ध होगी। व्यावसायिक प्रतिनिधित्वके विरुद्ध एक मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि यह नियम करना सन्ध आसान नहीं है कि कौन-कौनसे व्यवसाय या पेशे प्रतिनिधित्वके अधिकारी माने जाने चाहिए और उनमें से हरेक को कितना

प्रतिनिधित्व दिया जाता चाहिए। इस पद्धतिमें प्रतिस्पर्धी हितों और वर्गोंमें वृद्धि होना और सभी नागरिकताको उत्पत्ति और उसकी स्थितिमें बाधा पड़ने की भी सम्भावना है। मानव जीवनमें 'पक्षों' उठना ही महत्वपूर्ण है जितना 'ध्वस्तताप'। विधायकका प्रधान कर्तव्य प्रतिस्पर्धी आर्थिक वर्गोंके स्वार्थोंकी रक्षा करना नहीं है, उसका कर्तव्य है सम्पूर्ण जाति या राष्ट्रके हितोंकी रक्षा तथा उत्पत्ति करना।

मताधिकार के सिद्धान्त

प्रोफ़ेसर शेपर्ड^१ (Professor Shepard) के अनुसार मताधिकारके निम्नलिखित तीन सिद्धान्त समय-समय पर प्रचलित रहें हैं

(१) प्रारम्भिक कबायला सिद्धान्त। यह सिद्धान्त पुनानके नगर राज्यमें प्रचलित था। इसका अनुसार मताधिकार राज्यकी सम्पत्तिका एक आधापर अंग था।

(२) सामन्तशाही सिद्धान्त। इसके अनुसार भूमि-स्वामियोंका ही मताधिकार प्राप्त था।

(३) नविक सिद्धान्त। यह सिद्धान्त मताधिकारको व्यक्तिगत व्यक्तिगत विकास का आवश्यक और अनिवार्य साधन मानता है। यह अन्तिम सिद्धान्त ही आजकल माना जाता है। इस सिद्धान्तक अनुसार बाट देना हर नागरिकका स्वाभाविक और जन्मजात अधिकार है। जो व्यक्ति राज्यका सम्पन्न है उसे सम्पन्नता मात्र ही मताधिकार प्राप्त है। यह विचार तब प्रचलित अधिकारित बत पकड़ा जाता है कि मताधिकार सामाजिक कर्तव्य है जिसके बिना कोई भी व्यक्ति अपनी नागरिकता का ठीकसे प्रयोग नहीं कर सकता है।

बाट देनेका सामाजिक बाध माननेके परिणाम स्वरूप इन सिद्धान्तका जन्म हुआ है कि जो लोग एक एक सामाजिक कर्तव्य है जिसे पूरा करनेके लिए हर नागरिक को मजबूर किया जा सकता है। फलतः कुछ लोगोंमें बाट देना अनिवार्य कर दिया गया है जैसे ब्रिजम (१८०३) रूमानिया अधिनियम (१९१२) नीदरलैंड्स (१९१३) पोलोन्सिया (१९२०) और स्विट्जरलैंडके कुछ क्षेत्रों। मताधिकारका प्रयोग न करने पर बहुत दण्ड दिया जाता है।

मताधिकारक अनिवार्य प्रयोगका विरोध इन दो आधारों पर किया गया है (१) यदि मताधिकार अधिकारके लिए बाट देना एक अनिवार्य कर दिया जाता है तो सामाजिक न्यायका क्या बिना हा बाट देना है। इसका जवाब यह होगा कि मताधिकारका महत्व ही कम हो जाएगा। (२) अनिवार्य बाट देनाको सामाजिक न्याय माना जा सकता है। इन सम्पत्तियों के बाट देना अनिवार्य मजबूर बन्धनमय बहुत लाभकारी सिद्ध होता है।

^१ American Political Science Association Supplement to American Political Science Review, Vol. VII.

वयस्क मताधिकार (Adult Suffrage) वयस्क मताधिकारने धीरे-धीरे ही सावजनिक विधिकी रूप धारण किया है। पहले यह मताधिकार क्रम-क्रम केवल पुरुषोंको ही दिया गया और वह भी अनिच्छापूर्वक। कई साल तक आन्दासन के पास ही महिलाओंको मताधिकार मिला। बिस्म जस प्रगतिशासक देशों में भी १९१८ के पूर्व महिलाओंको मताधिकार प्राप्त नहीं था। और उस वर्ष भी तीस वर्षों से अधिक आयुकी महिलाओंको ही मताधिकार दिया गया। पुरुषों और महिलाओं में मताधिकार की आयु की असमानता १९२८ में २१ वर्षकी महिलाओंको वाट देनेका अधिकार देकर दूर की गयी। सभी वयस्क पुरुषों और महिलाओंको मताधिकार मिलना जनता की विजय थी। पर इसका विरोध करनेवालों का भी अभाव नहीं रहा है। जिन लोगों ने जिस जिस तर्क पर समय-समय पर वयस्क मताधिकार का विरोध किया है उनमें से निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं

(१) लॉर्ड मैकले का कहना था कि वयस्क मताधिकारका परिणाम व्यापक लूट होगा। जोड़े-अध-अध मछलें बड़े-बड़े योरोपीय नगरोंके सड़क-हजारों बल्लुओं और लामझिपिकी साथ बांट लेंगे।^१

(२) लेकी (Lecky) का कहना था कि अधिक जनता का मताधिकार देनेमें इस बात का भय है कि अज्ञानी और अनियंत्रित जनता की सरकार स्थापित हो जायगी। वह चाहते थे कि शिक्षा और सम्पत्ति के आधार पर सीमित मताधिकार दिया जाय। वह पूछते हैं कि 'संसार पर अज्ञानियाका शासन होना चाहिए या बुद्धिमानोंका?'^२ उनका विश्वास था कि जनता स्वार्थी व्यक्तियों और सगठनोंके बहकावे में आकर बांट दगी।

(३) सर जेम्स स्टीफन का विचार था कि वयस्क मताधिकार बुद्धिमानों और मूर्खताके सही और स्वाभाविक सम्बन्धको उलट देता है।

(४) सर ह्यूरी मेन का कहना है कि जनता आपुनिक प्रगति पसन्द नहीं करती। अतः वयस्क मताधिकारके कारण बहुत-सी प्रगतिशील बातें पर राक लग जायगी।^३

(५) बल्जियम के एमिल लुवाले (Emile Levaeye) का विचार था कि संसदीय ढंगकी सरकारका परिणाम स्वतन्त्रता व्यवस्था और सम्यताका जन्म होगा। उनका कहना था 'अज्ञानियाका मताधिकार देनेका नतीजा यह होगा कि पहले अराजकता फैलेगी और फिर निरंकुश शासन स्थापित होगा।

(६) स्पेंसली की राय है कि शासकोंको चुननेका अधिकार अल्प और अयोग्य लोगोंको देनेका अर्थ होगा राज्यकी आत्म-हत्या।

वयस्क मताधिकारकी माँगके साथ-साथ महिलाओंको भी मताधिकार देनेकी

^१ Fisher Th Republican Tradition in Europe p. 325.

^२ Democracy and Liberty Vol. I p. 13

^३ Popular Government, p. 36

Le Gouvernement dans la democratie Vol. II pp 51-52

मौगरी गयी थी। महिलाओंको मताधिकार न्यि जानके विरोधमें अनेक तर्क दिये गये हैं।

(१) यदि महिलाएँ राजनीतिमें सत्रिय भाग लेंगी तो उनमें स्त्री-जातिके गुण समाप्त हो जायेंगे।

(२) राजनीति का अभाव महिलाओं का उपयुक्त स्थान नहीं है। उनका उपयुक्त स्थान तो उनका घर ही है। महिला मताधिकार गुप्त जीवनके आधार पर ही आधारित करता है।

(३) महिला मताधिकारमें परिवारमें कूट प नेगी।

(४) वैयक्तिक देगामें महिला मताधिकारमें राजनीति पर वैयक्तिक प्रभाव पड़ने लगगा।

(५) महिलाएँ नागरिकोंके सब प्रमत्त काम ठीक प्रकारमें नहीं कर सकतीं। उदाहरणार्थ सैनिक सेवा।

उक्त सभी तर्कोंका मंह-तोड़ जवाब सिडग्विक (Sidgwick) जॉन स्टुअर्ट मिल ऐस्मीन (Esmeim) आदि ने दिया है। इन लोगोंने महिला मताधिकारका सम्यक् निम्नलिखित आधार पर दिया है

(१) मताधिकारका आधार नैतिक और बौद्धिक है धारीरिक या भौतिक नहीं।

(२) महिलाएँ धारीरिक कमजोर होती हैं। अब उन्हें विधि और समाज पर अधिक अधिकार रहना पड़ता है। इसलिए महिलाओंको पुण्योंकी ओरगा मताधिकार की आवश्यकता अधिक है।

(३) पुण्यकी अन्यायकार-और अन्यायपूर्ण विधियोंमें अपनी रक्षा करनेके लिए महिलाओंको मताधिकारकी आवश्यकता है।

(४) महिलाओंकी नागरिक भूमिके बाव उन्हें मताधिकार देना तर्कपूर्ण है।

(५) राजनीतिक जीवनमें महिलाओंके प्रवेश करने से हमारी राजनीति शुद्ध गुन्दर और उदार हो जायगी।

व्यस्त मताधिकारका पड़ने जो विरोध दिया जाता था वह अब एकदम समाप्त हो गया है। अब तो व्यस्त मताधिकारको राजनीतिक व्यवस्थाका प्रतीक माना जाता है। मैंने मन लकी आन्की बेठावनी सही नहीं लिखी है। फिर भी यदि सोचनेकी छान न होने दना है तो इस बातका निरिक्त प्रमाण दिया जाना चाहिए कि इन लोगोंकी आकांक्षाएँ बड़ी सही न हों।

व्यस्त मताधिकारकी कुछ बुराइयाँ दूर करने के लिए एकके अधिक बाण देने (weightage system) तथा बहुत मताधिकार (plural voting) के तरीकोंका प्रयोग दिया जाता है।

एकसे अधिक वोट देनेकी प्रणाली (Weightage System)

ब्रिजममें १८९१ में बाण देनेके नियमोंमें एक विशेष प्रणाली लागू की गयी थी जिसके अनुसार प्रत्येक पुरुष नागरिक जो

(१) २५ वर्षकी आयुका हो

(२) ओर कमसे कम एक साल कम्यून (commune) में रह सका हो, एक वोट दे सकता था।

एक अतिरिक्त वोट वह नागरिक दे सकता था जो

(१) ३५ वर्षकी आयु प्राप्त कर चुका हो

(२) एक वर्ष-सतानवासा हो

(३) राज्यको पाषाण कर देता हो।

एक अतिरिक्त वोट देनेका अधिकार २५ वर्षवाले ऐसे मूस्वामीका भी प्राप्त था जिसकी भूमिका मूल्य दो हजार फ्रैंक (वस्तुश्रमका सिकवा) हो।

दो अतिरिक्त वोट उन लोगोको प्राप्त थे जो

(१) माध्यमिक शिक्षा या अन्य उच्चतर शिक्षा प्राप्त हो तथा २५ वर्षकी आयु प्राप्त कर चुके हो।

(२) वह नागरिक जो किसी ऐसे सावजनिक पद पर रह है या जो ऐसा व्यवसाय कर चुके हैं जिसके लिए माध्यमिक शिक्षा आवश्यक हो।

किसी नागरिकका तीनसे अधिक वोट देनेका अधिकार नहीं था।

एकसे अधिक वोट देनेकी प्रणाली (weightage system) में वे इस सिद्धांत का व्यावहारिक रूप है कि मतोंको गिना न जाय बल्कि सीसा जाय। उनका कहना था कि समाजमें कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनकी रायको सावजनिक अधिकारियोंके चनावमें अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। जॉन स्टुअर्ट मिल ने एकसे अधिक वोट देने की पद्धतिका समर्थन इस आधार पर किया था कि कम शिक्षा प्राप्त लोगोंकी सूझा अधिक हानिस मतदानके परिणाममें जा बुराईयाँ हो सकती हैं उनका निराकरण इस पद्धतिसे हो जाना है।

एकसे अधिक वोट देनेकी प्रणालीके विरुद्ध आपत्तियाँ

एकसे अधिक वोट देनेकी पद्धतिके विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ की जाती हैं

(१) मत गिननेका कोई भी मानदण्ड निरनुसंध (arbitrary) ही होता है।

(२) बहुधा लोगोंका दैव योगस सम्पत्ति मिल जाती है। अतः सम्पत्तिको राजनीतिक अधिकारका आधार बनाना अनिचित है।

(३) इस पद्धतिसे एक वर्गीय सरकारकी स्थापना होती है।

(४) एस्मीन के अनुसार इस प्रणालीके सिद्धान्तमें विराधाभास है। वह पूछते हैं कि यदि हम प्रणालीका सत्य व्यवस्थापिकाधिकारकी बुराईयोंको दूर करना है तो फिर क्या यह युक्तिसंगत न होगा कि सब प्रकारकी जनताको मतधिकार दिया ही न जाय।

बहुल मतपद्धति (Plural Voting)

बहुल मतपद्धति प्रणालीके अन्तर्गत एक व्यक्ति कभी-कभी दो वोट देता है। उदाहरणार्थ विधविद्यालयका एक स्नातक उस निर्वाचन क्षेत्रमें जिसमें वह रहता है वोट देनेके साथ ही विधविद्यालय-क्षेत्र भी वोट दे सकता है। एक व्यक्ति जिसका निवास-स्थान एक निर्वाचन-क्षेत्रमें है और १० पौंड वार्षिक किरायेकी उसकी दूकान दूसरे निर्वाचन-क्षेत्रमें है तो वह दाना निर्वाचन-क्षेत्रमें वोट दे सकता है। बहुत मतपद्धति किमी समय ब्रिटेन, भारत और जपानीय प्रचलित था पर अब इसकी प्रथा लगभग समाप्त हो गयी है।

अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व (Minority Representation)

अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधित्व देनेके लिए कुछ तरीके अपनाये जाते हैं भन्ना ही यह प्रतिनिधित्व उनका मतवाले जनपानमें न हो।

जो तरीके अपनाये जाते हैं उनमें से एक बहुमान या अनुपात प्रणाली (Cumulative Vote System) है। इस प्रणालीमें—

(१) निर्वाचन-क्षेत्र अवश्य ही बहु-संख्यीय होगा।

(२) मतदाताको अपने वोट देनेका अधिकार होगा कि जितने प्रतिनिधि चुने जाते होंगे हैं।

यदि पांच प्रतिनिधि चुने जानेको हैं तो एक मतदाताका पांच मत देनेका अधिकार होगा है। यदि मतदाता चाह ना पांच वोट एक ही प्रतिनिधिका या विभिन्न प्रतिनिधियोंको दे सकता है। इस प्रणाली द्वारा सुसंगठित अल्पसंख्यक समुदाय अपने सभी वोट अपने उम्मीदवारों के देकर अपने कम मतवाले एक प्रतिनिधि अवश्य चुन सकता है।

सीमित मत (Limited Vote) प्रणालीके अन्तर्गत

(१) निर्वाचन क्षेत्रोंका बहु-संख्यीय होना आवश्यक है।

(२) जितने प्रतिनिधि चुने जानेको होंगे हैं उतने एक या दो कम वोट देनेका अधिकार हर मतदाताको होता है।

(३) मतदाताओंका विभिन्न उम्मीदवारोंके पक्षमें वोट देना होता है।

इस प्रणालीके अन्तर्गत मतदाता एक या अधिक वोटों की सीमा पर अपना एक मात्र अधिकार नष्ट कर सकता है। अल्पसंख्यक या सुसंगठित समुदाय एक प्रतिनिधि अवश्य चुन सकता है।

अनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) एक सुसंगठित निर्वाचन-क्षेत्र में जब कभी एक से ज़्यादा वोटों के अधिक मतदाता वोट देते हैं तो यह प्रणाली अनुपात पर विचार करती है। यहाँ इस प्रकार वोट देना है कि कौनसा उम्मीदवार कितने वोटों के अनुपात में प्रतिनिधित्व करेगा।

है। नवम्बर १९३५ में ब्रिटेन ने आम चुनावों में बॉल्डविन का समयन करनेवाले दलने कॉमन्स सभा की ४३० सीटें प्राप्त कीं यद्यपि देन भरम उन्हें कुल १,१७,६४,६६० वोट मिले थे। दूसरी ओर बाल्डविन के विरोधी दलों ने १००,७१,९९३ मत पाने के बाद भी केवल १८५ सीटों पर अधिकार कर पाया। इस असंगत अवस्था को दूर करने के लिए अनेक युक्तियाँ निकाली गयी हैं। ये युक्तियाँ हैं द्वितीय मतपत्र (second ballot) वैकल्पिक मत (alternative vote) सीमित मत (limited vote) और एकल संक्रमणीय मत (single transferable vote) द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व।

इनमें से अन्तिम प्रणाली अर्थात् एकल संक्रमणीय मत प्रणाली अधिकतम 'याव संगत निर्वाचन फल देने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त जान पड़ती है। इसे ह्यर योजना (Hare plan) भी कहते हैं। पर अभी तक इस प्रणाली के लिए बहुत अधिक उदाहरण नहीं हैं। यद्यपि भारत ब्रिटिश उपनिवेशों और ब्रिटेन के कुछ निर्वाचन क्षेत्रों जैसे विश्वविद्यालय निर्वाचन-क्षेत्रों में इसका प्रयोग किया जाता है।

इस योजना के अनुसार किसी भी उम्मीदवार के निर्वाचन के लिए आवश्यक कोटा या निर्धारित भाग पहले से ही तय कर लिया जाता है। अर्थात् यह पहले से ही तय कर लिया जाता है कि कम से कम कितने वोट पाने पर उम्मीदवार निर्वाचित समझा जाएगा। इसका निश्चय इस सूत्र के अनुसार किया जाता है

$$\text{वोट} = \frac{\text{व्यक्त मत}}{\text{उम्मीदवारों की संख्या} + १} + १$$

मतदान मतपत्र में अपनी पसन्द की उम्मीदवारों के नामों के आगे १, २, ३, ४, ५ आदि अंक लिखकर प्रकट करता है। मतदान समाप्त हो जाने के बाद यह जोड़ा जाता है कि किस उम्मीदवार को १ नम्बर की पसन्द कितनी मिली है। जिन उम्मीदवारों को निश्चित कोट से अधिक मत मिलते हैं वे निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं। किसी भी वोट को बर्बाद न होने देने के लिए कोट से अधिक बचे हुए प्रथम वोटों को पसन्द के क्रम से मतपत्र की सूची में दूसरे उम्मीदवारों को दे दिया जाता है। मतपत्र में प्रकट की गयी पसन्द के क्रम से न केवल उन्हीं उम्मीदवारों के बच हुए वोट क्रमिक ढंग से दूसरे उम्मीदवारों को दिये जाते हैं जिन्हें आवश्यकता से अधिक वोट मिलते हैं बल्कि जिनके घुने जाने की कोई आशा नहीं होती अर्थात् जिन्हें बहुत कम वोट मिलते हैं उन उम्मीदवारों को भी प्रथम बरीयता (first preference) या पहली पसन्द के जितने मत मिलते हैं वे क्रमिक ढंग से दूसरों को दिये जाते हैं। उनके मतपत्रों की छान बीन उन्हें प्राप्त दूसरी तीसरी चौथी आदि बरीयताओं की गणना के लिए की जाती है और उसी के अनुसार बाट दूसरों को दिये जाते हैं। मतों का यह दोहरा हस्तान्तरण (two-fold transference) निर्वाचन प्रतियोगिता से बाहर न हो जाने वाले उम्मीदवारों की बीच तब तक चलता रहता है जब तक आवश्यक वोट पाने वाले उम्मीदवारों की संख्या उतनी नहीं हो जाती जितने प्रतिनिधि उस निर्वाचन-क्षेत्र से घुने जाने की

है। जमी स्थिति या ज्ञान पर लोगोंका हस्तान्तरण एक जाता है और परिणाम पापित कर दिया जाने है। जिस उम्मीदवादीको लोगोंके अधिक मत मिलने हैं उनके मतोंका हस्तान्तरण करने दिया जाता है और जिन लोगोंको बहुत कम मत मिलने हैं उनके मतोंका हस्तान्तरण इसके बाँटने ही दिया जाता है क्योंकि ऐसा करनेका अर्थ एक उम्मीदवादी का प्रतिनिधित्व बाहर हो जाना होता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अथ किसी प्रजापतीकी अथवा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रजापती द्वारा दाने राजनीतिक दलोंकी सांकेतिक सक्तिका प्रतिनिधित्व अधिक सज्जाई के साथ हा सकेगा। पर इसमें कुछ चुनियाँ भी हैं। इस प्रजापतीके पञ्चम्वरूप देशमें राजनीतिक दलोंकी संख्या बढ़ती है। यद्यपि देशका हिस्सा इसीमें है कि देशमें अधिक दल न होकर दो या तीन ही मुख्य दल हों। यह प्रजापती वक्तमान दलोंका सङ्घिवादी भी बनाती है। छात्र के छोटा गुण अपना अलग अस्तित्व बनाय रखनेको प्रोत्साहित होता है। छात्र का परम्पर सदुपायका आधार ओझकर एक दूसरेमें विनीत हानकी प्रतीति नहीं पत। इस प्रजापतीके दलगत व्यवस्थाकी मर्यादा करनेकी सम्भावना रहती है। सरल उम्मीदवादी करने निरासन उनके सम्मानमें पहल जैसी निरी दक्षि नहीं रखता। इसका कारण यह है कि उसका निरासन निराधारोंको सफलतापूर्वक अपनी ओर आकर्षित करने और सहानुभूतिपूर्ण बना लेनेकी उसकी क्षमता पर आधारित न होकर नैतिक एक मूल पर निर्भर करता है। मसम्म प्रतिनिधित्वोंका समन समूह होता है और इस कारण सुसम्बद्ध एकात्मिक मतिराशिपत्ता बनना असम्भव-सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर उदा निर्वाचन न हो सकेंगे जिनसे यह भोटा संकेत मिल सके कि उम्मीदवादी सरकारका निर्वाचक-अङ्गलका विजना विवास प्राप्त है। एक साधारण मतानाके लिए यह प्रजापती बहुत अल्प भी है।

इस सबी सबका समुचित उत्तर आनुपातिक प्रतिनिधित्वके समर्थकों ने दिया है। बालका और मनुष्य राज्य समेतिवादी मर्यादातिकारों जैसी छोटी-छोटी समस्याओं में यह पद्धति बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। हिन्दमें यद्यपि उदार दल (Liberal Party) आनुपातिक प्रतिनिधित्वका प्रबल समर्थक था पर अन्य दलों प्रदान दलों ने इस पद्धतिको ठीक नहीं समझा।

भारतीय मतिधानकी धारा ८० (४) में राज्य मन्त्राले चुनकरमें (क) और (ग) राज्यके प्रतिनिधित्वके निराधारोंके लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था की गयी है। इन धारा का प्रकार है 'राज्य-मन्त्राले लिए (क) और (ग) धाराके प्रावक राज्यके प्रतिनिधि उस राज्यकी विधान-मन्त्राले निर्वाचित सम्मानों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धतिसे अनुसार लान सकेगा मत्र राज्य निर्वाचित होंगे। भारतके राज्यनिर्वा निराधार भी आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी पद्धतिसे होता है। इस सम्मानमें धारा ३३ (१) का प्रकार है 'राज्यनिर्वा निराधार आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से अनुसार एकत्र मर्यादीत दल प्राप्त होगा तथा वे निर्वाचनमें मर्यादित रूप में भाग लेंगे (Control Ballot) प्राप्त होंगे।

इस धारा की टीका करते हुए डा० एम० पी० शर्मा^१ कहते हैं कि राष्ट्रपतिके निवाचनकी व्यवस्थाका असली रूप वरीयतानुसार (by preference) मतदान है न कि सच्चे आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा।

डा० आइवर जेनिंग्स (Dr Ivor Jennings) का मत है कि भारतीय संविधान की धारा ५५ (३) की अभिव्यक्ति अच्छी नहीं है। उनका कहना है कि धाराम आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली^२ शब्दों के स्थान पर एकात्मक मताधिकार की व्यवस्था शब्दों का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि यह आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था नहीं है।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि कुछ कारणों से भारत जैसे देशों के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था बहुत अधिक उपयोगी नहीं है। ये कारण हैं भाषा और जनसंख्या की विचलता जनताकी अविधि और निरक्षरता स्वस्थ राजनीतिक गण्य और अनुभव का अभाव तथा सुसंगठित राजनीतिक दलोंकी कमी।

कुछ और भी प्रणालियाँ हैं जिनके द्वारा अल्प-संख्यकों को यदि उनकी संख्या के अनुपात में नहीं तो कुछ न कुछ प्रतिनिधित्व मिल ही जाता है। ऐसी प्रणालियाँ संचित मतदान प्रणाली (cumulative vote system) तथा सीमित मतदान प्रणाली (limited vote system) हैं।

राजनीतिक दल (Political Parties)

डब्ल्यू बी० मन्नरो (W B Munro) ठीक ही लिखत है स्वतंत्र राजनीतिक दलों का शासन लोकतन्त्रीय शासनका दूसरा नाम है। वही भी राजनीतिक दलों के बिना स्वतंत्र शासन नहीं हो सका है। राजनीतिक दल प्राचीन गणतन्त्र और मध्य-कालीन नगरों में भी थे यद्यपि उन्हें इस नाम से नहीं पुकारा जाता था। अमेरिकी क्रान्ति के बहुत पहले ब्रिटन में लंकाशायर्स (Lancastrians) और यॉर्कशायर्स (Yorkists) तथा कैवेलियर्स (Cavaliers) और राउण्डहेड्स (Roundheads) थे। १३ उपनिवेशों में विल्स (Whigs) और टोरी (Tories) दल थे। ये प्रतिद्वन्द्वी गुट अपने झगड़ों का निपटारा मत गणना के बजाय कभी-कभी एक दूसरे का शिर तोड़कर भी करते थे। फिर भी हमारे आजकल के राजनीतिक दल इन्हीं गुटों के विकसित स्वरूप हैं।^३

आधुनिक सावतन्त्र की सफलता के लिए राजनीतिक दल अनिवार्य समझ जाते हैं। राजनीतिक दल से हमारा मतलब जनता की एक ऐसी संगठित संस्था है जो देश के राजनीतिक जीवन में कुछ सिद्धान्त और नीतियों को अपना सहज धनावर और उन सिद्धान्तों और आदर्शों को लागू करके सम्पूर्ण देश को सामान्य बनाना चाहती है।

^१ M P Sharma Government of the Indian Republic.

^२ W B Munro The Government of the United States II 113

बर्क (Burke) ने राजनीतिक दलनी परिभाषा इस प्रकार की है "योगाती एक ऐसी मरूपा जो किसी मिदलान् विनोपको त्रिस मरूपाके सभी साग म्कीकार कर लेते हैं आधार बनाकर अपने सन्मिनित प्रयन्मम राष्ट्रीय हितका उन्नतिके लिए मंगठित होनी है। पर हम यह पाए रगना चाहिए कि राजनीतिक दलका अर्थ गुन बन्पी नहा है और दलके विभिन्न नेताओंके बीच तीने मतभन्नोंको व्यक्तितगत मतभन् या मतगशा नन् समझना चाहिए। किसी भी एम राजनीतिक दलका मही अर्थोमि राजनीतिक दल नहीं बल्कि जा मरूपा जिसके निम्नन राजनीतिक मिदलान् और कार्य नम न हों।

यह ता मभा जानव हें कि एह ही परिवारक सम्पूर्ण भी स्वभाव और दुष्टि
बोव एह दूसरेन भिन्न हाने हैं। कुछ लोग स्वभावम ही दरवाज तथा बरून ही
सावधान हाने ॥ और चार्ड भी साहमयुग योजना आरम्भ करन हें। गाय ही
कुछ लोग निर्भीक साहसी और अवन बिचाराम जालिचारी हान हैं। दोर कल्याण
म न्तचित्त स्वतन्त्र जनता के बड़ समुदाय म इस प्रकार के मनम और भी बड़ पैमाने
पर मिलते हैं।

तानागाहीम विभिन्न नीतियाँ और बापकमा बाने राजनीतिक दलका बानन नही बिया जाना। आधुनिक तानागाहियाँ एक-दूसरी सामन है। एह एक-दूसरी सामन कहना भी बाह-म सागाके निरवुग सामनका निष् नाम देना है। दूसरी ओर समनैय सामन निश्चित रूपसे राजनीतिक दलका सामन हुना है। इस सामनम जनताका विचार और विचारकी पूर्ण स्वतन्त्रता रहनी है। बाने कि सावधानिय औषधिय और साधारण सिध्ताका उत्सधन न बिया जाय। एतन जनता अपने आपका एम प्रमि विभाजिन कर देनी है जैम कङ्गिवाणी दल (Conservatives) उदारम (Liberals) और मजदूर दल (Labour) अथवा गणतन्त्रवाणी (Republicans) और लोकतन्त्रवाणी (Democrats)। देवे सार्वजनिक जीवन और उत्तरी विचारसाम समय-समय पर परिवर्तन हुना रहना है। जन राज नीतिन दलोके नामसे उन दलोके बापकमा पना नह। जन पना। इन्के इति हासम एक एगा समय या उद उदारम बाणा या कि देवर औद्योगिक जीवनम सरकार किगी नकारका हासम न करे और लम्पदाकारी नीति बानी जाम जबकि कङ्गिवाणी दल उद्योगीका पर्वति निमदन करलेका और सामाजिक पुनर्निम-का समर्थक था। पर कछ समय बा इन् देवा दलारी नीति और विचार बिचन नह गये। मुक्त बाजार (free trade) और मजदूर जैम मोरिष देना पर भी दलका दुश्मका गिर नही रहा। जनविचारके मजदूरवाणि और मजदूरवाणि-के सिध्ता म पहा बा जो ऊपर रहा हा पर बाक बा विचार बा नह। है।

समन्वित साहित्यिक अन्वेषण से साहित्यिक दृष्टिकोण का विकास हो
 में आगे बढ़ेगा है। हमारे साहित्यिक और विज्ञानिक क्षेत्रों में व्याप्त समन्वय
 कायम करने में सहायता मिलती है। यह अन्वेषण ही हमारे साहित्यिक क्षेत्र

का आधार है। विधायिकामें जो दन सत्कार्य होना है उसीसे माध्यामिका वा भी निर्माण होता है। जब राष्ट्रीय सवटके समय संयुक्त सरकार बनती है तब मप्रिमण्डल र्म दत्ताका प्रतिनिधित्व ससद के प्रथम सत्रमें उनकी दक्षिणके अनुपातसे होता है। ब्रिटेनमें द्वितीय महामुद्रके समय बिस्टन चर्चिल (Winston Churchill) के प्रधान मन्त्रित्व में ऐसा ही हुआ था।

कार्यपालिका और विधायिकामें अच्छा सम्बन्ध स्थापित करनेकी सुविधा अमेरिकाके सविधानमें नहीं है। अमेरिकामें यह सम्भव है कि सरकारने इन दोनों अंगों पर विरोधी दलोंका अधिकार हो जाय अर्थात् एक अंग पर एक दल का अधिकार हो और दूसरे अंग पर दूसरे दलका। परन्तु ऐसे देशमें भी महत्वपूर्ण सामयिक समस्याओं पर लोकमत तैयार करने में राजनीतिक दलोंका बहुत ही महत्वपूर्ण योग रहता है।

निस्सन्देह आधुनिक रा-योंकी जटिल परिस्थितियोंमें समस्याओं और नीतियों को स्पष्ट करनेमें राजनीतिक दल महत्वपूर्ण योग देते हैं। परम्पर विरोधी नीतियों और जटिल विवरणोंके माध्यामिकाके बीच अपना मार्ग तय करनेमें व्यक्ति को राजनीतिक दलोंकी प्रणालीसे बहुत अधिक सहायता मिलती है। आधुनिक सरकारों के सामने समस्याएँ बहुत पेचीली और मुश्किलसे समझ में आनेवाली होती हैं। ऐसी हालतमें यदि राजनीतिक दन जनताका संगठित मार्ग प्रदत्त न करें तो एक साधारण मतदाता विकर्तव्य विमूढ़ हो जायगा। किसी मुकदमे में विभिन्न पक्षोंका समर्थन करते हुए वकील जो काम करते हैं वही काम राजनीति में राजनीतिक दल करते हैं। जिस प्रकार दोनों पक्षों के वकीलों की जिरह बहस आदि से ग्यावाधीरा मामले को ठीक प्रकार समझ लेता है उसी प्रकार राजनीतिक दलों का प्रचार से मतदाता देशकी समस्याएँ और उनका हल समझकर अपना कर्तव्य निश्चित कर लेते हैं। जैसे एक चतुर वकील घलतकी सही और सहीको घलत सिद्ध कर सकता है ठीक उसी प्रकार एक राजनीतिक दल भी झूठे प्रचार तारों और प्रचार चित्रोंके द्वारा जनताको बिल्कुल घलत मार्ग पर ले जा सकता है। पर ऐसी जालें हमेशा सफल नहीं होती विशेषकर यदि मतदाता शिक्षित जानकार और समझदार हैं। राजनीतिक दलोंमें होनेवाले विवादोंसे मतदाता स्वयं सरफ को भोज निकालता है। बॉवेल ठीक ही कहते हैं कि राजनीतिक दल विचारोंकी दलाली (broker of ideas) का काम करते हैं। राजनीतिक दल मतदाताओंके सम्मुख अपने-अपने कार्यक्रम और उम्मीदवार पेश करते हैं और मतदाताको उनमेंसे चुनाव करना होता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण काम राजनीतिक दल यह करते हैं कि वे लोक-सम्मतिके विकासमें सहायता देते हैं जोकि लोकतन्त्रका सार-तत्त्व है।

अन्ततः के विवेचनका निष्कर्ष यह है कि जिन देशोंमें सासनकी ससदीय प्रणाली अपना ली है उनमें राजनीतिक दलोंसे सरकारको सफल और स्थायी बनानेमें सहायता मिलती है। दोनों प्रकार के लोकतन्त्रवाणी देशोंमें—जिनमें समन्वय शासन

व्यवस्था है और जिनमें ऐसी व्यवस्था न है—इन राजनीतिक दलोंमें निशाचरोंको मरना मत निमाण करनेमें सहायता मिलनी है।

पर कुछ आपुनिक विचारकोंने इस दल-पद्धतिकी उरपागिता पर गम्भार आगवाएँ प्रकट की हैं। दल पद्धति का प्रथम रक्षणके विरोधिया का कहना है कि दलगत भावना प्रायः गुल्बगीकी भावना होती है। दलोंमें घुसगारी और भ्रष्टाचार फैलता है और दलके विधायकों और सामान्य जनता दोनों पर ही व्यापक अन्याय हो जाता है। इन सभी आरोहोंमें इनकी सत्यता ता है ही कि वे बाहर से सही लगती हैं। पर यह भी बात रचना चाहिए कि इन आरोहोंका बड़ा-बड़ा कर कहना भी बहुत आसान है।

बिस्मिल भी राजनीतिक दलका पहला उद्घास होता है। सत्तारूपा पाना और राजनीतिक दल सत्तारूपा पानेकी धुनमें बोट पानेके लिए अनुचित साधनोंको अपनाने हैं। अधिक से अधिक बोट पानेके लिए दलोंमें सबको अधिकतम अधिक विमल और आवाहीन बना दिया जाता है। ऐसे-एसे बाँध कर दिए जाते हैं जिनके पूरा करनेका कभी प्रयास ही नहीं होता। राजनीतिक विराधियों और विराधी राजनीतिक कार्यकर्ताओंका मजबूत उद्घास होता है और उनको ज्ञान इसमें पैदा किया जाता है। निर्वाचक का इनने सीमित दायरे में से चुनना पड़ता है कि प्रायः उन एक घन और एक मूल्य के बीच चुनाव करना पड़ता है। दल भावना और दलगत निष्ठा का इनका अधिक उल्लास होता है कि उत्तमता और ईमानदारी भावनाएँ प्रयत्न हो उठती हैं और स्थिर बिम होकर विचार और वाप करनेका अवसर नहीं रह जाता। जब सरकार द्वारा नियुक्तियोंका समय आता है तब दलके अध्यक्ष समर्थनों को ही नियुक्त किया जाता है। उनको विराधी दलों और निम्नोप मुपाय व्यक्तियोंमें भी अधिक उत्तम गणना जाता है। समुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में राजनीतिक दल सामनको भ्रष्ट बना देते हैं। अमेरिकामें कई पीढ़ियों तक 'स्पूल-सिस्टम' प्रथा (spoils system) का बोल-आता रहा है। मंत्र-दाताओंको भूमि मिल जाती है उनकी मूलाधार की जाती है और उन्हें सम्मानाया तथा योग्य दिया जाता है। साईं कांस का कहना है कि दल प्रणाली 'राजनीतिको पवित्र और कुलित (corrupt) बना दिया है। राजनीतिक दलोंके मण्डलों पर इतना दृढ़ दलगत अन्याय रहता है कि

‘स्पूल-सिस्टम’ प्रथा (Spoils System) मंत्र-दाताओं अमेरिका में प्रारंभिक राजनीतिक दल नाम चुनाव में विजय होना और शासनारम्भ होने के बाद अपनी विजयमें अधिक ॥ अधिक लाभ उठाने के प्रयत्न में सामन्य व्यक्तियों को परमान्ता नियुक्त करना था। यदि एक समय एक दल शासनारम्भ था तो उसके सामन सरकारी पदों पर थे। यदि अन्य दलका मंत्र दल होकर शासन का और दूसरा दल शासनारम्भ होता था तो विजयी दल सामन मंत्र बजा दिया। जो सरकारी पद न हगार उनके स्थान पर अपने भागी निरुक्त करना था। यही ही स्पूल-सिस्टम प्रथा कहते हैं।

व्यक्तिगत विवेक और स्वतंत्र मतमानके बिना कोई अवसर ही नहीं रह जाता।

दलके सदस्योंको विधायकताम मूक पशुआकी भाँति काम करना होता है। उन्हें दबने सचेतक (whip) की आवाजावा धुपचाप पासन करना होता है। दलकी गुप्त समाश्राम विधायिकाके बाहर निर्णय होते हैं और सदन का उपयोग उन निर्णयोंको स्वीकार करा लेने के लिए ही होता है। व्यक्तिगतको दबा दिया जाता है और सदस्योंको अपने व्यवहारम असत्य और विचारो तया कार्यमें छिद्रता होनेके लिए उत्साहित किया जाता है। दलकी जगाम कुछ स्वार्थी व्यक्तिगते नियंत्रणमें रहती है जो अधिपुरुष (boss) बने रहते हैं और सामान्यमान सच्चे और चरित्रवान व्यक्तिगते विरुद्ध गुप्त या खुला सवप करते हैं। मार्बजनिन कामोंका निष्पन्न अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंको इन आलोचनामा मे से यन् सब नहीं तो कुछ की गुहता का मानना हो होगा। पर सम्भव है कि वह वाँसकी फामिने कारण मिथी पँक देनेके लिए तैयार न हों। श्री एम० एस० आयरर को विधायककी स्वाधीनता छिन जानेकी बड़ी चिन्ता है। पर हमे यह न भूलना चाहिए कि विधायक सभी बड़े गम्भीर विचारक नहीं होते। उनमेंसे बहुतसे एल होते हैं कि उन्हें प्रत्येक विवरण की स्वयं परीक्षा करनेकी अपेक्षा एक बना-बनाया कार्यक्रम और बनी बनायी नीति पालन ही अधिक सुख होता है जिसका अनकरण वे आस भूँदकर कर सकें। सम्भवतः विवरणोंकी परीक्षा करनेकी उलम क्षमता ही नहीं होनी। इसके अतिरिक्त दलकी बैठकों में होनेवाले निश्चया और दलकी नीतियों पर अपना प्रभाव डालना एक सक्रिय सदस्यके लिए सदैव सम्भव रहता है। इसमें कोई शक नहीं कि दलगत अनुशासन व्यक्तिगत सदस्योंकी यह भावना (egoism) पर रोक लगाता है। वह उनकी महत्वाकांक्षाओं और असंगत विचारोंको दबा देता है और उन्हें अपने साथ सोचने और काम करनेवाले दूसरे सदस्योंके बीच उपयुक्त स्थान ग्रहण करनेमें सहायता देता है। भारत जैसे देशमें तथा अन्य देशोंमें भी राजनीतिक दलोंको बिल्कुल समाप्त कर देनेका तात्पर्य होगा व्यक्तिवादका आवश्यकतासे अधिक विकास अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिका अलग अलग अपनी लिचडी पकाना। यदि अवश्यतामें अधिक अनुशासन बुरा है तो आवश्यकतामें अधिक व्यक्तिवाद भी उतना ही बुरा है। जो साग यह आरोप लगाते हैं कि दलों के अस्तित्वसे तानाशाहीकी उत्पत्ति होती है उनको हमारा उत्तर यह है कि तानाशाही संविधानकी परिधिमें भीतर काम करनेवाली सुगमिस्त दल प्रणालीसे नहीं उत्पन्न होती। वह तो दल प्रणालीके विघटन जाने और टूट जाने (disintegration) से उत्पन्न होती है अर्थात् कांसिस्टेंट टूटनी और नाजो जमनीम हुआ था। धुताबने सभी साधना से मुसगठित दलके अभावमें समर्थ और सुवाम्य विन्तु गरीब उम्मीदवालोंके बने जाने की कोई आशा नहीं होती।

अगर हम श्री आयरर के सुझावोंका मानकर तथा बिधि बनाकर राजनीतिक दलोंके कोपको खत्म कर उनके संगठनको समाप्त कर दें तो राजनीतिक दल अवश्य

ही किसी दूगरे रूपम फिरस पनौत। उनका यह रूप और अधिक अवाधनाय हागा। जब राजनीतिक दनाका गुप्त तौर पर काम करना पडता है तब व कूट मण्डलियो (secret cliques) बन जाने हैं और अवन स्वार्थक लिए मषय करम हैं। यहा पर यह स्मरण करना सिगाप्रद हागा कि स्विजरलण्डमें भी जहाँ दसगत भावनाका सबसे कम विकास हुआ है अब प्रकृति दन प्रणानीका मजबून करनेकी आर है।

राजनैतिक दलों की सकलता के लिए आवश्यक नहीं कि देश में जो मुद्दे उत्पन्न होते हैं उन में हमें हम प्रगतिशील संरचनाओं के कार्य करनी है। दूसरे स्वयं कार्य-संचालन के लिए यह आवश्यक है कि देश में दृढ़ सरकार हो और साथ ही उनका ही दृढ़ विरोधी भी हो जो लोकहित के बलविक्रम योजनाओं जनता के सामने उपस्थित करे। यदि दल को बल प्रदान करने के लिए यह सच करना है तो सरकारी दल के अतिरिक्त विरोधी दल होना भी आवश्यक है। द्वितीय विरोधी दल काव्यजनित कार्य के संचालन में बहुत ही महत्वपूर्ण योग देता है। सरकार के प्रस्तावित कार्यों की उत्तरदायित्वपूर्ण आलोचना करके विरोधी दल न केवल सरकार का सच और सावधान बनाये रखता है बल्कि जनता की भी बहुत बड़ी सेवा करता है। इसलिए हमें कोई आश्चर्य नहीं है कि द्वितीय विरोधी दल को सत्ता के विरोधी दल कहा जाता है। द्वितीय और जनता के विरोधी दल नताओं के बतलाने हैं। वे उन प्रकार इस व्यवस्था के स्वीकार किया जाता है कि विरोधी दल के नेता का नाम समर्थ उनका ही महत्वपूर्ण है जितना कि सरकार के किसी मन्त्रिण।

बहुन्माय व्यवस्थाकी वमजोरो प्रामुख स्पष्ट करने गिनाई देती है। वहाँ सन्ध विभिन्न दनोंके सन्धवि बाब मात नाव और मीनेबादाव बा मरवार बनती हैं। य सन्ध बिना किसी सुकोषक जरा उराम बगने मकर एव दलस दूमर दनम बन जात है। इसनिए इसम कोई भाचर्यकी बात नहा है बि प्रामुका सरकारें बिन्धुन ही बस्पायी हाती हैं और बिषायकोंकी कृपा पर निभर रहती हैं। बहुन सम्भव है बि इतिहासकार प्रायकी बहुन्माय व्यवस्था ही माही जमनीरे हाया हुई प्रामुकी पराजयका एक बहुन बड़ा कारण ठहराये।

यदि सोचमनम आद्य और स्वाध्याय द्वाका निमाण राकनेही तस्मिन् नही है ता
निर बिधिया सहारा मेना हुआ। जनताको चाहिए कि हर मन दनका कुछ बरो तक
परम और स्वाधीन तौर पर उस मान्यता प्राप्त करनेक पहलु बननी सम्भार सिद्ध
करनेक लिए उसे मजबूर करे। एग दनका जाबिन रहनेका कोई अधिकार नहीं है
जिनके पास बतमान दनक मोनिक क्रम मिश्र अपनी पुष्क दावनाएँ और नीति
महा। हम हमना दह कायिग करनी चायिग कि एग दूसरम विपन्न-जपन छ
गुनाएँ एक दूसरमें बिचलन हुना जाय ताकि दाम ना मजबूर दनाम अपिब दन न
रहें। ऐसे किनी दनका ब निग नही करना चायिग आ दूसर सभी दनाक समान
कर अपनी तानाशाही स्थापित करना चाहता हो।

राष्ट्रनीतिमें एक हलोक कोई स्थानी स्थान नहीं है जिनके आधार पर जानि

धर्म या सम्प्रदाय है। वे राष्ट्रीय दुर्बलताके सफल कारण हैं। विभक्त मूलतः प्रभुत्विया को बढ़ाते रहनेके कारण वे अपनेकी स्वार्थी विचारियोंकी शृंखला पात्र बना सते हैं। ऐसे दस व्यापक राष्ट्रीय समस्याओं पर भी जातीय या साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे विचार करते हैं। सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक नीतियों तथा योजनाओंके बारेमें उनके विचार उनके जातीय और साम्प्रदायिक दृष्टिकोणके कारण दूषित हो जाते हैं। राष्ट्रीय संकटके समय राजनीतिक दलोंकी अपने भेद भुलाकर एक साथ मिलकर एक दलकी भांति काम करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

किसी भी दलकी किसी भी अवस्थामे अपनी निजी सना रसनेकी अनुमति नहीं मिलनी चाहिए। हम यह भली भांति जानते हैं कि जर्मनीमें नाज़ियों और इटलीमें फ़ासिस्मोंने अपनी निजी सेनाओंके बल पर ही राजसत्ता पर अधिकार किया था। लोगोंको समझाने-बुझाने और उन्हें विश्वस्त करनेका साधन ही वह साधन है जो किसी भी दलकी अपने अनुयायी बनाने या बढ़ानेके लिए प्राप्त हो सकता है। बसिर परकी लम्बी चौड़ी बातें करना और दार्शनिक व्यक्तिवा सहारा लेना जंगलीपनकी निशानी है। लोकतन्त्र तभी सफल हो सकता है जब चुनावमें पराजित होनेवाले राजनीतिक अल्पमत अपनी पराजय उदारताके साथ स्वीकार करें। उनका सांविधानिक अधिकार केवल यही है कि वे लोगोंको समझा-बुझाकर और उनका विश्वास प्राप्त कर अपना बहुमत बना लें।

दलगत सरकारकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि प्रशासनको राजनीतिक दला और राजनीतिज्ञोंकी पहुँचके पर रखा जाय। एहीसे लेकर चौड़ी तकके सभी सरकारी अधिकारियोंका चयन योग्यताके आधार पर एवं एही संस्था द्वारा किया जाना चाहिए जो अपनी निष्पक्षताके कारण हर व्यक्तिकी श्रद्धाका साजन हो। जो सरकारी अधिकारी अपनी जाति या सम्प्रदायके लोगोंके साथ पक्षपात करनेके अपराधो पाय जायें उनके विरुद्ध कठोर कार्रवाई की जानी चाहिए। सरकारी नौकराकी भरती स्थानान्तरण और उनकी पगोपति सावजनिक सेवाके स्वीकृत सिद्धान्तोंके अनुसार ही होनी चाहिए।

दलों परसे अवसरवादियोंका प्रभुत्व समाप्त करनेका हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए। दलको अपने-अपने स्वार्थोंकी सिद्धिवा साधन बनानेवालाको दलसे बाहर निकाल देना चाहिए। इस उद्देश्यकी सिद्धिने लिए स्वस्थ लोकमतकी आवश्यकता है। असाधारण सामर्थ्य और असदिग्ध चरित्रवाले नेता राजनीतिक दलके जीवन मूल हैं।

दल प्रणालीकी विफलतासे स्वयं जनताकी विफलता सिद्ध होती है। यदि मतदाना समझदार और विवेकपूर्ण नहीं है और भले बुरे की पहचान नहीं रखते हैं तो देनाम दलीय तानाशाही अवश्य कायम हो जायगी। यह कहना तो मूर्खता है कि कृष्णकि किसीके पिता और दादने किसी बिनापदल या व्यक्ति को अपना मत दिया था इसलिए उस व्यक्तिको भी उसी दल या व्यक्तिको अपना मत देना चाहिए। यह भी एक मूर्खता की बात है कि भूँकि किसी वर्ग या व्यवसायके सदस्य किसी एक विरोध दल या व्यक्ति का वोट दे रहे हैं इसलिए उस वर्ग या व्यवसायके हर सम्प्रदायी उसी दल या व्यक्तिको

घाट देना चाहिए। एक समस्त मनःपुत्र का आवश्यकता पड़ने पर इस प्रकारके प्रभावका टट कर शिराफ करना चाहिए और उसे अपनी अन्तरात्मा और विवेककी प्रेरणाके अनुसार बाँटना चाहिए।

यदि राजनीतिज्ञों और माध्याम जनताम चरित्रहीनता है तो इन पद्धतियों विनयता निश्चित है। दलीय सामान्यीकरण के लिए सबसे पहली आवश्यकता उच्च क्रांतिकी सांख्यिकी ईमानदारी और अग्रिम-गौरवकी भावना है। मन्थारि, ईमानदारी और सांख्यिकी कल्याणकी प्रबल भावना बिना राजनीतिक दल कुल्लु मात्र इन मात्र हैं। ये जनताम चरित्रका पतन करने हैं और इनके जीवन तत्त्वोंका समाप्त करने रहते हैं। मन्थारि अपने स्वतंत्रता और विवेक धूमधारी और धर्मधारा के प्रति पणा तथा सांख्यिकी कर्तव्यकी प्रबल भावना उत्पन्न करनी चाहिए। दोनों को सांख्यिकी हिन सिद्ध करनेके सहकारी साधन बन जाना चाहिए। जनताम उच्चकोटिकी चरित्र हिन बिना किसी प्रकारकी भी सरकार विघटनकर सांख्यिकीय सरकार विनय ही सिद्ध होगा। ईमानदारी और जानकार प्रस और सांख्यिकीय मन्त्र राजनीतिक दलका सांख्यिकीय सन्धारक बनार और तम रास्ते पर चलनेके लिए बहुत श्रुति मजबूर कर सकते हैं।

कायपालिका (The Executive)

आधुनिक राज्यम बाध्यानिवाका स्थान इगना महबूब हाना है कि प्रायः उमीरे
 लिए सरकार बाध्या प्रयोग किया जाना है यदपि बालबम बाध्यानिवा सरकारका
 बचन एक अंग है। अनाउतनवाणी देगामि बाध्यानिवासी सत्ता ही सर्वोत्तमा हानी है।
 साकतनीय देगामि भी इगही अधिकार-भत्ता त्रिननी समती जाती है उसग बल
 अधि हानी है। फ़ाइनर (Finer) का बाना है कि बिषादिका और ग्यादनातिका
 आनि सरकारके अंग अंगामि जब अधिकारका बँटबाण हा बचना है तब बने हुए
 समस्त अधिकारोंकी गताधिकारी (residual legatee) बाध्यानिवा ही होनी है।
 बिषादिका गारा बनीनी गरी और अनाउता गारा सातू की गरी बिषादके बाध्यान्वय
 व अनिश्चित और था। बल ग दूसर काम बाध्यानिवा बानी है।

[illegible]

अन्य प्रशासनीय कार्य भी करता है। उसके द्वारा की गयी अनेक नियुक्तियाँ उसकी पदावधि तक ही रहती हैं। फ्रांस में नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है परन्तु वास्तविक वह छठ बपके लिए चुना जाता है और उसका सम्बन्ध बहुधा एक राजनैतिक दल से होता है इससे उसका उतना प्रतिष्ठा नहीं मिलती जितनी कि ब्रिटेन के सम्राट की होती है। वेमर संविधान (Weimar Constitution) के अन्तर्गत जर्मनी में राष्ट्रपति की स्थिति अमेरिकी और फ्रांसीसी राष्ट्रपतियों के बीच की सी थी। यद्यपि उसका भुकाव फ्रांसीसी राष्ट्रपति की स्थिति की ओर अधिक था।

संसदीय शासन के देशों में नाममात्र की कार्यपालिका को देने के वास्तविक शासन का काम बहुत कम करना पड़ता है। यद्यपि तो सांग नामन उन्हीं के नाम पर होता है पर उससे सांग कार्यों पर एक मंत्री की सहमति आवश्यक होती है जो मंत्रिमण्डल विधायिका और जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। नाममात्र की कार्यपालिका द्वारा किये जानेवाले अन्य कार्य एक प्रकार से रस्मी काम होते हैं जैसे ब्रिटेन के सम्राट द्वारा किये जानेवाले कार्य। वह संसद का अधिवेशन बुलाता है स्थगित करता है और उसे भंग करता है पर वह सब काम संवैधानिक मंत्रिमण्डल के निश्चय के अनुसार ही होता है। सम्राट तो नाममात्र के लिए सम्प्रभु होता है। वह राज तो करता है पर शासन नहीं करता। यह सही है कि प्रधान-मंत्री के चुनने में सम्राट का कुछ हाथ रहता है किन्तु तब जब किसी दल में एक अधिक स्वीकृत नता होते हैं या जब निचले सदन में किसी भी एक दल का पूर्ण बहुमत नहीं होता। पर इस स्थिति में भी वह चाहे जिसे प्रधान मंत्री नहीं बन सकता। उसे कुछ विधायक व्यक्तिगत रूप से एक का छोट लना होता है। सन् १७८४ ई० से लेकर आज तक कोई भी मंत्रिमण्डल भंग नहीं किया गया यद्यपि सम्राट की मंत्रिमण्डल भंग करने का अधिकार है। नियमाधिकार (the power of veto) का प्रयोग भी १७०७ से आज तक नहीं हुआ। इससे सम्राट की जो शक्ति है वह उसके प्रभाव के कारण और दलबन्धी से परे होने के कारण है न कि प्रत्यक्ष रूप से बरती जानेवाली उसकी अधिकार-सत्ता के कारण। वह सरकार के प्रति आदर तथा विधियों के पालन करने की भावना को जन्म देता है। बेगहाट (Bagshot) के अनुसार सम्राट के अधिकार हैं सलाह लिये जाने का अधिकार प्रोत्साहन देने का अधिकार और बनावनी देने का अधिकार। जहाँ तक अंग्रेजी साम्राज्य का सम्बन्ध है सम्राट साम्राज्य की एकता का प्रतीक और सत्ता के विभिन्न भागों में फैले विभिन्न देश और जातियों का एक ही धाँप रखने वाला महत्वपूर्ण सूत्र है।

फ्रांस में नाममात्र की कार्यपालिका बड़ा ही राष्ट्रपति होता है। उसका चुनाव सात बपके लिए दाना सत्ता की सम्मिश्रित बैठक में होता है। यह सम्पूर्ण अधिवेशन विधायक सभा की कार्य के लिए बनाया जाता है। सिद्धान्त रूप से उसे वे सब अधिकार प्राप्त हैं जो अमेरिका के राष्ट्रपति को हैं—केवल एक नियमाधिकार छोड़ कर। ब्रिटेन के सम्राट का अधिकार है कि अधिकार फ्रांस के राष्ट्रपति को भी हैं। पर व्यवहार में वह न तो राज्य करता है और न शासन करता है। यह कथन सत्य ही है कि वह सोहे

क पित्रात्मक बनाये गये मान है। यह ज़रूरी है कि प्रासंगिक राष्ट्रपति के हर कार्य तथा हर आदेश पर मन्त्रालय भी हस्ताक्षर हों और यह मन्त्री स्वयं मसजिदें प्रति उत्तरदायी होता है इतिहास प्रासंगिक वास्तविक शासन करनेवाली अधिकार-मन्त्रालय है न कि राष्ट्रपति। यद्यपि एक ही नाम ऐसा है जिसे राष्ट्रपति मन्त्री की मजूरी के बिना कर सकता है और वह नाम है राष्ट्रपति उद्योगों से सम्बन्धित सम्पत्ति का आगमन ग्रहण करना। वह बचन नाममात्र का प्रदान है सत्ता उसे कार्यकाय सम्पत्ति हानि के पहलू ही स्वाभाविक दानों लिए मजबूर कर सकती है जैसे मिलर (Millerand) के साथ हुआ था। प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) उसका ऊपर धार देना चाहता अभिप्राय लगा सकती है और सीनेट (Senate) उस अभिप्राय पर विचार करता है।

यदि मन्त्रिपरिषद् अन्तर्गत जर्मनी नाम राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका था। प्रासंगिक राष्ट्रपतिक विपरीत उस जनता चुनती थी और जनता ही को उसका प्रत्यावर्तन (recall) का भी अधिकार था। जर्मनी के राष्ट्रपति का प्रासंगिक राष्ट्रपति की अवस्था अधिक व्यापक अधिकार दिये गये थे। जर्मनी का राष्ट्रपति मन्त्रालय स्वतन्त्र त्रिभुज विधायकों का स्वीकार नहीं करता था उन्हें साक्षर-निर्णय (referendum) के लिए जनता के सम्मुख उपस्थित कर सकता था। उसे नियमाधिकार नहीं प्राप्त था। वह मुद्रा की स्थिति की घोषणा कर सकता था। नागरिकों के अनेक सांख्यिक अधिकारों का त्याग कर सकता था और एक सैनिकी शक्ति प्राप्त कर सकता था। पर प्रासंगिक मन्त्रालय विधायिका ही मुद्रा की स्थिति को धारण कर सकती है। प्रासंगिक राष्ट्रपति सीनेट की स्वीकृति ही नियम सन्तरी भग कर सकता है परन्तु जर्मनी का राष्ट्रपति अपने अधिकारों के बावजूद ही नियम सन्तरी भग कर सकता था। पर स्वाभाविक तौर पर हम अधिकारों का कोई विचार नहीं करनी चाहिए कि उनके मन्त्रालय और प्रासंगिक राष्ट्रपति की भाँति जर्मनी के राष्ट्रपति के कार्योत्तर भी किसी उत्तरदायी मन्त्री द्वारा प्रति हस्ताक्षरित (countersigned) होना आवश्यक था। पर प्रासंगिक विधायिका का यह अधिकार नहीं था कि वह उसका अधिकार धारण कर उसे अपने अधीन कर ले और उक्त स्वाभाविक दानों लिए मजबूर कर सके जैसा कि प्रासंगिक हो सकता है। विधायिका नियम सन्तरी का निर्णय कर सकता राष्ट्रपति के नियमित (suspend) कर सकती थी और उसे जन प्रत्यावर्तन (popular recall) के लिए जनता के सम्मुख धार कर सकता थी। यदि जनता राष्ट्रपति को अपना विचार प्रकट कर देना चाहता (Reichstag) भग करती जाती थी और नया मन्त्र चुना जाता था। राष्ट्रपति का स्वभाविक भाग योंके लिए दूसरी पद्धति मिल जाती थी। मन्त्रों के दा-निर्णय का राष्ट्रपति पर अभिप्राय भी लगाया जा सकता था और उसके विरुद्ध मन्त्रों के विधानों का उद्योग-मूलक उन्मूलन करने के लिए मन्त्रों के स्वाभाविक मन्त्रों भी भगना जा सकता था।

मन्त्री मन्त्रालय (मन्त्री जनता) के कार्योत्तर मन्त्रिपरिषद् के अन्तर्गत मन्त्रों के राष्ट्रपति का चुनाव मन्त्र-अधिकारों के बिना विचार के होता है। इन अधिकारों के नियम २०-२१ धारा

३०८ राजनीति गुरु

उपयोग सब तक नहु विना जाना जब तक उसे यह विश्वास नहीं हा जाता कि उसके इस कार्यको जनताका समर्थन प्राप्त है। बिनाय वगिनाइयाँ ता उस समय उत्पन्न होती है जब ससदम एक दलका बहुमत हुना है और राष्ट्रपति दूसरे सत्ता सत्ता होता है। एसी कठिनाइयाँ १९४६ म राष्ट्रपति ट्रुमन (President Truman) के समयम पदा हुई थी। कभी-कभी राष्ट्रपतिको बदनाम करनेके लिए अच्छ विधायक भी नामझूर कर दिये जाते हैं।

संसद अपने मन्त्रिमण्डलके सन्ध्याका स्वय मनोनीत करता है। मन्त्रिमण्डल प्रति नही। व ससद (Congress) के द्वारा ही नियुक्त होती है। ससद

ता है। एसी कठिनाइयाँ १९०५ के सम्मेलन में उत्पन्न हुई थी। कमी-कमी राष्ट्रपति को बदलना पड़ा। समय पदा हुई थी। कमी-कमी राष्ट्रपति को बदलना पड़ा। समय पदा हुई थी। कमी-कमी राष्ट्रपति को बदलना पड़ा। समय पदा हुई थी।

विधायिका के साथ बहुत कम संबंध है। किंतु फिर भी वह सर्वोच्च न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त की जाती है। किंतु फिर भी वह सर्वोच्च न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त की जाती है। किंतु फिर भी वह सर्वोच्च न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त की जाती है।

जिसे राष्ट्रका प्रवक्ता माना जाये। यह देश के प्रति
निष्ठा देता है वही राष्ट्रीय-मन होता है। सर्वदलीय
ध्यापक अधिकार दे दिये जाते हैं।
स्विट्जरलैण्डकी वायपालिका निस्सन्देह अपने ढंगकी अनुडी है। यह सात
सन्स्योंकी एक परिषद् हाती है जिसका चुनाव सत्तारूढ़ दाना सदस्योंकी सम्मिलित
बैठकमें तीन वर्षोंके लिए किया जाता है। इसका नियंत्रण संसदेके हाथमें रहता है।
अतः अविश्वास या निर्णिके प्रस्तावने कारण त्यागपत्र दे देने का प्रश्न ही नहीं उठता।
यदि सत्ता परिषदेके बायीं अध्यक्ष उसकी नीतियाँ समयमें नही करती तो परिषद
उसमें आवश्यक संशोधन कर देती है और अपना काम चालू रखती है। यह दूसरी
शासन नहीं है और इसमें कोई प्रधानमंत्री नहीं होता। सात सदस्योंमें से एक को प्रति

(Sunday Rodgers) के अनुसार विधि निमाण जो राष्ट्र
प्रधान कार्य हो गया है। अब वह
इसमें उस

• लिण्डसे रॉडर्स (Lindsay Rodgers) के अनुसार विधि निमाण जो राष्ट्र पत्रिका उपान्तर (minor) वर्तव्य या अब उसका प्रमाण कार्य हो गया है। अब वह प्रमाण विधि निर्माता है। उसका मूल्यांकन अब कार्यपालिकाके रूपमे उसकी सपनवाजी ज्येष्ठा एवं विधायकके रूपमें उसकी सफलताके आधार पर किया जाता है।

करं प्रत्येक वस्तु का होता है। यह केवल समापन होता है। यह समान सहयोगियों में प्रथम नहीं होता जैसा कि ट्रिनिदाद प्रधान-मंत्री होता है। उसे अपने सहयोगियों की ओर अधिक अधिकार नहीं प्राप्त हैं। यह कार्यपालिका सभी सभी काम करता है। परियोजना काय विभागों में बंटा रहता है और हर विभाग एक समूह के गुट में रहता है। क्योंकि परियोजना नियंत्रण विधि एक के हाथ में नहीं होता इसलिए स्विट्जरलैंड की कार्यपालिका को बहु-कार्यपालिका (plural-executive) कहा जाता है। यद्यपि आमनीय बहु-कार्यपालिका के कारण एकता निर्माण और काम करता रहता समाप्त हो जाता है किन्तु स्विट्जरलैंड के विधान में इस प्रकार की कार्यपालिका के बहुत अधिक समय तक प्रचलित रहने में इस प्रकार की सम्मान जनता में इस प्रकार की को मान्य बनाया है। इसके अनिश्चित स्विट्जरलैंड के निवासियों के स्वभाव में हम सभी की साथ भावना भी नहीं है।

प्रांतीय कार्यपालिका मन्त्रीय कार्यपालिका है। मुख्य-मंत्री के कारण प्रांत में कार्यपालिका कई राजनीतिक दलों के मेल में बनती है और इसीलिए ट्रिनिदाद के मन्त्रिमण्डल की तुलना में यह विधायिका पर अधिक निर्भर रहती है। प्रांत के मंत्रियों की ओर से प्रांत की कार्यपालिका में आम करने और बालने का अधिकार है। प्रांत के मन्त्रिमण्डल अधिक समय तक न चले सके हैं। मन्त्रिमण्डल १९३८ से १९४८ तक प्रांत के मन्त्रिमण्डल की भोग्य यद्यपि साठ नौ मास थी। फाइनर का बहुत है कि प्रांत में कोई मन्त्रिमण्डल नहीं होता। वहाँ मंत्रियों का संगठनमान रहता है। इन मंत्रियों की कोई वास्तविक प्रशासन-समूह की अधिकार प्राप्त नहीं हो पाता क्योंकि उनका अस्तित्व हमेशा गलत रहता है। सरकार के वित्तिक आर्थिक और प्रशासकीय कामों में मन्त्रिमण्डल की ओर से विभिन्न मायाग बहुत अधिक और सभी-सभी उनके प्रतिष्ठा की रूप में भाग लेते हैं। राष्ट्रपति के सभापतिवत् मन्त्रिमण्डल की बैठकों में नीति पर विचार होता है और प्रधानमंत्री के सभापतिवत् मन्त्रिमण्डल कार्य करने के संग पर विचार करता है (२० १०६३)।

अमेरिकी गणराज्य मन्त्रिमण्डल १९३५ ई० के संविधान के अनुसार प्रांत के गवर्नर जनरल तथा प्रांतों के स्वतंत्रों की मिली ट्रिनिदाद के गवर्नर जनरल तथा स्वतंत्रों के विलुप्त मित्र थी। ये गणराज्य की कार्यपालिका के सभी अधिकारों में शामिल थे। उन्हें अपने अधिकार प्राप्त थे किन्तु उनसे व अपने ध्वजान्त विदेश और निवास आधार पर कर नहीं थे। इसके अनिश्चित जनता के बहुत विचारों की ओर राष्ट्रपति के कार्यपालिका के विचारों के कारण भी थे।

नी नीतिवत्त आचार भारत के लिए नीतिवत्त राजनीतिक कार्यपालिका का समर्थन करो थे। राष्ट्रपति ने नीतिवत्त कार्यपालिका का समर्थन किया है जिसमें विधायिका के विभिन्न सदस्यों के प्रतिनिधि हैं। हमारे विचारों में नहीं एक नीतिवत्त कार्यपालिका भी नहीं है। नीतिवत्त कार्यपालिका की सभापतिवत् हम है। गणराज्य कार्यपालिका के। हमें हमें कि मन्त्रिमण्डल में पर और और निम्न नीति

होता रहगा। उसका परिणाम एकता और सहयोगकी कभी डोकाडोल स्थिति और निरन्तर लोचातानी होगा। दसमुक्कन कामपालिका व्यावहारिक राजनीतिके मयमे बाहरकी बात प्रतीत होना है। हम लोग ब्रिटिश-संसदीय परम्पराके अन्त्यस्त हैं और हमारे लिए उचित यही है कि कभी उपशममे न साथे गये प्रयोगोंका रास्ता न अपनावें।

मन्त्रिमण्डलीय, संसदीय अथवा उत्तरदायी कायपालिका

मन्त्रिमण्डलीय कायपालिका म मन्त्रिमण्डल अपने समस्त कृताकृत कार्योंके लिए अधिक तीर पर सीप विधायिकाके प्रति और उसके द्वारा निवाचक-मण्डलके प्रति उत्तरदायी होता है।

मन्त्रिमण्डलीय कायपालिकाकी प्रमुख विशेषताएँ ये हैं

(१) नाममात्रका अध्यक्ष मन्त्रिमण्डलीय सरकारमे नाममात्रके अध्यक्ष म और वास्तविक कायपालिकामे स्पष्ट अन्तर रहता है। अध्यक्षके पास, चाहे वह बधानुगत हो या निर्वाचित नाममात्रके अधिकार रहते हैं।

(२) वास्तविक कायपालिका जनता द्वारा चुना गया मन्त्रिमण्डल सभी सरकारी कार्योंके लिए जिम्मेदार होता है। प्रशासनका सारा काम उसीके आदेशों नुसार और उसीकी जेल रेखमे होता है।

(३) राजनीतिक एकदमता मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य एक ही राजनीतिक दल के होते हैं। यह राजनीतिक दल प्रायः वह दल होता है जिसका विधायिका म बहुमत होता है। पर सकल समय या जब किसी बिगड़ कारण से विशेष व्यक्तियों को मन्त्रिमण्डलमे लेनेकी जरूरत पड़ती है तब इस नियम को सिधित कर दिया जाता है। समुक्कन-मन्त्रिमण्डल म उन सभी दलों के सदस्य रहते हैं जिनको मिलकर समुक्कत सरकार बनती है।

(४) सामूहिक उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डल की सामूहिक जिम्मेदारी होती है। हमने अर्थ है कि नीति सम्बन्धी प्रिय मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से करता है। सभी मंत्री एक साथ दूबते या पार लगते हैं। विसमन्त्री की गलती के कारण—यदि मन्त्रियों ने संसद का विश्वास लो दिया है तो—एक समय युद्ध-मंत्री को भी अप मन्त्रियों के साथ त्याग-पम देना पड़ता है।

(५) मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डल अपने सभी कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। यह सभी तक सासनाहक रह सकना है जब तक उसे संसद का विश्वास प्राप्त रहता है। इस उत्तरदायित्व को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए यह आवश्यक कर दिया गया है कि सभी मंत्री संसद के किसी न किसी सदन के सदस्य अवश्य हों। इस व्यवस्था से मन्त्रिमण्डलीय सरकार म विधायिका और कार्यपालिका म मन और सहयोग बना रहता है।

(६) प्रधान मंत्री एक नेता के रूप में बहुमत दल के नेता के रूप में प्रधान मंत्री मंत्रिमण्डल के कामों का नियंत्रण करना है और उनमें मन्तव्यता कायम रखता है। वेम हा मंत्री बराबर होते हैं पर 'बराबर'वादी में प्रथम हाथ का नाम प्रधान-मंत्री ही वास्तव में प्रधान वायपानिवा होता है। यह सीक ही बता रहा है 'प्रधान-मंत्री मंत्रिमण्डल के कामों के' उनके जीवन का केन्द्र और उसकी मूल का केन्द्र होता है।

मंत्रिमण्डलीय वायपानिवा के गुण

(१) मंत्रिमण्डलीय वायपानिवा विधायिका और वायपानिवा के बीच सामंजस्य स्थापित रखती है। इसका परिणाम यह होता है कि विधायिका और वायपानिवा में गतिशील व्यवस्था नहीं हा पाता और नाना समान उद्देश्यों के लिए काम करता है।

(२) मंत्रिमण्डलीय सरकार मधीमी (flexible) होती है क्योंकि इन व्यवस्था में विधायिका 'अव्यवस्था' पहल पर एक दानव चल सकती है। (बर्नार्ड)

(३) यह व्यवस्था जनता की अन्तिम सम्मति को स्वीकार करती है। मंत्रिमण्डल में व नवाने जनता के प्रतिनिधित्व के प्रति अपनी जिम्मेदारी को मान्यता में जनता का भावनाओं का परमाणु है।

(४) जनता को राजनीतिक तौर पर निर्णय करने के लिए यह व्यवस्था बहुत उपयोगी होती है। विभिन्न दलों का अल्प-समय पर निर्वाचनों का होता तथा विभिन्न दलों के ओर से विभाजित होनेवाला प्रकार जनता को राजनीतिक तौर पर चलाता बनाता है।

मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था के दोष

(१) मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था पारितो के सुधारण के विधान का अतिक्रमण करती है।

(२) मित्रविक भाषा कहना है कि मंत्रियों को विधायिका के सम्मेलन काई होने अपित करने चाह है कि व वायपानिवा में सम्मेलन काई को टीक प्रकार में न करने चाह है।

(३) मंत्रिमण्डलीय सरकार मधीमी होती है क्योंकि इसका कारकादिकारिता को नाना तौर दिना कहना है। पर राजनीतिक दलों के विचार में पर दोष कम हा गया है।

(४) विधान मण्डल दल के हर काम का विचार केवल विरोध करने के लिए करता है।

(५) मंत्रिमण्डलीय सरकार को अपरिपक्व लोगों या नवसिखुओं (amateurs) की सरकार कहा जाता है अर्थात् एम. जोगों की सरकार जो शासन करना म. वि. पत्र नहीं होते। मंत्रिमण्डलीय सरकार को नवसिखुओं की सरकार कहना उसकी अनुपम कहने का एक तरीका है।

(६) दलीय-यदति के विवास और दसगत अनुशासन के कारण मंत्रिमण्डलीय सरकार दलगत सरकार हो जाती है।

(७) मंत्रिमण्डलीय प्रणामी म. संकट-कालीन अवस्था में तत्काल कारवाई करने की तत्परता और समता की कमी होती है।

अध्यक्षारमक कार्यपालिका

अध्यक्षारमक कार्यपालिका अपने कार्य के लिए अधिकारों से सशुद्ध से स्वतन्त्र होती है और अपनी राजनीतिक नीतियों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। इस व्यवस्था में

(१) कार्यपालिका का प्रधान केवल नाम के लिए ही प्रधान नहीं होता वह वास्तविक कार्यपालिका होता है। वह संविधान द्वारा दी गयी समस्त शक्तियों का उपयोग करता है।

(२) वह जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि होता है। उसका कार्य-काल पहले से छद्म रहता है। वह प्रधान-मंत्रियों की तरह अपने प. से आसानी से हटाया नहीं जा सकता। उस पर अभियोग (impeachment) लगाने की प्रक्रिया बहुत कठिन होती है।

(३) वह न तो विधायिका पर आश्रित रहता है और न उसके प्रति जिम्मेदार होता है।

(४) सरकार के तीन अंगों के बीच शक्तियों का पूर्णरूपसे पृथक्करण रहता है।

(५) कार्यपालिका और विधायिका के सम्बन्ध में सहयोग नहीं रहता। चूंकि कार्यपालिका के सम्बन्ध में विधायिका के सम्बन्ध नहीं होते हैं इसलिए दोनों में बहुत बंधन होता रहता है।

(६) संसद को भ्रम नहीं किया जा सकता।

अध्यक्षारमक सरकार के गुण

(१) अध्यक्षारमक सरकार विधायिका के प्रति उत्तरदायी न होते हुए भी अपना प्रतिनिधि स्वरूप रखती है।

(२) अध्यक्ष निर्दिष्ट अवधि लिए चुना जाता है और उसके पुन. चुने जाने की सम्भावना रहती है। इसलिए नीतिहीन अविच्छिन्नता और स्थिरता की भावना बनी रहती है।

(३) मन्त्री सचिवों का हो व्यक्तिगत काम करने के कारण काम करने में शक्ति और निष्पक्ष करने में तत्परता रहती है।

(४) विभिन्न विभागों में मन्त्रीयों की शक्ति का उपयोग के लिए अध्यात्मिक सरकार बहुत उपयोगी होती है।

(५) मन्त्रियों का इस बात की परवाही नहीं रहती कि उन्हें समय में उपस्थित होने रहना है। इसलिए विभागों का काम करने के लिए उनका काम अधिक समय रहता है।

(६) विभागीय स्वीय अनुमानन का प्रभावित होती है।

अध्यक्षात्मक सरकारके दोष

(१) मन्त्रीयों का कहना है कि अध्यात्मिक सरकार निरुत्तम अन्तर्गत और अन्तर्गत होती है। यह कि सचिवों का शक्ति निश्चित की गया भीमाय का भीतर रहने हुए अध्यात्मिक अधिकार रहता है कि वह जो चाहें करें।

(२) कार्यपालिका स्वयं किसी विभाग का श्रीमन्त नहीं कर सकता। वही शक्ति नहीं होती है और जब मन्त्रीयों का विभागों और कार्यपालिका में शक्ति अधिक रहता है।

(३) काम के अनुसार विभागीय काम करने की समिति के बनना काम होने में देरी होती है अन्तर्गत फलपत्नी है और विभागों के द्वारा काम के लिए जाते हैं।

(४) काम का यह भी कहना है कि मन्त्रियों के पक्ष में रहना वास्तविक परिणाम यह हुआ है कि स्वायत्तिक तौर पर मन्त्रियों का भी एक दृष्टि में बनना हुआ है।

(५) मन्त्रिमन्त्रीय सरकार की अनेक अध्यात्मिक सरकार अन्तर्गत मन्त्रियों की शक्ति अधिक हो जाती है।

(६) यदि सरकार का सचिवों की शक्ति का कारण है कार्य करने में शक्ति है मन्त्रियों अध्यात्मिक कार्यपालिका में मन्त्रियों (flexibility) का शक्ति।

पालिकाओं से लेकर जिनमें सन्स्था की बीच जिम्मेदारी बँटी रहती थी नगर प्रबंधन (city managers) का सौंपा जा रहा है। इस नयी प्रथा में अन्ततः एक ही व्यक्ति के आशुमानों और उसकी देखरेख में नगर का सारा प्रबंध होता है और नगर प्रबंध से सम्बंधित सभी जिम्मेदारी उसी की होती है।

कायपालिकाकी बहुलताका अर्थ है जिम्मेदारीका विभाजन। इससे भूलोंकी घिपानेकी प्रवृत्ति पैदा होती है समस्याओं पर शीघ्र निर्णय लेनेमें कठिनाई पैदा होती है और तदर्थमे भी विभिन्नता पैदा हो जाती है। इसमे एकता और सन्निपताका अभाव रहता है। इसके पराम इतना पढ़ा जा सकता है कि इससे शक्तिके दुरुपयोग होने और आकस्मिक राज्य विप्लवकी सम्भावना पर राक नगती है। इस प्रणालीमें एकात्मक कार्यपालिकाकी अपेक्षा राज्यकी सेवाके लिए अधिक उच्च क्रांतीकी सामर्थ्यवाले व्यक्ति मिल सकते हैं। पर इस प्रणालीको अनुपयुक्त सिद्ध करनेके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमें एकना प्रत्यक्ष कारवाई और जल्दी काम करनेका अभाव है। पर यह सम्भव है कि एकात्मक और बहुत कायपालिकाके सिद्धान्तोंका समन्वय किया जा सके। आपनिव शासन व्यवस्था इतनी जटिल और पेचीदी हो गयी है कि कोई भी एक व्यक्ति चाहे वह कितना ही योग्य क्या न हो शासनके हर विभागका विनियमन नही हो सकता। आवश्यकता इस बातकी है कि प्राशासनके विभिन्न स्तरों पर उत्तरदायित्व बँटा हुआ हो और ऊपरी स्तर पर एकात्मक कार्यपालिका हो।

कायपालिका की कार्यवधि (Tenure of the executive) आनुवंशिक कायपालिका की कार्यवधि जीवन भर की होती है। कार्यवधि का अर्थ केवल चुनी गयी या मनोनीत कार्यपालिकाओं के अन्तर्गत ही उठता है। आजकल यह कार्यवधि एक से लेकर सात वर्ष तककी होती है। अमेरिकाके अधिकांश राज्यों में राज्यपाल दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं। वहाँ का राष्ट्रपति चार वर्ष तक पदासीन रहता है। फ्रांस और जर्मनी के राष्ट्रपतियों की पदावधि सात वर्षों के समूचे समय की है। ब्रिटन और उसके उपनिवेशों में कार्यवधि पाँच वर्ष की है। बात कि मन्त्रिमण्डल में सत्ता के निचले स्तर का विश्वास बना रहे। इस अवधि के पहले भी कार्यपालिका गग की जा सकती है। ब्रिटिश सामन काल में भारत में गवर्नर जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए होती थी।

कायपालिका के लिए सिर्फ एक या दो वर्ष की अवधि निश्चित करना निरर्थक है। यह नीति की निरन्तरता के लिए आवश्यक है। अनुभव प्राप्त करने बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए कायपालिकाओं पर्याप्त समय नही मिल पाता। जल्दी-जल्दी होनेवाले चुनाव का प्रभाव सार्वजनिक जीवन पर बहुत बुरा पड़ता है। बहुधा उससे भ्रष्टाचार और मुरादप्राप्ति पैदा हो जाती है। कार्यपालिका को हर समय जनता की कृपा की चिन्ता रहनी है बिनापकर उस दशा में जब उसे दुबारा चुनाव लड़ने का अधिकार होता है। वह दुर्बल और अस्थिर बुद्धि रहती है और माहम और स्वतन्त्रता के साथ गार्द काम करने से डरता है।

अन्तर्राष्ट्रीय करार करती है। संधियाँ या गुप्त बनाय रखने के लिए कमसे कम मुरु में विधायिका को असम रखा जाता है। १९१४-१८ के महायुद्ध के दौरान में और उसके बाद ब्रिटन में इस नीति की बड़ी कड़ी आलोचना की गयी थी। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि ब्रिटन की गलत गुप्त कूटनीतियों ने उसे जर्मनी से लड़वा दिया। मद्रास सरकार सदन के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए सभी संधियाँ उपस्थित करने को तयार थी। द्वितीय महायुद्ध के समय कूटनीति अधिक स्पष्ट हो गयी थी। ब्रिटन और अमेरिका एक इकाई के रूप में काम करते थे।^१ पश्चिमी राष्ट्रों और सोवियत संघ द्वारा सावधानीपूर्वक प्रत्यक्ष या गुप्त साधनों से अन्य देशों को अपना सहयोगी बनाने के प्रयत्नों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) ने अभी तक के गुप्त एक पक्षीय संधि और करारों को बहुत हद तक समाप्त कर दिया है।

ब्रिटन में आज भी संधि करने की शक्ति बहुत कुछ कार्यपालिका के हाथों में है। संसदवा उसमें कोई हाथ नहीं रहता। संसद का सम्बन्ध संधि से तभी होता है जब संधि का पूर्णता प्रदान करने अथवा उसे कार्यान्वित करने के लिए विधान (legislation) की आवश्यकता होती है। कार्यपालिका ही संधियों की बातचीत शुरू करती है और उन्हें पूरा करती है। अन्य अनेक देशों में विधायिका की स्वीकृति आवश्यक होती है। संयुक्त राज्य अमेरिकामें कुछ खास तरह के अन्तर्राष्ट्रीय करार केवल राष्ट्रपति के अधिकार से ही किये जा सकते हैं उदाहरण के लिए पारस्परिक व्यावसायिक करार (reciprocal trade agreements)। अन्य संधियों के लिए सीनेट की स्वीकृति आवश्यक है। सीनेट ने इस अधिकार का अर्थ यह लगाया है कि उसे संधियों के मसविदे को न केवल स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार है बल्कि उनमें संशोधन करने का भी अधिकार है। प्रतिनिधि-सभा (The House of Representatives) संधियाँ करने में अप्रत्यक्ष रूप से धन के बचने कारण ही भाग ले पाती है। संधि की शर्तों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक व्यय विनियोगों (appropriations) को वह अस्वीकार कर सकती है। वह उन संधियों को भी अस्वीकार कर सकती है जो विदेशी व्यापार के नियमन से सम्बन्ध रखती हैं। अमेरिकामें यह प्रस्ताव विचाराधीन है कि वर्तमान पद्धति के स्थान पर संधियों को दोनों सदन में साधारण बहुमत द्वारा स्वीकृत कराया जाय। जर्मन गणराज्य में साधारण करारों के अतिरिक्त अन्य सभी संधियाँ और गठबंधनों (alliances) के लिए निचले सदन की स्वीकृति आवश्यक थी। फ्रांस में अतिरिक्त संधियों को दोनों सदन द्वारा स्वीकृत कराने का ही रिवाज है। सन्नों का संधियाँ स्वीकार या

^१ इस युद्ध के दौरान में भी ऐसे करार हुए जिनमें अप्रत्यक्षित गुप्त अभियानों की गयीं या जैसे माहिदा यास्ता और पान्सडम के करार। इस युद्ध के बाद इन गुप्त शर्तों की बहुत अधिक आलोचना की गयी विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका में रिपब्लिकन पक्ष द्वारा, जिसका उद्देश्य इनके आलोचना अधिक था।

कर सकता है। नागरिकों का जन्मी प्रत्यक्षीकरण (writ of habeas corpus) जसा महत्वपूर्ण अधिकार भी स्वयंसे दिया जा सकता है। राष्ट्रपति समाचार पत्रों का बंद कर सकता है। द्वितीय विषयबद्ध नाम का प्रश्न ने कई अधिनियम बनाकर राष्ट्रपति का वायव्यारिक रूप से सत्ता का ही अधिकार दे दिया था। युद्ध में सगे दूसरे देशों में भी वायव्यारिक आवा एसे ही अधिकार दिया गया था।

(४) **यायिक अधिकार शक्ति (Judicial power)** वायव्यारिक अधिकार अधिकारों से एक महत्वपूर्ण अधिकार अपराधियों को क्षमा करने का है। मोंटेस्क्यू (Montesquieu) गणतन्त्र राज्यों में इस अधिकार को विच्छिन्न बनावश्यक मानते थे। पर वाय और मानवता के विचारों से हर संविधान में चाह वह राज तन्त्रात्मक ही या गणतन्त्रात्मक क्षमा के लिए स्थान होना ही चाहिए क्योंकि विधि अपूर्ण ही होता है और अत्यधिक कठोरता से लागू की जाती है। यह सम्भव हो सकता है कि वर्तमान विधियों और वायव्यारिकों द्वारा उनका उपयोग किये जाने के उद्देश्य से न हो। या अपराधों को हल करने वाली परिस्थितियों पर या उन परिस्थितियों पर जिनमें अपराध किया गया था पूरी तरह से विचार न किया गया हो। यह भी सम्भव है कि सजा मुनाय जाने के बाद अपराध के बारे में नयी बातें मालूम हो। इन सभी परिस्थितियों में न्याय का लक्ष्य है कि अपराधियों को सन्देश का लाभ दिया जाय और इस परमाधिकार (Prerogative) का उपयोग करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति सर्वोच्च कार्यपालिका ही है। ब्रिटन में इस अधिकार का प्रयोग गृह-मंत्री की सलाह से सम्पादित करता है। अमेरिका के अनेक राज्यों में एक परामर्श दायी समिति (advisory board) राज्यपाल को इस अधिकार का प्रयोग करने में सहायता देती है। अनेक संविधानों के अनुसार महाभियोगों के अपराधियों को क्षमा नहीं किया जा सकता। अमेरिका के राष्ट्रपति का अपराध सिद्ध होना केवल भी और उसके बाद भी क्षमा करने का अधिकार है। वह जर्मनी के और जस्टिस की हुई सम्पत्तियों वापस कर सकता है। वह प्राणदण्ड के स्थगन की और उस हल्का करने की आज्ञा दे सकता है तथा अपराध के लिए दंड बहुत से व्यक्तियों को क्षमा कर सकता है।

लोकतन्त्रीय संविधानों के अन्तर्गत कार्यपालिका के सामान्य निरीक्षण में काम करने वाले सरकार की विभागों का अर्थ 'यायिक कोर्टों के व्यापक अधिकार दिये गये हैं। इस प्रकार ब्रिटन में स्वास्थ्य मन्त्रालय अपने प्रशासनीय कार्यों के मिलमिले में लोगों पर जुमाने कर सकता है और हर्जाना वसूल कर सकता है।

(५) **विधायनी-शक्ति (Legislative power)** सभी संविधानों के अन्तर्गत विधायिका और कार्यपालिका दोनों का एक दूसरे पर नियंत्रण रहता है। संसदीय शासन प्रणाली के राष्ट्रपति कार्यपालिका का विधायिका के अधिकारों को धुलाने उस आरम्भ करने तथा उस निश्चित या अनिश्चित समय के लिए स्थगित करने का अधिकार रहता है। कार्यपालिका का यह अधिकार अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रणाली में सीमित रहता है क्योंकि यही विधायिका के अधिकारों को अपने आप हाथ में रखने हैं। संसदीय संविधानों में

विधायिकाओं में भग करने और नये बनाव करनेका अधिकार वायसालिसारा भी होता है। उसका आरम्भ भी औपचारिक और पर होता है। अन्त्योत्तर पद्धति में यह नये माने नहीं पायी जाते।

अध्यक्षकार सरकारके दोनों विधानके सम्बन्ध में वायसालिसारा का अधिकार सीमित रहता है। वायसालिसारा इन सम्बन्ध में यह कार्य करती है विधायिकाओं के विधि वायसालिसाराओं के कारण मूलका देना विधायिकाओं के विधानों के सम्बन्धी प्रस्ताव पत्र करना कभी-कभी (यद्यपि ऐसा बहुत कम होता है) वायसालिसारा आलोचनाओं के कारण करना विधायिकाओं द्वारा प्रस्तुत विधेय (bills) को स्वीकार या अस्वीकार करना और स्वीकृत विधेयों का लागू करना (२ ७७६)।

अध्यक्षकार प्रणाली में वायसालिसारा का एक असाधारण अधिकार प्राप्त होता है जिसे निष्काधिकार (power of veto) कहते हैं। अमेरिकामें यह अध्यक्षकार निष्काधिकार (suspensive veto) है। हर मामले में निष्काधिकार का उपयोग किया जा सकता है। इस अधिकार से अन्त्योत्तर और बिना ठीक प्रकार सोचने विचारने बनायी गयी विधियों पर रोक लगती है। जब अध्यक्ष अपने निष्काधिकार का प्रयोग करता है तो उसे विधायिकाओं के वायसालिसारा से स्वीकार न करने के लिए अपने कारण बतलाने पड़ते हैं। विधायिकाओं के वायसालिसारा को स्वीकार न करने के लिए अपने निवेदन पर विचार विचार करे। प्रथम अध्यक्षकार निष्काधिकार का व्यावहारिक दृष्टि से कार्य मूल्य नहीं रह गया है क्योंकि अब वहाँ उसका प्रयोग नहीं किया जाता।

अधिकांश आपनित राज्यों में वायसालिसारा का अध्यक्ष (ordinance) जारी करनेका अधिकार होता है। इन उप विधान (subordinate legislation) का अधिकार कहते हैं। इन अधिकारों का उपयोग आमतौर पर आदेशों, नियमों और अधिनियमों के रूप में होता है। उनमें कुछों के लिए विधायिकाओं की स्वीकृति आवश्यक होती है। इन अधिकारों के उपयोग करने की सामान्य रूप यह है कि इनमें वर्तमान विधि में कुछ अन्तर्गत आये और न स्वीकृत हो जाने के लिए इनमें विधि का लागू करने का अधिकार मिले और विधि के विवरणों की पूर्ति हो। इन और अन्त्योत्तर प्रणाली के लिए अधिनियम लागू करनेका असाधारण अधिकार कभी-कभी वायसालिसारा के अन्तर्गत वायसालिसारा के लिए होता है। यह अधिकार प्राप्त गति होता है। इन अधिकारों के अन्तर्गत दोनों वायसालिसारा (martial law) लागू हो सकते हैं।

यद्यपि वेगल विधि अध्यक्षों में और प्रान्त-अध्यक्षों में अन्तर होता है। विधि अध्यक्षों की विधियों बनाते हैं या पत्रों में विधि के लिए कार्य करते हैं। दूसरी ओर प्रान्त-अध्यक्षों के अध्यक्षों में प्रान्तीय अधिकारियों को उनके अन्तर्गत कामकाजों के आचरण और वायसालिसारा के कारण आदेशों या निवेदनों के लिए होता है। उनका पर उनका कोई भी प्रस्ताव नहीं होता और न वह उनका कार्य होता है।

मानव के अनुसार अध्यक्षों में तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार के अध्यक्षों में

ऐसी विधियां शामिल रहती हैं जिन्हें संविधि (Statute) द्वारा प्राप्त अपने सामान्य अधिकारों अनुसार प्रधान कार्यपालिका लागू करती है। इस कांस्टीट्यूशनल राष्ट्रपतिकी आशक्तियों द्वारा चलनवाला फासीमा उपनिवेशोंका शासन आता है। दूसरे प्रकारके अध्यादेशों व अध्यादेशों आते हैं जो कुछ विधायक विधायिका नियमन करनेके लिए कार्यपालिका द्वारा अपनी विधायनी शक्ति अंतर्भूत लागू किये जाते हैं। तीसरे प्रकारके अध्यादेश वे हैं जो विधायिका के नियंत्रण पर किसी विधायी विधिकी विवरण पूर्ति और उसके वायान्वयक लिए अधिनियम स्वीकृत करनेके उद्देश्यसे लागू किये जाते हैं। इस प्रकारके अध्यादेशोंका प्रयोग फासम अधिक होता है क्योंकि वहाँ संसद विधिकी सामान्य रूपरेखा ही बनाती है और विधिकी विवरणोंका अध्यादेशों द्वारा पूरा किये जानेके लिए छाड़ देती है। सन् १९०७ ई० तक प्रधान प्रशासी न्यायालय अध्यादेशोंकी वैधताके बारेमें हस्तक्षेप करनेसे इन्कार कर देते थे चाहे अध्यादेशों संविधिकी विपरीति ही क्यों न हो। पर सन् १९०७ के एक महत्वपूर्ण निर्णयके अनुसार अध्यादेश-शक्ति पर न्यायालयोंका नियंत्रण हो गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिकाम अध्यादेशोंके लिए अधिक स्थान नहीं है क्योंकि वहाँ संसद (Congress) विधायिका के पूरे विवरणोंके साथ बनाती है। फिर भी कार्यपालिका के हर विभागके कार्योंका नियंत्रण करनेके लिए अध्यादेश अधिनियमों और राष्ट्रपतिकी उद्घोषणाओं की संख्या बहुत अधिक है। इनके अतिरिक्त विभिन्न विभागों द्वारा जारी किये गये विधायी नियमों अधिनियमों और निर्णयोंकी संख्या भी बहुत अधिक है।

ब्रिटेनमें अब सम्राटकी उद्घोषणाओं और अध्यादेशों द्वारा विधि बनानेका अधिकार नहीं है फिर भी सांख्यिक कार्योंके उचित संचालनके लिए अधिनियम जारी करनेका अधिकार सम्राटके सेवकों (अधिकारियों) का दिया जा सकता है। अध्यादेशोंकी रचना संविधिगत नियमों (statutory rules) और अध्यादेशों के रूपमें होती है और वे समाज पर विधायिके समान ही लागू होते हैं। विवरण पूरा करनेका काम प्रायः प्रशासी विभागोंके लिए छाड़ दिया जाता है विशेषकर शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे मामलोंमें।

अच्छी कार्यपालिकाकी कसौटी (Tests of a good executive) छीछ निर्णय एकता, पूर्णता और कभी-कभी कार्य विधिकी गोपनीयता अच्छी कार्यपालिकाकी कसौटी है। कार्यपालिका छापी होनी चाहिए, अध्यादेशों छीछ निर्णय और तेजीसे काम करना असम्भव हो जाता है। इस मामलेमें तानाशाही शासन लोकतंत्रीय राष्ट्रोंसे अच्छा होता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि संघटके समयमें अमेरिकी राष्ट्रपतिकी असाधारण अधिकार दिये जाते हैं। ऐसे ही अधिकार युद्धके दौरानमें भारतके गवर्नर-जनरलोंको भी दिये गये थे। ब्रिटेनमें छीछ निर्णय करने और तेजीसे काम करनेके लिए छ सदस्योंकी एक युद्ध परिषद बनायी गयी थी।

कार्यपालिकाकी उन्मुक्ति (Immunity of the executive) अच्छी

शासन के लिए यह आवश्यक है कि नागरिकों के अधिकारों का पालन हो सके।
 अतः यह सिद्धांत माना जाता है कि 'राजा का अधिकार नहीं होता'।
 अमेरिका में राष्ट्रपति अपने कार्यकाय में साधारण अंगतों के अधिकारों के समान रहता है।
 उमर अमेरिका के लिए 'सामान्य अनियोग' (court of impeachment) का रूप उस पर मर्यादा बना सकती है और अपराधी राष्ट्रपति पर उस दण्ड कर सकती है।
 उमर का साधारण अंगतों में उस पर मर्यादा बनाया जा सकता है।
 राष्ट्रपति का कार्यकाय उस विधायक नहीं दिया जा सकता और न व्यक्तिगत रूप से राजा या सामान्य उपस्थित हानकर्मियों या किसी नागरिक का दबाव का पालन करने के लिए उन बाध्य किया जा सकता है।
 ऐसा ही एक भाग में मर्यादित बनने और स्थिति का प्रान्त भी।

प्रशासनिक सेवा (The Civil Service)

१. परिभाषा और इतिहास (Definition and History) आधुनिक राज्य में प्रशासनिक सेवा ही राजा का अधिकार है।
 समस्त मंत्रिमंडल और राष्ट्रपति को राज्य करने के लिए शासन का पालन प्रशासनिक सेवा ही करती है।
 लोकप्रिय प्रशासनिक सेवा में राजा और मंत्रिमंडल के नियंत्रण में ही विधान सभा के शासन का अन्वयण करने का विधान है।
 यह सब संवैधानिक अधिकारों के लिए सब संवैधानिक अधिकारों पर प्रशासनिक अधिकारों का कार्य का सम्बन्ध उनसे और साधारण नागरिकों के अधिकारों से होता है।

प्राचीन प्रशासनिक सेवा का परिभाषा इस प्रकार करता है 'एक स्थायी बल में राजा का अधिकार का'।
 यह सभी विधानों के अधिकार है।
 राजा के समस्त अधिकारों में प्रशासनिक सेवा ही शासन का अन्वयण करने के लिए सब संवैधानिक अधिकारों के लिए सब संवैधानिक अधिकारों पर प्रशासनिक अधिकारों का कार्य का सम्बन्ध उनसे और साधारण नागरिकों के अधिकारों से होता है।

प्रशासनिक सेवा का यह नाम उमर और इतिहास में ही प्रशासनिक सेवा के अन्वयण करने के लिए ही दिया गया है।
 इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन मिस्र के राजा और फ्रांस (Pharaohs and Pharaohs) राजा के समस्त अधिकारों में प्रशासनिक सेवा ही शासन का अन्वयण करने के लिए सब संवैधानिक अधिकारों के लिए सब संवैधानिक अधिकारों पर प्रशासनिक अधिकारों का कार्य का सम्बन्ध उनसे और साधारण नागरिकों के अधिकारों से होता है।
 प्राचीन मिस्र के राजा और फ्रांस (Pharaohs and Pharaohs) राजा के समस्त अधिकारों में प्रशासनिक सेवा ही शासन का अन्वयण करने के लिए सब संवैधानिक अधिकारों के लिए सब संवैधानिक अधिकारों पर प्रशासनिक अधिकारों का कार्य का सम्बन्ध उनसे और साधारण नागरिकों के अधिकारों से होता है।
 प्राचीन मिस्र के राजा और फ्रांस (Pharaohs and Pharaohs) राजा के समस्त अधिकारों में प्रशासनिक सेवा ही शासन का अन्वयण करने के लिए सब संवैधानिक अधिकारों के लिए सब संवैधानिक अधिकारों पर प्रशासनिक अधिकारों का कार्य का सम्बन्ध उनसे और साधारण नागरिकों के अधिकारों से होता है।

नियुक्त किये जाते थे। निम्न कोटि के साधारण गुप्तचरों और छोटे-छोटे अधिकारियों (subordinate officers) तथा साम्राज्य के दूरक भागों में प्रधान अधिकारियों के पदों पर नियुक्त किया जाता था। प्रचीन चीन और भारत में भी इसी प्रकार का व्यवस्थापन था।

मध्ययुग में योरोप में खिलवा और गिल्ड संघों के साथ-साथ प्रशासन-संस्था का विकास एक व्यवसाय के रूप में हुआ। प्रशासन-संस्था के पदों सम्मान और प्रतिष्ठा पर ध्यान देने की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता था। सामन्त-शाही कुलीन-वर्गों की अपेक्षा मध्यवर्ग के लोग इन पदों पर अधिक नियुक्त किये जाते थे।

आधुनिक युग में प्रशासन-सेवा का प्रबंध करने में प्रुशिया (Prussia) अग्रणी रहा है। उस देश में जन-संख्या को भर्ती करने और उनके प्रशिक्षण के बारे में बड़ी सावधानी बरती जाती थी। विस्तृत नियमावली बनाकर प्रशासन-सेवा को अधिक से अधिक कुशल और उपयोगी बनाया गया था। आज भी जर्मनी में प्रशासन-संस्था के अधिकार और सुरक्षा की सबसे अच्छी व्यवस्था है। जहाँ तक कृतव्याका सम्बंध है यह कहना पड़गा कि जर्मनी की प्रशासन-सेवा में अधिकारियों की प्रवृत्ति की परंपरा अब भी कायम है। पर नासियों के प्रादुर्भाव के पहले इस बात के सभी सम्भव प्रयत्न किये जा रहे थे कि प्रशासन सेवा की कठोरता का दूर किया जाय और उसकी अधिकारपूर्ण हस्तक्षेप की प्रवृत्ति का अच्छी सेवा भावना में बदल दिया जाय। फ्रांस के बूर्बोन् (Bourbon) राजाओं ने धारोप में प्रशासन-सेवा की परंपरा बनाने में कुछ योग दिया था पर नियुक्ति पर और बर्खास्त किया मनमाने ढंग से ही की जाती थी।

ब्रिटन की प्रशासन-सेवा संसार की सर्वोत्तम प्रशासन-सेवाओं में से एक है। इसका आरम्भ गत शताब्दी के मध्य में हुआ था। फाइनेर ब्रिटन की प्रशासन-सेवा को संसार के लिए ईर्ष्या की वस्तु कहते हैं। इसमें कार्यकुशलता और मानवीय सेवा भाव दोनों ही गुण जितनी मात्रा में पाये जाते हैं उतनी मात्रा में किसी अन्य देश की प्रशासन सेवा में नहीं मिलने। ग्रेहम वॉलस (Graham Wallas) के शब्दों में 'इस अधिसेवा का निर्माण उसी सदी के शताब्दी के ब्रिटन का एक महान् राजनीतिक आविष्कार था।

ब्रिटन की प्रशासन-सेवा अपने उद्भव और विकास की दृष्टि से वह बिना मजदूरीय शासन की समियो की आवश्यक प्रतिपूरति (counterpart) है। ब्रिटन के मजदूरों के नब्ध प्रतिगत सदस्या को जिन विभागों के प्रशासन का कार्य सौंपा जाता है उन्हें उन विभागों की भीतरी कार्य प्रणाली का ज्ञान बहुत कम या नहीं के बराबर होता है। मंत्री अपने काम को संभालने में ऐसे दृष्टिकोण और बुद्धिबल का काम लेता है जो पूर्व निर्धारित भावनाओं और कर्मचारी संघ की अङ्गबाजी से मुक्त होता है और प्रशासन-सेवा उस विषय के कुशल वृत्तान्तिक ज्ञान और अनुभव का सहारा उसे देती है। दानाक समन्वय का परिणाम सुदूर शासन होता है। पर लॉर्ड हेवर्ट (Lord Hewart) रैम्सय म्योर (Ramsay Muir) और सी० के० एलेन (C. K. Allen) आदि लेखक इस पद्धति की आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि इस पद्धति से स्थायी प्रशासन

गवर्ना थाय-यवनाम अधिक महत्व मिल जाता है। रम्ब म्योर व अनुसार विधि निर्माण प्रणालन, अथ-व्यवस्था और नीति निपारणमें प्रशासन-मन्त्री ही बरतुन सारा निर्णय करती है। यद्यपि यह निर्णय अप्रत्यक्ष होता है। यह यह दफ्तर आतङ्कित है। उद्योग है कि मन्त्रिमन्त्रीय दफ्तराधि बने नाम पर बमबारीतत्र पनपना है।

उपस्था आतावनाम चा- जितना सचाई हा पर नन वातम द्वा-र नही दिया जा गवा कि प्रिन्स समारन उन द्वा-रम ॥ एक है जिनका प्रशासन सर्वोत्तम द्वा-रम होता है। कारण यह है कि उन सब बुद्ध विचारणीय और निष्पक्ष प्रशासन-मन्त्री प्राप्त है जा नामनके निष्पक्ष बायीका पूरा करनी है।

अध्वरी राज्य भारतम भी दे- के सामन म प्रशासन-मन्त्रीका बड़ा महत्वपूर्ण हाय था। हमरा बाध-मन नना अधिक व्यापक था कि 'गामन' नामके अन्तर्गत जो कुछ भी आ जाता है वह सब उनके अ-दर समझा जाता था। वह प्रशासन सम्बन्धी अगली बम डिम्बकारीको ता पूरा करता ही था साथ ही साथ नीति निपारण और विधि-निर्माण भी उसका महावतुण हाय रहता था। भारतम बहुधा प्रशासन अधिनारित्याका बमबारीतत्रने पुन कला जाता था। नसका अथ यह था कि यह अधिनारी सामन्त की परमाह किज बिना अनगराजी द्वा-र अधिनारिताका प्रयोग करने के आनी था। पर यह परिस्थिति उत्तरावा सामन्त विरासके साथ-साथ समाप्त हा गयी।

गदुका राज्य अमेरिकाम प्रशासन-मन्त्री का भारम्य अष्टनापन्नक तरीका हुआ। नगरा कारण लूट-अमान्त्री प्रथा (spoils system) की प्रिन्स अनुसार राष्ट्रपति के हर चुनावके बाद प्रशासन-मन्त्रीका मन्त्रि-पञ्चको चुनावम जीतनवान द्वा-र समवर्गम भरा जाता रहा है। पञ्चके इस बराबर्नन (rotation) तथा सावधानि-पञ्चको राजनीति-का द-नी इस प्रथाकी डिम्बकारी एण्ड्रयू जक्शन (Andrew Jackson) पर है जि-का राष्ट्रपतिने प (१८२०-३६) से यह योजना की थी प्रशासन-मन्त्रीके बर्तम द-न द-र और कारण है कि समारदार आन्धी आशानी स आनेको उन ब-रम्याका पूरा करने के योग्य बना लवता है और यह कि काम करनेके लिए पूर्णतः किज है कि एक सम्बन्धी अवधि तक सोपाके पञ्च पर बने रहनेके आ हाति होती है वह उनक अनुभवम हानवान सामन्ती भरता बही अधिक है। किनी भी व्यक्तिका दूसरे व्यक्तिकी भरता सावधानि पर पर निरुद्ध हावेका अधिक नगदिक अधिनार नहीं है। इस उत्तरनाम नीतिका परिणाम अनुपमता द-रकी भ्रष्टाचार और घुमगाही हुआ। बुराई इस द-र तक पहुँच गयी कि दे-को १८८८ म मन्त्रपुर हाकर प्रतिपाली परीक्षाभावे आधार पर स्थानी प्रशासन-मन्त्रीका निर्वाच मानना पडा। मोर-मेका आयोगकी स्थापना की गयी पर उनकी पारोपिका इस कारण बहुत बद्ध गमना हा गयी कि नन आयोगों को दे-को प्रदान राजनीति-द-रकी प्रतिनिधित्व न भर दिया गया। सन् १९३३ में गुपारकी एक

और सहर आर्द पर वह भी शून्य-नाशोद की प्रथाको नियमन कर सगी। १९१६ के आते आते प्रशासनके आध से अधिक पार्स पर नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर होने लगी। कुछ विभागोंके सर्वोच्च अधिकारियोंको छोड़कर अब सभी सरकारी अधिकारी प्रशासन-संघात अंतर्गत हैं। दलबन्दी तथा पुनर्वापररती को मिटाने के लिए बहुत कुछ किया जा रहा है।

प्रशासन प्रधिकारियों की भर्ती और उनका प्रशिक्षण (Recruitment and Training of Civil Servants) स्वरूप प्रशासन संघातके विकासमें भर्ती और प्रशिक्षणका प्रश्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ब्रिटेन और भारत दोनों ही दशोम गत शताब्दीके मध्य तक पुनर्वापररती और सिफारिशका बासवाला रहा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सञ्चालक मण्डलमें एक सदस्य स्कॉट्सलैण्डके थे। उन्होंने अपने १९ लड़कोंमें से प्रायः सबके लिए किसी न किसी पदकी व्यवस्था कर दी थी। नियंत्रण-समितिके समापतिवी हैसियतसे डब्लस ने आरक स्फाट लागूवा भारत भेज दिया था। सन् १८५८ में जॉन ब्राण्ट ने कहा था कि ब्रिटेनकी वदेशिक नीति अपने देशके बुलीन वर्गका देशके बाहर सुविधाएँ देनेकी एक विमान योजनासे अधिक और बड़ा है।

सिफारिशकी बुराईयाँ इतनी बढ़ गयी कि नियुक्तियाँ करनेका कोई दूसरा तरीका खोजना पड़ा। सिफारिश का क्षत्र सीमित करनेके लिए, भारतीय प्रशासन सेवाके सम्बन्धमें पहला कदम यह उठाया गया कि उम्मीदवारोंकी योग्यता परखनेके लिए एक परीक्षा चामू की गयी और हेलीवरी (ब्रिटेन) में बहुमुखी प्रशिक्षण दिया जाने लगा। सन् १८५३ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनीका चार्टर पार्लामण्टके सम्मुख पुनर्विचारके लिए पेश किया गया तब मकॉले ने प्रथाका समूल उखाड़ कर उसके स्थान पर प्रतियोगी पद्धतिकी स्थापना करनेमें सफलता प्राप्त की। उन्होंने कहा मुझे ऐसा भालूम होता है कि कभी कोई तथ्य इतने अधिक प्रमाणों और विविध अनुभवोंसे सही सिद्ध नहीं हुआ जितना यह तथ्य सही सिद्ध हुआ है कि जो लोग युवावस्थामें अपनेको अपने समकालीन व्यक्तियोंकी अपेक्षा एक विनिष्ट कोटिका सिद्ध कर देते हैं वे अपनी इस विक्षपताकी आजीवन क्रायम रखते हैं। प्रशासनमें भर्ती किये जानेके लिए मकॉले ने किसी प्राविधिक (technical) या ध्यावसायिक शिक्षाका समर्थन नहीं किया। उन्होंने प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा परखी गयी बौद्धिक क्षतता और सामर्थ्य पर अधिक जोर दिया। यह किसी विषय प्रकारकी शिक्षाकी अपेक्षा उदार ध्यापक शिक्षाको अधिक महत्त्व देते थे। उनका कहना था कि कार्य सञ्चालनका प्राविधिक चानुय धादम भी प्राप्त किया जा सकता है।

भारतमें मकॉले द्वारा किये सुधारोंका पथ ब्रिटेनका सन् १८५३ में नाथकाट (Northcote) और ट्रेवेलियन (Trevelyan) की रिपोर्टके रूपमें मिला। उन्होंने भी उम्मीदवारोंके चयनमें दलबन्दीको समाप्त करने और प्रतियोगिता आरम्भ करने की सिफारिश की। उनके सुझावोंको १८५५ में आंशिक रूपमें कार्यान्वित किया

गया। उसी वर्ष प्रथम लोक-सेवा आयोगकी स्थापना की गयी। आगे चलकर अन्य सुधार भी किये गये।

भारत और विश्वम आन्दोलन प्रचलित पद्धतिसे अनुसार भर्ती अधिनगर एक सुन्नी प्रतियोगिता द्वारा होती है। इस प्रतियोगिताके पुरस्कार रूपमें एक मौखिक परीक्षा भी होती है। दोनों ही परीक्षाओंका सफलता एक साक्ष-मेवा आयोग करता है। कुछ विभागमें भर्ती सीमित प्रतियोगितामें होती है जस विश्वकी वैशेष और राजनयिक सेवाके लिए। सभी प्रतियोगी परीक्षाओंमें मौखिक परीक्षाको मुख्य स्थान दिया जाता है।

प्रशासन-सेवाकायम भर्ती नियमन कम उन्नत हुई की जाती है क्योंकि इस उन्नत नये विचारोंको ग्रहण करनेकी शक्ति कम है। इस नियमनकी नियुक्ति समान व्यवस्थागतमें स्वीकृत आयोग द्वारा करता है। इसका तात्पर्य यह है कि यह नियमनकी नियमन सर्वोच्च सराफा परादरशन करता है। लोक-सेवा आयोग बाहरी प्रशासन—विशेषकर राजनीतिक प्रशासकों—मुख्य रहता है। इसका नियमन पर सभी आपत्ति नहीं की जा सकती। इसे ईमानदारी तथा बाधनमयताका संरक्षण समझा जाता है। यह एक कठिन कार्य को पूरा करता है। सन् १९३३ में इस आयोगन कायम ३३००० वर्ष पर नियुक्तियों की थी। भारतमें भी एक ही आयोग के और समानों कार्य कर रहे हैं।

सर्वत्र उम्मीदवारोंको बुलाते-आद एक बराबर विश्वम प्रतियोगिता दिया जाता था। इस अवधिमें उन्हें कुछ विषय विषयों और कुछ सामान्य विषयोंका अध्ययन करना पड़ता था। यह विषय होने थे विधि-महिनार्थ (codes) कानून इतिहास, जन भाषाएँ, धर्मशास्त्र और स्वास्थ्य विज्ञान आदि।

जब अधिकांश समानों पर एक बार फिर परीक्षा होती थी। परीक्षण अधिकांश हर संभव उम्मीदवारको ३०० पीछे और हिन्दुस्तानी उम्मीदवारका ३३० पीछे करिव मिलता था। उम्मीदवारोंके शिक्षणान बाकायब सरकाफ देनी थी। इस महीने का हिन्दु तानमें फिर परीक्षा होती थी। यह परीक्षा वह विभाग सेवा का नियम उम्मीदवारोंकी नियुक्ति होती थी।

जमनीमें सन् १९४० के पहले सभीकी आयु विश्व और भारत द्वारा निश्चित मान्यता कम थी। जमनीमें अब भी तान पर अधिकांश दिया जाता है पर अब सुधार संवर्द्ध-गति अधिकांश उम्मीदवारोंका दिया जाता है। विधि और सामान्य विषयोंके अध्ययन पर अधिकांश दिया जाता था। जमनी प्रशासन-सेवाके विभाग का एक महत्वपूर्ण अंग एक ऐसा निश्चित सेवा कर रहा है जिससे वे सभी जमनी तानके लिए तैयार हो सकें। जमनीका पद्धतिसे सबसे बड़ी अपेक्षा यह है कि इसमें प्रशासन-सेवाकी तैयारी हो सके जमनी तान दिया जाता है।

विधि में प्रतिस्पर्धी परीक्षाका नाम सामान्य परीक्षा और सामान्य परीक्षा का नाम

है। पर अमरिकाम य परीक्षाएँ प्राविधिक दक्षता (technical efficiency) का परखनेके लिए होता है। अमरिकाम अनेक नियुक्तियोंके लिए प्रतियोगी परीक्षाओंके बजाय उम्मादवारोंको माय्य धारित करनेवाणी परीक्षाएँ होता हैं। फलत उच्च फाटि के शिक्षित व्यक्ति अमरिकी प्रशासनमें शामिल होनेकी कोशिश नहीं करते। अनेक पदाके लिए सामान्य हाई स्कूल परीक्षाके साथ कुछ व्यवहार-कृष्णतासे अधिककी आवश्यकता नहीं होती।

३ प्रशासन सेवाकी शर्तें (Conditions of Service) यदि सरकार अपने सेवकोंसे मायासम्भव उच्चनम् कोटिकी सेवा चाहती है तो उसे उनके लिए पर्याप्त वेतन और अभाव तथा असुरक्षासे मुक्ति (विनापवर बुद्धापेय) की व्यवस्था करना होगी। ब्रिटेन और भारतमें बुद्धावस्थाके कारण अया यन होने (superannuation) तक सेवाविधि की सुरक्षाया सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। एक बार जब कोई प्रशासन अधिकारी अपने परीक्षा कानको उत्तीर्णपूवक समाप्त कर नेता है और विमाणीय परीक्षाओंको वह चाहे जो भी हो पास कर लता है तब उसे अपनी नौकरीके बारेमें उस समय तक किसी बातकी आशंका नहीं रहती जब तक उसका काम सतोप जनक रहता है तथा उसकी मानसिक और शारीरिक क्षतिमा पर उसका पूरा काबू रहता है। इस प्रकारकी सुरक्षाके कारण सरकारी नौकरीको जीवन पयन्त नृति (career service) माना जाता है और उसमें जीवनका सर्वोत्तम कान लगा दिया जाता है। अमेरिकाम प्रशासन प्रवाणी परम्पराएँ अभी बन ही रही हैं अतएव वहाँ प्रशासन अधिकारिया द्वारा दूसरी अधिन वेतन देनेवाली नौकरियाकी तलाश असा धारण बात नहीं है।

सन् १९४० के पहले ब्रिटेनमें प्रशासन-अधिकारियाका वेतन भारतके असाधारण रूपसे ऊँचे वेतन और भत्तोंकी अपेक्षा बहुत कम था। ब्रिटेनमें प्रधान प्रशासकीय अधिकारियाका अधिकतम अधिक वेतन ३ ० पीण्ड प्रतिवय था। इन प्रधान अधिकारिया की सख्या ४० में लगभग थी। उनमें से बहुतोंको सहरमें १० ०० पीण्ड प्रतिवय मिला सकता था। भारतमें एक अग्रज बिनाधीनको उसका समु पारक वेतनना मिलाकर अधिकतम २६५० रुपये प्रति मास मिलता था। पर एक बड़ी सख्या ऐसे पनाकी थी जो सेवा-अवधिसे प्रतिवय (time scale) में मुक्त थे और जिनका वार्षिक वेतन २७०० पीण्ड से लेकर ३६०० पीण्ड तक था। इस प्रकारके पन्थ प्राणैतिक अधिक और याविक कमिन्तराके पन्थ प्राप्तय मध्य सचिवाय पन्थ और भारत सरकारके सचिवोंके पन्थ आन्ति। बहुतस प्राणाय गवर्नन्का पन्थ भी प्रशासन सेवाओंके लिए सता था। मन्त्रालय प्रान्तमें कमिन्तरका पद न होनेके कारण वहाँके प्रशासन-सेवकोंका अधिकतम वेतन अपेक्षाकृत ऊँचा रहता था। अपनी नौकरीसे प्रारम्भिक वर्गमें एक प्रशासन-सेवक मायाधिवानी बन सकता था और क्रमश उच्च न्यायालय (High Court) तक उपनि कर सकता था। वह राजस्व परिषद (Board of Revenue) का सदस्य बन सकता था। यह परिषद राजस्व सम्बन्धी मामलारी

उच्चतम न्यायानयनी। यह वित्त आयुक्त (financial commissioner) घन सक्ता था। अनेक विविष्ट पत्रोंके द्वारा उसने तिन सुन हुए थे जिन आय-व्यय निरीक्षण (audit) आयम-गुल्ल (customs) टाक-तार विभाग राजनीतिक विभाग प्रगुल्ल मण्डय (tariff board) और लोब-सेवा आयोगकी सम्म्यता आदि।

नौकरोंके प्रारम्भिक चार वर्षोंके बाद समुद्र पारका वेतन १० रुपये प्रति पीगडकी दरसे स्टैटिगमें परिवर्तित किया जा सकता था। अवकाश ग्रहणके समय अच्छी पेंशन दी जाती थी। भारतीय प्रशासन-सेवाके सदस्य अवधिमें पहले ही अवकाश ग्रहण कर सकते थे और आनुपातिक पेंशन या खर्च थे। छट्टियाँके बारेमें भी उन्हें बहुत उदार सुविधाएँ प्राप्त थीं।

कार्यावधिकी सुरक्षा (security of tenure) पालन केवल और छुट्टियाँकी उदार सुविधाओंके अनिवार्य प्रशासन-सेवाओंमें पद चढ़ने उचित अवसर योग्यता और सामर्थ्यके अनुकूल कार्य और निष्ठापूर्वक बतव्यपाननम गुरुताकी व्यवस्था भी की जानी चाहिए। इतिहासमें अभिजात्यन सम्बन्धी (manipulative) सेवाओंको तथा कलकोंकी सेवाओंको कार्यपालिका और प्रशासनिक सेवाओं में भिन्न माना जाता है। इन दोनों प्रकारकी सेवाओंके लिए भिन्न प्रकार की प्रवेश परीक्षाएँ ली जाती हैं। उच्च कोटिकी सेवाओंमें केवल सी. ही भर्ती नहीं की जाती बल्कि निम्न स्तरके सर्वाधिक समय कमकारियोंका भी परीक्षा करके उसमें भर्ती किया जाता है। सन् १९२० के आरम्भमें एक विभागमें दूसरे विभागमें स्थानान्तरण और पदोन्नति सम्भव हो गयी है।

नौकरोंकी उच्चता (seniority in service) के अनुसार पदोन्नति करना अनेक परिस्थितियोंमें अवांछनीय नीति है। इसमें कमसे कम समान प्रशासनिक अनुविधान टन जानी हैं। पर वेचन उच्चता ही पदोन्नति नहीं है। योग्य और दक्ष व्यक्तिता को एक पद से दूसरे पद पर तब्दीले साथ उत्तम बर्तन अवसर मिलना चाहिए। पाइलर का कहना है कि काम गुणवत्ताके आधार पर प्रशासनिक व्यवस्था वर्गीकरण करने में और कार्यक्षमताके ही आधार पर सेवाकी पदोन्नति पारी व इतिहासमें बर्तनम सम्म्यक व कार्यक्षमताके कमसे कम सुराई पैदा हो जानी है। कार्यक्षमताका वर्गीकरण करनेकी सम्म्यक अवधि। कभी तब्दीग उत्तमि की है। इतिहास विभिन्न विभाग विभिन्न विभाग-कार्योंको समयमें माने हैं उनका उद्देश्य व्यवस्थाकी विभिन्न कार्य-क्षमताकी गुणता करना होता है। इन वर्गोंमें निम्नलिखित बातोंकी सूचना मांगी जाती है—
(क) योग्यता और (ग) विभागसम्बन्धी गान व्यवस्था और परिवर्तन बिदेव-वर्तन उत्तरदायित्व निभानेकी क्षमता पदोन्नति इतिहास (initiative), समर्थता बाक-वर्तन और वातुर्न (address and tact) कार्यक्षमताका नियोजन करनेकी क्षमता उमाह और गानकी व्यवस्था। यह सही है कि इन प्रकारकी विभिन्न व्यवस्था भी व्यवस्था प्रमाँ और विविधता साथ रहता है पर विभिन्न दक्ष पदोन्नति सम्म्यकता गुणन गुणकम हो जाती है।

है। पर अमेरिकाम ये परीक्षा प्राविधिक दक्षता (technical efficiency) को परखनेके लिए होता है। अमेरिकाम अनेक नियुक्तिमोके लिए प्रतिस्पर्धी परीक्षाओं का बजाय उम्मीदवारोंको यथार्थ धारित करनेवाली परीक्षाएँ होती हैं। पतल उच्च कोटि के चिंतित व्यक्ति अमेरिकी प्रशासनमें शामिल होनेकी कोशिश नहीं करते। अनेक पदोंके लिए साधारण हाई स्कूल परीक्षाके साथ कुछ व्यवहार-नुपसततो अधिकांश आवश्यकता नहीं होती।

३ प्रशासन सेवाकी शर्तें (Conditions of Service) यदि सरकार अपने सेवकोंसे यथासम्भव उच्चतम कोटिकी सेवा चाहती है तो उसे उनके लिए पर्याप्त वेतन और अभाव तथा असुविधासे मुक्ति (विगपवर बुद्धिप्रेम) की व्यवस्था करनी होती। ब्रिटन और भारतमें बुद्धावस्थाके कारण अवांछ्य न होने (superannuation) तक सेवाविधिकी सुरक्षाया सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। एक बार जब कोई प्रशासन अधिकारी अपने परीक्षा नायक परसतपूर्वक समाप्त कर लेता है और विभागीय परीक्षाओंको वह चाहें जो भी हो पास कर लेता है तो उसे अपनी नौकरियों बारेमें उस समय तक किसी बातकी आशंका नहीं रहती जब तक उसका काम सम्पन्न बनकर रहता है तथा उसकी भौतिक और पारोरिक शक्तियाँ पर उसका पूरा दबाव रहता है। इस प्रकारकी सुरक्षाके कारण सरकारी नौकरियोंकी जीवन पयन्त भूति (career service) माना जाता है और उसमें जीवनका सर्वोत्तम काल लगा दिया जाता है। अमेरिकाम प्रशासन सेवाकी परम्पराएँ अभाव नहीं रही हैं। जतएव कहाँ प्रशासन अधिकारियों द्वारा दूसरी अधिक वेतन देनेवाली नौकरियोंकी सलाह अथवा कारण बात नहीं है।

सन् १९४० के पहले ब्रिन्सन प्रशासन-अधिकारियोंका वेतन भारतके असाधारण रूपमें ऊँचे वेतनों और भत्ताकी अपेक्षा बहुत कम था। ब्रिन्सन प्रथम प्रशासकीय अधिकारियोंका अधिकतम अधिक वेतन १ ०० पौण्ड प्रतिवर्ष था। इन प्रधान अधिकारियों की संख्या २ के लगभग थी। उनमें से एकको 'हरम १००० पौण्ड प्रतिवर्ष मिला सकता था। भारतमें एक अधिक विभागीयको उसका समूह वारके वेतनको मिलाकर अधिकतम २६५ रुपये प्रति मास मिलता था। परन्तु बड़ी संख्या ऐसे पदाधिकारियों जो सत्ता-अधिकार के प्रतिबंध (time scale) में मुक्त थे और जिनका वार्षिक वेतन २७० पौण्ड से लेकर ३६० पौण्ड तक था। इस प्रकारके पदों में प्रादेशिक आधिकार और वार्षिक कमिशनरोंके पद प्रादेशीय मुख्य अधिकारियों और भारत सरकारके अधिकारियोंके पद आदि। बहुतसे प्रान्तीय गवर्नरोंका पद भी प्रशासन सेवाओंके लिए खुला था। प्रान्त प्रान्तमें कमिशनरोंका पद न होनेके कारण वहाँके प्रशासन-सेवकोंका अधिकतम वेतन अपभारित ऊँचा रहता था। अपनी नौकरियोंके प्राथमिक वर्गमें एक प्रशासन-सेवक 'यायाधिकारियों बन सकता था और क्रमशः उच्च न्यायालय (High Court) तक उन्नति कर सकता था। वह राजस्व परिषद (Board of Revenue) का अध्यक्ष बन सकता था। यह परिषद राजस्व संबंधी मामलोंकी

उच्चतम न्यायालय से। वह वित्त आयोग (financial commissioner) बन सकता था। धनक विनिष्पन्न करने के लिए खनन एवं जलसे आय-व्यय निरीक्षणक (audit) विभाग-मुख्य (customs) डाक-तार विभाग राजनीतिक विभाग प्रमुख मण्डल (warfare board) और लोकमहा आयातकी समस्यता आदि।

नौकरीके प्रारम्भिक चार वर्षोंके बाद समुद्र पारका बतन १० रुपये प्रति पौण्ड्री दरसे स्तितिममें परिवर्तित किया जा सकता था। अवकाश ग्रहणके समय अग्नी योन की जानी थी। भारतीय प्रशासन-सेवाके मुख्य अवधिमें पटन ही अवकाश ग्रहण कर सकते थे और आनुपातिक पेंशन या भत्ता थे। छुट्टियाँके बारेमें भी उन्हें बहुत उदार शर्तियाँ प्राप्त थीं।

बादाबिही सुरक्षा (security of tenure) परन्तु केवल और सुरक्षाओं की
कारण सुविधाओं के अतिरिक्त प्रशासन-महाभाग पर अधिकार केवल अवसर प्राप्त
और सामर्थ्य के अनुकूल कार्य और निष्ठापूर्वक कृत्यप्रदाननम सुरक्षा की व्यवस्था भी
की जानी चाहिए। श्रुतिमें अभिप्रायन सम्बन्धी (manipulative) महाभागों
तथा कर्मियों के महाभागों के कार्यपालिका और प्रशासकीय महाभाग में भिन्न माना
जाता है। इन दोनों प्रशासकीय महाभागों के लिए भिन्न प्रकार की प्रवेश परीक्षाएँ
ही जानी हैं। उच्च शास्त्रीय महाभागों के केवल मौखिक ही नहीं बल्कि
लिखित स्तर के सर्वाधिक समय कम कारिकाओं की परीक्षा करने उनमें भर्ती किया
जाता है। सन् १९२० के बाल्य एवं विभाजन दूसरे विभाग में स्थानान्तरण और
परामर्श सम्भव हो गयी है।

नौवरीकी ज्योत्तना (seniority in service) के अनुसार पदावधि बढ़ा देने पर परिस्थितियोंमें बदलाई नीति है। इसमें कमसे कम तयाम प्रणामधाय अनुविभाग बन जानी है। पर केवल उच्छता ही पदावधि नहीं है। पाप्य और यह स्थितिमा को एक पक्ष दूसरे पक्ष पर लेकीके साथ उपनि बरनका अवसर मिलना चाहिए। पाप्यर का बरना है कि कार्य कृपापाके आधार पर प्रणामन मरक का बर्न करन करनन और बायकृपापाकी आधार पर अनुवकी पाउा का। पदावधि पच्छति बरनन राज्य के कमकागिमाके कमसे कम दुगई है। हा पापी है। कमकागिमाका बाकिरन बरनकी रनाम प्रमगिमा। बनी मशोन उपनि की है। हि नम विविध विनाम मिन गिमा-प्रमोका कामम मान है उनका उदय मरक की गिनी बायकृपापाकी गुनना करना पापा है। इन पर्वोमें निगननिगिन बायकी गुना मीनी जानी है— (क) पापा और (ग) विनाम मरकपोपाप स्थिति और परिस्थित बिमक-गिमा उत्तराविक निमानेकी स्थिति पक्ष कृपा (initiative) मदापन बाय-गिमा और बायुप (address and tact) कमकागिमाका निरनन बरनकी स्थिति उपाह और पापकीय अवस्था। पाप है कि इस प्रकागीगिनि बरनन भी स्थितिमा प्रमास और विनामका पाप रना ही पर रिम भी मय कृपाय पक्षकी गुननाका गुनन गुनन कम हा जानी है।

प्रशासन-सेवा एक गूनी और नामहीन सेवा है। सगठनने अपने स्वरूप को पारण वह खुलकर अपने ऊपर लगाये गये आरोपों का उत्तर नहीं दे सकती। एसी हालत में यह आवश्यक है कि निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य पालन में प्रशासन-अधिकारियों को सुरक्षा दी जाय। फलस्वरूप आरोपों अन्य देशों में इस तथ्य को मानते हुए सार्वभौमिक अधिकारों से सम्बन्धित मुद्दों की मुनवाई के लिए विभिन्न प्रशासनिक न्यायालय कायम किये हैं। इससे विपरीत अंग्रेजी भाषी देशों में व्यक्तिगत नागरिकों के अपराधों तथा जिन अपराधों में सरकारी कर्मचारी सम्मिलित रहते हैं दोष की ओर ध्यान दिया जाता है।

को ल्या। ५११५) के उद्देश्य के लिए सार्वजनिक ११५ का आर ११५-११५ राजनीतिक स्वतंत्रता की नहीं समझ पाते। इस सम्बन्ध में हम ऐसा चलाते हैं कि अंग्रेजी पद्धति की अपेक्षा माओपीय देशों में प्रचलित पद्धति के फल में बहुत कुछ बढ़ा जा सकता है। आगे के विपरीत प्रशासनिक न्यायालय दण्डों से निर्मुक्त नहीं होते। यह न्यायालय मामलों में प्रशासनिक पक्ष पर विचार करने हैं और इन्होंने बहुधा सुनने पर ध्यान दिया है। अपने कर्मचारियों द्वारा विदेश में अपराधों का उत्तरदायित्व राज्य अपने ऊपर आ जाता है।

फाइनेर के अनुसार जर्मनी की प्रशासन-सेवा को मुनिश्चित अधिकार प्राप्त हैं। यह अधिकार उस विधि द्वारा दिये गये हैं और अन्तिम रूप से अनन्तता द्वारा स्वीकृत हैं। इस भी ध्यान है जिनके द्वारा एक अधिकारी अपने विद्वत् की गयी कार्रवाई के विरुद्ध आवाज उठा सकता है। केवल अनुशासन से सम्बन्धित छोटी कार्रवाइयों के विरुद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रशासन सेवा न केवल एक मूल सेवा है बल्कि उसे कठोर अनुशासन के अधीन भी रहना पड़ता है। अतः विपरीत इस बात की आशा की जाती है कि जो भी राजनीतिक दल सत्ता में हों प्रशासन-सेवा समान रहती और न-परमान उसकी सेवा करें। इसलिए प्रशासन-सेवा के लोगो का राजनीति में भविष्य भाग लेने से रोका दिया गया है। वे चुनाव में भाग नहीं ले सकते हैं पर जिस चाह का वह सक्षम हैं। फल में प्रशासन-अधिकारियों को राजनीति कायम भाग लेने की अनुमति है। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है। जर्मनी के बीमार संविधान में प्रशासन अधिकारियों को निराश्रित भाग लेने का अनुमति दी गयी थी।

प्रशासन-अधिकारियों द्वारा सभा और हस्ताक्षर करने के अधिकारों के सम्बन्ध में विभिन्न देशों में विभिन्न नीतियाँ अपनायी जाती हैं। जर्मनी में १९१७ तक अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से तथा अपने सम्बन्ध में माध्यम से निश्चितता तथा कष्टों का स्मृति-पत्रों द्वारा दूर करके सार्वभौम अधिकार था। स्थिति में विभिन्न अधिकारियों के हाथ में गठने हुए विभागीय अधिकाधिकारों का नाम और अन्त में सार्वभौमिकता पाया पड़ता था। यह सम्बन्ध में माओपीय विभिन्न रूपों में होती थी और यथासम्भव व्यक्तिगत विचारों को अपनाया जाता था। १९१७ में अमानवित्व

उद्योग ने व्हाटली रिपोर्ट (Whitley Report) की सिफारिशों को स्वीकार किया गया। अगर बात में ७०० पीएच प्रवि बगैर कम वजन पान पान निम्न बगैर प्रमाणन कम बगैरों में रिपोर्ट में प्रमाणित बिस्ती समितियों का काम होगा है। इस अन्तर्गत गवर्नर वन और पाम करने की परिस्थितियों में सम्बन्धित कानून की आ धाराएँ लागू हानी हैं उनका व्याख्या करने में रिपोर्ट निम्न विषय अन्तर्गत हैं। पर उन अन्तर्गत गवर्नर विषय गये निम्न का अन्तिम व्याख्या सरकार हो रानी है। निम्न वपना पम्पुत्रिके बिन्दु वपिक पारवार् करने का अधिकार बिना प्रमाणन अधिकारी का नहीं है क्योंकि कोई व्यक्ति बड़ा व्यापक कारण नीरार अन्तर्गत हो गया है या नही (Superannuation) इसका अन्तिम प्रमाण सरकार रानी है कोई 'वापान वनहा' जाना। यदि यह उचित है कि अन्तर्गत प्रमाणन अधिकारियों की रानी की जाय या नही बाणि है कि प्रमाणन अधिकारियों द्वारा अधिकारों में मनमाना उपयोग किए जाने के बिन्दु अन्तर्गत रानी की जाय। यह सुझाव निम्न और अनुपन (checks and balances) की व्यवस्था अन्तर्गत प्राप्त होगी है। इस व्यवस्था की प्रविष्टा प्रमाणन पर लग हुए कुछ वैधानिक नियमों का और कुछ व्यापिक नियमों का है। व्यापिक नियमों में से कुछ में है प्रमाणन (mandamus) व्यापक (injunction) बनी प्रमाणन (habeas corpus) अधिकार प्रदान (quo warrant) और उद्घरण (certiorari)। ये सब से आगे हैं या 'वापान वनहा' अधिकारियों का देन हैं। इन आगे का गवर्नर अधिकारियों में कुछ करने का कहा जाता है तथा यह वह वापन करने का गवा जाता है। उद्घरण की मदद अन्तर्गत में गवर्नर का काम पान और अन्तर्गत विधि गवर्नर निम्न रूप का बिन्दु है। कि नही कि निम्न निम्न गवा अन्तर्गत विधि मध्यम है।

४ प्रमाणन-अधिकारियों के बजट (Functions of Civil Servants)
प्रमाणन-अधिकारियों का यह काम है कि वे बिन्दु उद्घरण गौरी कावे उद्घरण प्रमाणन का अधिकार करें। यह सम्बन्धित व नान वपान वपान विधानिक और गवा पारितर में उद्घरण है। गवर्नर का अधिकार गवा अन्तर्गत विधि गवा

प्रमाणन उद्घरण गवापान गवा निम्न गवापान की विधि अन्तर्गत का है।

उद्घरण गवापान व नान विधि गवा विधि अन्तर्गत का काम करने का गवा है।

उद्घरण गवापान गवापान गवा विधि अन्तर्गत गवापान प्रमाणन विधि गवा।

अधिकार प्रमाणन गवापान व नान विधि गवा विधि अन्तर्गत गवापान गवा है कि वह विधि अधिकारों में विधि व नान गवापान का काम है।

उद्घरण गवापान गवापान उद्घरण गवापान की विधि अन्तर्गत गवापान गवापान गवापान।

के कारण नीति निर्धारणम उनका अप्रत्यक्ष हाथ भले हा रहता हो पर कमसे कम स्थलन दसोम तो प्रत्यक्ष रूपसे उनका नीति निर्धारणम काई दखल नहा रहता।

भारत और ब्रिटनके प्रशासन अधिकारियोंके कार्योंके स्वरूपम गौतम अन्तर है। यद्यपि ब्रिटनके प्रशासन-अधिकारी विपक्ष होते हैं फिर भी वे देशकी राजनीतिक नीतिका निर्धारण नहीं करते। यह काम तत्कालीन मंत्रिमण्डल करता है। स्थायी उपसचिव (permanent under secretary) और उसके सहायक सभी प्रकारका जरूरी परामर्श और मुझाव देते हैं पर वे आदेश नहीं देते। यह सम्भव है कि प्रशासन अधिकारी एक कयशोर मन्त्रीका आसानीसे नेतृत्व कर ले जाय, पर एक समय और दृढ़ मन्त्री हमारा अपने मनचाह भाग पर चर सक्ता है।

अंग्रेजी शासनम भारतीय प्रशासन-सेवाकी स्थिति विस्तृत भिन्न थी। गवर्नर और वायसराय तथा विधायिकाके सदस्योंके सलाहकारोंके रूपमे भारतीय प्रशासन अधिकारी नाति लय करने और उस लागू करनेम निष्ठापक भाग लेते थे। पर मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारके बाद—विधायक प्रान्तीय स्वायत्त शासन आरम्भ होनेके बाद—प्रशासन अधिकारियाँ यहाँ तक बाकी कम हो गयी। नयी शरीक भारतीय प्रशासन-अधिकारियाँ बंधा करते हुए सर ई० मण्टेग्यू ने कहा था 'जहाँ उनके पूर्ववर्ती अधिकारी आज्ञाएँ देते थे वहाँ अब उन्हें सलाह देनी चाहिए। जो प्रशासन अधिकारी पट्टन शासन करके जनताकी सेवा करने थे उन्हें अब सेवा करके शासन करना सीखना चाहिए।

आजकल प्रशासन अधिकारी नीतिका निर्माण नहीं करते। इनका मुख्य कर्तव्य है परामर्श देना और प्रशासन करना। संसदीय शासनकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मंत्रिमण्डल नीति नियमित कर और अधिकारी उस नीतिको सच्चाई के साथ कार्यान्वित करें—चाहें वे उस नीतिके समर्थन हों या न हों।

ब्रिटनका प्रशासन-अधिकारी अपना अधिकार समय अपनी मंड पर भिन्नियों और पालोंके बीच विभाजित है पर भारतके अधिकारियोंको और भी बहुत से काम करने पड़ते हैं। विभागीयके रूपम उम बराक तीन चार महीने जनताम सम्पर्क स्थापित करने के लिए विविध में बिताने पड़ते हैं। वह विभागा राजस्व समाहता (collector of revenue) और दण्ड न्याय (magistrate) होता है। उसे 'मोच' पर की सरकार कहा जाता है। वही सरकार है। उसके अधीन परगनाधीश, डिप्टी कमिश्नर सहमीनदार आदि होते हैं। यह मान और पौजदारीके मुकदमाकी सुनवाई करता है तथा दूसरे और तीसरे दर्जेके मजिस्ट्रेट्स द्वारा दिये गये निणयोंके विपक्ष आरोपों गुनवा है।

भारतम ही नहीं बल्कि अन्य देशोम भी प्रशासन-अधिकारियोंका एकमात्र कर्तव्य शासन चलाना नहा है। उन्हें अर्थ-व्यापिक तथा अर्थ-न्यायिक अधिकार दिये जाते हैं। विभागोंके अधिकारियों को ऐसे नियम एवं अधिनियम बनानेका अधिकार प्राप्त रहता है जो उनके अर्थात् काम करनेका न्युनता और साधारण जनताके लिए

माय होने हैं। इनमें कुछ तो विषय पर यद्-नालम—मगर की ओर वास्तव स्वीकृति पाने पर पहले ही माय हो जाने हैं। स्थायी वायपात्रिका बिस्तार से यह तय करती है कि किस प्रकार संसदीय सविधि (statutes) का आवश्यकतापूर्वक की जाय और किस प्रकार उस सविधि द्वारा प्रत्यक्ष अधिकारका उपयोग किया जाय। प्रत्यक्ष विधान (delegated legislation) के बारे में ब्रिटेन की स्थिति प्राप्त और अमेरिका के मध्य की है। प्रशासकीय विभागों को सीधे अपने प्रत्यक्ष विधान की बढ़ती हुई मांगों के कारण पर प्रभाव डालते हुए मरियट (Merritt) इस प्रकार लिखते हैं—अपनी औद्योगिक और सामाजिक परिस्थितियों की बढ़ती हुई जटिलता के कारण अपन क्लबिज्म समाजवाद (Fabian Socialism) के मुख्य प्रभावों के कारण अपन हस्तगत न करने की नीति (laurez faire theory) का सावधानीपूर्वक त्याग करने के कारण तथा जीवने सभी क्षमों में सरकारी नियंत्रण और नियंत्रण की बढ़ती हुई मांगों के कारण तथा अपन विधान की बढ़ती हुई मांगों का पूरा करने की अपनी समझना और निगाहों के कारण समझे यह वृत्ति अपनाती है कि प्रशासकीय विभागों का अधिकार अधिक सीधे विवेक के बावें सम्पन्न करने का अधिकार (discretion) सीधे दिया जाय (मरियट दूसरा खंड पृष्ठ २३३)।

जैसा कि मरियट ने लिखा है अथ-व्यक्तिगत सम्पत्ति दूसरे का माया जाना जाय एक ओर सुविधाजनक, यथ और अविवाद है वही दूसरी ओर उसने स्पष्टता के बिना जाने की भी आशा है। इस प्रकार के बचने के लिए मरियट ने तीन उपाय प्रस्तावित हैं—
 (१) जिस विधि निष्पाप की गति सीधे जाय उसे पूरी तरह विनियमित से होना चाहिए—
 (२) जिस विधि पर प्रभाव पड़ने वाला हो उस पर प्रतिनिधित्व से होना चाहिए—
 (३) प्रत्यक्ष अधिकार-व्यक्तिगत माया पर हस्तगत न गति-विधि की चाहिए। १९१९ में प्रिवी काउन्सिल (Privy Council) ने अपना (L. 1919) के मामले में यह फैसला दिया था कि संसद को अपनी कौन्सिल की स्थापना के बिना अपना द्वारा गति विधि का बनने का यह पर कोई अधिकार नहीं है जब तक उस गति अधिकार गति द्वारा न दिया जाय। अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय ने १९०० में नार० ए० (National Rejia Association) की कुछ धाराओं का समर्थन प्रदान किया था कि वायपात्रिका का बहुत अधिक व्यापक और अनिश्चित अधिकार प्राप्त कर विधायिका ने अपने अधिकार भंग कर अनिश्चित बिना और तब मान लाना प्रामाण्य नही कर सकी जिस वायपात्रिका के बावें का पथ प्रस्ताव हो गये।

अब देखें प्रशासकीय विभागों के अ-व्यक्तिगत काम करने हो है। उद्देश्य के लिए अमेरिकी अंतरा-राज्य-व्यक्तिगत-आयों का अनुसंधान के माध्यम से सरकारी कामों के बिना उनका गति लाने के आरा के साथ-अपनी सीधे करने के लिए व्यापक अधिकार दिए गए हैं। यदि आयकर (income tax) निराकरण विधि में आयकर अधिकारी के अपने के बिना व्यक्तिगत प्रदान करने है तो इन धाराओं की गति प्रदान अधिकार की कर गति है।

इसी प्रकार उद्योग विभागका कोई उच्च अधिकारी ही यह निणय करता है कि कारखाना काम करनेवाले मजदूरोंको काम करते हुए जो अगति हुई है उसने लिए उन्हें क्या मुआवजा मिले।

प्रशासक-कार्यके सम्बन्धम एक और विचारणीय विषय यह है कि अस्त-व्यस्त तरीके से विभागों और उनके उपविभागोंकी गहरी तरह बढ़ने का रोक्ना आवश्यक होता है। यदि मितव्ययिता और कार्य-रक्षता अच्छे लोक-प्रशासनकी कर्तव्यियाँ हैं तो यह जरूरी है कि सरकारके विभिन्न विभागोंका संगठन सावधानीसे किया जाय ताकि कार्यों और अधिकारोंका पारस्परिक अतिश्रमण न हो और परस्पर अनिष्ट रूपसे सम्बंधित विभाग एक सामान्य नियंत्रणके अधीन आये जा सकें। विभागोंका अत्यधिक ब-ट्टीकरण जसा कि फ्रांसमें होता है उतना ही नुटियूय है जितना अनुचित बिके-ट्टीकरण। विभिन्न विभागोंका परस्पर सम्बन्ध रक्षना ही मध्यम मार्ग है क्योंकि इससे प्रशासन के विभिन्न स्तरोंपर समन्वय (coordination) की जरूरत पड़ती है और अन्तिम रूपमें यह एक सशोण अधिकार सत्तामें परिणत हो जाती है।

१९१७ में लॉर्ड हैल्डन (Lord Haldane) का अध्ययन-समिति-संवाके अनुरूप विभक्त करनेका समपन किया था। उसने सिफारिश की थी कि सरकारी विभागोंका पुनर्गठन इस प्रकार किया जाय (१) विरा (२) राष्ट्रीय सुरक्षा (३) वदेशिक मसले (४) अनुसंधान और सूचना (५) संरक्षण (इसमें इन्फि जंगल और मत्स्य पालन सम्मिलित हैं) यातायात और वाणिज्य (६) वस्ति नियोजन (employment) (७) रक्षण (supplies) (८) शिक्षा (९) स्वास्थ्य और (१०) याय। कुछ बड़े विभागोंमें एक से अधिक मंत्रियोंकी आवश्यकता पड़गी। समितिने यह भी सिफारिश की थी कि भविष्यमें मंत्रिमण्डल युद्धकालीन मंत्रिमण्डल की भाँति छोटा होना चाहिए। उसका काम प्रशासन करना न होकर विभिन्न विभागोंके कार्योंका निरीक्षण करना और उनमें सन्तुलन कायम करना होना चाहिए। हैल्डन समितिने एक सुझावने बहुत अधिक ध्यान आकर्षित किया। वह सुझाव यह था कि सरकारके हर विभागके लिए या सम्पूर्ण प्रशासनके लिए एक स्थायी योजना बनीगत या विचारक समिति हानी चाहिए। इसका काम प्रशासन की समस्याओंके नये हम छोड़ निराकरण होना। यह भविष्यके लिए ऐसी योजनाएँ भी बनायगी जिससे समूचा शासन-यंत्र कार्य कुशल मितव्ययी प्रगतिशील और जनसेवामें समर्थ हो सके।

५ प्रशासन-सेवाकी अच्छी व्यवस्थाकी ब-सो-टियाँ (Tests of a good system of Civil Service) सावजनिक प्रशासनका काम वाणिज्य प्रशासनको तरह तमा बमाना नहीं है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि जहाँ-जहाँ सेवा की सबसे अधिक जरूरत हो वहाँ सेवाकी जाय। सीमा सेवा करने समय प्रशासन की धूमिलारियाका हरण का प्रति-पायनूण ढाना चाहिए। उन्हें किसी व्यक्ति या वस्तुके

माय पत्रपत्र नही करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के प्रति उनका व्यवहार समान विधि पर आधारित होना चाहिए। उन्हें आन आनका सहा अर्थों में जनताका सच्चा सक्क बनाना चाहिए। भारतीय प्रशासन अधिकारियों के विरुद्ध कभी भी आग्रह नगाना जाना है कि वे जनता के माय अपन व्यवहार में उदर कमर्षिण और घमंडी हों। परन्तु अब भारतीय प्रशासन-सेवा (Indian Administrative Service) के साथ जनता के लिए अधिक गुणवत्ता और न्यून गम्भीरता की योजना भी करना अधिकार है।

जागरूकता का कथन है कि प्रशासन-सेवा के जनता के आत्म-संवेदनका पूरा करने की समता और उद्योग-मानना जानी चाहिए। प्रशासन अधिकारियों के लक्ष्य बहुत बड़ी काम यह जाना है कि वे उनकी कर्मचारी बन जान है और उसमें ऊपर उठने की आवश्यक प्रवृत्ति और क्षमता उनमें नही जानी। निरमल-मार्कजिनिक कार्यो की व्यवस्था में घाटी बहुत प्राप्तिवादी (red tapism) और रस्मी और तरीका (routine) का पालन उन्ही जाना है पर हमने प्रधान स्थान नही देना चाहिए। सरकारी कार्यो के सम्पूर्ण (exclusion) में भी हमारा मानसिक मूल्य का प्रभाव स्थान देना चाहिए।

जनता के माध्यम-मार्ग सरकार की कर्मचारियों के विरुद्ध नय आर विराधता भावना रहनी है। उदाहरण के लिए प्रशासन अधिकारियों के समामुख पदों करना चाहिए। हम सम्पूर्ण प्रशासन में प्रकार नियंत्रण है 'जनता सरकार के कर्मचारियों के प्रति विरोध भावना रखनी है उनमें उठनी है उन्हें जनता समझनी है और कभी-कभी ही उनका प्रकाश करनी है। प्रशासन का कहना है कि विरुद्ध माध्यम-मार्ग आम जनता प्रशासन-सेवा के अलिप्त और उन्ही कार्यो के प्रति कर्म उन्ही न रहती है। भारत में अलिप्त प्रामी-को हम बातों पूरा-पूरा विचार रखना है कि सरकारी कर्मचारी माध्यम-मार्ग काम करने की समता रखना है। हमें साथ ही उन हम बात का मत भी रखना है कि उनका माय सरकारी कर्मचारी की ही मूल्य है।

प्रशासन का उदाहरण और मत और पत्रपत्र में ही हावर बात जाना चाहिए, कभी हमारी आर अपने पत्र-पत्र में आनपूर्व कर माध्यम-मार्ग व्यवस्था नही कभी चाहिए। किसी भी हानि में उन अवस्था की संप्रतीति काय-पालन या विपत्ति का नाम न देना चाहिए। उसे अपनी ही सच्चा टीक मानने की प्रवृत्ति में देनी चाहिए। उन कर्म अधिक पत्र-व्यवहार नही करना चाहिए। ये सम्मान का मूल्य नही जाना चाहिए और देर करने के और अधिक तराफों का नही जाना चाहिए।

भारत के नया सम्प्रदाय के लक्ष्य और लक्ष्य के लिए माध्यम-मार्ग प्रतिनिधियों के माध्यम का मत है। यह सम्प्रदाय है जनता की कर्म माध्यम है कि यदि हम हमारे व्यवस्था की ईमानदारी और कर्म लक्ष्य को लक्ष्य रखना चाहते हैं तो यह चाहिए है कि माध्यमिक प्रशासन राज्य के लक्ष्य के लक्ष्य के लक्ष्य में करने लगे। और सब बात के बराबर रहे या एक सम्प्रदाय का उन्ही मूल्य

के अनुपात ही प्रशासन-सेवाओं का स्थान मिलना चाहिए। पर यह सब याद रखना चाहिए कि हर सम्प्रदाय और जाति अथवा मिश्र भाषा भाषी गुरुको प्रशासन सेवाओं में अपनी सद्व्यवस्था अनुपात में प्रतिनिधित्व देने के अधिकार की अपेक्षा नागरिकों का यह अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है कि वह अनुगम और निष्पक्ष अधिकारियों के गुणमन में बच रहें।

फाइनेर के अनुसार जमनी के प्रशासन अधिकारियों के निम्नलिखित कर्तव्य हैं

(१) प्रशासन-अधिकारी को सविधान और विधियों के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। उसे अपने उपर से अधिकारियों की उन सभी आज्ञाओं का वहाँ तक मानना चाहिए जहाँ तक वे विधियों के प्रतिबन्धन में हों।

(२) उसे अपने कर्तव्यों का पालन पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-सुविधा का विचार किए बिना एकदम निष्पक्ष होकर पूरे परिश्रम और सावधानी के साथ करना चाहिए।

(३) उसे अपने काम पर आने और वापस आने के समय का ठीक पालन करना चाहिए।

(४) उसे ऐसे दूसरे अतिरिक्त काम करने के लिए तयार रहना चाहिए जिन्हें पूरा करने के लिए वह अपना सामान्य काम छोड़ना पड़ेगा। इस अतिरिक्त काम के लिए उसे अधिक बतन की माँग नहीं करना चाहिए।

(५) उस अपने सरकारी कार्यों में सच्चा होना चाहिए। उसे किसी महत्वपूर्ण बात की मूक अभिव्यक्ति नहीं करनी चाहिए जिसका प्रकाश आना विभाग के लिए चिन्ता की बात हो सकती है।

(६) उस अपने ऊपर से अधिकारों का वास्तविक भीतर और बाहर सब स्थानों पर सम्मान करना चाहिए। मन ही उच्चाधिकारी का चरित्र और व्यवहार आपत्तिजनक हो।

(७) अधिकारियों को अनचाहे साथ हमला न करने में व्यवहार करना चाहिए।

(८) प्रशासन अधिकारी का अपमान चुपचाप धर्मोत्त नहीं कर लेना चाहिए अथवा प्रशासन-सेवा की प्रतिष्ठा गिर जाने का भय है।

(९) किसी भी अधिकारी को ऐसा अतिरिक्त पद या बर्तन मंजूर नहीं करना चाहिए जिससे कि उसने उपयुक्त विभागीय अधिकारियों को अनुमति न मिले।

(१०) प्रशासन अधिकारी को सरकारी गोपनीय बातों को गुप्त रखना चाहिए।

न्यायपालिका

(The Judiciary)

न्यायपालिका का महत्व (The Importance of the Judiciary)
मदि किसी देश में विधायिका और कार्यपालिका तो बहुत अच्छी हों पर स्वतंत्र और

नय अपराध माना जाता है। विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ अपने सदस्यों पर अपनी अपनी आधार-संहिता लागू करनेके लिए समझाने-बुझाने नैतिक दबाव, और सामाजिक बहिष्कारका प्रयोग कर सकती हैं। पर आवागो गिरफ्तार करने का अधिकार देने या इसी प्रकारकी अन्य सजाएँ देने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। ग्याप परना राज्यका ही बाप है।

स्वतंत्र न्यायपालिकाका सबसे बड़ा गुण स्वतंत्रताका ही है। ब्रिटन में प्रथम दो राजाओं राजाओं के समय में न्यायपालिकाका न्यायपालिकाके अधीन बनानेके प्रयत्न किये गये। कुछ तत्कालीन न्यायाधीश भी इस अपवित्र काम में शामिल रहे। ब्रिटन के अनुसार न्यायाधीशों का निस्संदेह सिद्धोक्ति भाँति स्वतंत्र होना चाहिए, पर वे सिद्ध सिद्धांतों के नीचे ही रहेंगे। दूसरे शब्दों में उन्हें न्यायपालिकाके हार्थ का विलोपना होना था। ब्रिटन के व्यवस्था अधिनियम (Act of Settlement) ने अन्तिम रूपसे उस देशकी न्यायपालिकाको न्यायपालिका से स्वतंत्र कर दिया। इस अधिनियम के अनुसार ससत्रों को मदनोक्ति भाँति पर ही न्यायाधीशोंको उनके पदों से हटाया जा सकता था।

२ कुशल न्यायपालिका के आवश्यक गुण (Conditions required of an efficient Judiciary) न्यायपालिकाकी सुन्दर व्यवस्थाके लिए सबसे पहली आवश्यकता यह बात की है कि वह स्वतंत्र हो। न्यायाधीशोंके नियुक्त किये जानेके तरीके और उनकी नौकरी की शर्तें ऐसी होनी चाहिए कि वे स्वतंत्र रूपसे कार्य कर सकें। कार्यपालिका या जनताके समक्ष उन पर और उनके वस्तुस्थिति पालन पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए।

न्यायपालिकाके नियुक्तता उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी स्वतंत्रता। ब्रिटनके बारेमें यह आमतौर पर कहा जाता है कि वही सबके लिए एक ही विधि है और विधिकी दृष्टि में सभी व्यक्ति समान हैं। धन-सम्पत्ति ब्रह्मण और सामाजिक प्रतिष्ठाके विमर्शोंका न्यायाधीशों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। किसी भी मामले में न्यायपालिका न्यायपालिकाको यह आश्वासन न हो पावे कि किसी मामलेमें क्या फैसला किया जाय किन्तु वह उन मामलों में जिनका सम्बन्ध न्यायपालिकासे हो।

स्वतंत्र और नियुक्त होनेके साथ ही न्यायाधीशोंको विद्वान और अपने काम में दक्ष होना चाहिए। एक अर्थ में न्यायाधीशोंके लिए ही न्यायपालिकाकी प्रतिष्ठाकी जनता की दृष्टि में पना देना है। न्यायाधीशोंको अपने कृतव्य पालन में एकदम नियम संचालन और दृढ़ होना चाहिए।

न्यायाधीशोंकी बात छात्रों न्यायालयोंके बारेमें विचार करने हुए यह कहना पना कि न्याय नीति और निष्पक्षता होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि न्यायाधीशोंकी संस्था काफी दृढ़ जिसमें न्याय विलम्ब न हो। मगर न्याय बदरिवाने बारेमें यह कहा जाता है कि यहाँ न्याय न तो गलत हो जाता है और न निष्पक्षता ही होता है। विधि और उसकी न्याय-प्रतिष्ठा दोनों अधिक प्राथमिक

हानी है कि एक चतुर वकील या मन्त्रिजन 'यायम' अनावश्यक विचित्र हो कर ही सक्ता है भूत ही उस एवम् राख पाय। यदि न्यायपालिका स गरीब का काम होना है तो यह आवश्यक है कि 'य' यन्तना महमा न हा जितना वह आज्ञात मान्न गया अनव अवस्था स है। न्याय रक्षति मरत गोधी और कम सुबोली हानो चाहिए। जहाँ एक ओर इस धानकी पत्राया व्यवस्था होनी चाहिए कि 'यायम' हो जानेवाली भनावा गुपार बरनव निण अनाम का जा मके वहाँ दूसरी ओर इस बात की भी प्राप्ति हानी चाहिए कि मन्दा और दुग या मन्त्रमवाडा न हान पाय। आज्ञात का इस धानका भरपूर प्राप्ति करनी चाहिए कि 'यायम' सम्भव हा अल्पमम समीचीन दर वका द्वारा पयवा हो जाय। समदारी इस तरह दान्तिगुन हान स गुलानकी निगम भारतकी छाती अनामवाकी 'पयोज' क स उगने चाहिए। पर आज्ञात एका लः किया जा रहा है। मके विण उक्त आने कि जाने चाहिए।

३ न्यायपालिका के कार्य (Functions of the Judiciary) (१) 'याय' पालिका का कार्य काम कीवानी और कौशलसी लता प्रचारके मामलीम विधि की लागू करना है। यह काम इनका आमान नहीं है जितना कि वह ऊपरने न्यायी दता है। अनव मती दगा हानो है जिनम विधियाँ रण नगी हात। 'मनिन' न्यायाधीन का उनका अध निधानना पन्ना है। 'यायाधीन' विधियाँ के अधी की ध्याया इनकी अधिर करती पनी है कि 'म' न्याय के पन्त्रकपवदुन बड़ी मन्दा म निन विधि (case law or judge made law) का निगम हुआ है। अन्त-मन्त्रन दगा म जा मुन्त्र परिनिम विधि (statute law) का परिधिप नहीं आत उनका उल्ला करने हुए न्यायाधीन सामान्य विधि (common law) की पापता करने है। प्रोगम सम मग मन्त्रुन प्रयोगी-विधि (administrative law) सम-परिधि निगम द्वारा निमित हु है। यह सम-परिधि दगा मन्त्रक प्रगामी न्यायालय है।

मदति यह उरती मः है कि पूर्वोन्तरण (precedents) भावी निधियों पर मान ही हैं कि भी उनका बड़ा मन्त्रा विन जाता है। बरीन और न्यायाधीन लता ही उनका उल्ला करने हैं। अन्त-मन्त्रन दगा म पूर्वोन्तरण केन विधि के साम्य ही नहीं होने कि म विधि के मोर भी हाते हैं। पर पन्त्र जमनी और मन्त्र मारत मन्त्र म दः न्यायालय तब साधारणतया न्यायिक पूर्वोन्तरण का धानन के निग पाप मः हात।

मानर का क ता है कि पूर्वोन्तरण का प्रचारके होत है (१) के पूर्वोन्तरण दिन। मदतिर निग मन्त्रा विधि की मन्त्र हानो है और (२) के पूर्वोन्तरण का बन्मान विधि की बन्त्र पापता हो करने है। दूसरी प्रचारके पूर्वोन्तरण का मन्त्रा ता बन्त्र हानो है पर व कम मन्त्रु होत है। पूर्वोन्तरण का तब और बन्त्रिण अन्त-मन्त्रन (anti-statism) पूर्वोन्तरण और अनुमन्त्रम (pragmatism) पूर्वोन्तरणम किन मन्त्र है। मन्त्र कि नाम मे ही प्रवट है न्यायाधीन के निग मः

साक्षिमी होता है कि वे आधिकारिक पूर्वोदाहरणको माने और उससे अनुसार ही अपना फैसला दें। हर न्यायालयका न्यायाधीश अपने से ऊँचे न्यायालयके न्यायाधीश के पूर्वोदाहरणको मानने का माध्य होता है। पर न्यायाधीश अपनेसे नीचे न्यायालयके आधिकारिक पूर्वोदाहरणकी अवहलना कर सकता है यदि वह उस पूर्वोदाहरणको युक्ति और विधिके विपरीत समझता है। अनुन्यायमक पूर्वोदाहरणका माना जाना अनिवार्य नहीं होता और न्यायाधीश उस उतना ही महत्व देता है जितना वह उपयुक्त समझता है।

(२) न्यायपालिकाका दूसरा महत्वपूर्ण काम राज्यके अनिवार्य हस्तक्षेपसे व्यक्ति की रक्षा करना है। आंग्ल भाषा में 'ला' या 'लेजिस्लेशन' इसके लिए कोई अलग व्यवस्था नहीं है क्योंकि इन देशोंमें विधि-शासन (Rule of Law) प्रचलित है। इसके अनुसार सरकारी अधिकारियों और व्यक्तिगत नागरिकोंके लिए एक ही विधियाँ और एक ही प्रकारकी अन्तर्गत होती हैं। जो विधि अदासत होती भी है वे साधारण अदासतोंके अधीन होती हैं। फ्रांस जर्मनी इटली आदि अन्य योरोपीय देशोंमें प्रभासी विधि लागू करनेके लिए विधायक प्रभासी न्यायालय होते हैं।

इस प्रश्न पर बड़ा विवाद हुआ है कि विधि-शासन प्रभासी विधिसंघट्ट है या प्रभासी विधि विधि शासनसंघट्ट है। आंग्ल भाषा में 'ला' विधि-शासनको अत्यधिक महत्व दिया जाता है और वह माना जाता है कि कबल विधि शासन ही सरकारी पदाधिकारियोंसे व्यक्तिकी स्वतन्त्रताकी रक्षा कर सकता है। इस प्रचलित मतकी दृष्टिसे दारी ए० वी० डायसी (A V Dicey) पर है। फ्रांसके प्रभासी न्यायालयोंकी जानकारी डायसी के समयसे अब हमें अधिक है। इस जानकारीके बन पर अब विचारको का विन्यास है कि प्रभासी न्यायालय और प्रभासी विधिकार्य अनिवार्यतः निरंकुश शासन नहीं है। इस प्रचलित विन्यासका कोई ठोस आधार नहीं है कि प्रभासी न्यायालय अधिकारियोंको प्रसन्न करनेके लिए या प्रभासी सुविधाके विचारसे गलत फैसला करते हैं। प्रभासी-न्यायालय के न्यायाधीश केवल विधिपरिष्कृत ही नहीं होते बल्कि उन्हें पर्याप्त प्रभासी अनुभव भी होता है। इसलिये जिन मामलोंमें सरकारी कर्मचारी फँसे होते हैं उन मामलोंमें सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों पर विचार करनेमें वह समय होते हैं। समय बीतनेके साथ-साथ प्रभासी न्यायालयोंके न्यायाधीश सरकार और उसके कर्मचारियोंक मनमाने अवैध कार्योंके विरुद्ध नागरिकोंके रक्षक बन गए हैं।

एक दृष्टिसे विधि शासनकी अपेक्षा प्रभासी विधि खेद है। फ्रांस जैसे देशमें एक व्यक्ति राज्य पर मुकुटमा चला सकता है। यदि राज्यके अधिकारिमाने उसके साथ अन्याय किया है तो वह उसकी क्षतिपूर्ति करवा सकता है। पर विनियम साधारणतया व्यक्ति राज्य पर मुकुटमा नहीं चला सकता। उसे उस अधिकारी पर मुकुटमा चलाना होता है जो उसके साथ अन्याय करता है। यदि वह अधिकारी दिवा सिपा है या हजाना दानम असमर्थ है तो फिर क्षतिपूर्ति भी नहीं हो पाती। जब किसी

उन्हे पचापिबारी पर मुकुन्मा चलाना हाना है तब उसके लिए एक अधिकार याचिका (Petition of Rights) द्वारा अनुमति प्राप्त करनी होता है। इस अनुमति को प्राप्त कर लेना हमारा आसान नहीं होता।

हमारे देशों में एक बिनाय बात यह हुई है कि विधि-शासन और प्रणाली विधि दोनों में इस परिवर्तन हुए हैं कि वे एक दूसरे के नज़दीक आ गये हैं और उनका अन्तर कम हो गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है किन्तु स्वस्थ तथा धर्म जैसे अनेक प्रणाली विभागों को अर्थ-व्यापिक अधिकार प्राप्त हैं और कुछ मामलों में उच्च अधिकारियों के पास उनके निर्णयों के विरुद्ध अपील की जा सकती है। दूसरी ओर दोस्तों के देशों के प्रणाली व्यापक होने लगी हैं और निम्न आदेश सम्बन्ध में एक निश्चित कार्य प्रणाली (procedure) को अपना लिया है और अधिक याचिका बन गये हैं। संसार में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ वे प्रणाली अधिकारों का नागरिकों के अधिक मुक्ति, अधिकार और उन्मुखता में प्राप्त है। ऐसी हालत में वास्तविक रूप से हम बिनायों का एक-साक मान लेना अधिक ठीक जान पड़ता है कि सरकारी कार्य करने के निमित्त हमें प्रणाली अधिकारों का किसी नागरिक या सम्बन्ध रहना है वह उस सम्बन्ध में भिन्न कोटिका होता है जो सम्बन्ध एक नागरिक का अन्य नागरिक से होता है। अमेरिकन लेखक सी. डी. एलन (C. D. Allen) का कहना है 'आम प्रणाली सम्बन्धों को अधिकार (remedies) प्राप्त हैं य किन्तु आम प्रतिवारों की जगह अधिक आसान साम्य और बहुत अधिक सरल है। आम की सम्बन्ध-परिषद् सम्बन्धीतने जनता की रक्षा करती है। वह जनता के अधिकारों की रक्षा करती रक्षा मानी जाती है। इस सम्बन्ध में केवल एक-साक सोचने ही शुरुआत है किन्तु यह सम्बन्ध विधान के आधारों का एक प्रदर्शन भी है।

प्रणाली सम्बन्ध-परिषद् सम्बन्धीतने हमारे सामने मनी हाना था पर अब इस सम्बन्ध प्रणाली व्यापकता सम्बन्धीतने एक ऐसा व्यक्ति हाना है जिसका सम्बन्धीतने को सम्बन्ध नहीं होता। एक आधुनिक सम्बन्ध कहना है कि परिषद् की निम्न कुछ दृष्टियों में भारत के मोक्ष-मेवा-आयामों में निम्न-जगती है जिसका नाम प्रणाली अधिकारों के लिए नियम बनाना उनको सम्बन्धीतनी जोष करना और उनको निम्न-जगती गुनवाई करना है। सम्बन्ध-परिषद् हमारे अधिकार और एक नाम यह करती है कि जो सम्बन्ध या नियम विधानों द्वारा बनाये हुए नहीं हान उनका यह व्यापिक पुनर्विचार (review) करती है।

(३) सम्बन्ध-परिषद् सम्बन्धीतने एक सम्बन्धीतने कार्य सम्बन्धीतने व्यापक करना और ऐसी विधियों को अधिक याचिका करना होता है या सम्बन्धीतने मनी हान। यह सम्बन्ध ठीक कहा गया है कि सम्बन्ध सम्बन्धीतने में निम्न-जगती सम्बन्धीतने सम्बन्धीतने विधियों है और सम्बन्धीतने अधिकारों के सम्बन्धीतने है।

(४) सम्बन्ध-परिषद् (५) सम्बन्धीतने (statute) (६) सम्बन्धीतने और (७) सम्बन्धीतने। इन चारों में से प्रथम सबसे ऊपर है।

सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीश सचिवानक सरसक है। पर उसका यह मतलब नहा है कि वे हर परिनियम विधिकी सावधानिकताकी परस उसके लागू होनेके पहल करते हैं। विधि द्वारा सचिवानकी तथासुधिया अवहनना या अतिरमणकी सर्वोच्च न्यायालयके विचारम उपस्थित करना पीछिन व्यवितका काम है। जैसा कि एक लेखकने हाल ही म लिखा है "न्यायालयकी सब तक हस्तक्षप करनेका कोई अधिकार नही है जब तक विधि द्वारा निवारित दगके अनमार उसक स मुस सामे गये किंसी मामनम उसके हस्तक्षपकी प्रार्थना न की जाय।

सर्वोच्च न्यायालयक न्यायिक पुनर्विचोचन (judicial review) अधिकारमे कायपालिका अववा विधायिका द्वारा होनवान अतिरमणाके विरुद्ध न्यायपालिकाकी सचिवानके सरसकके रूपम काम करनेका अवसर प्राप्त होठा है। इस व्यवस्थाम प्रससनीय दगसे काम हुआ है यद्यपि एम भी अवसर आय है जब न्यायाधीशकी द्वेष या पणपातकी भावनाओने सचिवानकी रक्षाके नाम पर महत्वपूर्ण सामाजिक विधियोंकी अस्वीकार करनम काफी याग लिया है। उदाहरणके लिए अमेरिकाम नियाजन दायित्व अधिनियम (Employees Liability Act) ग्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम (Workmen's Compensation Act) न्यतम वेतन अधिनियम (Minimum Wages Act) बाल-शम निरापक अधिनियम (Act to Prevent Child Labour) आदि काग्रस (मसद) द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत हो जानेके बाद भी एव न एव बार सर्वोच्च न्यायालयद्वारा अस्वीकृत विये जा चुके हैं यद्यपि आज य अधिनियम दाकी विधि बन चुक है।

(४) गार्नर ने न्यायपालिकाक अय कार्य म मतलाय है (क) विभिन्न प्रकारके मल (Writs) और न्यायेन (injunctions) जारी करना (ख) सम्बन्धित पक्षोंकी प्रार्थना पर यह निणय देना कि क्या ठीक उचित या अविकार-सगत है और विधि की मांग क्या है (ग) कायपालिका अववा विधायिकानी प्रार्थना पर विधि सम्बन्धी प्रश्नों के बारेमें परामश-मूलक सम्मति देना (घ) सवा मक सचिवानाम विवादपस्त अधिकार क्षत्रके मामलाम अपना निणय देना (ङ) न्यायालयके नृद्ध स्थानीय अधिकारियोंको नियुक्त करना वनकी तथा अय वमधारियाकी नियुक्त करना साइमेंस देना सरसका और न्यायधारिया (trustees) को नियुक्त करना वसीयतनामों को प्रमाणित करना मरे हुए लागोंकी जायदानाका प्रबन्ध करना आगताओं (receivers) का नियुक्त करना आदि।

४ न्यायपालिका का संगठन (Organisation of the Judiciary)
न्यायपालिकाका संगठन कायपालिका और विधायिकासे भिन्न प्रकारका होता है। जैसा कि गार्नर न कहा है, न्याय शक्तिका प्रवाग काई एक न्यायाधीश या काई एक सभा नहा करता है बल्कि इसका प्रसार न्यायाधीशकी एक शृल्लमा या सामहित रूप स नीचेसे ऊपर तक मगठिन न्यायाधिकरणा द्वारा होता है। इस समस्त संगठनक शिखर पर एक सर्वोच्च न्यायालय होता है जिसे अपने म नीचे न्यायालयोंके निर्भया

को रद्द करने और उनमें परिवर्तन करनेका अधिकार होता है (२२ उ० १)।

अग्नि-जैष्ठ्य दत्ताम आन मुनवाया अग्नि-का छात्रर आमतौर पर हर अग्नि-वर्ग एक ही न्यायाधीन होता है। कम अग्नी और कम बड़े पाठारीय ग्रीष्म एक न्यायामयन एक अधिक न्यायाधीन रमनवा प्रदा है। यह विज्ञान विज्ञा जाता है कि न्यायामयने न्यायाधीन का मन्दा एक अधिक हानय गमातयका प्रमत्ता मनमाना नहीं होता। परन्तु प्रणामी वृत्त अधिक शुद्धता है। दिन और अनरिवा की निरन्ता अग्नि-जैष्ठ्य न्यायाधीन मन्दा अग्नि-जैष्ठ्य कम रहती है।

आंगन-अनरिका और चोरानाय स्वाचारयामे एक अन्तर और है। श्रिन और अनरिका के स्वाचारयाम एक प्रयोग दूसरे प्रयोग द्वारा करने पर मूकनवायोंकी बुद्धिप्राप्ति निम्न किन्तिन स्वाचारयाम मन्त्र का सुनवाई दिया करने है पर चोरानाय अंगनमें एक स्वाचारयाम ही रहती है और मन्त्रस्वभाव का वही आना पड़ता है।

अमेरिका राष्ट्र-न्यायानय वा तुलनात्मक भारतीय न्यायानय की एक महत्वपूर्ण विभिनता यह है कि भारतीय न्यायानय की पांच प्रणाली एकीकृत और मिलाप (integrated) है। यथा आवश्यक है कि राज्यके सभी न्यायानयों का संगठन एक ही व्यवस्था में अनुसरण हो ताकि न्याय एक बड़ा न्यायानय हो जिसके अधीन उसकी अनेक शाखाएँ हों।

अमेरिका और सततानक प्राम प्री प्रारक व्यापनय हन है। एक बा
प्रविचार-प्रार सप्राम प्रामा है और इनरेक व्यापनय (३८) :

हा प्रकारके सामान्य ज्ञान आवश्यक न्या है। सामर मरिषानर अनपार
 जवनीमें 'सत्र और रागा' के नामों की एक ही पद्धति थी (२२ ७८३)। सत्र और
 इसके रागाके बीच स्पष्ट भेद काई विभावन न। या और न विधिमें ही कोई
 विभावना थी। इसके विरुद्ध अनेकानाम तां वर बाजाके सम्बन्धमें कुछ एक-जवना और
 समानता होने का भी रागाके म्वाय-अलग और म्वाय प्रणालीमें विभिन्नता है।
 इसके मतलब यह न। है कि विभिन्न रागाँकी अलग-अलग एक दूसरेको किन्ती मानती
 है। इसके विरुद्ध के एक दूसरे अभिप्रायों और म्वाय प्रणालियों का विभावन और
 म्वाय की दृष्टिमें है।

[illegible]

महाराष्ट्र का - राज्याध्यक्ष विद्या भण्डारे धारा ३४० के अन्तर्गत
मेरे साथ ही गान्धर्व १३१ अर्थात् विद्या भण्डारे विद्या भण्डारे भी होंगे।

सर्वोच्च 'यायालय' एक प्रधान 'यायाधीन' और आठ 'यायाधीन' होते हैं। यह 'यायालय' कोरम होता है। सर्वोच्च 'यायालय' के मौलिक (original) ग्यायनत्रका निर्धारण संविधान द्वारा हुआ है और इसमें वही मामले आते हैं जिनमें वादी प्रतिवादी रूपमें राजद्रुम या राज्य होते हैं। सर्वोच्च 'यायालय' के अपील क्षेत्रका निर्धारण मुख्यतः परि नियम (statute) द्वारा होता है। निम्न प्रकारके मुकदमे इसकी परिधिमें आते हैं राज्य 'यायालयों' के वह सब प्रसंग जिनमें राज्य विधि और सघीय विधिके बीच सघर्षका प्रश्न हो वे सब मामले जिनमें सघीय संविधान अपवाद सचि या किसी भी सघीय विधिकी व्याख्याका प्रश्न हो वे मामले जिनमें किसी राज्य संविधान और सघीय संविधानके बीच सघर्ष हो और वे सब मामले जिनमें क्षेत्रग अदालतोंके नियम अन्तिम नहीं होते (५८ दूसरा भाग ३०१)। कुछ दूसरे प्रकारकी अपीलें भी सर्वोच्च 'यायालय' द्वारा सुनी जाती हैं पर उन पर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्रिटनमें ग्यायाधीनको संविधानकी व्याख्या करनेके लिए कभी नहीं कहा जाता पर अमेरिकामें सर्वोच्च 'यायालय' के ग्यायाधीनोंको बहुधा ऐसा करना पड़ता है। उन्हें विधियोंकी वधता पर नियम देनेका अधिकार है और इस प्रकार वे यथार्थतः संविधानके संरक्षक हैं। उन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करता है पर सिनेट की स्वीकृति आवश्यक होती है। एक बार नियुक्त हुआ जाने पर वे आजीवन पद पर बने रहते हैं क्योंकि कहा अवकाश ग्रहण करनेके लिए कोई निश्चित अवस्थाका नियम नहीं है। महाभियोग (impeachment) द्वारा ही उन्हें उनके पदसे अलग किया जा सकता है।

संघ विधियोंकी भांति संघ-ग्यायालयों का अधिकार क्षेत्र भी व्यक्तिगत नागरिकों पर सीमा होता है (५८ ३०७)। इसके विपरीत स्वीटजरलैंड में कार्यपालिका द्वारा बनायी गयी विधियों और जारी की गयी आज्ञावतियों (decrees) को कार्यान्वित करनेका कार्य प्राथमिक प्रशासकों और ग्यायालयों पर छोड़ दिया जाता है।

ग्याय प्रशासन का विभाजन इसना पूरा है कि राज्य 'यायालय' (state courts) सब ग्यायालयोंसे विस्तृत पृथक् होते हैं। 'हर राज्य में नीचे से ऊपर तक अपने 'यायालय' होते हैं। इन 'यायालयों' में सब-ग्यायालयोंमें सभी अपील जा सकती है जब मुकदमे से सब विधिका कुछ सम्बन्ध हो या मुकदमेका कोई पक्ष किसी दूसरे राज्यका नागरिक हो (५८ ३ ८)।

ब्रिटन में स्थानीय और स्थानीय 'यायालय' होते हैं। केन्द्रीय ग्यायालय सदन में स्थित है और स्थानीय 'यायालय' देश भर में फैले हैं। स्थानीय ग्यायालयोंमें ग्रामीण क्षेत्रोंके ग्यायालय अग्रमरणा-वेधक 'यायालय' (Crown Courts) एसाइजस ग्यायालय (Assizes Courts) और क्वार्टर सेशंस (Quarter Sessions) आदि हैं। सदन के उच्च ग्यायनत्रयमें सभी ग्यायाधीन होते हैं। यह ग्यायालय एक ही निष्पादके रूपमें काम नहीं करता। इसकी तीन शाखाएँ होती हैं राज-ग्यायाधीन (The King's Bench) चांसरी ग्यायालय (Court of Chancery) और वसीयत,

[illegible]

स्थानीय 'जाय प्रामाणिक' निगम लिमिटेड आठ मॉडलोंमें बना हुआ है और यह आठ मॉडल बर्बादियोंमें बन हुआ है। छात्र-श्रम अवस्थाओंमें सामाजिक नियम दे दिया जाता है। एम. म. म. में जूरिया गारा मुनवाई नहीं होती। इन प्रामाणिकों का प्रदान एक अद्वैतिक मजिस्ट्रेट होता है। उसकी सहायता तक बनके करता है या विधिकी सहायता तक प्रदान है। बड़े अवस्थाओं में मुनवाई त्याग दे दिया जाता है और निजिर 'जायान' द्वारा बना है। इन 'जायान' में जूरिया 'जायान' को म. करने है। बारायत पर प्रमाण मिलने के बाद ही अवस्थाओं का दण्ड दिया जाता है।

और ग़रीबों के मजदूरी सरकार की आर से बढ़ाये जाते हैं। सरकार ही मर्द या बाग़ होनी है। पर दीवानी के मजदूरी निजी है जिसमें म दूसरे व्यक्ति या घर दाख़र किये जाते हैं। अन्य मर्द और मजदूरी या बाग़ और प्रविष्टादी दानों ही निजी व्यक्ति होते हैं। अथवा ज़ायाने अथवा तमाइज़ न्यायमय दीवानी मुक़ामों की भी मजदूरी करत है पर उनकी बाग़ प्रगामी और स्थान निम्न-निम्न होते हैं।

पञ्चम नीच में ऊपर तक मापारण और प्रणामी दाना प्रकार की अणुमणु होती है। अधोनिच पञ्चमी मी मुनन है और टनकी अनीने मी। पञ्चम राग्य-परिपञ्चम सञ्चम प्रणामी ग्यापामय है। उनके नीच अविबारी परिपञ्चम (Councils of Prefectures) होती है ओ उन मामनोंकी मुनबाई करनी है दिनका सञ्चम प्रणम का-निर्पारणमे और नगरिकोंके साथ सञ्चम अविबारीयाक व्यवहारमे रहना है (१२ ३२९)। प्रणामी-ग्यापामय दाना अविबारीयाकी मी मुनबाई करने हैं।

प्रथम न्यायालय सिविल तथा क्राइम न्यायालय न्यायाधिकार न्यायालय (Court of Cassation) कहलाता है। यह अंतिम सुनने का सर्वोच्च न्यायालय होने के साथ ही ऐसी विधियों के विवरीत नियमों को लागू करने का अधिकार है। प्रथमी न्यायालय का साधारण न्यायालय १ बीच न्यायाधिकार न्यायालय कहलाता है जो एक ही न्यायालय है जिसका नाम विवाद न्यायालय (Court of Conflicts) है। जहाँ दो हिस्सों में मतभेद उत्पन्न किसी मामले में फैसला देने की अपेक्षा परस्पर मौराहों में मतभेद उत्पन्न होने की अपेक्षा कहलाता है।

विद्युत्-चुम्बकीय प्रयोगों में चुम्बकीय क्षेत्रों का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
 विद्युत्-चुम्बकीय प्रयोगों में चुम्बकीय क्षेत्रों का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
 (1849-50) और विद्युत्-चुम्बकीय प्रयोगों में चुम्बकीय क्षेत्रों का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इससे फैसलामें एकरूपता नहीं रहती। एकही क्रिमिने मामलमें कोई मजिस्ट्रेट कुछ फसला देता है और कोई कुछ। ब्रिटिश जस्टिस आफ पीसका साथ व्यवस्थित हाता है एकरूप नहीं हाता। दूसरी ओर इस व्यवस्थासे सम्पन्न लोगोंको जिनके पास पर्याप्त समय है राजनीतिक शिक्षा और सामाजिक सेवाका अवसर मिलता है यद्यपि अधिकारके दुरुपयोग किय जानकी सम्भावना रहती है।

अवतनिक मजिस्ट्रेटकी व्यवस्थासे मिलती-जुलती व्यवस्था जूरियोंकी है जो अनेक देशमें प्रचलित हैं। इसका उद्देश्य ग्यायाधीशको मुक्तदम के तथ्योंको समझनेमें सहायता देना है। इस व्यवस्थाका आगणश ब्रिटेनमें हवा था और बादमें इसे अनेक देशोंने अच्छी तरह अपनाया। इस व्यवस्थाके पक्षमें यह कहा जाता है कि इससे घूस खोरी और 'ग्यायाधीशको प्रभावित करनेवाले अन्य भ्रष्ट प्रभावों और उपायों पर रोक लग जाती है। इस व्यवस्थाको नागरिक कतब्या और दायित्वोंकी शिक्षाका महत्त्वपूर्ण साधन भी बताया जाता है। इस व्यवस्थाके पक्षमें यह भी कहा जाता है कि अपनी निष्पक्ष भावना और अपने व्यावहारिक ज्ञानके कारण जूरी मुक्तदमेके तथ्योंको ठीक ठीक समझनेमें 'ग्यायाधीशको सहायता दे सकते हैं।

पर व्यावहारिक तौर पर जूरी प्रणाली बहुत अधिक सफल नहीं हुई है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें पक्षपात और रागद्वेषपूर्ण जूरियोंके कारण अच्छे 'ग्यायाधीशके काममें बाधा पड़ी है। इस दोषके कुख्यात उदाहरण वे मुक्तदमे हैं जिनमें अमेरिका में नीचा लोया पर लगाये गये अभियागोंकी मुक्तदम केवल एवेताप जूरियोंके सामने हुई है। जब कोई मुक्तदमा कई दिनों या सप्ताहों तक लगातार चलता है तब अवतनिक जूरी अपना समय देना पसन्द नहीं करते। जिन मामलोंमें प्राविधिक तथ्यों पर विचार करना होता है उनमें जूरी बिल्कुल ही व्यर्थ होते हैं।

भारतमें जूरी प्रथा १८६१ में शुरू हुई थी। अनेक वर्षों तक इसका परीक्षण होनेके बाद भी यह कहना पड़ता कि यह पद्धति सफल होनेकी अपेक्षा विफल ही अधिक हुई है।

एक और पद्धति असेसर या परामर्शकों (assessors) की है जिसका औचित्य जूरी प्रथासे भी कम है। भारतकी फौजदारी अदालतोंमें असेसरों की प्रथासे कोई लाभ नहीं हुआ है। एक प्रसिद्ध 'ग्याय शास्त्रीके अनुसार न तो असेसर अपने पक्ष पर रहनेको इच्छुक है और न ग्यायाधीश ही असेसरोंको रखनेको इच्छुक हैं।

५ ग्यायाधीशोंकी नियुक्ति कार्य काल और पदच्यवि (Appointment Tenure and Removal of Judges) ग्यायाधीशोंकी नियुक्तिके निम्न लिखित तीन मुख्य ढंग हैं (१) विधायिका द्वारा निर्वाचन (२) जनता द्वारा निर्वाचन और (३) कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति। जहाँ तक कार्यपालिका द्वारा 'ग्यायाधीशोंकी नियुक्तिका प्रश्न है यह नियुक्ति कार्यपालिका या तो स्वयं अपने मनसे बिना किसीकी सिफारिश या स्वीकृतिके करती है या फिर कार्यपालिका यह नियुक्ति

ग्यादातय द्वारा ही प्रस्तुत नामावली से या प्रतियोगी परीक्षाएं आधार पर या विषयविषयों के ऊपर सन्तुष्टी स्वाकृतिग बगती है।

अब हम इन तीन दुगा पर विस्तारमे विचार करेग

(१) विधायिका द्वारा नियुक्ति का प्रयत्न स्वच्छरम्भ है। मध्य-यातालय के ग्यायाधीन जिनकी संख्या २६ है विधायिका के दोना सन्नाहे सपुन अधिवेशनमे छ सालके लिए बन जाने हैं। एक् यायाधीन जितनी ही बन बना जा सगता है। अमेरिकामे जालिके बाद कुछ वर्षों तक यही प्रथा प्रचलित थी। उमर बादमे बार राज्याको छोड़कर छप सभी राज्य ने इन प्रथाको छोड़ दिया है। इन प्रथाकी बुरादया य है कि ग्यायपालिका अनुचित रूपसे विधायिका पर आग्रित हो जाती है और नियुक्तिवा राजनीतिक दम्बाकी मुक्त छानगी अन्तरंग समिति (caucus) गरा होती है। नियुक्तिवामे प्राविधिक वाय्वनाक्रमकी अगता राजनातिक और भौगानिक कारणको अधिक् महत्त्व दिया जाने लगता है। इनमब बराबर वावजू जा कि अमेरिकामे बिग्य तीर पर पायी जाती है सिव्छरम्भम य व्यवस्था सफलतापूर्वक काम करती आ रही है। इन सननताका कारण यह है कि स्वच्छरम्भमे विधायिका का आकार छोटा है और बहा की राजनीतिक दम्बाकी भावनाका अभाव है।

(२) जनता द्वारा निर्वाचन जनता द्वारा व्यापारीगण। बने जानकी प्रसाद श्रीगणेश १७९० में प्रथम हुआ था। १७९३ में इस प्रथा का बहुत ही दुरुपयोग हुआ और पन्धर काटनेवाला जनकों मानिया और साधारण मजदूरोंको व्यापारीगण बना गया। मैसोनियम ने इस प्रथाको प्रथम समाप्त कर दिया।

आजकल यह प्रथा स्विट्जरलैंडक कंस्टानाम तथा अमेरिकाके कई एक राज्योंमें प्रचलित है। सुयोग्य और बुद्धिमान व्यापारीगणोंको प्राप्त करनेका यह सबसे बुरा तरीका है। जनता द्वारा जुने गये व्यापारीगणोंमें स्वाधीनता और अधिक ज्ञानके अभावकी आशंका रहती है। जनतामें दूनो बिदेक और ज्ञान नहीं होता कि वह बुद्धिमान व्यापारीगणोंको जुने। जब व्यापारीगण दुबारा बुनावन तिष्ठ सक्ष हो सकने हैं तो यह प्रथा और भी बुरी हो जाती है। जनताका बाँट पानेके लिए व्यापारीगण एम पी मने देने हैं जिनसे जनता प्रसन्न हो। समय तथा निष्पक्ष व्यापारीगण कटुता बुनावन द्वार जाते हैं। इस व्यवस्थाकी निष्पक्ष मार्गें ज्ञान प्रसार करते हैं 'दसम व्यापारिकताका' पारिवर्तित पलन होता है यह व्यवस्था व्यापारीगणोंका राजनीतिज्ञ बनानेकी क्षमता बढ़ती है और व्यापारीगण पर कुछ ऐंग दबाव डालती है जिनका विरोध बहु हमारा नहीं कर पाते (७५४ ९६)।

इस व्यवस्था की वशा-याही गायक राज-अमरिनाथ अन्त-इस प्रकार सम-
विद्या गया है कि दलब-ीन प्रथम प्राथमिक मन्त्र-उन्नी-यागका नामक करती है
और बहीन वर्ग निहायकाये उन्नीष उन्नी-यागकी निगारित करता है।

() कार्यवाहीका द्वारा निम्नलिखित दस्तावेजों का मूल्यांकन किया गया है।
विशेष विवरण निम्नलिखित, मूल्यांकन के साथ प्रमाणित और गृहीत है।

प्रचलित है। यद्यपि 'यायाधीश'को नियुक्त करने समय राजनीतिक बातोंका भी ध्यान रखा जाता है पर एक बार नियुक्त हो जानेके बाद 'यायाधीश' स्वतन्त्र रहते हैं और कायपालिकाका उन पर कोई दबाव नहीं होता। फ्रांसमें कार्यपालिका ग्यायाधीशोंको अपने मनसे नियुक्त न कर सकती है। नीचना अगुहोंके लिए प्रतियोगी परीक्षा होती है और वहाँसे पेशेवरनियुक्ति (seniority) का आधार पर होती है। ब्रिटेन और अमेरिकामें वकील बहुरा न्यायाधीश बनाये जाते हैं।

सबसे देकर कायपालिका द्वारा नियुक्ति ही सबसे अच्छी पद्धति है। नियुक्त किए जानेवाले न्यायाधीशोंकी योग्यताकी परख विधायिका अथवा जनताकी अपेक्षा कायपालिका अधिक अच्छे ढंगसे कर सकती है। इस व्यवस्थासे ग्यायाधीशोंकी स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है क्योंकि 'यायाधीशोंका कार्यकाल उनके सदाचरण पर्यन्त रहता है। फ्रांसमें यह निश्चित की जाती है कि वहाँका 'यायमत्री' 'यायाधीश'की नियुक्तियाँ करते समय जब देखा तब डिप्लोमो (समस्तके सदस्यों) के असहमते बाहर उनकी सिफारिशोंके अनुसार ही नियुक्तियाँ करता है। यह और इस प्रकारकी अन्य बुराइयोंको दूर करनेके लिए कुछ लोगोंका यह मुताबक है कि कायपालिका 'यायाधीशों' का चुनाव एक एसी सूचीसे किया करे जो उस 'यायालय' द्वारा तैयार की जाय जिसमें न्यायाधीशकी नियुक्तिकी जानेवाली हो।

ग्यायाधीशोंकी कार्यधि अमेरिकाकी संवैधान में न्यायाधीशोंकी नियुक्ति साधारणतया अपाधिके लिए होती है। कार्यकाल सा से २१ वर्ष तक का हुआ करता है। पर आमतौर पर कार्यकाल छ से नौ वर्ष तक का होता है। स्विट्जरलैण्डमें सदीय-न्यायाधीशों का निर्वाचन विधायिका के दोन सदस्यों द्वारा छ सालके लिए होता है पर वे कितनी ही बार निर्वाचित किए जा सकते हैं। अमेरिकासे बाहर प्रायः सब कहीं 'यायाधीश' उस समय तक अपने पेशे पर बने रहते हैं जब तक उनका आचरण उत्तम नहीं पाया जाता। यह बहुत अच्छी व्यवस्था है क्योंकि इससे 'एक बूढ़े सच्चे और निष्पक्ष विधि-शासनकी स्थापना होती है और इससे अनुभव ज्ञान और 'यायिक' पूर्वोक्तहरण भी प्राप्त होते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिकाके सर्वोच्च न्यायालयके 'यायाधीश'ोंके बदलाव ग्रहण करनेकी कोई निश्चित यायु भीमा निर्धारित न करनेकी प्रथाका समर्थन नहीं किया जा सकता। इसमें अनेक ऐसे बहुत-से व्यक्ति 'यायाधीश' बन रहते हैं जो अत्यन्त रुढ़िवादी होते हैं और अपनेको नयी परिस्थितियोंके अनकन नहीं बना पाते।

'यायाधीशोंकी वन्धुति (Removal of Judges) प्रत्येकसंविधानमें भ्रष्ट और अयोग्य 'यायाधीशोंको वन्धुत करनेकी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। ब्रिटेन में समस्त ज्ञाना मन्त्रालयों का भाग पर समस्त न्यायाधीशों का पदस्थित कर सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिकामें निचला सदन महाभियोग लगाता है और ऊपरी सदन अभियोगकी मुनवाई करता है और इस प्रकार महाभियोग द्वारा 'यायाधीश' पदस्थित किए जाते हैं। यह तरीका बहुत ही गंभीर (cumbersome) है। इसका उपयोग

जनमत उत्पत्तिके लिए किया जा सकता है। पर इस दुष्प्रयोगों का रोक्ने का तरीका यह है कि एक असाधारण व्यक्तित्व ही यातायात का पन्थ बन लिया जा सके। अमेरिका के बाइडे राज्या में विधायिका 'यायापी' का पन्थ बन कर गइली है और नौ राज्या में विधायिका की माँग पर रा-वधान उन्हें पन्थ बन कर सकता है। जनक राज्या में 'यायापी' और निजामत सम्बन्ध में सावप्रदायन (recall) की पद्धति प्रचलित है। इस पद्धति से जनमत जनता का निश्चित अनुमत 'यायापी' का जनक पन्थ बना सकता है और उनका निजामत रद्द कर सकता है। यातायात कई दशकों में 'यायापी' को बहुत सही 'यायापी' पन्थ बन कर गया है किन्तु वह सत्य है अथवा सर्वोच्च 'यायापी' एवं अनुशासन अधिवरण (Disciplinary Tribunal) के रूप में नियमित रूप से विचार करने के बाद विधायक सम्बन्ध बनाय गया जायेगा 'यायापी' का पन्थ बन कर सकता है (१२ ८००)।

शक्तिपाते व्यवस्थापनका सिद्धान्त (Theory of the Separation of Powers)

सरकारके अंगों का परस्परालम्बन व्यवस्थापन विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका इन तीन विभागों में हुआ है। पर एक पृथक्करण इतना करने समझा जाना है कि आपुनिक परिस्थितियों के लिए भी नष्ट न हो सके।

पार्लियामेंट की तीन अंगों में अलग-अलग विचारणात्मक (deliberative) पार्लियामेंट (magisterial) और न्यायिक (judicial) विभागों में विभाजित हैं। यद्यपि अलग-अलग के लिए इन तीनों विभागों में मिश्रित रूप से विभाजित करना सामान्य था किन्तु भी व्यवहार में प्राचीन यूनान में हीना विभागों एक ही व्यक्ति द्वारा प्रचलित होती थीं।

अलग-अलग के बाद रोमन विचारणा विभागों में राजकीय की शक्ति इतनी बड़ी थी कि यूनानी पार्लियामेंट तथा विचारणा के संतुलित माध्य (balanced equilibrium of powers) की शक्ति पर बहुत धार दिया है। राजनीति बुद्धिजीवी और साधारण तर्कों का बचपन रोमन की विचारणा में नेत्र और जनप्रति एग्रेगति का म मान्य है किन्तु सरकार का प्रत्येक अंग दूसरे अंगों पर अक्षरों में समान था। दोनों अंगों में विचारणा कि सरकार एक ही व्यक्ति द्वारा प्रचलित व्यवस्था आवश्यक समझा है किन्तु अक्षरों और अनुपन (checks and balances) की व्यवस्था हो।

समय के साथ विचारणा पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रचलित नष्ट।

रोम का अंग-निकटतम 'परिचित विचारणा' का कार्यपालिका तथा न्यायिक विभागों पृथक्करण बहुत ही मान्य है। बहुत ही धार पर धार है कि राज्य की शक्ति ही मान्य प्रमाणों का नष्ट। राज्य की शक्ति बहुत ही धार पर धार है कि राज्य

एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण (tribunal) को सौंप देनी चाहिए। उनका कहना है कि यदि नायपालिका और न्यायपालिका की शक्तियाँ एक दूसरेसे अलग नहीं होंगी तो न्याय के सिद्धान्त पर दुश्मतासे अमन नहीं किया जायगा। 'नासब' जब चाहगा तब न्याय संगत निष्पन्न करेगा और जब चाहगा तब दयाका प्रवर्धन करेगा। वह अपनी इच्छा अनुसार कभी न्यायका पालन करेगा और कभी न्यायको ताकम रखकर मनमाना फसला करेगा।

लॉक ने अपनी पुस्तक *Civil Government* में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्तका उल्लेख सरमरी तौर पर किया है। उनके अनुसार जीवन स्वतंत्रता और सम्पत्तिकी रक्षाके लिए नागरिक समाजकी स्थापना की गयी थी और इन उद्देश्योंको पूरा करनेके साधन भी उसने ही सुनिश्चित हैं जितने कि स्वयं उद्देश्य। ये साधन सरकार के नायकत्वके तहत या चौहरे विभाजन द्वारा व्यक्त होते हैं। यह विभाजन है विधान—जिसमें इन अधिकारोंको निश्चित करनेवाले प्राकृतिक नियमकी 'प्रामाणिक व्याख्या' करनेकी व्यवस्था होती है सरकारी कार्य सत्ताका न्यायपक्ष अर्थात् समाजके व्यक्तियोंके बीच प्राकृतिक नियमोंकी उपयुक्त व्याख्या लागू करनेके लिए न्यायपूर्ण और निष्पन्न अधिकार-सत्ताकी व्यवस्था कार्यपालिका अर्थात् दण्ड विधान द्वारा विधियोंके आदेशोंको लागू करनेके लिए समाजकी शक्तिका प्रयोग करनेकी व्यवस्था। समाज और उसके व्यक्तियोंके हितोंको दूसरे समुदायके हितोंसे सुरक्षित रखनेका जो कार्य है उस लॉक 'मेषात्मक' (Federative) कल्पना कहते हैं।

लॉक के शक्ति पृथक्करण सम्बन्धी सिद्धान्तमें एक नयी विचारधारा मिलती है। उनका कहना है कि विधायिका और कार्यपालिका के कार्य अलग-अलग होने ही चाहिए। विधि बनाने वालों ही विधि लागू करनेका भार सौंपना बहुत ही अविवेकपूर्ण होगा क्योंकि ऐसा करनेमें यह सम्भावना है कि वह अपने को विधियोंसे मुक्त कर लें या फिर ऐसी विधियाँ बना लें जिनसे उनके स्वार्थों की सिद्धि होती हो। लॉक ने शक्तिके पृथक्करणके सिद्धान्त का विवेचन करते हुए इसकी चर्चा विधायिका और कार्यपालिका के पारम्परिक सम्बंधोंका निश्चित करने वाले सिद्धान्तके रूप में की है। सरकारके कामोंके उस त्रिवर्गीय विभाजन—विधायिका नायपालिका और न्यायपालिका—जिससे आज दिन हम इतने परिचित हैं और अवरोध तथा सन्तुलनके सिद्धान्त को जो इस विभाजन का अनिवार्य परिणाम है, लॉक की विचारधारा में स्थान नहीं मिला है। इन त्रिवर्गीय विभाजन और अवरोध तथा सन्तुलनके सिद्धान्तों का विकास अग्रज दार्शनिक के मुस्ताओंने आधार पर फासीसी दार्शनिक मॉण्टेस्क्यू ने किया है।

प्रसिद्ध फासीसी नवक मॉण्टेस्क्यू (१६८९-१७५५) ने ही अपनी पुस्तक *Esprit des Lois* में इस सिद्धान्तको अपनाया है। यह एक विशिष्ट बात है कि मॉण्टेस्क्यू ने क्रिश्चन दो वर्षों तक यहाँ तक सविधानको न्यायान्वित करते हुए अपनी आँखों देखनेके बाद अपना यह गुविचारित मत प्रकट किया कि अग्रज सविधानकी स्थिरताका कारण यह है कि उसमें शक्तियों का पृथक्करण किया गया है। आज सभी मानते हैं कि

अपेक्षी सविधान का उक्त अर्थ मॉन्टेस्क्यू ने जनत सगाया था। मॉन्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक अंगरहू का समालोचनी में लिखी थी। यद्यपि उस समय ब्रिटेन में व्यक्ति के पृथक्करण का अतिशय माना करने वालों मंत्रि-मण्डलीय पद्धति का विचार नहीं हुआ था। पर साथ ही व्यक्तिों का स्वयं पृथक्करण भी नहीं हुआ था। बीस वर्ष पश्चात् अर्थात् 'याय' सारत्री ईस्टमन ने भी यही भ्रम की जो मॉन्टेस्क्यू ने की है। उसका भी कहना है कि विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका की बीच व्यक्तिों का स्पष्ट पृथक्करण अपेक्षी शासन पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त है। असलियत तो यह है कि मॉन्टेस्क्यू और ईस्टमन दोनों ही अपेक्षी सविधान के सिद्धान्तिक रूप में हैं। अपना सम्बन्ध रखा उसने व्यावहारिक रूप में नहीं। इस प्रकार वे गहराई में नहीं गये और इस कारण लोगों को यह मोटा मिना कि वे इनके विरुद्ध दिये जाने वाले आरोप लगाते हैं।

मॉन्टेस्क्यू अपने स्वभाव और शिक्षा की दृष्टि से ही कुलीन-वर्ग के थे फिर भी उनके हृदय में स्वतन्त्रता की प्रतीति गहरी थी। वह स्वतन्त्रता का सर्वोच्च मानवीय निधि मानते थे। इस निधि को प्राप्त करने के लिए ही मॉन्टेस्क्यू ने व्यक्तिों के पृथक्करण का समर्थन किया। उन्होंने बहुत कुछ किया कि सत्ता स्वभावतः अपना दुर्योग करने लगती है। अतः यदि सत्ता पर स्पष्ट प्रतिबंध नहीं लगाए जाते हैं तो निरंकुश शासन अवश्य स्थापित हो जाता है। उनके विचारों के अनुसार सर्वोच्च संसद के नाम दिया जाना शासन के लिए आवश्यक था। इसीलिए ही उन्होंने व्यक्तिों के पृथक्करण का अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसके अनुसार प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति का प्रयोग सरकार के एक पृथक् अंग द्वारा किया जाना चाहिए और सरकार के विभिन्न अंगों या विभागों के बीच अन्तराल तथा सन्तुलन की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें कोई भी एक विभाग या अंग सर्वोच्च माना न बन जाय। मॉन्टेस्क्यू ने स्वयं अपने सिद्धांतों को इस प्रकार व्यक्त किया है

अब विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियाँ एक ही व्यक्ति या संस्थान में केन्द्रित हो जाती हैं तब स्वतन्त्रता असम्भव हो जाती है। यदि न्यायिक और विधायी शक्तियाँ एक में मिल जायें तो प्रजा के जीवन और स्वतन्त्रता में निरंकुश नियंत्रण लग जाता है और यदि न्यायिक और कार्यपालिका की शक्तियाँ एक में मिल जायें तो न्यायाधीश अन्तर्जातीय की भाँति व्यवहार कर सकता है।

मॉन्टेस्क्यू ने कार्यपालिका और विधायिका की शक्तियों के पृथक्करण पर विशेष रूप से जोर दिया था। विधायिका भी वह दो शक्तियों का दूसरे का अवरोध करने के लिए आवश्यक मानते थे।

असल में सविधान निर्माण और उसके कार्याचारियों पर इस सिद्धान्त का बड़ा बड़ा प्रभाव पड़ा था। अंग्रेजों ने यह सिद्धान्त अपना लिया और वे इस प्रणाली को अपनाया जो कि सिद्धान्त के समर्थित रूप में १७८९ में और १८३१ ई० में सविधान में मंत्रि-मण्डलीय पद्धति का अन्तर्भाव किया गया परन्तु अंततः राज्य अधिका

में यह सिद्धांत अब भी माना जाता है। आज भी अमेरिकाम विधायिका कायपालिका और न्यायपालिका संगठन एवं दूसरेसे स्वतंत्र रूपमें होता है। अमेरिकाका राष्ट्रपति जो कायपालिकाका प्रधान होता है और उसके मंत्रिमण्डलके सदस्य विधायिका के सदस्य नहीं होते। जेम्स मासन-युद्धनि अपना नवासे देशमें विधायिका और कायपालिका के बीच जो घनिष्ठता रहती है वह अमेरिका में अज्ञात है। विधायिका केनेडा सदनका संगठन भी पृथक् रूपमें होता है और उनका कार्यकाल व शक्तियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीशोंको नियुक्ति कायपालिका सीनेटकी सहमतिसे करती है परन्तु नियुक्ति की शक्ति ऐसी है कि वह न्यायपालिकाको सरकारका स्वतंत्र एवं अलग बना देती है।

सरकारके विभाग कबल एक दूसरेसे अलग ही नहीं हैं बल्कि हर विभाग दोष विभागों पर कुछ निश्चित अवरोध भी लगाता है। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति द्वारा की जानेवाली प्रधान अधिकारियोंकी नियुक्तियोंके लिए सीनेटकी स्वीकृति आवश्यक होती है। युद्ध और शान्तिकी घोषणा कायस करती है और कायपालिका द्वारा की गयी परिधियोंके लिए सीनेटकी स्वीकृति आवश्यक है। राष्ट्रपतिको इस बातका अधिकार है कि वह अपने विधायी कार्यक्रमोंको स्पष्ट करते हुए काँग्रेस (संसद) का अपना सन्देश भेजे। परन्तु संविधानकी परम्पराके अनुसार न तो राष्ट्रपति और न उसके मंत्रिमण्डल का कोई सदस्य ही सरकारी नीतिका समर्थन करने के लिए काँग्रेस (संसद) में उपस्थित हो सकता है। राष्ट्रपतिको विधायिकाके कार्यों पर निषेधाधिकार (veto) प्राप्त है पर यह पूर्ण निषेधाधिकार (absolute veto) न हाकर स्थगन निषेधाधिकार (suspensive veto) ही है।

आलोचना

यद्यपि शक्तिव्यवस्था पृथक्करणका सिद्धान्त आमतौर पर ठीक माना गया है क्योंकि इसमें विभिन्नताका वर्णन सिद्धान्त निहित है किन्तु भी इसकी व्यावहारिक कठिनाइयोंने इस सिद्धान्तके महत्त्वको बहुत ही कम कर दिया है। समस्त राज्य अमेरिका में भी शक्तिव्यवस्था अनन्य प्रकारका नहीं मिलती है। आधुनिक सरकारोंमें प्रत्येक विधायिका कायपालिकाके कुछ कार्य और कार्यपालिका न्यायपालिकाके कुछ कार्य करती है। इस सिद्धान्तका मुख्य महत्त्व यह है कि इसमें न्यायपालिकाकी स्वाधीनता पर जोर दिया गया है। परन्तु न्यायपालिकाकी यह स्वाधीनता अधिक आसानीसे दूसरे तरीकासे प्राप्त की जा सकती है। य तर्कों हैं—न्यायाधीशोंके कार्यकालकी सुरक्षा यथेष्ट बताने जो कि वास्तविक आय-व्ययका व्यवस्थापन सुनिश्चित हो और न्यायधीशोंकी राजनीतिक दायवर्गी और नियंत्रण सुनिश्चित।

इस सिद्धान्तका दूसरा महत्त्व यह है कि इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि सरकारको भली भाँति प्रतिष्ठित नियमों और विधियों ही अनुकूल कार्य करना

चाहिए। निरतुंग शासन सुशासन नहीं है। यह सिद्धान्त वायधानिका और प्रशासी अधिकारियोंको सावधान करता है कि वे न्याय और विधिके काम में हस्तक्षेप न करें। प्राप्ति के योग्य यह सिद्धांत हर नागरिकों अपने नागरिक अधिकार सिद्ध करनेके लिए विवश करता है।

इस सिद्धान्तक प्रथम मुख्य कारणोंमें यह एक है कि नागरिकों को तो सम्मिलित किया जा सकता है पर नागरिकोंका हमेशा प्रत्यक्ष-पुनर्-संबंध रहना ही चाहिए। इस भेद में तो हम बड़ी अन्तर नहीं जान पाता है। यह समझना बटिन है कि आचार्यक अधिकार-शक्तिने बिना काम कैसे किया जायेगा।

शक्तिशाली पुनर्स्थापना यह सिद्धान्त एक समान राजाशाही निरतुंगताके विरुद्ध और आत्म शासितिकी निरतुंगताके विरुद्ध बहुत ही महत्वपूर्ण था। पर आज इन दो में से किसी भी निरतुंगताका डर नहीं है। संवत्सरात्मक देशमें हम राज नीतिक कामोंके प्रमुख और प्रशासन अधिकारियों की निरतुंगताके विरुद्ध और तानाशाही देशोंमें राजनीतिक दल और उसका नेता की तानाशाहीके विरुद्ध रक्षा की आवश्यकता हो सकती है। इनमेंसे किसी प्रकारके भी प्रमुखके विरुद्ध शक्तिशाली पुनर्स्थापनाकी व्यवस्था करना नहीं हो सकती। यह स्वभावतः बहुत अधिक याविक है। संवत्सरात्मक देशोंमें आचार्य और आचार्य निर्वाचक-समस्त वैयक्तिक स्वतंत्रताका सर्वोत्तम रक्षण है।

आधुनिक परिस्थितियोंमें सरकारके ठीक प्रकारसे काम करनेके लिए नागरिकोंके पुनर्स्थापनाकी अपनी आवश्यकता नहीं है जिनकी आवश्यकता इस बातकी है कि सरकारके विभिन्न शक्तियोंमें समन्वय और समुन्नत हो। सरकारके हर विभागकी अपनेको जनताका सेवक समझना चाहिए। और अपने उत्तरदायी पूरा करनेके लिए उसे परस्पर सब कुछ करना चाहिए। तब० जे० लास्की इस सम्बन्धमें लिखते हैं

विभाजित करना काम तब तक पूरा नहीं कर सकते जब तक उसमें विधिके तात्पर्य करनेकी प्रक्रियामें हस्तक्षेप करनेकी सामर्थ्य न हो और इन बातोंकी सामर्थ्य न हो कि आवश्यकता पड़ने पर परिनिर्णय (statute) द्वारा व्यापारिक एगेंसियोंका रद्द कर सकें जिनके परिणाम व्यापार जगत्में असन्तोषजनक सिद्ध हो रहे हों। वायधानिका विधि की तात्पर्य करनेके निमित्तलेमें सामान्य सिद्धान्तों की विवरणों देनेके लिए विवश होती है। आजकल इन कार्यकी सीमा अपनी विस्तृत है कि बहुतों इसमें और विभाजितके काममें अन्तर करना बटिन हो जाता है। अन्तः-न्याय-विभाग को या तो कार्यवाहिकी शक्तियों निरतुंग करनी है अथवा दो भागोंके बीच के विभागों तब करनी है आत्मबल एक एका काम करनी है जो स्वतंत्रता वैधिक है। वायधानिका की शक्ति निरतुंग करनेमें व्यायाम-विधि विधि-निर्णय सम्बन्धी इष्टा-के सम्बन्धी निरतुंग करनी है और नागरिकोंके विभागों को तब करनेमें व्यायाम-विधि या तो राज्यके वैधिक शक्तियोंके अन्तर में करनेके लिए उन्हें विस्तृत करनी है या इस बात को अनिवार्य करनी है कि किसी विवेक विभाग को नहीं दिया है यह उन बातोंकी परिधिमें रहता है (२२-२३)।

वास्की के मतके विपरीत शक्तियोंके पृथक्करणका सिद्धान्त जहाँ एक ओर बाप दक्षता बढ़ाता है वहाँ दूसरी ओर ईर्ष्या अविश्वास और आन्तरिक सघर्षको भी जन्म देता है। अधिकार-शक्तिका स्वभाव ही यह होता है कि जिस किसीके हाथमें इसे सौंप दिया जाता है वह उसका निर्दोश प्रयोग करना चाहता है और दूसराका अपनी अधिकार शक्तिका प्रयोग करनेसे रोक्ता है। शक्ति पृथक्करणके सिद्धान्तमें जो बहुत बड़ी कमी है वह राष्ट्रपति बुद्धो विस्सन के दूसरे कार्यकालमें उस समय स्पष्ट हो गयी थी जब राष्ट्रपति द्वारा की गयी सभ्यको स्वीकार करनेसे सीनेटने इन्कार कर दिया था। यह कमी बादमें उस समय भी स्पष्ट हुई जब राष्ट्रपति ट्रूमेन की अनेक राष्ट्रीय कल्याण मूलक योजनाओं विशेषकर १९४६ और १९४८ के बीच मूल्य नियंत्रण और सशित आजीविका व्यवस्था-सम्बन्धी उनकी योजनाओं को असहयोगीशील विधायिकाने समाप्त कर दिया था। फ्राइजर की मुन्दर भाषामें शक्तियोंके पृथक्करण का सिद्धान्त सरकारको कभी बेहाशी की ओर कभी प्रसाप की अवस्थामें डाल देता है।' आधुनिक लोकतन्त्रात्मक राज्यामें जनताका प्रतिनिधित्व करनेवाली विधायिका का स्थान कामपासिका अथवा 'यावपासिका'की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

निसन्देह ब्रिटनकी शासन-पद्धतिमें शासन-बाप अमेरिकी शासन-पद्धतिके शासन-बापकी अपेक्षा अधिक कुशलतापूर्वक चलता है यद्यपि उसमें शक्तियोंका कोई ऐसा पृथक्करण नहीं है जैसा मॉण्टेस्क्यू समझते हैं। ब्रिटनकी शासन-पद्धतिमें विधायिका और कार्यपालिकाके बीच बराबर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसमें शासन के-द्विभूत हो जाता है। इन दोनों अंगेही और अमेरिकी शासन-पद्धतियोंकी चर्चा करते हुए रमजै म्योर इस प्रकार लिखते हैं 'यदि शक्तिया का पृथक्करण अमेरिकी संविधानका धार्मिक सिद्धान्त है तो उत्तरदायित्वका के-द्वि-करण अंग्रेजी संविधान का।' एक दूसरे लेखने कहा है शक्तियोंके पृथक्करणका मततब शक्तियोंमें सम्भवस्था है।

बुद्ध-बुद्ध भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले बिलोबी का कहना है कि अंग्रेजी शासन पद्धतिमें शक्तियोंका विभागीय पृथक्करण तो है परन्तु उनमें व्यक्ति-भरक एकता है। अमेरिकामें शक्तियाँका विभागीय एकता है पर व्यक्ति-भरक पृथक्करण है। ब्रिटनमें इस सिद्धान्तका दृढ़तापूर्वक पालन किया जाता है कि शक्तियोंके प्रयोगका अधिकार विभिन्न विभागोंको पृथक्-पृथक् सौर पर सौंप दिया जाए। प्रत्येक अधिकार एक पृथक् विभाग के सुपुर्न रहे। परन्तु अमेरिकामें इस सिद्धान्तकी अवहेलना की जाती है। अमेरिकामें शक्तियाँका व्यक्ति-भरक पृथक्करण है विभागीय पृथक्करण नहीं।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल शक्तियोंकी एकता और विभागीय पृथक्करणका एक अच्छा उदाहरण है (२८-२५४)। मंत्रिमण्डल कार्यपालिका विधायिका और प्रशासक मण्डल तीनोंके रूपमें काम करता है। जब वह एक रूपमें काम करता है तब अपने अन्य रूपसे सम्बन्धित अपनी शक्तियोंको उतने समयके लिए रोक रहता है। इस सम्बन्ध में बिलोबी का कहना है कि जब मंत्रिमण्डल कार्यपालिकाके रूपमें काम करता है तब

यह पानमिन्टो स्वतंत्र सभाके प्रतिनिधियों के रूप में काम करता है। जब वह विधायिका के रूप में काम करता है तब वह विधायी क्षेत्र की सीमा ही रहता है और वायपानिका अथवा प्रशासनिक समस्याओं का प्रयत्न नहीं करता। जब वह प्रशासनिक सगठन के रूप में काम करता है तब वह वायपानिका अथवा विधायिका की सीमाओं का प्रयोग नहीं करता और अपने आपकी प्रशासनिक समस्याओं तक ही सीमित रहता है।

यह प्रकार अमेरिकी संविधान में सरकार के विभिन्न अंग अलग रखे गए हैं परन्तु कई लोगों को एक ही व्यक्ति-समूह के हाथों सौंप कर उन्हें यह बताया जाता है कि वे एक ही सामान्य सगठन के अंग हैं।

अमेरिकी संविधान के सम्बन्ध में विरोधी निम्नलिखित हैं कि बहुत से लोग यह मानते हैं कि अमेरिकी जनता की स्वतंत्रता की रक्षा संविधान के पुनर्करण द्वारा होता है परन्तु तो यह है कि वही वास्तविकता पर्याप्त एकीकरण है। अमेरिकी संविधान लागू करने में जो कठिनाई होती है वह संविधान के पुनर्करण के कारण नहीं है बल्कि दो या अधिक अधिकारियों द्वारा संविधान के सम्मिलित प्रयोग के कारण है।

विरोधी कहते हैं कि अमेरिकी संविधान में न तो संविधान के पुनर्करण और न संविधान के एकीकरण का ही दृढ़ता से पालन किया जाता है। वस्तु वायपानिका और विधायिका में निरन्तर गमर्प होना रहता है। यह गमर्प इसलिए और भी तेज हुआ गया है कि अमेरिकी संविधान प्रशासनिक सहायकों के द्वारा एक पुनर्करण के रूप में स्वीकार नहीं करता।

मोटे तौर पर संविधान के पुनर्करण का सिद्धान्त एक बहुमुखी सिद्धान्त है। पर यह सिद्धान्त अपने सहयोगी, अन्तर्गत और संतुलन (checks and balances) के सिद्धान्त के साथ भी अपने को स्वतंत्रता का बहुत बड़ा मर्याद सिद्ध नहीं कर सका है और न इनके साथ वायपानिका में भी है और न सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए मैकार्थी (McCarthy) और मैकार्थीवा अमेरिकी जनता की स्वतंत्रता की रक्षा में सहायक सिद्ध नहीं हुए। दूसरी ओर अनेक अने और निरपराध व्यक्ति विधायी क्षेत्र में प्रतिनिधियों के रूप में आने की सीमा बनाती हैं। इन प्रतिनिधियों के प्रशासन में बहुत अधिक हस्तक्षेप किया गया है। उनके काम में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अपने १९४८ के निर्वाचन में प्रतिनिधियों को सीमा दिखाने और इन अन्तर्गतों को सीमा में बंद कर दिया नहीं रखा। सरकार के कार्यों में एकता और वेग पैदा करने के बहुत अधिक संविधानों के पुनर्करण के सिद्धान्त ने अपना गमर्प और एक रीति की है। इस प्रकार के उपायों पर विचार करने हुए मैकार्थी कहते हैं कि मैं स्वयं ने 'उपायों को अनि गमर्प' करने का अन्तर्गत किया था। उन्होंने अपने सिद्धान्तों के स्वतंत्रता के वायपानिक सिद्धान्तों के एक सिद्धान्त के रूप में काम किया है।

फ्राइजर ने अनुभव किया है कि आधुनिक परिस्थितियोंमें शक्तियोंके पृथक्करण के सिद्धान्तको दृढ़तापूर्वक लागू करना व्यर्थ है। इसमिए उन्होंने सरकारी शक्तियों को संकल्पात्मक शक्तियाँ (resolving powers) और कार्याकारिणी शक्तियों (executive powers) में विभाजित किया है। वह संकल्पात्मक शक्तियोंमें निर्वाचक मण्डल, राजनीतिक दलों सभा मन्त्रिमण्डल और राज्यके प्रधानको शामिल करते हैं। दूसरे में वह मन्त्रिमण्डल राज्यके प्रधान, राजकीय लोक प्रशासका और न्यायालयोंको शामिल करते हैं।

SELECT READINGS

BLUNT E — *The I C S*

DICEY A. V — *The Law of the Constitution*

FINER H. — *The British Civil Service*

FINER H — *Theory and Practice of Modern Government—Vol. 2*

GARNER, J W — *Political Science and Government.*

GETTELL, R G — *Introduction to Political Science*

GILCHRIST R. N — *Principles of Political Science*

IVENGAR S S — *Problems of Indian Democracy*

MARRIOTT J A. R — *The Mechanism of the Modern State—Vol 2*

RAMAVER — *Politics*

लोकतन्त्र (Democracy)

१ लोकतन्त्र पर पुनर्विचार (Democracy Under Revision)

आमतौर पर यह कहा जाता है कि आज निरंतर लोकतन्त्र की सफलता के सम्बन्ध में उतना आशावादी नहीं है जितना कि कुछ पीढ़ियों पहले था। लोकतन्त्र के सम्बन्ध में साधारण मनुष्यों की प्रवृत्ति आलोचनात्मक नहीं तो कमसे कम उसकी ओर से ठाढ़ पान रहने की सम्भावना है। वुड्रो विल्सन (Woodrow Wilson) के दशक में महापुरुष सत्तारकी 'लोकतन्त्र के लिए मूर्ति' बनाने के उद्देश्य से तैयार किया गया था। परन्तु महापुरुष के बाद के मुख्य समस्या यह हो गयी है कि संसार की लोकतन्त्र के विषय प्रकार सुनिश्चित होता जाय। दूसरे विश्व-युद्ध के बाद के वर्षों में यह सिद्ध कर दिया है कि लोकतन्त्र शांति समृद्धि और प्रगतिके लिए जादुई मंत्र नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि बहुसंख्यक लोगों की चिन्तनों में कोई बुद्धिमत्ता निहित हो। अब हम समय की मांग यह जाना नहीं करते कि सर्वजनसत्ताओं की स्थापना करके इस बुद्धिमत्ता की नीति की नींव पर आधारित हो सकता है। वर्तमान जाल में लोकतन्त्र के मानकी स्वरूप का पूर्ण यदि विस्तृत हमारी आँख से नहीं हट गया है तो हमने कम से कम इस सम्बन्ध में पहले से अधिक विवेकीयता तो हो ही गयी है। लुडोविगी (Ludovici) ने अपने इन आलोचनात्मक ग्रन्थों में लोकतन्त्र के प्रति वर्तमान पीढ़ी के अग्रगण्य विचारों का विवरण बताया है।

आजकल कौन लोकतन्त्र को विचार करता है? कौन मनुष्य के सरकार, विश्व-अपुन्य या अद्वयक मनाधिकारों के विचार करता है? वह तो एल्सीबिडिज (Alcibiades) की भाँति नागरिकों को 'स्वीकृत पागलपन' (acknowledged madness) मानते हैं।

आजकल लोकतन्त्र की अनेक प्रकार की आलोचना की जा रही है। प्रतिकूलताओं और नातिशक्तियों दोनों ने ही उस पर हमला किया है। एल्सीबिडिज और अल्सीबिडिज के समर्थकों ने लोकतन्त्र की बहुत आलोचना की है। इनमें अनेक हिमायतों का प्रयोग बारंबार करने का उपाय करते हैं ताकि सुसंगत और बुद्धिमत्ता का अभाव के समुचित अवसरों पर विचारों के अभाव का दावा निम्नलिखित प्रकार से किया जाय—
पर अपनी हम्मा माँद लेंगे। अल्सीबिडिज (Alcibiades) ने प्रयोग बारंबार के विचारों को, दूसरे पक्ष में, इस प्रकार व्यक्त किया है—
पर दे कि

उनका (जनसाधारणता) कल्पना किस बातमें है, व कि यह कि उन्हें क्या अच्छा लगता है। प्रत्यक्ष कार्रवाईमें विश्वास रखनेवाले प्रत्यक्ष कार्रवाईके समर्थनमें जो तर्क देते हैं उन तर्कोंको हर्नशा (Hearnshaw) ने इस प्रकार बतलाया है —

(१) पार्लियमेंट मजदूर वर्गका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं करती।

(२) औद्योगिक प्रश्नोंको मुलमानेके सिवा राजनीतिक तरीके उपयुक्त नहीं होते।

(३) प्रत्यक्ष कार्रवाई अधिवक्त्र और राजनीतिक कार्रवाईकी अपेक्षा अधिक शीघ्र की जा सकती है और वह अधिक प्रभावशाली होती है।

(४) अल्पसंख्यक वर्ग साधारणतया ठीक और बहुसंख्यक वर्ग गलत काम करते हैं।

इसलिए यह बहुसंख्यकोंके हित में ही है कि उनकी अवहलनाकी जाय और उन्हें दबाया जाय। प्रत्यक्ष कार्रवाईका एक रूप यह भी होता है जिसमें औद्योगिक शक्ति का पूरा-पूरा प्रयोग किया जाता है। 'यह अल्पसंख्यक (oligarchy) और निरकुशताके परस्पर विरोधी सिद्धान्तोंकी स्पष्ट घोषणा है।

एच० जी० वेल्स (H G Wells) का विश्वास है कि संसदीय लोकतंत्र (parliamentary democracy) के राजनीतिक तरीकों और राजनीतिज्ञोंके प्रति अविश्वास और असन्तोष बढ़ता जा रहा है। उनका कहना है कि जब आम चुनावों द्वारा सरकार बनानेकी पद्धतिका जादू समाप्त हो गया है और लोकतंत्र प्रयालोचनके एक ऐसे युगमें प्रवेश कर रहा है जिसमें हमारी आजकी सबसे ससंसारिक समस्याओं और हमारे वर्तमान राजनीतिक जीवनका समाप्त हो जाना अनिवार्य है। वेल्स इसका मूल कारण सार्वजनिक मतलबोंके प्रति जनसाधारणकी उदासीनता, अज्ञानता और असमर्थतामें पाते हैं। उनका विश्वास है कि साधारण मतदाताको अपने मतकी बिचकुल परवाह नहीं होती।

लोकतंत्रके विरोधियोंमें वे लोग प्रमुख हैं जो 'सर्वोत्तम' (elite) द्वारा शासनके सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं। उनका कहना है कि लोकतंत्रकी नींव एकदम गलत भावनाओं या आदतों पर आधारित है। लोकतंत्र यह मान लेता है कि सामान्य नागरिक राजनीतिक मतलों और उनकी जटिलताओंको समझता है और उसमें स्वयं अपना शासन करनेकी क्षमता है। सर्वोत्तम द्वारा शासन' सिद्धान्तको माननेवाले इन दोनों बातोंको गलत बताते हैं। उनका कहना है कि क्यादातर लोग राजनीतिक प्रश्नों को नहीं समझते और वे स्वयं अपना शासन करनेमें बिल्कुल अयोग्य होते हैं। इसलिए शासनकी बागडोर थोड़ेसे बुद्धिमान् और समय सागोंके हाथोंमें ही होनी चाहिए।

इन सब आलोचनाओंके होते हुए यह मान लेना मूर्खता होगी कि लोकतंत्रका प्रविष्ट उज्ज्वल है और हमारी सभी सामाजिक और राजनीतिक बुराइयोंके लिए लोकतंत्र रामबाण सिद्ध होगा। यह निम्नबोध करा जा सकता है कि यदि हम

सौक्ष्मिक उन दावाओं को नहीं करती जो अधिकाधिक स्वयं सामने आते जा रहे हैं तो सौक्ष्मिकों का ध्यान ही अपना स्थान किसी अन्य प्रणाम-प्रणाली को देना होगा।

२ सौक्ष्मिक का अर्थ (The Meaning of Democracy)

सौक्ष्मिक कबल सरकार या शासन का स्वरूप ही नहीं है। यह राज्य का एक प्रकार और समाज की एक व्यवस्था भी है। सौक्ष्मिकों के समर्थकों ने भी कभी-कभी उसकी व्याख्या केवल शासन के एक प्रकार के रूप की है। उदाहरणार्थ ज० आर० लोवेल (J. R. Lowell) कहते हैं कि सौक्ष्मिक शासन के अर्थ में केवल 'एक प्रयोग' है। निम्न इसकी परिभाषा जनता के लिए, जनता द्वारा जनता का शासन' कहकर करते हैं। सीले (Seeley) कहते हैं कि सौक्ष्मिक वह शासन है जिसमें हर व्यक्ति भाग लेता है। डिसी (Dicey) सौक्ष्मिकों को सरकार का एक ऐसा स्वरूप बताते हैं जिसमें जनता का एक बड़ा भाग शासन करता है। अपने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'आधुनिक सौक्ष्मिक' (Modern Democracies) में सौट आदम भी सौक्ष्मिकों को सरकार का एक प्रकार ही मानते हैं। इस सबको देखते हुए हम यह कह सकते हैं परमात्मा हमारे मित्रों की रण मानी करे हम अपने शत्रुओं से निबट लें।

सौक्ष्मिक केवल सरकार का स्वरूप नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि सौक्ष्मिक वह सरकार का स्वरूप हो और बाकी सब कुछ और। सौक्ष्मिकता के लिए सौक्ष्मिकतात्मक राज्य का होना जरूरी है। सौक्ष्मिकतात्मक राज्य के बिना सौक्ष्मिकतात्मक सरकार नहीं हो सकती। पर सौक्ष्मिकतात्मक राज्य के लिए सौक्ष्मिकतात्मक सरकार जरूरी नहीं है। एक सौक्ष्मिकतात्मक राज्य में सरकार सौक्ष्मिकीय निरंकुश अथवा राजतंत्रीय किसी भी प्रकार की हो सकती है। वह चाह तो सर्वोच्च अधिकार-सत्ता किसी एक अभिनायक के हाथों में सौट दे जैसा कि अमेरिका में सऊथ-आसोस एन्ड एन्ड को अधिकार देकर किया जाता है। जैसा कि हमने देखा है सौक्ष्मिकतात्मक राज्य का मतलब केवल इतना है कि पूरे समाज को अन्तिम अर्थ में सब कुछ सौट देनी है और वह सभी मामलों पर अन्तिम निर्णय लेता है। 'राज्य' एक प्रकार के रूप में सौक्ष्मिक किसी सरकार को नियुक्त करने अथवा नियुक्त करने और उसे बरकरार करने का एक पद्धति मात्र है।

शासन की एक पद्धति और राज्य का एक प्रकार होने के साथ-साथ सौक्ष्मिक समाज की एक व्यवस्था भी है। एक सौक्ष्मिक समाज वह समाज है जिसमें सत्यता और न्याय की भावना प्रधान होती है। पर यह जरूरी नहीं है कि हमें समाज में सौक्ष्मिकतात्मक राज्य या सौक्ष्मिकतात्मक सरकार ही हो। मुस्लिम समाज आदि पर सौक्ष्मिकतात्मक है पद्धति शासन के अन्तर्गत सौक्ष्मिकतात्मक राज्य होता है और न सौक्ष्मिकतात्मक सरकार। सौक्ष्मिकतात्मक समाज के अन्तर्गत सौक्ष्मिकतात्मक राज्य हो सकता है परन्तु वह समाज सौक्ष्मिकीय राज्य में सर्वोच्च और सौक्ष्मिकतात्मक सौक्ष्मिकतात्मक समाजों के विरुद्ध है।

लोकतंत्र शासन व सरकारकी एक पद्धति राज्यका एक प्रकार तथा समाजकी एक व्यवस्था होनेके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है। उसका सम्बन्ध उद्योगके क्षेत्रसे भी रहता है। आज अनेक लोग ऐसे हैं जिनका कहना है कि लोकतंत्रकी विजय तक तक पूरी नहीं होगी जब तक कि उद्योगोंका भी पूरा-पूरा लोकतंत्र (करण नहीं हो जाता। उनका कहना है कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रमें तो लोकतंत्र ने बड़ी प्रगति की है पर आर्थिक या औद्योगिक क्षेत्रमें उसकी प्रगति बहुत कम है। इनमें से कुछ लोग समाजवादको लोकतंत्रकी अगली अवस्था बताते हैं। उनका यह कहना चाहे ठीक हो या गलत इतना तो हमें मानना ही होगा कि कोई भी समाज अपनेको तक तक पूर्ण रूपसे लोकतंत्रीय नहीं बह सकता जब तक जीवनके कुछ क्षेत्रोंमें वह लोकतंत्रीय पद्धति का उपयोग करता है और अन्य क्षेत्रोंमें स्वेच्छाचारी पद्धतिका।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके सम्बन्धमें मैक्सी (Maxey) लिखते हैं कि २०वीं शताब्दीय लोकतंत्र एक राजनीतिक मिथान्त एव शासन-पद्धति वा एक सामाजिक व्यवस्था मात्र नहीं है। 'यह एक ऐसी जीवन-पद्धतिकी खोज है जिसमें मूलतम वस्तुप्रयोग या द्वाबारे व्यक्तिकी स्वतः प्रति स्वतंत्र बुद्धि और उसके काम कलापका मेल बैठाया जा सके और यह विश्वास है कि ऐसी पद्धति समग्र मानव जाति के लिए आदर्श पद्धति होगी जो मनुष्यकी प्रकृति और विश्वकी प्रकृतिके साथ अधिकतम सामंजस्य स्थापित करेगी (Political Philosophies पृ० ६९०)।

लोकतंत्रके प्रारम्भ और प्रतिनियमूलक स्वरूप संकीर्ण अर्थोंमें लोकतंत्र अनेक लोगों द्वारा शासन है।^१ लोकतंत्रका आरम्भ यूनानके प्राचीन नगर राज्योंमें हुआ था। इन सभी नगर राज्योंको पूर्ण स्थानीय स्वशासन प्राप्त था। यूनानके इन नगर राज्योंमें राजतंत्र निरंकुश शासन कुसीनतंत्र बर्गतंत्र और लोकतंत्र आदि सरकारके विभिन्न रूपोंके प्रयोग किये गये। इस प्रश्न पर भी पर्याप्त विचार किया गया था कि इनमें कौन सबसे अच्छा है। सभीके पक्ष और विपक्षमें दिये गये तर्कों पर विचार करनेके बाद अरस्तू ने अपना निर्णय नगर राज्योंमें प्रचलित लोकतंत्रके सममित स्वरूप (polity or a moderate form of democracy) क पक्षमें दिया था। यूनानके नगर राज्योंका लोकतंत्र मूढ़ अथवा प्रत्यक्ष लोकतंत्र था। सभी स्वतंत्र व्यक्ति (free men) आम समाजमें एकत्र होते विधियाँ बनाते और उन्हें कार्यान्वित करते राजद्रोहा से मिलने और जूरियोंकी भाँति काम करते थे। इस प्रकारके लोकतंत्रका पुनर्जन्म मध्ययुगमें इटलीके नगर राज्योंमें हुआ था। स्विट्जरलैण्डके फोरैस्ट कैंटन्स (forest cantons) में भी प्रत्यक्ष लोकतंत्र था और आधुनिक समयतक बना हुआ है। १८ वीं

^१ इस प्रकार वाइस लोकतंत्रका अर्थ व 'एक ऐसी सरकार जिसमें योग्य नागरिकों के बहुमतकी इच्छासे शासन होता है' के अर्थमें करते हैं। यह योग्य नागरिक जनता का बहुत बड़ा भाग—माटलौर पर तीन चौथाई भागसे अधिक—होते हैं जिससे कि जनताकी शारीरिक शक्ति उससे मन देनेकी शक्तिसे बराबर हो जावे (Modern Democracies, ख० १ पृ० २६)।

शासनीयें वही उस प्रकारके शासनके प्रबन्ध समर्थक थे। वह अग्रगण्य अथवा प्रतिनिधिमूलक सोवतंत्रको बुरा मानने लगे। पर अधुनिक परिस्थितियोंमें प्रत्येक साधनकी वही वैमाने पर लागू करनेके मार्गकी कठिनाइयोंको वह सहस्रुत करते थे। वह कहते हैं कि गठ सोवतंत्रके लिए अनेक चीजों की एक साथ आवश्यकता है और इन चीजोंका एक साथ होना कठिन है। ये आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं

(१) एक छोटा राज्य जिसके नागरिक आसानीसे एक जगह एकत्र हो सकें और जिसमें हर नागरिक दूसरे नागरिकोंको आसानीसे पहचान सकें

(२) व्यवहारकी आवश्यक सामग्री

(३) एक प्रतिष्ठा और सम्पत्ति पर्याप्त समानता और

(४) बहुत कम विलास या विलास-हीनता।

हमारा अनुभव यह सिद्ध करना है कि गठ और प्रथम सोवतंत्र एक ऐसा तत्त्व है जो प्राप्त नहीं किया जा सकता। अग्रगण्य या प्रतिनिधिमूलक सोवतंत्र ही आज हमारे लिए सम्भव है। हमने अनुसार वास्तविक भाग्य जनताके हाथोंमें लेकर उनका प्रतिनिधित्वके हाथोंमें सौंप दिया जाता है। कुछ आधुनिक राज्याय प्रचलित लोक निर्णय (referendum) लोक आदेश (initiative) और प्रस्मरणन (recall) की प्रणालियाँ ही आजकल प्रथम सावतंत्रता निरदलतम् स्वरूप हैं। परन्तु ये तरीके सब जगह काममें नहीं लाये जा सकते। कुछ अन्य प्रणालियाँ जो वहाँ अधिक प्रचलित हैं वे हैं—निर्गणक-आत्मको व्यापक बनाना बहुमत दलके प्रति सरकारको जिम्मेदार बनाना बार-बार चुनाव कराना और स्थानीय स्वाशासनकी व्यवस्था। सोवतंत्र और समन्वित शासन अनिवार्य एक ही चीज नहीं है यद्यपि हिन्द और जहाँ राजनीतिक आत्मको अपनावकाते दूसरे देशों में सोवतंत्र और तत्त्व एक दूसरे से अविच्छिन्न रूपमें जुड़े हुए हैं।

सरकारके प्रकार राजतंत्र कुलीनतंत्र और सोवतंत्र सरकारोंके प्राचीन वर्गीकरणका आज हमारे लिए अधिक महत्व नहीं है। आजकलकी अधिकतर सरकारें मिश्रित प्रकारकी होती हैं। उनमें राजतंत्रीय कुलीनतंत्रीय और साधनत्रीय तत्त्व मिश्र मिश्र मानाये जाते हैं। हिन्दुत्व अधिपत्य ऊपरसे लेन पर राजतंत्रात्मक मान्य हुआ जाता है वह मौलिक रूपमें वह सोवतंत्रात्मक है और साथ ही कुलीनतंत्र की भी उस पर सही दृष्टि है। अनुभव यथार्थ है कि एक स्वयं साधनतंत्र कुलीनतंत्रकी भी स्थान मिलना चाहिए। यह कुलीनतंत्रका आधार गणति नहीं अपितु बलि सामर्थ्य और चरित्र होता चाहिए। राज्य का करना है कि राज्यमें सभी सरकारें कुलीनतंत्रीय होती हैं क्योंकि यद्यपि साथ ही सामन्तता संस्थापन करते हैं।

आजकल मौलिकतात्मक सरकारें विभिन्न प्रकारकी हैं। बारीक बट्ट है

१ साधनत्रीय सरकारें स्थान या साधनतंत्र राजतंत्रके अधीन रह सकती हैं।

२ वे नम्य (flexible) या अनम्य (rigid) सविधानके अधीन रह सकती हैं।

पर उन सबका आधार सार्वजनिक सम्प्रभुताका सिद्धान्त ही होता है। इसके परिणाम स्वरूप इन सबमें राजस्व वसूल करने और राज्यकी विभिन्न सेवाओंमें उसे खर्च करनेका अधिकार जनताके प्रतिनिधियोंको ही रहता है।

लोकतन्त्रका व्यापक अर्थ अपने व्यापक अर्थमें लोकतन्त्र 'एक राजनीतिक अवस्था' एक नैतिक धारणा और एक सामाजिक परिस्थिति है। लोकतन्त्रका अर्थ सामान्य मनुष्यमें विश्वास और निष्ठा है। अथवा ए० डी० लिण्डसे (A.D. Lindsay) के कथनानुसार इसका अर्थ है कि सभी मनुष्योंका महत्त्व होता है। कोई भी किसी दूसरेकी उद्देश्य सिद्धिका साधन-माध्यम नहीं है। इस सम्बन्धमें काण्ट का प्रसिद्ध सूत्र यह है 'ऐसा व्यवहार करो जिसमें तुम्हारे अपने या किसी अन्य व्यक्तिके मनुष्यत्वका उपयोग हर हालतमें एक उद्देश्यके रूपमें हो सके और उसका उपयोग एक साधनके रूपमें कदापि न हो।' १७ वीं शताब्दीके एक कम प्रसिद्ध लेखकके शब्दोंमें ब्रिटनके गरीब से गरीब व्यक्तिको भी वैसा ही जीवन व्यतीत करना है जसा कि सबसे धनी व्यक्ति को। (५१)

व्यक्तित्वका महत्त्व लोकतन्त्रका सार है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी व्यक्ति एकसमान या बराबर हैं। लोकतन्त्रमें समानताके सिद्धान्त या समानताकी भावनाका प्राकृतिक असमानताके साथ सामंजस्य करनेका प्रयत्न किया जाता है। लोकतन्त्र इस बातकी कोशिश करता है कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापना हो जिसमें व्यक्तित्वके विकास और अभिव्यक्तिके लिए अनुकूल अवसर प्राप्त हो सकें।' सी० डी० बर्न्स (C. D. Burns) कहते हैं कि व्यवहारमें लोकतन्त्र यह मानता है कि सभी व्यक्ति समान हैं और इस भावनाका प्रयोग सर्वोत्तम व्यक्तित्वकी ओजके लिए किया जाता है।

प्रो० स्मिथ का कहना है कि इस दृष्टिसे देखने पर लोकतन्त्र एक धार्मिक सिद्धान्त है और लोकतन्त्रीय जीवन ही सच्चा धार्मिक जीवन है। हमारा विश्वास है कि लोकतन्त्र मानवताके प्रति हमारे उत्साहका व्यावहारिक प्रदर्शन है। स्वतन्त्रता, समानता और बहुत्वके परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले सिद्धान्तके समन्वयकी ओर यह एक ठोस प्रयत्न है। इसका सद्यः समाजके हर व्यक्तिके लिए यह सम्भव बनाना है कि वह पदावधि अपने लिए सर्वोच्च कल्याणकी सिद्धि कर सकें। हम सर फ़िट्जजम्स स्टीफ़ेन (Sir Fitzjames Stephen) के इस कथनसे सहमत नहीं हैं कि 'स्वतन्त्रता समानता और बहुत्वके द्वारा जिस विचार क्रमकी ओर सकेत किया गया है उसके प्रति विवेकपूर्ण उत्साहके लिए कोई अवसर छेप नहीं रह जाता क्योंकि अनेक ऐसी बातें हैं जिनके बारेमें मनुष्यको स्वतन्त्रता मिलनी ही नहीं चाहिए। मनुष्य मौलिक रूपसे असमान हैं वे परस्पर बहु तो हैं ही नहीं और यदि हैं तो ऐसे प्रतिबन्धोंक साथ कि उनके बहुत्वका दावा महत्वहीन हो जाता है।

३ सोकसत्र के समयन में ग्रास्त्रीय तर्क (The Classical Case for Democracy)

सोकसत्रके व्यावहारिक दार्ष्टिक्य पर धोड़ी देखने लिए ध्यान न देकर हम यह देखें कि सोकसत्रिक सिद्धान्तके पगमें कौनसे तर्क दिये जा सकते हैं। ये तर्क ये हैं

(१) पूर्ववधान-मूलक तर्क (The precautionary reason)

(२) मनोवैज्ञानिक तर्क (The psychological reason)

(३) शिक्षा सम्बन्धी तर्क (The educational reason)

(४) नैतिक तर्क (The moral reason) और

(५) व्यावहारिक तर्क (The practical reason) ।

प्रथम तीन तर्कोंकी पूरी-पूरी विवेचना प्रो० डब्ल्यू० ई० हॉकिंग (Prof W E. Hocking) ने इस प्रकार की है

(१) पूर्ववधानमूलक तर्क सोकसत्र हम इस बातकी गारण्टी देता है कि समाजके हर व्यक्तिकी इच्छा पर यथोचित विचार किया जायगा और सरकार द्वारा जो कुछ भी किया जायगा उसमें किसी भी व्यक्तिकी बख्तेलना नहीं की जायगी पर इसका अर्थ यह नहीं है कि सोकसत्र हर व्यक्तिकी इच्छाओंकी पूरी करने का वचन देता है क्योंकि यह तो किसी भी समाज में सम्भव नहीं है। इसका मतलब तो यह है कि 'गरीब से गरीब व्यक्ति' को भी अपनी इच्छा प्रकट करने की उतनी ही स्वतंत्रता मिलेगी जितनी 'गनीसे गनी व्यक्ति' का। यदि दण्डा ही अच्छी सरकारकी एकमात्र बख्ती होती तो कर्मचारीतन्त्र या तानाशाही सोकसत्रकी अनेका बखि अच्छी व्यवस्थाएँ होतीं। पर दण्डाणता ही एकमात्र बख्ती नहीं है। नागरिकोंको यथा सम्भव सर्वोत्तम बनानेवाली सरकार ही सर्वोत्तम सरकार है। यदि हम अपने शासकों या बदन ठीक-ठीक कर सके तो निरंकुश शासन या कर्मचारीतन्त्र बहुत सन्तोषजनक बनने काम कर सकता है। पर इस प्रकारकी सरकारमें कठिनाई यह है कि वे समाज के किसी वर्गमें विचार करने महानुमूर्ति नहीं रखतीं। निरंकुश शासन या कर्मचारी तन्त्रमें व्यक्तियों और व्यक्ति अनुशासकों जहाँ-तहाँ बच् हो सकता है पर शान समाज पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर दूसरी ओर सोकसत्रमें हमसे कम सैद्धान्तिक रूप से एक व्यक्तिता भी बच् होता है तो येन समाज को भी बच् उठाना पड़ता है। दूसरे वर्गोंमें निरंकुश शासन या कर्मचारीतन्त्रमें समाजके कुछ भागोंकी उन्नति की जाती है। इसके विपरीत यह कहा जाता है कि सोकसत्र अपने सभी सम्बन्धोंकी इच्छाओं और उनके कर्तव्य अनुसरण करना है। निरंकुश शासन तथा कर्मचारीतन्त्रमें सरकारकी ओरसे जनताको अनक आदेश और बिनाय निर करने हैं बिनाका पालन करना उसके लिए अनिवार्य होता है पालन जनताको इच्छा और सम्मानको प्राप्तनेका प्रयत्न बहुत कम किया जाता है। प्रो० हॉकिंग का कहना है कि सोकसत्र हरेक व्यक्ति और देशके बीच एक सम्बन्ध स्थापित कर देता है। उसमें बहिष्कारी व्यवस्थाएँ

जितनी सख्या हाती है उसनी अन्त गामा सम्बन्धोंकी भी होती है। अर्थात् केन्द्र और व्यक्तिके बीच सम्बन्ध सूत्रोंका आदान प्रदान होता रहता है। एक पूर्ण लोकतन्त्रम कोई भी यह शिकायत नहीं कर सकता कि उसे अपनी बात बहनेका अवसर नहीं मिला। (ए० एल० लविल)

(२) मनोवैज्ञानिक तर्क जैसा ऊपर कहा जा चुका है कार्यक्षमता ही पर्याप्त नहीं है। हृदयदीन कार्यक्षमता ने ही रोमको समाप्त कर दिया था। हर प्रकारकी सरकारमें हम इस बातका प्रयत्न करते हैं कि शासन विधायिका द्वारा हा। पर विधायक जनताकी पूरी इच्छाओं व सम्मतियोंको नहीं जानते। विधायकता भस्तिष्कको जकड़ देती है। विधायक विधायके अपने पक्षको भली भाँति जानता है। पर उसे हमेशा इस बातका ज्ञान नहीं रहता कि उसकी सदस्यीयता जनता पर सामान्य रूपसे क्या प्रभाव पड़ता है। दद तो वही समझता है जिसके पैरमें काटा खुभता है। एक अच्छे शासन के लिए तो यही आवश्यक है कि विधायक और सर्वसाधारण मनुष्योंके बीच सहयोग और सामंजस्य हो। लोकतन्त्र इस आवश्यकताको सबसे अच्छे ढंगसे पूरा करता है। प्रो० हॉकिंग तो यही तर्क कहते हैं कि केवल अत्यन्त उच्चकोटिके गणित मनुष्य द्वारा गणित होना एक मकड़ है। ऐसे शासकके लिए एक भावसूक्ष्म सिद्धान्तवादी हो जाना और जीवनकी छोस परिस्थितियोंसे परे दूरकी कँधी उठान सना बहुत स्वाभाविक है।

यदि एक क्षणके लिए हम विभिन्न व्यवसायोंकी ओर ध्यान देते हैं तो हम पता चलता है कि इन क्षणोंके विधेयक जब सामान्य जनता पर अधिकारिक भरोसा करने लगते हैं। जो डॉक्टर जब तक एक अधिनायककी शक्ति काम करता था वह अब रोगी को सहयोगी बनाकर इस बातका प्रयत्न करता है कि रोगी स्वयं अपनेको अच्छा करने का प्रयत्न करे। इसी प्रकार संगीतकार विधेयक एक ओर जनताको संगीत-शास्त्रके नियमोंको सिखाता है साथ ही दूसरी ओर इस बात पर भी ध्यान देता है कि जनता कैसा संगीत पसन्द करती है और जनतासे यह नहीं बहता कि वह कैसा संगीत पसन्द करे। और इसी प्रकार लोकतन्त्र भी साधारण व्यक्तिका सावजनिक समस्याओं के सार्वजनिक हल बुझनेमें सरकारसे सहयोग करनेके लिए आमन्त्रित करता है। लोकतन्त्रका पहला काम यह है कि यह जनताके प्रश्न 'क्या' का समाधान करे और जब वह ऐसा कर देता है सभी सरकार और जनताके बीच एक सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। व्यक्ति चुपचाप स्वीकृति देनासके बजाय एक सक्रिय सहयोगी बन जाता है। प्रो० हॉकिंग कहते हैं 'लोकतन्त्र चेतन और उपचेतन मनकी एकता है (Democracy is the union of the conscious and subconscious mind)।

(३) शिक्षा-सम्बन्धी तर्क लोकतन्त्र सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्रमें एक व्यापक प्रयोग है। यह जनसाधारणम अभिवृद्धि पैदा करता है और उसका ज्ञान बढ़ाता है। लोकतन्त्र उन सामान्य एक उच्चकोटिकी मनोवृत्ति पैदा करता है जिन पर वह शासन

करता है। जब आम चुनाव होता है तब सभी युवित्तमन मतोंको अपना अपना प्रसार करनेका अवसर मिलता है। समस्याओंका सभी दृष्टिकोणोंसे विवेचन होता है और जो बातें निजी या वे मानवनिष्ठ हो जाती हैं। भाषण श्रुति जाते हैं सेख मिल जाते हैं। कार्यकर्ताकी स्वरूपाण समार की जाती है और विभिन्न नातियों पर प्रकाश डाला जाता है। फलन मरकार व वासन-सम्बन्धी समस्याओंके विषयमें जनताका ज्ञान बहुत बढ़ जाता है। कुछ ही दिना या सप्ताहमें जनता स्वतन्त्रता सम्स्याओंमें भली भौति परिचित हो जाती है। काफी विचार विमर्श सोच विचार और निष्पत्ति का फलनता निष्पत्ति बनने है कि किसके फलन मत्र श्रुति जाय। सभी के दृष्टिकोण और विचार परिवर्तित स्पष्ट और शुद्ध हो जाते हैं। आरम्भमें यदि जिनके व्यक्ति उनमें ही विचार होत हैं ता अन्तमें हम एक साक्षर-सम्पत्ति या साक्षर जिनके द्वारा तब पहुँच जाते हैं। हर व्यक्तिका मूल्य अधिक व्यापक और विविध हो जाता है। साक्षरता वासनका कामा भीमा प्रभाव उसमें भाग लेने वाला पर यह होता है कि उनका मानसिक स्तर ऊपर उठ जाता है। सी० डी० बर्नर मिलने हैं सभी प्रकारका वासन गिना प्रदान करनेकी एक पद्धति है पर आम गिना ही सर्वोत्तम गिना है इसलिये सर्वोत्तम वासन स्वासन है जो साक्षरता ही है।

(४) नतिवर्तन साक्षरता जनताका नैतिक उद्योग करता है। लोकतन्त्र इस सिद्धान्त पर आधारित है कि किसी व्यक्तिके लिए स्वयं अतिवस्तुका मूल्य दूसरे द्वारा दी गयी वस्तुके मूल्यसे बड़ा अधिक है। लोकतन्त्र स्वावलम्बन पहल-श्रमी और व्यक्तिगत उत्तरदायित्वकी भावनाको सबसे अधिक बन देना है। जे० एम० मिल कहते हैं कि लोकतन्त्रका सबसे बड़ा गुण यह है कि अत्यन्त भी वासन प्रणालीकी ओर साक्षरता एक उत्तम और उच्च जाटिके राष्ट्रीय चरित्रका विभाग करता है। संयुक्त राज्य अमेरिकामें लोकतन्त्रके कारण मानव महानुत्थानका विस्तार और विभाग हुआ है। लोकतन्त्रके विभागके परिणाम स्वयं अमेरिकामें लोकतन्त्रकी भावना बड़ी है और साक्षरताके अनुसार जनताके लिए गिनाकी सुविधाजनक व्यवस्था की गयी है। प्रगतिशील सचिव टीक ही कहते हैं कि किसी भी सरकारकी उत्तमताकी बगोनी जाति और व्यवस्था अधिक समृद्धि या श्रम नहीं है बल्कि यह बगोनी है राज्य व्यवस्थाकी विचार करनेवाला नागरिकोंका वह चरित्र जिसका निर्माण सामान्य प्रणाली करती है। अन्तिम रूपमें सबसे अपना वासन यह है जो जनताकी नैतिकता, ईमानदारीकी और अपने परिणाम आत्मनिर्भरता और साक्षरताका दृढ़ बनाना है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि लोकतन्त्र अपनी सर्वोच्च स्थितिमें हम बगोनी पर लया उतरता है। साक्षरता कहते हैं कि साक्षरताका मतलबिहार जो नागरिकों की प्रणाली बन जाती है। हम यह कहते हैं कि लोकतन्त्र वस्तुतः सर्वोच्च विभाग में गहारा है। विभा की व्यवस्थाके सामान्य आत्मनिर्भरता अपनी सामान्य नहीं है जिसकी कि लोकतन्त्र में।

(५) व्यावहारिक तर्क व्यावहारिक दृष्टिकोणसे लोकतन्त्रके निम्नलिखित साम हैं

(क) लोकतन्त्र न्याय प्रणाली भावनाको बढ़ाता है। जिस व्यक्तिको मताधिकार प्राप्त नहीं होता है उसका राजनीतिक प्रश्नोंकी ओरसे उदामीन हो जाना स्वाभाविक है। साधारण मनुष्य अपने देशकी समस्याओंके प्रति सच्ची रुची इसलिए लेता है कि यह जानता है कि यदि तत्कालीन सरकार लोकमनकी ओर ध्यान नहीं देती है तो उस सुरन्त ही बदला जा सकता है। लेमलेये का कहना है कि फ्रांसके लोगों को क्रान्तिके बाद जब शान्तनम भागीदार बनाया गया तभीसे उन्होंने फ्रांसको राष्ट्र हृदयसे प्यार किया उसके पहले नहीं। क्रान्तिके बादसे ही फ्रांसकी जनता बहुत देश भक्त है।

(ख) लोकतन्त्र देश प्रणाली भावनाको दृढ़ करता है और इस कारण क्रान्तिके सत्तरेको कम करता है। लोकतन्त्रका आधार जनताको समझा-बुझाकर उसकी स्वीकृतिसे शासन करना है। हर दूसरे प्रकारका शासन शक्ति पर ही आधारित होता है शक्तिका प्रयोग चाह कम मात्राम हो या अधिक मात्राम। लोकतन्त्र बिचार विमर्श और पर्यालोचनसे विश्वास करता है और यही ढंग अन्तम सफल होगा। जैसा हुनेशों कहते हैं 'जनताको शिक्षित करनेमें और अपने मतानुकूल बनानेमें समय चाहे जितना लग जाय पर केवल गिन्या और मतपरिवर्तनक द्वारा ही कोई उद्देश्य अन्तिम रूपमें सफल हो सकता है। जनप्रिय सरकारके लिए यह एक अनन्त गौरवकी बात है कि उसका आधार भाषण-स्वातन्त्र्य समा करनेकी स्वतन्त्रता और सामूहिक कार्य है।

इसके अतिरिक्त लोकतन्त्र ही एक ऐसी शासन पद्धति है जिसमें व्यवस्था और प्रगति दोनों साथ-साथ आसानीसे चल सकती है। इससे क्रान्तिकी सम्भावना पर एक और रोक लगती है। चाना ग्राहीम व्यवस्था तो रहती है पर अधिक प्रगति नहीं होती। जो कुछ थोड़ी बहुत प्रगति होती भी है उसमें केवल एक व्यक्ति या एक अल्प-संख्यक वर्गका ही हाथ रहता है और उसके पीछे सम्भवत जनताका कोई समर्थन नहीं होता।

लोकतन्त्र क्रान्तिको एक और ढंगसे रोकता है। वह ढंग है समानताके सिद्धान्त पर जोर देना। लोकतन्त्रमें कोई गहरा सामाजिक विभेद नहीं होता और प्रतिभाके लिए बिनासका रास्ता खला रहता है। अन्त प्रकारकी शासन व्यवस्थाओंमें जो सामाजिक असमानता और सामाजिक असन्तोष रहता है वह उर्विन अवसर पाने पर क्रान्तिकी रूप धारण कर लेता है।

(ग) कुछ लेखकोंका दावा है कि अन्य किसी प्रकारकी शासन प्रणालीकी अपेक्षा लोकतन्त्रमें कार्यदक्षता अधिक होती है। उनका तर्क यह है कि 'अन्य किसी प्रकारकी शासन प्रणालीकी अपेक्षा आमचुनाव साधजनिक नियन्त्रण और सार्वजनिक उत्तराधिकारसे उच्चकोटिकी कार्यदक्षता अधिक सम्भव है (२३ ३९)।

(घ) साधजनिक इच्छा या लोक-सम्मतिके सिद्धान्तका व्यावहारिक अर्थ यही है

किं यह अपने ही सोकरनत्रात्मक संगठन के रूप में अभिव्यक्त करे। हम इस बात को धन्यीकार नहीं करने कि कुछ विचार परिस्थितियों में सोकर-सम्मति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति केवल एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के मन से हो सकती है। पर, सामान्य रूप से सोकर-सम्मति या सावजनिक इच्छा के लिए सोकरनीय संगठन की आवश्यकता है।

४ सोकरनत्र के विरुद्ध तर्क

(The Case Against Democracy)

नैदानिक रूप से सोकरनत्रम चाह जिउने गुप्त है। पर इसमें सन्देह नहीं कि दैनिक व्यवहार में इसमें अनेक बराहियाँ भी मिलनी हैं। इससे समर्थन के आरम्भ में इससे जो आगाई की थी वे पूरी नहीं हुई हैं। सोकरनत्र की जो अनेक आलोचनाएँ उसने धनुओं और मित्रों द्वारा की गयी हैं उनका मूल्यांकन हम इस समय नहीं करेंगे। हम केवल उनसे महत्व के अनुसार उनकी जबा करेगे।

(१) आरम्भ में सोकरनत्र पर कुलीन वर्गीय प्रहार हुए। बहुत से लोगों की धारणा थी कि साकरनत्रका मतलब 'उत्तरदायित्वहीन भीड़का शासन' है। अस्तु साकरनत्रको सार्वधानिक शासनका प्रष्ट रूप मानते थे। मिन बहुतों की निरकुशता से भयभीत थे। लेकी (Locky) का विचार था कि साकरनत्र स्वतन्त्रता के विरुद्ध है। आज भी इस बहुत से लोग हैं जो कहते हैं कि साकरनत्र मुल्की अन्तर्गत मूल्यांकन अनावश्यक और अनुचित महत्व दिया जाता है। मन गिने जाते हैं परल नहीं जाते। विचार प्रणिधान विवेकपूर्ण निर्णय और विचारप्रतापी बहुत कम महत्व दिया जाता है। हर व्यक्तिका हर दूसरे व्यक्ति से बराबर मानना ही सोकरनत्रका आधार है। हमका व्यावहारिक परिणाम यह होता है कि शासन मूल अन्याय अतिरिक्त और आयोग्य व्यक्तियों के हाथ में चला जाता है। सोकरनत्र संस्थाका अवधिक महत्व देता है। हममें लोगों के सिद्ध ही गिन जाते हैं और हम जानकी बिना बहुतों की जानी कि शासकियों के भीतर क्या है। सोकरनत्र भीड़का शासन है। यह सामान्यता और हीनता को बढ़ावा देता है (it exalts mediocrity and inferiority) सोकरनत्र में बहुतों को बर्बरता है। मने ही बहुतों की अल्पमते को ही मात्र अधिक मिन हों। अल्पमत के पास अधिक ज्ञान और विवेक होना भी उनकी अवहेलना की जाती है। सोकरनत्र प्रमादपूर्ण उत्तरदायित्व की व्यवस्था कर सकता है। आम जनता अल्प कार्यकाल और बारी-बारीय पदाधिकार आदि से उत्तरदायित्व का रक्षण नहीं मिलती। सोकरनत्रका अब सामान्य व्यक्तियों द्वारा अपांश सीमित दलितों के जाने व्यक्तियों द्वारा शासन है। इसमें भीड़-मनोवृत्ति प्रकाश करनेका पूरा पूरा अवसर मिल जाता है। शासन यह है कि जबन कठिनाई अनुसरणीय आवाजों में बह जानेवाले और बुद्धिहीन लोगों का शासन करनेका इसमें पूरा-पूरा अवसर रहता है। अतः सोकरनत्रका मतलब अज्ञान शासन है (democracy in short, means anonymity)।

(२) कुछ अम लोग भिन्न दृष्टिकोणसे तर्क करते हैं। उनका कहना है कि लोकतन्त्रका परिणाम होता है निरुद्ध कोटिका वगैरह। टल्लियरैण्ड (Talleyrand) लोकतन्त्रका दृष्ट लोकाका कृसीनतय (an aristocracy of blackguards) मानत हैं। लोकतन्त्रमे अधिकार सत्ता जनताको प्रभावित करन बाल बहुत व्यक्तियां इसर उधर दाव-पच करनवालो और दनाके अधिपुरुषोंक हाथाम रहती है। उच्च नाटिक नेता नही बुने आत। नाग अपन स अच्छे लोगोस ईप्या रखते हैं इसलिए न समर्थ व्यक्तियोंके बजाय जनप्रिय लोगोंको अपना नेता चुनत हैं। इतिहासमे ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जबकि लोगाने बुद्धो विल्सन और वेनजुएलास (Venezelas) जैसे उच्च कोटिके व्यक्तियोंका अस्वीकार करके मध्यम और निम्न कोटिके ऐसे व्यक्तियोंको चुन लिया जो अपनेको लोकप्रिय बनानेमे बहुत चतुर थ। इसस यह सिद्ध होता है कि लोकतन्त्रमे नेता बननेके लिए अपेक्षित गण यही है कि वह एक अच्छा मनोवैज्ञानिक हो समझौता कर सकनवाला हो और आवश्यकता पड़ने पर स्वयं अपने सिद्धान्तोंको छोड़ सकता हो। प्रायः समय और सामोश व्यक्ति चनावके लिए खड़े ही नहीं होते। लोकतन्त्र के विरुद्ध निम्न हुए मक्सी (Maxey) कहते हैं कि लोकतन्त्र बड़ी आसानीसे उत्तम नारमक प्रचारकों अधिपुरुषों और दबाव डालनेवाली कुटिल राजनीतिका शिकार हो जाता है।

लोकतन्त्रके विरुद्ध यह भी कहा जाता है कि साधारण मतदाताको रायके मसलो में कोई रुचि नहीं होती। जिन विषयों पर विचार होता है उनमे से अनेक विषयके बारेमें कोई साक-सम्मति या सामान्य दृष्टिकोण नहीं होता। अनेक लोकतन्त्रीय देशोंमे मतदाताओंकी उदासीनता प्रतिद्ध है। जब कभी कोई चुनाव होता है तब लोगोको उनके कार्यालयों या दफतरोंसे जबरदस्ती मत देनेके लिए लाया जाता है। यह हिसाब लगाया गया है कि अमेरिकामें मताधिकार प्राप्त लोगोमे स लगभग पचास प्रतिशत ही मत देते हैं।^१ अमेरिकाके एक राज्यमें किसी एक चुनावमे केवलछ प्रतिशत मतदाताओंने मत दिये थे। इस प्रकारकी उदासीनताका नतीजा यह होता है कि शक्ति कुछ ऐसे अधिकारियों सांघिकी हाथमे चली जाती है जे सम्बे छोटे बालों और झूठ-सच्चे तर्कोंसे जनता को बहलाने और उससे अनुचित लाभ उठानेके लिए हममा तैयार रहते हैं।

(३) इसी तर्कसे मिलता-जुलता एक दूसरा तर्क यह किया जाता है कि व्यावहारिक तौर पर लोकतन्त्रका अर्थ है राजनीतिक दलबन्गीस पैदा होनेवासी बुराईयां। राजनीतिक दल वास्तवमें एक अद्भुत वगैरह ही निर्माण करते हैं। लोकतन्त्रके लिए दल व्यवस्था अनिवार्य है पर इससे

^१ द्वितीय विश्व-युद्धके दिनोके बादसे आशके युगकी वर्तमान तनावनी-पूर्ण परिस्थितिके कारण स्थिति कुछ सुधार गयी है।

- (क) चरित्रक मागनपन और अमर्यताका प्रमाणन मिलता है
- (ग) राष्ट्रीय विनयको स्थापना पुनारम भी समीक्षा जाता है
- (ग) मूढ-मार्गकी प्रथा पनपता है और
- (घ) नतिक मान-का पनपता है (३ ख० १ अ० ११)।

नत व्यवस्था इतनी सुमर्यता हाता है कि जा व्यक्ति अन विवेकता उपन करना चाहता है उस एसा करन की स्वतन्त्रता या ता विनयी ही नन या इतन कम विनता है। उस न या अधिक एसे उम्मा-वारोंमे न विनी एकटा बनता हाता है जा या ता दुष्ट या मूल हात है और विनय थ विना एव का भी व पन नहा करना। उन अनता विनय न या हीन एसी समस्याका नवर करना हाता है विनयमे विना एवका भी बहु समर्थन नहा करना। ए आर० लॉड (A R. Lord) का कहता है 'प्रतिनिधित्वके आलोचकोंका नत प्रथा सा-का सम जाननक विए इतनी अधिक याविक जान पडता है कि उसमे विना ना अगमे नावजनिक इच्छाका सगे-सही प्रतिनिधित्व नहा हा सवता (२४ १६२)।

(४) पानीमी मगरक पनव सावनन की अवागता का उपासना (cult of incompetence) मानन है। यनी विचार कुछ एसे और नागका भी है जिसके हृदयमे सावननके विरुद्ध बाह विचार नत भावना नहा है। कुछ लोग ता सम आम कहन है कि सावननका अथ उत्तराधिकारन सवकार है। वर यह भा वरन है कि सावनन विवेकता नीति निर्धारन नहा वर सवता। सावनन सविनाका वागता राष्ट्रीय सुरक्षा केनिक सम्बन्ध और कूटनातिक प्रममोमे विनय अनन वन कमवार रता है। यह ता नीतिन्यां या पुन अतिरिक्त मा-का जानन है। सावननका आधार वन ही कमवार हाता है वनकि इयका आधार सामन्य भी है जा अवनन तथा भावुक हाता है और भावनकी बाहुमे बहु जनी है। साधारण लोग वन अधिक सर्व-विश्वक नहा करने। आज के किमी व्यक्ति प्रमा वरके उमे आक्रमान पर वहा सवने है तो दूसरे न उमे बूझकी भाषीमे वजननेको तनार हो जाने है। विद्वानों और व्यक्तिना केनके ही वारमे उनका धारणा वर अतिरिक्त और ववन हाता है। किमी विवर और सामन्य-मूलक प्रमाण व अतिरिक्त नहा हात। वन-वनी के आर्गका और वीर-युवाकी भावनने वरि हाते है 'राष्ट्राक माग विनय' वन आचर्यक नुपों और उ वरकी वन नत अगे नारोंके अ-वन्ध के विवर नहा रता है। वनी के गुणार विरायी वन वन है और वनी प्रचारकी प्रगति विराय करते है। वे मनीन वडिके हात है। नत आचरकोंका कुछ मागता वन की अननय विनया (mandates) याविकमों और विरोध वन नत वन वनके विवरन प्रमाण वरनेकी प्रगति और दूसरे वनय अवता और अवागताकी प्रगति विनयी वनी है। नेमाका की वन नुती-अननुती वर दी वनी है और उन आ-के विरुद्ध वन विने वने है। इनका व वरता है कि नेमाका की प्रमाण उन आ-के की वनी है विनयी विनया विनयियों द्वारा वनी हा और वा विनयिका हाता

और पदच्युत किये जा सकते हों। यह आरोप लगाया जाता है कि बहुमत शासनकी प्रवृत्ति हमेशा बहुमतकी निरक्षरतामें बदल जाने की होती है।^१

(५) कुछ लोग मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे लोकतन्त्रका विरोध करते हैं। उनका तर्क यह है कि लोग (मैक्सी के कथनानुसार) भेड़ों घन्दरा और भइयोंकी मनोवृत्ति मान होते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे सहज ही विश्वास कर लेनेवाले भावावेशम बह जाने वाले डरपोक असहिष्णु अविवेकी निंदयो अयायी भूख आदि सब कुछ होते हैं केवल विचारवान नहीं होते। यह भी कहा जाता है कि लोकतन्त्रीय सरकारमें निश्चयहीनता दुर्बलता अस्थिरता और भ्रष्टताकी प्रवृत्ति होती है और इसका कारण जनताकी घबलता विचार-शून्यता और अरुचि है।

(६) लोकतन्त्रके समर्थक इसे जनताका शासन बतलाते हैं परन्तु आसन्नक पूछते हैं कि क्या वास्तवमें ऐसा ही है? वे कौन लोग हैं जिन्हें बुद्धिमत्ता 'पाय और शक्ति का मूर्तिरूप माना जाता है? क्या इसका अर्थ निर्वाचकाने बहुमतसे है? यदि यही बात है तो उन लोगोंको हम क्या उत्तर दे सकते हैं जिनका यह कहना है कि यह जरूरी नहीं है कि मतदाताओंका बहुमत जनताके बहुमतका प्रतिनिधित्व करे। ब्रिटेनम द्वितीय पद्धति^१ के कारण और कुछ अन्य देशोंमें प्रचलित गुट पद्धति (group system) के कारण जो लोग शासन करते हैं वे वास्तवम बहुधा अल्पमतका ही प्रतिनिधित्व करते हैं न कि बहुमतका। और यदि यह मान भी लिया जाय कि मत दाताओंके बहुमतका मतलब देशके बहुसंख्यक लोगोंका मत है तो दूसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या यह आवश्यक है कि बहुमत ठीक ही हो? बहुत सम्भव है कि जनताकी आवाज घटानकी आवाज हो। यह समझना गलत है कि प्रतिनिधि सदा जनताकी इच्छाका ही प्रतिनिधित्व करते हैं। वे जाने या अनजानेम जनताकी इच्छाके विपरीत मार्ग अपना सकते हैं और जनताकी इच्छाका गलत प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। वे सदैव स्वतंत्र नहीं रहते। दलगत अनुशासनका अंकुश उन पर हमेशा रहता है और वे अपने निर्वाचककी अपेक्षा कभी-कभी समाचार-पत्रा और निहित स्वार्थोंसे अधिक भयभीत रहते हैं।

(७) लोकतन्त्रके विरुद्ध फीगवे का एक प्रभावशाली तर्क यह है कि जीव-विज्ञान की दृष्टिसे लोकतन्त्र अनुपयुक्त है। उनकी आलोचनाका मतलब यह है कि लोकतन्त्र का विकासकी प्रक्रियामें भेस नहीं बैठता। उनका कहना है कि विकास तमम हम ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं हमें अधिकाधिक मामलोंमें केन्द्रीकरण मिलता है। शरीरके विभिन्न अंगोंकी विभिन्न कार्य सौंप गिये जाते हैं। लोकतन्त्र विकास विरोधी सिद्धान्त

^१ लोकतन्त्रकी विस्तृत आलोचनाने लिए हर्नॉग की पुस्तक 'लोकतन्त्र निर्णयके द्वार पर' (Democracy at the Crossways) पढ़िए।

^२ हालके कुछ वर्षोंमें उदार दलके समाप्तप्राय हो जानेसे वस्तुतः द्वितीय पद्धति की पुनः स्थापना हो गयी है।

है क्योंकि उसमें कोई कभीय स्नायुविक व्यवस्था (nervous system) है ही नहीं। शरीरक एक अंग मस्तिष्कको एक निश्चित स्थान पर मानकर और उसे ही सम्पूर्ण शरीरके लिए विचार करने और योजना बनानेका कार्य न सौंप कर सोवतन यह आशा की जाती है कि मस्तिष्क वहाँ भी और सब वहाँ हो सकता है। सीधे-साधे पाग्ले म फंगवे का तापर्य यह है कि घासनका काम बढ़िया बनाने पर छोड़ देना चाहिए और बाड़ी लोगका उसकी आज्ञाका पूरा-रूप पालन करना चाहिए। सावननात्मक घासनका अर्थ वह अत्यधिक विवेकीकरण और असमयता लगाने हैं।

जीव विज्ञान और जानिमुक्तक तर्क देनबान कभी-कभी यह दावा करने हैं कि गरी जातियोंकी सवगा गैर-जोरी जातियाँ सोवतनको अरनानेम अणम हानी हैं।

(८) सोवतनके विरुद्ध एक सम्मीर आरोप यह लगाया जाता है कि यह एक बहुत ही लचीली घासन प्रणाली है। सावनतका अर्थ है सावनतका निर्माण प्रचार और बार-बार चुनाव। इन सब कार्योंमें बहुत लचक होगा है। उदाहरणके लिए अमरिका में हर चौथ साल राष्ट्रपतिके चुनाव कागों डालर सब हो जाने हैं। अभी हाल ही में सीनटके एक सदस्यके चुनाव में ही पाँच साल डालर सब हुए थे। जो पन रचनात्मक कार्योंमें लगना चाहिए वह चुनाव प्रतियोगितामें और निर्बाचन-प्रणाली अनुकूल बनाने में व्यय किया जाता है। सावनतमें बनकी बरानि एक ऐसी घासनविज्ञा है जिसमें इन्कार नहीं किया जा सकता। इसमें बनका ही नहीं समय और अवसरका भी अवश्य होता है। एक प्राधुनिक लेनक ने सोवतनका बान एक 'अतिवर्धित समिति' (exaggerated committee) के रूपमें भी है और समिति की परिभाषा हासनका दण्डे यह दी है कि जो काम एक व्यक्ति एक दिन कर सकता है वही काम सावनतका द्वारा सावनत निर्मित किये जानेका नाम समिति है। यह परिभाषा सावनतमें निर्मित अवस्थाके सामान्य गिज्ञानकी ओर इति करती है। सवनात्मक सरकारका काम बान घासे-धीरे होता है क्योंकि उम लागको सवना बानाकर बहुतन प्राप्त करना होता है। अंकी का कहना है कि कुछ विचारक तो यहाँ तक कहते हैं कि सावनत सबसे अधिक अनुमान और लचकिया सबसे अधिक समझनी और अगहनसोपनाने का हुमा और प्रपनिका सबसे अधिक विरोधी का उसकी ओर से उगमीन रहता है।

(९) कुछ लागोंने सावनतके नैतिक दृष्टिकोण पर भी सम्मीर आका प्रकट की है। आलोचनाका कहना है कि सावनतमें सर्वत्र असत्य आका प्रकृति लानी है। यह कहता है कि स सून है और 'अ इका सवतन' का जो ओर भी बान सून वह कर देता है। जनताको प्रभावित करनेके लिए समझानेको लोका सव देकर बनाने बनना जाता है। इति और सवतन इने समझाना पर विचार नहीं किया जाता। उम पर हम ईदने विचार किया जाता है जिससे अधिक सव दिन

सकें। सत्य या ग्यायकां तो बहुत कम अवयव विन्मुख ही म्याल नहीं किया जाता। वोटों द्वारा जनताका समर्थन प्राप्त करना ही प्रधान सद्य रहता है।

धूसछोरी और भ्रष्टाचारको लोकतन्त्रकी बहु प्रचलित बुराईयाँ बतलाया जाता है। साइस ने 'राजनीतिमें धनका बल' (The Money Power in Politics ९, ४० ६९) शीर्षक अध्यायमें कहा है कि ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि निर्वाचको विधायको प्रशासकीय अधिकारियों और 'मायाधिकारियों' तक न धनके लोभके सामने सिर झुका दिया है। पर यह बुराई आजकल कम हो रही है। फिर भी भारतमें स्वाधीनताके बादमें अवयव आमदनीके अवसर बढ़ गये हैं और इसलिए उन अवसरोंसे लाभ उठाने वालोंकी संख्या भी बढ़ गयी है।

(१०) लोकतन्त्र के विरुद्ध एक आरोप यह लगाया जाता है कि यह शिक्षाके स्थान पर अधिका या कुशिक्षाका साधन है। इसमें जनताकी चापलूसी की जाती है। इसमें एक अहंकारपूर्ण सर्वहारा वर्गकी उत्पत्ति होती है। इसमें जनताके दोषोंको जनतासे ही छिपाया जाता है। जनतामें समानताकी एक झूठी भावना पैदा हो जाती है क्योंकि हर व्यक्ति यह सोचता है कि अपने देशके शासनके लिए वह उतना ही योग्य है जितना अन्य कोई व्यक्ति। इसमें किसी विनाश प्रयास या प्रशिक्षणकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। इससे मानदण्ड गिर जाते हैं। लोग अपनेको विज्ञान साहित्य और कलाका पारखी समझने लगते हैं। भीरु मनोवृत्तिको उकसाया जाता है और जनताकी ओखी प्रवृत्तियोंमें मोह देनेका प्रयत्न किया जाता है। अपने समष्टि रूपमें जनता शिक्षा, विज्ञान साहित्य और कलाके विकासकी यदि विरोधी नहीं होती तो उस ओर से उदासीन अवस्था ही रहती है। विशिष्ट वर्गोंकी अपेक्षा सामान्य जनता वैज्ञानिक निष्कर्षोंका अधिक विरोध करती है। लोकतन्त्रसे जिस सम्यताका उदय होता है वह निम्नजाटिबी, साधारण और जड़ सम्यता होती है। (बर्न्स)

लोकतन्त्रीय देशोंमें साक्षरताका व्यापक प्रचार तो रहता है पर इसका मतलब यह नहीं है कि उन देशोंकी जनता बुद्धिमान हो जाती है और ठीक प्रकारसे सोचने समझने लगती है। आजकल चिन्तनके स्थान पर अधिकाधिक पढ़ने की प्रवृत्ति है। लॉर्ड ब्राइस का कहना कि-कुल ठीक है कि जिस लोकतन्त्रमें केवल पढ़ना ही सिखाया जाता है और सोचना तथा नियंत्रण करना नहीं सिखाया जाता उसमें पढ़नेकी सामर्थ्यसे कोई लाभ नहीं हो सकता। सी० डी० बर्न्स व्यापक ढंग से कहते हैं कि कुछ लोग शिक्षाका उपयोग जूठ सम्बन्धी समाचारों और स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचना पत्रोंके पढ़नेमें करते हैं ताकि वह और अधिक मादक वेय पी सकें।

(११) लोकतन्त्र के विरुद्ध यह भी आरोप लगाया जाता है कि यह स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत्य के प्रति यंत्रीपूर्ण नहीं है। इसमें हस्तमय करने की प्रवृत्ति होती है जिसका सबसे अग्रा उदाहरण है हालके वर्षोंमें अमेरिकाका मैकार्थीवाद (McCarthyism)। अनेक आलोचकोंने इस तथ्य की ओर ध्यान आकषित किया है कि लोकतन्त्रम् ऐसी विधियाँकी संस्था अधिक होती है जो बिना अच्छी तरह सोचे

विषादे जल्दबाजीमें बनायी जाती है (१४ ६१३)। एक मौखिक प्रतिनिधि बहुधा यह सोचता है कि अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेका केवल यही तरीका है कि उसके नामस कोई न कोई नयी विधि परिनिपम पुस्तका में दर्ज हो जाय। उसे इस बातकी चिन्ता नहीं रहती कि एसी कोई विधि बहुत कमो पागल हुई है या नहीं या यह बहुत आवश्यक और उचित है या नहीं और यह कार्यान्वित हो सकेगी या नहीं। उसे केवल बाह्यवाही सूटने और जिन लोगों ने उसे अपना प्रतिनिधि चुना है उनके समुत्त अपनेको धाम्य सिद्ध करनेकी चिन्ता रहती है। निम्नलिखित प्राथमिक विधायिका में नयी-नयी विधियाँ बनानेकी एक पुनर्ची रहती है।

(१२) सावतरीय देयाम ऐसे जनक उद्धारण हैं जब राष्ट्रीय हितोंका स्थानीय हितोंके लिए बलिदान किया गया है (१४ ६१४)। पक्षि अधिकार और सराफात्व की होम कुछ बाइसे लोगोंके सामक लिए समय राष्ट्रके हितोंकी उपाय का जाती है। प्रतिनिधियामे जा कुछ दिन सब उसीको धीन-अपनकी आपसमें होठ लगी रहती है। वे इस बातकी परवाह नहीं करने कि राष्ट्रके हितों पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। उनका उद्देश्य केवल अपने निर्वाचक-मंडलका समर्थन प्राप्त करना होता है। सामुदायिक समूही जनताके हितोंका ध्यान रखना तो किसीका काम ही नहीं होता। सामुदायिक मायना का अभाव रहता है जिससे राष्ट्रीय एकता स्वयंसे पद जाती है। प्राचाय देयामे एक प्रवृत्ति अधिक उभर पड़ती जा रही है—सगण्य सम्पत्त्यक समुदाय करने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए जनहितकी अकृता करण है। हात ही म भारतवर्षमें राष्ट्रोंके प्रापावार पुनर्गठनके प्रानको लेकर जो बकडर उठा या वह इस बातका उदाहरण है कि किस प्रकार कुछ थोड़े लोग सब पर हमी होनेकी कोणिय करते हैं और देयका एक भाग दूसरे भागके विरुद्ध लड़ाई सब देता है।

(१३) प्रेसीडेंट लवित का कहना है कि अमेरिकी सोवतंत्रकी सबसे बड़ी दिक्कत उसके बड़ नगरोका पुपावन है। यह बड़ी पुरानी चुपई है और अभी तक इनका कोई स्थायी हलाक नहीं सोचा जा सका है।

प्राथमिक सोवतंत्रीय राष्ट्रोंमें प्राची आनवासी कुराश्योंको लार्ड बारन ने निम्न रूपमें इस प्रकार बताया है

- (१) 'प्रामान और विधानको द्रुति करनेमें उनकी लक्षि।
- (२) 'राजनीतिको एक सामान्य व्यवसाय करनेकी प्रवृत्ति।
- (३) 'प्रदागनमें अनायास धन।
- (४) 'समानताके सिद्धांतका दुराभ्य और प्रदागन कर्त्तव्यका महत्व परधनमें बिरतन।
- (५) 'समान समुदायकी अनुचित अधिकार लक्षि।
- (६) 'विचारों और राजनीतिक द्वाधिकारिता द्वारा एसी विधिओंका बनना जाना जिनमें अनायास सब और सब समर्थन करली रह। इसी उद्देश्ये लक्षि भव करनेवाली कानाका का लून किया जाना। (१ १००० ४ ४ ५)

५ लोकतन्त्रकी आलोचनाओंका मूल्यांकन

(Evaluation of the Criticisms Against Democracy)

निस्सन्देह उपर्युक्त आलोचनाओंमें से अनेक कुछ न कुछ सही हैं पर अधिकतर वे एक व्यंग्य विषय मात्र हैं। इन आलोचनाओंके बारेमें एक ध्यान देने योग्य नित्य तथ्य बात यह है कि इनमें से कई आलोचनाएँ एक दूसरेके विपरीत हैं और इन तरह एक दूसरेको गलत सिद्ध करती हैं। कुछ लेखकोंके अनुसार लोकतन्त्रका अर्थ है वीर पूजा तथा मूर्ति-पूजा और कुछ दूसरे लेखकोंके अनुसार उमका अर्थ है अवज्ञा और अराजकता। एक ओर कुछ आलोचक कहते हैं कि लोकतन्त्र आदर्शवादी और मूल्य सिद्धान्तका उपासक है तो दूसरी ओर कुछ अन्य लेखकोंका आरोप है कि लोकतन्त्रमें भावनाओं और सिद्धान्तोंके लिए कोई स्थान ही नहीं है। इन पारस्परिक विरोधी तर्कोंमें ही एक दूसरेका खण्डन छिपा हुआ है।

(१) यदि लोकतन्त्र एक दोषपूर्ण शासन प्रणाली है तो यह पूछा जा सकता है कि दूसरा रास्ता क्या है? क्या कोई ऐसी दूसरी शासन प्रणाली है जो यदि लोकतन्त्रसे ज्यादा अच्छी न हो तो कम से कम उतनी ही अच्छी हो? हमारा उत्तर नहीं में है। संसारमें कुलीनतन्त्र और बर्गतन्त्रकी परस्पर समय-समय पर की गयी है और उन्हें आम तौर पर विफल पाया गया है। हम अब उन तक वापस नहीं जा सकते क्योंकि सी० डी० रॉस के प्रभाव-पूर्ण शब्दोंमें 'कोई भी इस बातको अस्वीकार नहीं करता कि वर्तमान प्रतिनिधि सभाएँ बाधपूर्ण हैं पर यदि एक मोटरकार ठीक ढंगसे काम नहीं करती तो भी उसके स्थान पर बैलगाड़ीकी स्वीकार करना मूर्खता है ऐसा करना चाहे जितना भी अद्भुत क्यों न मामूम पड़े (९८०)। संसार अभी इस योग्य नहीं है कि एक ऐसे समाजकी स्थापनाकी जाय जिसका बहुत समयसे दार्शनिक अराजकता बादी स्वप्न देखते आ रहे हैं। पिछले कुछ वर्षोंसे प्रकृति अधिनायकवादकी ओर है। अधिनायकवाद चाहे जितनी अच्छाईयाँ हों पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पहलकदमीका अभाव रहता है और इस दृष्टिसे वह उस व्यक्तिवके विकासके प्रतिकूल है, जिसे हम मनुष्यका सर्वोच्च तत्त्व और उद्देश्य मानते हैं। अधिनायकवादी शासन सभी प्रकारकी आलोचनाओंको दबा देता है। वह उन सभी संगठनोंको कुचल देता है जो खुद उसके अपने नहीं होते। लॉर्ड लोथियन (Lord Lothian) व दशम अधिनायकतन्त्र सम्बन्धी परिस्थितियोंमें शान्ति और व्यवस्था तो कायम करता है पर यह अस्थापी ही होती है।

(२) लोकतन्त्र आजकल उन अनेक बुराईयोंके लिए दोषी ठहराया जाता है जो विद्यत दो महायुद्धोंमें उत्पन्न हुई हैं। इस 'तात्कालिक' तीसरे दशककी मन्दी और आज की मुद्रा स्फीति और महंगाई संसारकी अस्थिरस्थित परिस्थितियोंके परिणाम स्वरूप हैं जिसके लिए अनेक लोकतन्त्र ही उत्तरदायी नहीं हैं। संसारकी वर्तमान आर्थिक और राजनीतिक दुष्परिणाम लोकतन्त्रके गुणाना निष्पन्न रूपमें मूल्यांकन नहीं किया जा

सकता। जैसा ए० एल० मॉरेल कहते हैं यह उचित नहीं है कि किसी व्यक्ति की नियत-व्यवस्था पर उस समय की जाय जब वह मर रहा हो या नाम हो या उपस्थित हो। सोहनन की परम भी हम अनन्त अज्ञात परिस्थितियों होनेवाली घटनाओं के आधार पर नहीं कर सकते।

(३) ऐसे सोहनन की जीव विज्ञान के सिद्धान्तों के विपरीत व्यवस्था बनाने है। उनका कहना है कि सोहनन में मस्तिष्क को सामाजिक संगठन कहा भी किसी भी अलग सोच निकालने की भाँगा की जाती है। यह आलोचना स्वयं कहा भी कहा जा चुका है मुख्यस्थित सोहनन में मुख्यस्थित कुलीनत्व लिए भी स्थान रहा है। मॉरेली (Mazzini) का कहना है 'सोहनन सर्वोत्तम और सर्वाधिक वर्तमान लोगों ने तुल्यता के माध्यम से सबकी उपलब्धि होती है। आपूर्तिक मातृ जीवन राज्य यह स्वीकार करने है कि सामन एक बना है और यह बात उह लोगों को सीखा जा सकता है जो इसकी विचार साधना रखते हैं। हम बाह्यता चाहते हैं कि सोहनन में विचारों द्वारा सामन बिने जानकी व्यवस्था का स्थान है। कुलीनत्व में विचार करने भावना जनता से दूर रहता है सोहनन में उस उन सामाजिक सद्गुणों का भाँगा की जाती है जो 'उसे उन लोगों का भाँगा मानने समय बना सकते हैं जिन पर 'हो' रखना होता है। यह करने की आवश्यकता नहीं है कि कुलीन उन और सोहनन के इस अन्तर से सोहनन की ही समझना है। विचार सोहनन में योग्य और समझ व्यक्तिओं का बाहुल्य है यद्यपि विचार मरिचक जीवन घटने को प्रभावितियों का घासन' कहा जाता है।

ऊपर जो कहा गया है उस सबको ध्यान में रखते हुए हम सोहनन को एक अयोग्य घासन प्रणाली मानने की तैयार नहीं हैं। कुछ तत्त्वों का यह कहना है कि बहुत बड़ी घासन व्यवस्थाओं में सोहनन की भावना भरना असम्भव है और यह नीति सोहनन की सत्यता का केवल एक बड़ी भाग है कि उसमें उद्योगों की एक स्थिति प्रणाली को आरम्भ किया जाय। हम इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करते जिसमें डॉ० ए० डी० लिंडसे (A. D. Lindsay) के अनुसार 'सोहनन ही वे घासन को बंद निदान की भाँगा की जाती है। डॉ० लिंडसे का भी कहना है 'उद्योगों में लोग को मर्त्य बना दिया जाता है उसमें हीन व क्षाण व्यवस्था की आवश्यकता होती है समूह व्यवस्था नहीं।

धीरे विज्ञान और जन विज्ञान के आधार पर बनी हम चाहते हैं कि सोहनन की प्रतिष्ठा विचार गुण है देशों का यह कथन विचारों के है कि हम बाह्यता का अन्त विचारों के प्रमाण नहीं है कि स्त्री की प्रतिष्ठा सोहनन में प्रमाण या अन्य विचारों के विचारों का भी सीधी या बुरी प्रतिष्ठा नहीं है। सोहनन भारत और चीन के समान व्यवस्था के प्रतिष्ठा का विचार और व्यवस्था का।

(४) जो लोग लोकतन्त्रके कट्टर विरोधी हैं वे साधारण जनता की ओर घृणा पूर्वक संकेत करते हुए कहते हैं कि जनता अपना शासन अपने आप कर सकेनेमें असमर्थ है। हम इसके विरोधी हैं। हम यह स्वीकार करते हैं कि लोकतन्त्रमें हमेशा ठीक ही व्यक्ति नेता नही चुना जाता पर इसके सिवा जनताको ही सारा दोष नही दिया जा सकता। आयोग्य नेताओंके चने जानका आंशिक कारण लोकतन्त्रके बजाय एकतन्त्र हो सकता है। समाजमें अब भी सम्पत्ति शक्ति और पदसे सम्बंधित प्रतिष्ठा की भावना समाप्त नहीं हुई है। इसका इलाज शावतंत्रको सीमित करना नहीं है बल्कि उसे और अधिक व्यापक बनाना है। समय व्यक्तिमाके नेता न चुने जानेका एक और कारण यह है कि उनमें सामाजिक विमर्शताकी कमी होती है और वे अपनी बात जनताको समझान योग्य सरल नहीं बना पाते। सी० डी० बर्न्स कहते हैं 'प्रतिनिधि को ऐसा होना ही चाहिए कि उसे समझा जा सके। यदि वह समझदार भी हो तो यह सोमायकी बात है पर उसे समझा जाना सायब होना ही चाहिए। यह साचना भूल है कि लोग हमेशा शूलत आदिमियोंको ही चुनते हैं। लोकतन्त्रीय दंगोका अनुभव यह सिद्ध करता है कि निम्नलिखित बातोंके सम्बंधमें जनता अधिक सही निर्णय देती है (क) विधियाकी अपेक्षा मनुष्योंके सम्बंधमें (ख) आदेशमूलक विधियोंकी अपेक्षा नियमात्मक विधियोंके सम्बंधमें (ग) उन प्रश्नोंके सम्बंधमें जो प्राविधिक और विवरणयुक्त मसलाकी अपेक्षा सामान्य नीतियोंके सम्बंधित होते हैं (घ) भावनाओंको जगानेवाले प्रश्नोंकी अपेक्षा ऐसे मसलोंके सम्बंधमें जिनमें नैतिक सिद्धान्तोंकी बात होती है (उदाहरणके लिए वैदेशिक नीति सम्बंधी प्रश्न)।

यदि हम चाहते हैं कि जनता समसदारीसे चुनाव करे तो हमें एक समय एक ही प्रश्न उसके सामने रखना चाहिए और इस प्रश्नको सीधे-साधे सरल शब्दोंमें जनताको समझाना चाहिए। अनेक विवरणों और प्राविधिक बातोंसे जनता को आदना उचित नहीं है। जो लोग यह कहते हैं कि साधारण मनुष्यको अपना शासन स्वयं करनेमें रुचि नहीं होती और लोकतन्त्रमें सबसे बड़ी बुराई मतदाताकी उदासीनता है उनसे हम यह कह सकते हैं कि दूसरी शासन पद्धतियोंसे भी जो परिणाम निकलते हैं वे लोकतन्त्रके परिणामसे अच्छे नहीं होते। यदि लोकतन्त्रमें जनता कभी-कभी उदासीन रहती है तो कभी-कभी वह अत्यंत सज्जि और निष्ठावान भी हो जाती है। लोकतन्त्र से भिन्न सरकार जब तक जनता पर सुख-सुविधाकी वर्षा करती है तब तक निश्चित रूपसे उसे उसका सहयोग प्राप्त रहता है पर जैसे ही वह जनता पर कोई भार डालना आरम्भ करती है वैसे ही गहरा असंतोष फैल जाता है।

(५) यद्यपि लोकतन्त्रने कुछ आर्थिक आन्दोलक प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तको बुरा कहते हैं, फिर भी वे अपने मस्तिष्कको उसमें गती भालि मुक्त नहीं कर पाये हैं। कोई भी प्रसिद्ध विचारक आज पत्र एकतन्त्रको उचित कहनेके लिए तैयार नहीं है। यह ध्यान देने योग्य निगातत्र बात है कि अधिनायकतन्त्रके अत्यंत प्रबल समर्थक भी इसका औचित्य इस आधार पर ही बताते हैं कि यह जनताका सही-सही प्रति

निधित्व करता है। मेजर जेम्स ब्राउन (Major James Brown) का कहना था कि प्रसिद्धिवाद आधुनिक सार्वजनिक जीवन का अनिवार्य अधिक प्रतिनिधित्व करता है। उनका कहना था कि लोकतन्त्र अधिनायकत्व का विरोधी नहीं है बल्कि आधुनिक जीवन की कठिनाइयों के लिए यह अनिवार्य है। हम उनसे इस विषय पर सहमत हों या न हो पर प्रतिनिधित्व के आधार पर अधिकांश मतों का सिद्धान्त आज का राजनीतिज्ञान का एक स्थायी अंग बन चुका है। यदि हम इस बात का स्वीकार कर लेते हैं तो फिर प्रश्न यह उत्पन्न है कि जनता का प्रतिनिधित्व का सबसे अधिक सफल तरीका क्या है? हम इस विचार को स्वीकार नहीं कर सकते कि अधिनायकत्व जनता का सच्चा प्रतिनिधि है क्योंकि जब हम यह देखते हैं कि उत्तम आलोचना और स्वतन्त्र विचारों को कुचल दिया जाता है।

(६) इस आरोप का कि लोकतन्त्रमय जनमत सामान्य भावों का होना है और जनमत का मतविभाजन का एक अनिवार्य तत्त्व है हमारा उत्तर इस प्रकार है।

(क) दल अनिश्चित हैं क्योंकि उनके दिना लोकतन्त्रीय सरकार का चलना असम्भव है। दल अल्पसंख्यक व्यवस्था कायम करते हैं। वे लोकतन्त्र का निर्माण करते हैं और उसे गिराते करते हैं। जसा कि वाशिंगटन का कहना है कि जिस प्रकार गंधार की सड़कें सार्वजनिक सड़कें साहित्यिक जनता के बीच फैली हैं उसी प्रकार राजनीतिक दल राष्ट्र के दिमाग का सज्ज और स्वच्छ रंग हैं।

(ख) वास्तव में वाशिंगटन की दृष्टि से अनुपातन स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार को रोकता है।

(७) लोकतन्त्र का अर्थ बुद्धिमान है—इस आरोप का तथ्य कि आधार पर सामान्य कोई समुदायजनक उत्तर नहीं है। लोकतन्त्रमय जनता के कहने किये जाते हैं और उसकी बुद्धिमत्ता होती है। सत्ताधारण तक पहुँचने के लिए मान्यता प्राप्त किये जाते हैं। लोग अपने आप को जसा बिना और साहित्यिक कारणों मानने लग जाते हैं। यह सब ठीक है पर प्रश्न यह है कि इससे क्या फायदा होगा? दूसरी बात यह प्रणालियों में तो जन गिनाया इंगन भी बस अवसर रहता है। और फिर जबकि विभिन्न लोकतन्त्रमय असम्भव नहीं है। जनता की बुद्धिमानता के समान एक भीतर गिनाया किये जाने की भावना भर कर दूर किया जा सकता है। इस गिनाये प्रणाली के सबसे बड़े निमित्त यह है। लोकतन्त्र के विरोधियों ने हमें आश्चर्य का अनुभव करा है कि लोकतन्त्रमय जनता बहुत अधिक अज्ञान और बर्बर होती है। पर हमारा कहना यह है कि यह बर्बर लोकतन्त्र के लिए अनिवार्य नहीं है। हम बर्बरों को दूर किया जा सकता है। लोकतन्त्र के निमित्त हो जाने का बहुत अधिक अज्ञान यह बर्बर समाज हो जायेगा।

(८) अज्ञान और बर्बरों के साथ साथ अधिकांश सार्वजनिक जीवन का बुद्धिमत्ता और भ्रष्टाचार का एक प्रभावित है। पर हमें अज्ञान से निजा हमें देखने के लिए जनतन्त्र जीवन को दूर देना चाहिए कि क्या लोकतन्त्र है। यदि हम यह कहना चाहें कि

ठीक है कि व्यापारिक जीवनमें जिन बुराईयोंको हम सहन करते हैं उनके लिए हम लोकतन्त्रको 'यायूषक दापी' नहीं ठहरा सकते। उचित और अनुचितता अस्तित्व हमेशा रहा है और रहेगा। सार्वजनिक जीवनमें सच्चाई बईमानदारीका अभाव कोई नयी बात नहीं है। अठारहवीं शताब्दीके योरोपमें पदाधिकारियोंमें जितना भ्रष्टाचार था उसकी अपेक्षा आज निस्सन्देह कम है। जन प्रिय सरकारें भ्रष्टाचारसे तब तक विलुप्त मुक्त नहीं हो सकती जब तक राष्ट्र चलते साधारण नागरिकका नैतिक स्तर ऊँचा नहीं होता और भ्रष्टाचारियोंका सामाजिक बहिष्कार नहीं किया जाता।

(९) आजकल यह धारणा करना एक फगन-सा हो गया है कि 'लोकतन्त्र' समाप्त हो चुका है। सम्भव है अनेक फगनकी तरह इस फगनका भी कोई ठोस आधार न हो। कुछ समय तक अधिनायकतन्त्रका प्रयोग करनेके बाद स्पेन लोकतन्त्र की ओर वापस आया। यद्यपि अब वह फिर अधिनायकतन्त्र की ओर लौट गया है। ब्रिटेन और अमेरिका जैसे देशोंमें जहाँ लोकतन्त्रका विकास हुआ है और वह एक लम्बे समयसे सफलतापूर्वक प्रयोगमें लाया जा रहा है उसे त्यागनेके कोई लक्षण नहीं दिखायी देते। अधिनायकतन्त्रके प्रति उन्माह केवल यही संकेत करता है कि लोकतन्त्र को अपने आपको बदनी हुई परिस्थितियोंके अनुकूल बनाना चाहिए। फ्रांसीसी लेखक आन्द्रे-मोरो (André Maurois) का कहना है कि यदि कोई देश ससदारम्व शासनके अधीन है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि निश्चित समयके लिए और एक निश्चित उद्देश्यकी सिद्धिके लिए वह एक व्यक्तिके नेतृत्वको स्वीकार न करे। लोकतन्त्रको परिस्थितियोंके अनुकूल बनानेका अर्थ यह नहीं है कि अधिनायकतन्त्रके लिए द्वार खोल दिया जाता है बल्कि उसका अर्थ यह है कि अधिनायकतन्त्रका मार्ग बंद कर दिया जाता है (५१ ३१ ३२) जैसा कि डॉ० ए. डी० लिण्डसे ने कहा है एक आत्मविश्वासपूर्ण लोकतन्त्रीय समाज अपनी कार्यप्रणालीमें बहुत अधिक नम्य हो सकता है, वह आवश्यकतानुसार अपनी प्रणालीमें परिवर्तन कर सकता है। वह अपनी सरकारके हाथों अपरिमित शक्ति दे सकता है जैसा कि सऊदबालमे किया जाता है और सुधी-सुधी इस विश्वासके साथ दे सकता है कि सऊदबाल टल जाने पर वह उन अधिकारोंको वापस ले सकता है (५२ १७)। ब्रिटेनमें बर्लिन और अमेरिकामें राष्ट्रपति क्लडवर्ट न थोड़े ही समयमें या अपरिमित शक्ति प्राप्त कर लेती थी और उनके देशवासियोंने जिस शांति और विश्वासके साथ उनके अधिकारकी वृद्धि स्वीकार कर ली वह देशवासियोंकी दुर्बलताका नहीं बल्कि उनकी शक्ति और लोकतन्त्र पर उनके विश्वासका प्रमाण है। लगभग यही बात श्री जवाहरलाल नेहरू ने सम्बोधन में भी कही जा सकता है जिन्होंने पिछले वर्षोंमें भारतीय जनता पर विश्वास प्रभाव डाला है।

(१०) कुछ लोगका कहना है कि लोकतन्त्र एक मिथ्या धारणा है और वास्तव में सत्तारमें लोकतन्त्र अंशों की चीज है ही नहीं। इस आलोचनाका एक सम्भव उत्तर यह है कि मनुष्य मिथ्या-धारणाओंके सहारे ही जीतें हैं। यदि यह सही है तो फिर प्राकृतिक अधिकार, मनुष्यकी समानता और लोक सम्प्रतिष्ठा की मिथ्या धारणाओंके

सहारे ही क्यों न दिया जाय। डबो (Dewey) कहते हैं लोकतन्त्र की नींव मानव प्रकृति की समता का सद्बुद्धि पर विश्वास और सचित तथा सहभाग्यमूलक अनुभव की शक्ति पर आधारित है।

६ उपचार और निष्कर्ष (Remedy and Conclusion)

अब हम आवश्यक रूपसे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकतन्त्र केवल शारीरिक मूल्य (conditional value) है। समारंभ की समीक्षा के दूर करने से यह कोई सामान्य नहीं है। लोकतन्त्र की सबसे बड़ी कुराहट बहुत अपरिपक्वता के कारण है और अनुभव बहुत साध-साध से दूर हो चला है। उसका सबसे बड़ा मूल्य नैतिक और शक्ति है। मानव धर्मनिरपेक्ष मूल्य की जिस आधार पर लोकतन्त्र खड़ा है वह मूल्य है। हमारा विश्वास है कि यू० टोकूबान का यह कथन सत्य है 'लोकतन्त्र की प्रगति अनिवार्य प्रतीत होती है क्योंकि यह दीर्घकालीन मित्रता की सबसे अधिक एकता प्रतीति है। एक शारीरिक मूल्य का कहना है 'सैद्धांतिक रूप से लोकतन्त्र सामाजिक जीवन के मूल सिद्धान्तों का विवर्णन है। यह समाज की सिद्धान्त है ... लोकतन्त्र अपना पूरा स्थिति प्राप्त करेगा क्योंकि लोकतन्त्र स्वतंत्र व समुद्रिय सहयोग की नाम है।

हमारा विश्वास है कि लोकतन्त्र एक उचित व्यवस्था है जिसमें एक मूल्य सिद्धान्त निहित है। हमें उसमें जो दोष लगाया देते हैं वह एक नहीं है कि दूर न बिचे जा सकें। शिवा, विस्तार और अनुभव द्वारा जनता उन दोषों को स्वयं दूर कर सकती है। हम उन लोगों से सहमत नहीं हैं जो यह कहते हैं कि लोकतन्त्र के कारणों को दूर करने का एक ही मार्ग है कि लोकतन्त्र को ही समाप्त कर दिया जाय। यदि किसी लोक के समाप्त बिचे जाने की आवश्यकता है तो वह लोकतांत्रिक मूल्य की आवश्यकता है। इस अन्तराष्ट्रीय आवश्यकता का निम्नलिखित साधन न दूर दिया जा सकता है— एक प्रभावशाली विश्व-सरकार, एक मुक्ति-विश्व मूल्य नीति निरन्तरिक रूप से लोकतन्त्र निर्माण करा तथा जातीय विभेद को समाप्त।

यदि लोकतन्त्र को समाप्त करने के बजाय उस और अधिक मूल्य मूल्य लोकतन्त्र बनाने की आवश्यकता है और हमारा विश्वास है कि सभी आवश्यकता है तो प्रत्येक है कि इसके लिए निश्चित उपाय बना है। अन्तः-संस्थाएँ हमें उन पर विचार दिया है। कुछ लोगों ने लोकतन्त्र शिवा और शक्ति गुणों का लोकतन्त्र की मूल्य माने लिए आवश्यक माना है और इन दोनों बातों पर यह न मान लिया है। दूसरे लोगों का कहना है कि लोकतन्त्र को सभी दूर परिस्थितियों के अनुभव बनाने के लिए उसकी कार्य-प्रणाली कुछ निश्चित गुणों से जाने चाहिए। इन गुणों में नैतिक व शारीरिक आधार पर जो माने जाते हैं।

कि वह किस ह० तक ऐसे व्यक्तिओंका निर्माण कर पाती है जो उसे आग चला सकें और किस ह० तक वह नेतृत्वके लिए सबसे अधिक ममर्थ व्यक्तिओंको धागे ला पाती है। क्या लोकतन्त्र एक ऐसे राष्ट्रका निर्माण करनेकी प्रवृत्ति है जो अपने आर्थिक हिताकी अपेक्षा सामाजिक कल्याणको अधिक महत्व दे जिसके विभिन्न वर्गों में ईश्या की भावना न होकर परस्पर महानुभूति हो जो भावी कल्याणके लिए वर्तमान कठिनाइयोंका दूरदर्शिता और साहसके साथ झेल सके? क्या लोकतन्त्र अपने प्रतिनिधियों और मजिस्ट्रेटोंके पदा पर ऐसे व्यक्तियोंको चुनता है जिनमें ये सब गुण विद्यमान हों? यदि लोकतन्त्र यह सब करता है तो जो भी तूफान उठेगा वे उसकी जड़ोंको न हिला सकेंगे और वह अट्ठिन रहेगा भले ही दूसरे देशोंमें उल्पात मचें और यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका आधार अस्थिर समझना चाहिए।

लोकतन्त्रीय व्यवस्थाका मुद्धारनेके लिए जो सुझाव दिये गये हैं उनमेंसे निम्न लिखित लेखकोंके विचार उल्लेखनीय हैं

लॉर्ड लार्डियन का कहना है कि

(१) सरकारका शासन-यंत्र इस गारण्टीके साथ चले कि व्यक्तिके लिए भाषण, आवाजना और राजनीतिक तथा आर्थिक उद्योगकी स्वतन्त्रता हो और

(२) बयस्क निवाधक-मण्डलके अन्तिम निर्णय पर सरकार बिना किसी प्रकार की खून-खराबीके बहसी जा सके।

आ दू मोरो लामायाहीका अवरोध करनेके लिए एक निश्चित अधिकार और निश्चित उद्देश्य सिद्धिके लिए व्यक्तिगत नेतृत्वका सुझाव देते हैं। कुछ दूसरे लोग शक्तिशाली कार्यपालिकाका सुझाव देने हैं। लॉर्ड यूस्टास पर्सी (Lord Eustace Percy) का दावा है कि ब्रिटेनका मजिस्ट्रेट राजतन्त्रात्मक प्रधान मंत्रित्व द्वारा अपनी रक्षा करता है और जिस दिन प्रधान मंत्री दसगत सलाहकारियों के दबावमें आ जायगा उसी दिन अधिनायकत्वसे बचनेके लिए कोई रास्ता बाकी न रह जायगा। इसलिए पार्लामेंटका मुख्य और प्रथम कर्तव्य यह है कि वह संसद प्रधान मंत्री बनाये। प्रधान मंत्रिवादी स्वतन्त्रता संसदकी स्वतन्त्रता और उनकी शक्ति उसकी शक्ति है।

लॉर्ड पर्सी के अन्य सुझाव ये हैं

(१) संसदकी नीति सम्बन्धी व्यापक प्रश्नों पर विचार करना चाहिए, छोटे छोटे विवरणोंमें नहीं। नीति-सम्बन्धी व्यापक प्रश्नोंके रूपमें उसे कर लगाने और व्यय करनेकी व्यवस्था पर विचार करना चाहिए और अनुचित व्यय और करोंसे पैदा होनेवाली शिकायतोंको रोक करना चाहिए। 'संसदकी कार्य-पद्धतिकी उस अर्थहीन प्रणालीका समाप्त कर देना चाहिए जिसके अनुसार प्रायः सभी साधारण विवादोंमें विधानसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंके पूछ जाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाना है।

(२) विधायिकाकी रचनामें संसदकी क्रम उठाना चाहिए। विधायी प्रस्तावोंकी

रचना के लिए सदस्यों सरकारी विभागों पर बहुत अधिक निर्भरता रहना चाहिए और इस काम के लिए संघों को कई समितियाँ बना लनी चाहिए। इन समितियों को केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों और व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों पर पुनर्विचार करना चाहिए।

(3) विविध विभागों में प्रशासनिक कार्यना निर्देशन करने के लिए जारी हुये वाली विभागीय आज्ञाओं और विनियमों का जाँच करने के लिए व्यक्तिगत नियंत्रण का पना सदान के लिए और नियमों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करने के लिए सभा की अन्य समितियों पर निर्माण किया जाना चाहिए।

(4) सभा द्वारा मननीय सत्स्यकों एक अधिवर्ष होनी चाहिए जो सभा सम्मेलन अधिक सम्पत्ति बनाय जायक व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व कर सक। सरकार और संघों को अपने विधान-निर्माण की तैयारी में इस परिपक्वता उपयोग करना चाहिए। इस परिपक्वता सरकार और उपयोग के पारस्परिक सम्बन्धों की पूरी पूरी जाँच करनी चाहिए।

(5) संघों को आजीवन सदस्य (life peers) बनाने का स्वतंत्रता रहनी चाहिए। साथ सभा विधानों पुनर्विधानों पूरा-पूरा भाग लेना चाहिए।

एक सभा के क्रिप्स (Sir Stafford Cripps) ने अपनी पुस्तक 'संघ का आदर्श' (Parliament as it Should Be) में सार्वजनिक निम्नलिखित चीजें लिखी हैं

(1) जनता का अपने प्रतिनिधियों को चुनने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। जनता को निर्चित समय पर करने प्रतिनिधियों के प्रत्यावर्तन (recall) करने का अधिकार होना चाहिए।

(2) जनता को स्पष्ट करने यह बनाना चाहिए कि वह कौन-सी नीति कार्यान्वित करना चाहती है।

(3) प्रतिनिधियों में अपनी योग्यता और सामर्थ्य हानी चाहिए कि वह कौन-सी नीति को बनाकर वह विचार कि वह बिना और बिना विद्या भी स्वयं या व्यक्ति विचार के हान्यपूर्वक सनतगुरुक कार्यान्वित कर सक।

साधन के इन व्यावहारिक गुणों का कार्य अब देने के लिए सर एडवर्ड क्रिप्स निम्नलिखित साधनों की सिफारिश करते हैं

(1) विधान निर्माण के उद्देश्य का सहीमान सम्मेलनी तरीका का सम्मेलन करना।

(2) कामना सभा द्वारा जब उसे देना सम्पूर्ण प्राप्त हो एक सभा-सूची बनाना और बनाना जाना और बनाना जाना - दूसरे सरकारी समर्थन के बिना की प्रशिक्षण और सजाय प्रशासनिक नियंत्रण किया जाता।

(3) सदस्यों के विचारों तथा प्रशासनिक कार्य के निरीक्षण करने के लिए कार्यकारी परिषद (functional committees) का निर्माण करना।

एच० साइडबोथम (H. Sidebotham) का विश्वास है कि संसदात्मक पद्धति का समितियाँ की लाना-गाहीसे ठीक मेल बैठ सकता है।

लोकतंत्रके गुण लाना-गाहीसे मीड बाइस ने निम्न रूपमें इस प्रकार किया है यदि शासक-वर्गोंने लोकतंत्रके नैतिक प्रभावका बड़ा चढ़ावर कहा है तो निराशावादियोंने उनकी व्यावहारिक क्षमताको बहुत कम समझा है। अन्य शासन-पद्धतियोंमें जो भी बुराईयाँ या उनमें अधिकार लोकतंत्रमें फिर लाने लायीं दे रही हैं यद्यपि उनका रूप बदल गया है। जो नये नये लोकतंत्रमें लाने लायीं दे रही हैं वे इतने गम्भीर नहीं हैं जितने गम्भीर पुरानी सरकारोंके थे दाप व जिनसे लोकतंत्र पूरी तरह मुक्त है।

(१) व्यक्तिगत नागरिककी स्वतंत्रता सुरक्षित रखते हुए भी लोकतंत्रने सावजनिक व्यवस्था कायम रखा है।

(२) लोकतंत्रका नागरिक प्रशासन उनका ही अच्छा है जितना कि किसी अन्य प्रकारकी सरकारका।

(३) अन्य प्रकारकी सरकारोंकी अपेक्षा लोकतंत्रीय सरकारोंके विधानोंमें गरीबोंके हितोंकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(४) लोकतंत्र अस्थिर और अटूट नहीं रहा है।

(५) लोकतंत्रने देशभक्ति और साहसको कम नहीं किया है।

(६) लोकतंत्र प्रायः अपव्ययी और आपत्तों पर बहुत अधिक लचीला रहा है।

(७) लोकतंत्रने प्रत्येक राष्ट्रमें सावजनिक सत्ताप पैदा नहीं किया है।

(८) लोकतंत्रने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंको सुधारने तथा शांति स्थापित करने का प्रयत्न बहुत कम किया है। इमने वगैरह स्वार्थोंको कम नहीं किया विश्व-बुद्ध और मानवताका प्रसार नहीं किया और न विभिन्न वर्गोंके प्रति धुना भावको ही कम किया है।

(९) लोकतंत्र भ्रष्टाचारको और सरकार पर सम्पत्तिके अवांछनीय प्रभावको दूर नहीं कर सका है।

(१०) लोकतंत्र नान्दियाके भयको दूर नहीं कर सका है।

(११) लोकतंत्र राज्यका सेवाम पर्वान्त सक्षामें सबसे अधिक ईमानदार और समर्थ नागरिकाका नहीं मना सना है।

(१२) फिर भी लोकतंत्रने सब मित्रावर एक व्यक्तिके शासन या एक वर्गके शासनकी अपेक्षा उत्तम व्यावहारिक परिणाम दिखाये हैं क्योंकि इन्होंने कम-से-कम उन अनेक बुराईयोंको समाप्त कर दिया है, जिनके कारण ये शासन-पद्धतियाँ विनष्ट हो गयीं।

लोकतंत्रकी सफलताके लिए आवश्यक बातें

(Conditions for the Successful Working of Democracy)

(१) लोकतंत्रकी सफलताके लिए सबसे पहली आवश्यकता इस बातकी है कि

कुछ मौलिक सांख्यिक सिद्धान्तों पर जनताका विचार उत्पन्न किया जाय। इन सिद्धान्तोंमें प्रत्येक मनुष्यके महत्त्वके सिद्धान्तका बहुत ही गौरवपूर्ण स्थान है। हम-ने कम भौतिकीय रूपमें सोचनका अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि बाँट दूगरा व्यक्ति और सरकारके किसी भी काममें किसीकी भी उपयोग नहीं होती चाहिए। दूगरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जिसकाय भारतमें बिनाप रचना स्थान म रचना चाहिए, यह है कि सोचनका अर्थ परस्पर विचार विमर्श या परामर्श द्वारा प्राप्त है। सोचन महत्त्व या अनुमति द्वारा प्राप्त है। सोचनका अर्थ प्रत्येक अधिकार महत्त्व है कि वह सांख्यिकीय उपायाने अपनेका बहुमतमें परिणित कर स। बिनाप परिधिनिधायन अल्पमत संस्थापक सहाय भी स बनता है पर मायापद एक जोषि है जो सभी-सभी ही नी जा स बनती है ईनिक गुरावकी तरह उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(२) सांख्यिकीय विचारके अभावमें कोई भी सोचन बहुत समय तक टिक नहीं सकता। यह दावा सा नहीं किया जा सकता कि कवन विचार ही सोचनका सफल बना स बनती है पर इसमें सोचनके सफल होनेमें बहुत नहीं सहायता अवश्य मिलती है। इतिहासमें विभिन्न व्यक्ति व्यक्ति देते हैं। परन्तु आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि विचार व्यक्तिके बहुमत सन्तान और विवेकीय बनानेमें सहायता देती है। भारतकी ८०-८२ प्रतिशत जनता निर्धर है। यदि इस निर्धरताका पत्नी दूर नह। किया जाता है तो सोचनका अधिक महत्त्व नहीं है।

(३) सांख्यिकीय विचारके साथ-साथ जनतामें उच्चशिक्षाकी आवश्यकता और विविध मानकी भावना भी होनी चाहिए। अब तक जनता और जनताके नेता दोनों काय और भावना निष्पन्न और मूढ़ न हाय सब तक सोचनके अधिक समय तक बने रहनेकी सम्भावना कम है। सोचनकी सफलताके लिए यह बहुत आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति नागरिक जीवनमें अपना भाग अंग करनेके लिए तैयार रहे। उसे दूगराके अधिकारकारी रणोंके लिए तैयार रहना चाहिए और निरंतर सहायता माँगाकी कष्ट प्राप्त हुए बरबाद नह। देना चाहिए। यदि सफल सामर्थ्य सहायताकी शीघ्रता है तो सोचनकी भी यही शीघ्रता है। सोचनमें समाचार सांख्यिकीय व्यक्तिगत सहायता पर हीन बाने सभी प्रकारके सहायताके विरुद्ध सहायता देना चाहिए—यह सहायता बाह्य सरकारकी औरत है। बाह्य समाचार सहायता औरत बाह्य सहायता और सहायता की औरत माँगे ही किसी अन्य सहायता की औरत।

(४) वर्तमान समय आर्थिक समानता और अवसरकी समानता पर समासमय अधिक धारणा जाता है। आर्थिक समानताका यह मान्यता है कि हर व्यक्ति के लिए समानता का समान नागरिकीय या क्षेत्र विवे है। यह मान्यता उभर है कि लोगोंकी अर्थमें अधिक समानता न होने पाये। आधुनिक दुर्लभ म सहायता सहायताके लिए यह मान्यता है कि एक और बहुत अधिक सहायता और दुर्लभ आर

गरीबी न होने पाये। आजसे सत्रह वर्ष पहले अरस्तू ने जब यह कहा था कि एक सबल मध्यम वर्ग लोकतन्त्री की रीढ़ है तब उन्होंने एक महावपूर्ण सत्यकी खोज की थी। सबल मध्यमवर्गसे स्थिरता और दृढ़ताके साथ-साथ प्रगतिकी भी बढ़ावा मिलता है।

(५) अपने एक महावपूर्ण पहलूमें लोकतन्त्रका अर्थ सामाजिक समानता है। जाति और वर्गके भेद और व्यक्ति-व्यक्तिके बीच सामाजिक दूरीका अर्थ लोकतन्त्रका विनाश होता है। आधुनिक भारतमें सबसे अधिक उत्साहजनक बात यह हो रही है कि शिक्षित और शहरीमें रहनेवाले सोपोंमें जातीय भेदभावकी भावनाका साधारण तथा सोप होता जा रहा है। देहाती शत्रोम अब भी जातीय भेदभावकी भावना पायी जाती है पर वहाँ भी थोड़ा ही समयमें इसका विस्तृत सोप हो जायगा। परन्तु भाषा और प्रान्त सम्बन्धी विभेद अभी पर्याप्त मात्रामें विद्यमान हैं। लोकतन्त्रमें प्रतिभाके विकासका माग खड़ा रहना चाहिए और अक्षरके अभावमें प्रतिभाको नष्ट नहीं होने देना चाहिए। निराल्प शिक्षा उदार छात्रवृत्तियोंकी व्यवस्था और राजकीय पदों पर क्षमता और चरित्रके आधार पर ही नियुक्तियाँ करके ऐसी स्थिति उत्पन्न की जा सकती है। इसके साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि अन्तिम बात अभी भारतमें सामान्य नियम नहीं बन पायी है।

(६) यदि लोकतन्त्रको सफल होना है तो सावधानीके साथ चुने गये नेताओंकी आवश्यकता है। एक बार जब वे चुन लिये जायें तब जनताको उन पर विश्वास और उनका सम्मान करना चाहिए। नेताओंकी बात न मानना उतना ही बुरा है जितना उनमें पीछे भाग कर चलना। कभी कोई राष्ट्र सत्तास्व व्यक्तियोंकी चापमूसी और पूजा करके महान नहीं बन सकता। फिर भी भारतमें सामान्य नियम यही है कि 'देवता बन्स सकते हैं पर उपासक बही बने रहते हैं।' आवश्यकता इस बातकी है कि जनता राजनीतिक सिद्धान्तों और नीतियों तथा व्यक्तियोंके बीच भेद करना सीखे और अनुचित रूपसे व्यक्तियोंके साथ बँधी न रहे। दूसरी ओर नेताओंकी भी अपनी आस्थाओं और अपने विश्वास पर दृढ़ रहना चाहिए। उन्हें लोकमतके हर झोंके के साथ बह नहीं जाना चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिकामें आइडनहावर और भारतमें नेहरूजी के इतना अधिक जनप्रिय होनेका एक कारण यह भी है कि ये लोग मोड़-मनोवृत्तिके प्रवाहमें बह जानसे इन्कार कर देते हैं। लोकतन्त्रमें उन्हें व्यक्तियोंका नेता होना चाहिए जिनकी नियम-बुद्धि स्वस्थ हो जिनकी क्षमता मौलिक हो जिनमें उच्चकोटि की पहलकदमी हो और जिनका चरित्र निष्कलक हो। यदि एक बार ऐसे नेता मिल जायें तो जनताको उनके काममें बहुत अधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(७) जल्दी-जल्दी होने वाले आम चुनाव लोकतन्त्रके सफल संचालनमें सहायक नहीं होते। इस सम्बन्धमें संयुक्त राज्य अमेरिकामें बहुतसे रायोंमें प्रचलित न्यायाधीनता और विभागीय अध्यक्षाके थोड़ी थोड़ी अवधिने लिए होनेवाले चुनाव तथा स्कूल याइने चुनाव आदिको हमें सन्देहकी दृष्टिसे ही देखना चाहिए।

(८) यदि एक ओर निर्वाचक-मण्डल पर अत्यधिक आम चुनावोंका प्रभाव नहीं

समा जाना चाहिए तो दूसरी ओर समावश्यक समझाएँ भी उनके सामने न रखी जानी चाहिए। पर सभी मौलिक और प्रमुख प्रश्नों पर जनता की राय अवश्य ली जानी चाहिए। किसी भी सदस्य या सदस्ये किसी भी सम्प्रदाय को इस बात का अधिकार नहीं है कि वह किसी के समक्ष या अन्य किसी ऐसे ही प्रभावशाली व्यक्ति का गया निर्वाचकों की इच्छाओं के विरुद्ध कार्य करे। जब ऐसा हो तब मन्त्र या मन्त्र सम्प्रदाय का निरस्य जनता की समावा (mandate) प्राप्त करनी चाहिए।

(९) प्रायः यह समझा जाता है कि युद्ध और शान्ति अन्तराष्ट्रीय मनी और समन्वय एक साम्प्रदायिक एका सचेत नतिर सिद्धान्तों सम्प्रदाय रखनवाले प्रश्नों पर जनता सहो नित्य दती है। परन्तु हाल की घटनाओं से इस विश्वास पर आश्चर्य प्रकट होन लगी है। फिर भी यह सम्भव है कि जिन महापौरों पर परिस्थितियों में मानव जाति आज रह रही है उनके मुखर जान पर निरस्य यह विश्वास दुर्लभ हो जाय।

(१०) लोकतन्त्रा समन्वय के लिए यह जरूरी है कि राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय मन्त्रा के बारे में सही-सही निष्पन्न जानकायकी मुखिया जनता को हो। युद्ध के साथ यह मानना पड़ता है कि सरकार के काजी बह हितों में यह मुखिया नहीं है। बिचार स्वातन्त्र्य भाषण व सत्तन स्वातन्त्र्य और समन्वय स्वातन्त्र्य का सावजनकी जीवनसक्ति हा है।

लोकतन्त्र के सम्प्रदाय हमारे सम्पूर्ण विकास-विमर्श का निष्पन्न रहा है जो कि एडवर्ड कारपेन्टर (Edward Carpenter) का है 'हे समन्वयान्त्रि लोकतन्त्र' में मुन प्यार करना है। टी० बी० स्मिथ (T. B. Smith) के शब्दों में यह हम स्वयं नहीं जिन सरकार का नरकने बचनक साधन हावम रहने हुए हाव हाव मूर्खता है।

लोकमत पर टिप्पणी (A Note on Public Opinion)

इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि आधुनिक लोकतन्त्र और लोकमत दोनों परस्पर पूर्य हुए हैं। व्यापक मताधिकार, राजनीतिक स्वातन्त्र्य और लोकमत के आधार पर समन्वय विधानिका इन सब लोकतन्त्रों की मूलभूत आवश्यकता है। हमें म चाहिए भी सविस्तर जूसो की मूर्ति निर्माण की म रखनका नहीं है। हमारे ऊपर सभी और प्रभाव पड़ते हैं। समाचार-पत्र मन्त्र मन्त्र रचना के लिए हमारे ऊपर दबाव डालते हैं। हमारे ऊपर हमारे अधिकार और स्वातन्त्र्य हाव है कि हमें स बात हा कम मात्र उपन बह हाव है। बहुत-से लोग लोकमत का अनुमान करते हैं और यह मानते हैं कि लोकमत सभी कार्य का भी है जो उनके जीवन में उनके सम्प्रदाय सम्प्रदाय का वाली एक म रखनका है। उनके प्रतिष्ठित लोकमत और लोकमत ने ही है।

‘लोकमत’ अतिरिक्त अथ किसी वस्तुको अपन शासनका भौतिक आधार बनाकर पृथ्वी पर कोई कभी भी शासन नहीं कर सका।^१

यद्यपि राजनीतिज्ञ तथा अथ लोग ‘लोकमत’ शब्दका प्रयोग राजनीति-शास्त्रके अथ राजकी भौतिक व्यापक रूपमें करते हैं फिर भी इस शब्दके विविध और कभी कभी विराधी अर्थ किये जानेकी सम्भावनाएँ हैं। जैसा कि एक आधुनिक लेखने लिखा है यह एक अस्पष्ट शब्द है जिसका प्रयोग लेखक और व्याख्याता राजनीतिक और आर्थिक मसलाकी खोज करते समय मनमाने ढंगसे किया करते हैं। रूस के इस कथनमें एक चेतावनी है लोकमत और प्रचाराकी धारणाकी स्पष्ट करनेमें सतर्कता बरती जानी चाहिए। इस बातको हमारा ध्यानमें रखना चाहिए कि लोकमत शब्द ऐसा है जिसकी परिभाषा देनेके बजाय उसका अध्ययन अधिक होना चाहिए।^२

लोकमतकी परिभाषा देनेके अनेक प्रयत्न किये गये हैं पर अथ ऐसे प्रयत्नोंकी भौति इस सम्बन्धमें भी परिभाषाएँ रूपनिष्ठ बहुत कम कर पायी हैं। लोकमतके सम्बन्धमें दो महत्वपूर्ण विचार यह हैं (१) लोकमत निश्चित धारणा या सिद्धान्त न होकर विषय है। (२) लोकमतकी उत्पत्ति समय जनतासे होती है। एल० डब्ल्यू० हूव लिखते हैं ‘लोकमतका अर्थ एक ही सामाजिक गुटके सदस्योंके रूपमें जनताका किसी प्रश्न या समस्याके प्रति दृष्टि या विचार है।’ रूस का कहना है कि ‘लोकमत किसी विषय समय या स्थानमें प्रचलित प्रभावपूर्ण विरोधी विचारधाराके आधार पर बना हुआ सामाजिक मन होता है। सम्पूर्ण गुटसे सम्बन्धित विवादमूलक समस्याओंके बारेमें गुटके समस्या द्वारा अभिव्यक्त घरीयता ही लोकमत है।

विल्हेम बाँवर गुट लोकमत और जनतामें अभिव्यक्त मत में अन्तर बताता है। जनता द्वारा अभिव्यक्त मत तो सत्त्वन् अवस्थित होता है जबकि लोकमत एक अत्यन्त व्यापक आगतिक शक्ति (deeply pervasive organic force) है। मनुष्य आदि वास्तव ही विभिन्न सामाजिक गुटोंमें संगठित होता आया है। इन गुटोंके कुछ सिद्धान्त होते हैं और कुछ भावनाएँ होती हैं। सिद्धान्तों और भावनाओं की अन्तःप्रक्रियासे लोकमतका गहरा सम्बन्ध रहता है। लोकमत सामुदायिक सहृदयता (collectivity) के भीतर पाये जाने वाले विचारशील तत्वोंके सक्रिय विवेक का ही निर्माण और अभिव्यक्ति करता ही है साथ ही जनता की उस सामान्य इच्छा को भी प्रकट करता है जो हीन ही बिलीन हो जाती है और जिसमें जनता की जब सब उभरनेवाली भावनाएँ और निष्ठाएँ भी सामिल रहती हैं।^३

प्रसिद्ध समाज-शास्त्री मॉरिस गिन्सबग कहते हैं 'सोवियत अनेक मस्तिष्कों के अन्तःप्रतिविम्बित उत्पन्न एक सामाजिक तन्त्र है।' अमेरिकी मनोवैज्ञानिक हिम्बॉल्ट यम लिखते हैं 'किसी एक निश्चित समय पर जनता के जो मत होते हैं उनसे सोवियत बनता है'।

अन्तर्गत का कहना है कि इन विभिन्न मतों का विनियोग करनेसे मान्य होजा है कि सोवियतमें भार बाँटें निहित हैं। पहली बात यह है कि संस्थाओं का गुण या एक 'जनता' होती है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य इन संस्थाओं अपना जनताके कुछ सामान्य हिस्सा समझाएँ होती हैं जिनके सम्बन्धमें एक दूसरेसे बिचार विमर्श करने हैं भन ही कभी-कभी किसी हल तक व एक दूसरे से मनमानी नहीं। तीसरी बात यह है कि एक या अधिक जनता होती हैं जिनका काम समय-समय पर उत्पन्न समस्या पर अपना मत स्थिर करना और फिर मनुष्य संस्था अपना अपना मत व्यक्त करना और स्वीकार किया जाना है और इस मनुष्य उत्पन्न आवश्यक कारवाही समर्पण करता है।

एक दूसरे समझना करना है कि मनुष्य सोवियतका धार है। परस्पर विरोधी विचारों और दृष्टियों की अन्तःप्रतिविम्बित सोवियत का निर्माण होता है। जब किसी मनुष्यो जनताके अधिकतर भाग का समर्थन प्राप्त होता है तब वह मनुष्य उस समर्थन लिए समय मान्य होने लगता है। लेकिन जब मनीषी तत्त्वों और मनीषी अनुभवों द्वारा इस सम्बन्ध का टूटन होता है तब वह फिर एक 'जन' बन जाता है। इस प्रकार समय समय पर लोगों के साथ और मनुष्य के बीच सम्बन्धों का बनना और अन्तर्गत बनना यह है कि 'समर्थन' तत्त्वों के समर्थन द्वारा बना जाता है मनुष्य के बीच विचारों के अन्तर्गत बनना यह है।

सोवियत तत्त्वों के सम्बन्ध में मायका मनुष्यका उत्पन्न होने के लिए मान्य है। फिर भी इनमें विनियोजित सामान्य तत्त्वों का अन्तर्गत बनना यह है कि 'समर्थन' तत्त्वों के समर्थन द्वारा बना जाता है। मनुष्य के बीच विचारों के अन्तर्गत बनना यह है कि 'समर्थन' तत्त्वों के समर्थन द्वारा बना जाता है। मनुष्य के बीच विचारों के अन्तर्गत बनना यह है कि 'समर्थन' तत्त्वों के समर्थन द्वारा बना जाता है।

1. Morris Ginsberg: The French League of Nations P. 145
2. H. J. Gould: Social Psychology
3. H. J. Gould: Social Psychology

अपने निबंध 'Essay Concerning Human Understanding (१६९०) में उन्होंने लिखा है

अपने बर्गों की नैतिकता और अनैतिकता का निर्णय करने के लिए जिन विधियों का सहारा प्रायः लोग लेते हैं वे ये तीन हैं (१) दैवी विधि (२) नागरिक विधि, (३) मत विधि या यज्ञ की विधि यदि उसे यह नाम दिया जा सके। स्वसो का दण्ड वोलोन्ती जनरेल (volonte generale) और जर्मनी के कान्तिकारी साहित्यकों और कलाकारों (Romanticists) का शब्द 'वाक्सजीस्त' (Volksgeist) 'लोकमत' शब्दसे मिलते-जुलते हैं। फ्रांसीसी कान्ति के ठीक पहले ओपीनियन पब्लीक (opinion publique) शब्द का आरम्भ प्रचलन हो गया था।

अनेक लेखकाने लोकमत की रूपहीनता की आलोचना की है। मॉरिस गिन्सबर्ग ने लोकमत की तुलना एक ऐसी चीज से की है जिसमें लाखों तार लग हैं। इन तारों को हर दिशा से खानेवाला सोका छोड़ता है और जो स्वर निकलते हैं वे हमारा संगीतारमक नहीं होते। सिसरो लोकमत को असंगत अविश्व की और अविचार की बतलाते हैं। फ्लॉबर्ट (Flaubert) की राय में लोकमत एक सिंगू है जो सामाजिक विकास की सीढ़ी में हमारा नीचे ही सदा रहना।

एसा लगता है कि लोकमत में एक स्वामाधिक अन्तर्विरोध है। जैसा कि एक लेखक ने लिखा है जहाँ तक इसका 'लोक' पक्ष है यह अच्छा है पर 'मत' के रूप में यह बुरा है। इसी कारण लोकमत को कुछ लोग भ्रामक असंगत रूपहीन और बास्तुके कर्णों की भाँति दिन प्रतिदिन बलायमान बताते हैं। फिर भी इस विविधता और अस्पष्टता के बीच से ही कुछ ऐसे स्पष्ट विचार निकल आते हैं जिन्हें लोकमत कहा जा सकता है और जो किसी देश के बहुसंख्यक नागरिकों के कामकाज निर्देशन करते हैं। ध्यान देने की एक बात यह है कि प्रसिद्ध लेखक वाल्टर लिपमन (Walter Lippmann) ने १९२२ में प्रकाशित अपनी पुस्तक *Public Opinion* में जनता को अविचारशील बताया था परन्तु तीन वर्ष बाद इन्होंने अपनी नयी पुस्तक *The Phantom Public* (१९२५) में अपने विचार जनता के पक्ष में बदल दिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकमत का स्वरूप शिथिल होता है। अनेक बार लोकमत ही जनता सोचना सीख सकती है। आज कोई भी सरकार साधारणतया लोकमत की अवहेलना नहीं करेगी। क्या कि ऐसा करने का अन्तिम परिणाम जनता का कोपमाजून बनना हो सकता है।

सरकार को लोकमत पर ध्यान देना चाहिए, इस राय के पक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि जिसके नाँव लगता है वही उससे होनेवाले बदलों महसूस करता है। कोई वस्तु अच्छी है या बुरी यह उस वस्तु का प्रयोग करनेवाला ही बता सकता है न कि उसे बनानेवाला। अस्तु की भाषा रखोइये की अपेक्षा अतिथि ही परसे गये भोजनवे बारे में सही निगम दे सकता है। अलकारणक भाषा को लोकमत साधारण

सामने जनताका राय हो भय बिना रायका मांगा जनता का अधिक मतार्थ कर
मजता है और अधिक समय तक कायम रह सकती है।

सोवमनका मूल्यकिन सामनउरी पहचान हमारा भावनाम नहीं होनी और
पहचान सन पर ना यह निबय करना आसान नहीं होगा कि उसमें नाह और
मय' दनों हो हैं। यह हम चाहते हैं कि सोवमनस सबसुख जनताको साम हो वो
हम सही नाकमन और प्रसन्न सावमतमें अन्तर करना हो। आनकत जो कुछ
सावमन मान निरा जाता है उसक बहुत बड बाका निना अपन इतिम परि
स्तिथियाम हाता है। यह बहुत है जिसका निर्माण और मयन किसी न किसी प्रकार
क' वाव सामनवान लगे और निहिन स्वापों गरा हुआ है। यह गुन और निहिन
स्वाप प्राय इतनी धुतता और आताकी स काम करने हैं कि जनता उनके बनय
हुए मनका न कतल करना मन ही मानने लागी है बनि इस मन निर कता
कारी भा मानने लागी है। जबकि सामनवमें यह मय कुछ इने-निने सामका अतन
स्वापका निहिन लिए हाता है। आ मोर इस प्रकार सोवमतका निर्माण करन हैं वे
जन-मनाबिगानवे जान-बुझ नकाले साम उगाते हैं। ब साथ जनतामें कनी भय मय
हय आर निरपमूनक भावनाअवे साम उगाते हैं। बभी वे जनताकी आननी करते
हैं और कभी उनकी निरा करते हैं।

सोवमतका निर्माण करनेवाली परिस्थितिमें पहला स्थान समाचार-पत्रोंका निरा
जाना चाहिए। सामाकी विचारधारा प्राय उनके निर समाचार-पत्रोंके प्रभावित
हानी रही है। विचारकन पाठक का समाचार-पत्रको पहुँचे समय इस बातको ध्यान
में रखते हैं कि समाचार-पत्रके सम्पादक प्रबन्धक या संपादक किस विचारधाराके
समर्थक हैं और समाचार-पत्र किस हिज या स्वार्थ का पक्ष है। इस जानकारी
की पूर्तिनूमिमें ही विचारकन पाठक समाचार-पत्रके विचारों और समाचारों का
मूल्यन करतें हैं। पर अधिकतर पाठक समाचार-पत्रके विचारों और समाचारों का
मूल्यन करते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रकी सही जानकारी उनके आधार पर मानी
या अर्थ नहिना जैसी समाचार पत्रनिर्माण पाठकों के मन और चिन्तन पर
आधिक नियन्त्रण रखता है।

सोवमतका निर्माण करने वाली परिस्थितिमें समाचार-पत्रके समान ही महापत्रमें
सामान्य राजनीतिक मय सामान्यिक गुन और विभिन्न प्रकारक दबाव उठनेवाले
गुन हैं। सामान्य समम जनताके कुछ प्रतिपन मय हा सामान्यी उनके मय
ह और नर भी हा मय है। फिर भी उस दैवदे जिस सोवमत कहा ब मय अगा
है बर सामान्यी उनके भीउरी गुनके ही विचार होते हैं। मयन यह बात जो
हम मयनक बातेमें उठ नहीं हो सता फिर भी यह कहा जा सकता है कि समा
मय मतवाले बातेमें सोवमत का पक्ष हाई जनताके विचारोंका समर्थक हा अगा

और सार्वजनिक बनके कुछ भागों पर उनका कुछ कुछ स्वतंत्र नियंत्रण रहता है।^१

स्थानीय शासन और राज्य या केन्द्रीय शासनका यह अन्तर स्थानीय और केन्द्रीय शासन द्वारा शासित क्षेत्रके क्षेत्रफल या जनसंख्या पर आधारित म्हा है। उदाहरणार्थ मोनाको राज्यका क्षेत्रफल केवस आठ वर्ग मील है और उसकी जनसंख्या केवस २३ ००० है। कनकता कॉरपोरेशनका अधिकार इससे क्हा अधिक बडे दान और जनसंख्या पर है। लेकिन मानाको एक स्वतंत्र राज्य है और कनकताका कॉरपोरेशन स्थानीय शासनकी एक इकाई मान है।

लेकिन स्थानीय शासन और राज्य या केन्द्रीय शासनम एक महत्वपू्ण अन्तर उनके द्वारा किय गये कार्योंके आधार पर किया जा सकता है। एक राज्यकी केन्द्रीय सरकार बाहरी सत्तरासे राज्यकी रक्षा करती है, देशम शान्ति और व्यवस्था कायम रखती है, वैदेशिक सम्बन्धोंका संचालन करती है, मुद्रा बसाती है, सेना का संगठन करती है, वाणिज्य और व्यापारका नियमन करती है और संचार और परिवहन आदिके साधनोंका नियंत्रण करती है। दूसरी ओर स्थानीय शासनकी इकाइयोंके कार्य इस प्रकार हैं जल बिजली और गसका प्रबंध, ट्राम और बसाकी सेवाएँ, नगरकी नालिया और सफाईकी व्यवस्था, स्कूल, पुस्तकालय, उद्यानों, अस्पतालों आदि का प्रबंध। इस प्रकार स्थानीय शासनोंका सम्बन्ध स्थानीय मामलोंसे होता है जिनके लिए स्थानीय विवरणका ज्ञान और स्थानीय अनुभवकी आवश्यकता होती है। दूसरी ओर केन्द्रीय शासनका सम्बन्ध राष्ट्रीय महत्वके मामलोंसे या उन विषयोंसे हाता है जिसम पूरे देश और समूची जनसंख्याका हित निहित हो।

स्थानीय स्वशासनकी व्याख्या स्थानीय शासनके अर्थसे बारेम ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्थानीय शासनकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है स्थानीय शासन केन्द्रीय सरकार (या संघ राज्यमें राज्य सरकार) क अधिनियम द्वारा निमित्त एक ऐसी शासकीय इकाई है जिसमें नगर या गाँव जैसे एक क्षेत्रकी जनता द्वारा चुन हुए प्रतिनिधि होते हैं और जो अपन अधिकार क्षेत्रकी सीमाओंके भीतर प्रदत्त अधिकारोंका प्रयोग मोव-कल्याणके लिए करती है।

स्थानीय स्वशासनका महत्व स्थानीय शासनका अर्थ समझनेके बाद उसके महत्वका विवेचन करना उचित होगा।

(१) स्थानीय शासनका पहला लाभ यह है कि इससे कार्यदक्षता बढ़ती है। स्थानीय शासनके शत्रमे रहनेवाली जनता स्थानीय सस्याके कार्योंम दिनचरसी सेने मगती है। यह कार्योंमें भाग सेनेके अवसरका उपयोग करती है। यह स्थानीय समस्याओं और आवश्यकताओंको सबसे अच्छी तरह समझती है और वह ही यह जानती है कि स्थानीय समस्याओंका किस प्रकार हल किया जा सकता है और स्थानीय आवश्यकताओंकी पूर्ति किस प्रकार की जा सकती है। स्थानीय शासकीय संस्थानोंमें

जनता की इस स्थिति के कारण शासकीय कार्य प्रस्तापूषक बिय जाने है। सम्भव है कि केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि स्थानीय समस्याओं को न समझ सकें और स्थानीय समस्याओं का हल ढूँढ़ निकालना उनके लिए सम्भव न हो। दूसरे तथ्य यह है कि उन्हें अवश्य ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन कारणों से स्थानीय शासन आसानी से दण्डापूर्वक कर सकता है।

(२) स्थानीय शासन सरकार के अधीन न होना है। जब कुछ लाभप्रद कार्य करना एवं विचार क्षेत्र के लिए किया जाता है तो यह उचित ही है कि उन कार्यों का एक बड़ा क्षेत्र हो उठाये। फलतः केन्द्रीय सरकार कुछ कार्य करने में बंध जाती है। स्थानीय शासन का अपना कुछ पूरा करने के लिए कर लगाने का अधिकार होता है। केन्द्रीय सरकार स्थानीय समस्याओं को कुछ आर्थिक सहायता दे सकती है पर उसका एक तो कम हो ही जाता है।

(३) स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन का कुछ बोझ अपने ऊपर न सता है। केन्द्रीय शासन अपने कुछ कार्य स्थानीय शासन को सौंप देता है। फलतः स्थानीय शासन केन्द्रीय या राज्य सरकारों का बहुत-से कार्यों का जिम्मेदारियाने भुगत कर देता है।

(४) स्थानीय शासन जनता का राजनीतिक प्रशिक्षण देने का अवसर मिलता है। स्थानीय शासन के कार्यों में भाग लेकर जनता स्वयं शासन की रीति-नीति का देखा और समझ सकती है। जनता राजनीतिक तौर पर सक्रिय रहती है और कराये औचित्य चुनाव के तरीके और शासन के कार्यों में समझ सकती है कि शासन करने कर्मस्थ पूरे कर रहा है या नहीं। नागरिक सांस्कृतिक मामलों में परिचित हो जाता है। स्थानीय समस्याएँ नागरिकों का गम्भीर और ठोस राजनीतिक भाग लेने के योग्य बनाती हैं।

(५) यह केन्द्रीय या राज्य-शासन को परामर्श देने वाली संस्था की भूमिका करता है। किसी प्रस्तावित विधिक सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार स्थानीय संस्थाओं को महाकूर्म जानकारी प्राप्त कर सकती है। स्थानीय संस्थाओं को स्थानीय परिस्थितियों का ज्ञान होता है और इस कारण के केन्द्रीय सरकार को परामर्श दे सकती है।

(६) इसमें जन-सहभाग मिलना अधिक आसान हो जाता है। भारत में शासकीय कार्यों में जनता का सहयोग अनिवार्य होता है। स्थानीय शासन का जनता शासन के कार्यों में सक्रिय भाग लेने लगती है। जब जनता निज स्वतंत्र पर सहयोग करना आरम्भ कर देती है तब राज्य और केन्द्रीय शासन जनता का उचित राष्ट्रीय सहभाग आसान हो जाता है।

(७) स्थानीय शासन जनता को सुविधाएँ देने के लिए एक माध्यम है। स्थानीय शासन लोगों को सहाय्य एवं विद्युत् आदि की समस्याएँ हल करके जनता को सुविधाएँ पहुँचाना है। जनता के लिए भी यह अधिक सुविधाजनक होता है कि उसका समस्याएँ केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि द्वारा हल न हो जाकर स्थानीय शासन द्वारा हल की जायें।

शहरी क्षेत्र भारतमें शहरी क्षेत्रोंमें स्थानीय शासनका ढाँचा ग्रामोंके स्थानीय शासनके ढाँचेसे मिलता-जुलता है।

निगम (Corporation) भारतमें बसकत्ता बम्बई मण्डल दिल्ली पटना सलनऊ और कानपुर जैसे बड़े नगरोंमें निगम स्थापित किये जा चुके हैं। निगमोंकी सख्या तेजीसे बढ़ रही है। हर राज्य विधि बनाकर बड़े-बड़े नगरोंमें निगमोंकी स्थापना कर रहा है। भारतमें निगमोंकी प्रगति दिन-प्रति-दिन बढ़ने वाली शहरी आबादी और शहरोंके औद्योगिककरणका परिणाम है। नगरी आबादीकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगी हैं और पहलेसे बहुत बढ़ गयी हैं। इसलिए शहरोंमें निगमोंकी आवश्यकता हो गयी है। निगमोंके कार्य और अधिकार नगरपालिकाओंके कार्यों और अधिकारों से अधिक होते हैं—(कर आग कमीशनकी रिपोर्ट)। दूसरे शब्दोंमें निगम नगरपालिकाओंके विकसित और विस्तृत रूप हैं। साथ ही साथ निगमोंमें जनसंख्याका स्तर एकसा नहीं होता। उदाहरणके लिए बम्बई और सिकन्दराबाद नामक निगम हैं। बम्बईकी जनसंख्या १८ लाख से अधिक है पर सिकन्दराबादकी जनसंख्या २ लाखमें भी कम है। निगमोंके क्षेत्र भी एक-समान नहीं होते। निगमोंपरियोजना चुने जानेवाले संस्थानोंकी संख्या भी विभिन्न निगमोंमें विभिन्न होती है। पर सभी राज्योंमें निगमोंका ढाँचा और उनके कार्य लगभग एकते होते हैं।

नगरपालिका (Municipal Board) भारतमें नगरपालिकाओंकी स्थापना ऐसे नगरोंमें की गयी है जिनकी जनसंख्या ५ हजार से अधिक होती है। नगरपालिकाओंकी रूपरेखा अधिकार और कार्य राज्य सरकार द्वारा बनायी गयी विधियाँ पर निर्भर करने हैं। कुछ नगरपालिकाओंमें सभी सदस्य निर्वाचित ही होते हैं, पर कुछ नगरपालिकाओंमें मनोनीत संस्थान भी होते हैं। भारतमें लगभग ६०० नगरपालिकाएँ हैं।

नगर क्षेत्र समितियाँ (Town or Notified Area Committees) छोटी जनसंख्याके शहरी क्षेत्रोंमें नगर क्षेत्र समितियाँ स्थापित की जाती हैं। इस प्रकारकी यह समितियाँ पंजाब उत्तर प्रदेश और बिहारमें पायी जाती हैं। इन्हें छोटी नगरपालिका कहा जा सकता है। इनके कुछ संस्थान चुने जाते हैं और कुछ उनी क्षेत्रोंके जिला बोर्ड द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इन समितियोंकी आमदनी नगरपालिकाओंकी आमदनीसे कम होती है। इन समितियों पर जिलाधीन या हाकिम-परगनावा नियंत्रण भी अधिक रहता है। नगर क्षेत्र समितियोंकी तुलना ग्रामोंके शहरी जिला (urban districts) से की जा सकती है।

इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट (Improvement Trust) इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट की स्थापना मुख्यतः नगरोंमें रहनेवाली जनताकी सफाई, स्वास्थ्य और अन्य सविधाओंमें सुधार करनेके लिए की जाती है। इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट इमारतोंका बेसिलसिलवार बनानेसे शहर नगरका व्यवस्थित विकास करते हैं। नगरोंमें खुले स्थानों पार्कों चौड़ी सड़कों बाजारों सार्वजनिक पाठशाला आदिकी व्यवस्था करना इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्टोंका

नाम है। इम्प्रूवमेंट ट्रस्टोंकी स्थापना एवं निर्माण उद्देश्यके लिए की जाती है इनको तत्पक्ष सम्पाए (ad hoc bodies) भी कहते हैं।

बन्दरगाह ट्रस्ट (Port Trust) सत्त्वता बन्दरगाह मन्त्र विभागपालनम और वाणिज्य स्थानीय सत्त्वताके रूपमें बन्दरगाह ट्रस्ट होते हैं। इन ट्रस्टोंके गन्ध्य वाणिज्य और व्यापारकी सत्त्वताओं द्वारा चुने जाते हैं। कक्ष मन्त्र्य सरकार भी मनोनीत करती है। इन ट्रस्टोंका बन्दरगाहों पर अधिकार होता है और वे बन्दरगाहों के डॉकयार्डों (Dockyards) और गोदामोंका नियन्त्रण करते हैं।

छावनी बोर्ड (Contonment Board) छावनी बाड उन स्थानों पर पाये जाते हैं जहाँ सैनिकोंके अड्डे होते हैं। इन बोर्डोंका काम छावनी क्षेत्रकी देखभाल करना होता है। इसका मुख्य कामगार पर चुन हुए होते हैं पर सरकार अध्यापन सरकार द्वारा मनोनीत अधिकारी होता है। छावनी बोर्डोंका निर्माण और नियन्त्रण सैनिक नियमोंके अनुसार होता है।

ग्रामीण क्षेत्र भारतमें ग्रामीण क्षेत्रोंके स्थानीय सामन्तों कांचा विन्धन ग्रामीण क्षेत्रोंके स्थानीय शासनके क्षेत्रमें विद्यमान होता है। भारतमें यह क्षेत्र सामान्यतः तृतीय होता है। विन्धन एका नही है। भारतमें स्थानीय बोर्डों (Local Boards) और ग्राम पंचायतों पर जिला बोर्डोंका नियन्त्रण रहता है।

जिला बोर्ड (District Board) भारतमें हर राज्यमें जिला बोर्ड होते हैं। पर आगाममें जिला बोर्डके स्थान पर स्थानीय बोर्ड होते हैं। भारतमें लगभग १८७ जिला बोर्ड हैं। भारतमें जिला मुख्य प्रशासनिक इकाई है। जिलेके स्थानीय विभागों और समस्याओंके निपटारेके लिए जिला बोर्डोंकी स्थापना सर्वप्रथम १८७० में लॉर्ड मेयो (Lord Mayo) द्वारा की गयी थी।

स्थानीय बोर्ड (Local Board) यह स्थानीय इकाई जिला बोर्डोंके निर्माणमें होती है। इन्हें स्थानीय बाड और कुछ मामलोंमें सामुदायिक बाड या ग्रामिक बोर्ड कहते हैं। इनका स्थान जिलेके क्षेत्रमें होता है। इनका स्वतन्त्र अधिकार नहीं होता। उनके क्षेत्र जिला बोर्डों द्वारा निर्दिष्ट किये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रोंमें स्थानीय सामन्तोंको शासन करनेके लिए स्थानीय बोर्डोंको गठान करके प्रशासित है।

यूनियन बोर्ड (Union Board) यूनियन बोर्डोंकी स्थापना बर मन्त्र्य या मन्त्रोंके एवं मन्त्रोंकी जाती है। वे स्थानीय बाडोंके समान होते हैं। वे बहुत उपयोगी गिने जाते हैं।

ग्राम पंचायत ग्राम पंचायत भारतमें स्थानीय स्वशासनका निम्नतम स्तर है। यह बहुत प्राचीन व्यवस्था है जिसका विकास ग्राम पंचायतोंका रूप बन गये है। ग्राम पंचायतोंके लिए ग्रामोंके ग्राम एवं इलाकोंके ग्रामीणों का चुनाव है। पर यह मुख्य विभिन्न मामलों में विभिन्न होता है। यह बोर्ड स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकते हैं। ग्राम पंचायतों की भी गठनी है। भारत में यह कार्य कर रहे हैं। ग्राम पंचायतों की गठनी है। भारत की गठनी है। ग्राम पंचायतों की गठनी है।

SELECT READINGS

- CLARKE—*Outlines of Local Government.*
 G MONTAGUE HARRIS—*Comparative Local Government*
 G D H COLE—*Local and Regional Government*
 R N GILCHRIST—*Principles of Political Science*
 H SIDGWICK—*Elements of Political Science*
 W A ROBSON—*The Development of Local Government*
 M P SHARMA—*Local Government in India*
 DR GYAN CHAND—*Local Finance in India*

लोक कल्याणकारी राज्य (Welfare State)

कल्याणकारी राज्यका अर्थ कल्याणकारी राज्यकी धारणा राजनीतिशास्त्रके लिए नयी है। यह अभी प्रयोगकी अवस्थामें ही है। भावी सरकारें कल्याणकारी राज्यका लक्ष्य प्राप्त करनेके अपन मापनों और तरीकोंका खोजनी रहेंगी। फिर भी इस धारणाको आपुनिक युगका आविष्कार मानना भ्रम होगी। राज्यके कार्य-कलाओं द्वारा जनताका कल्याण करनेका विचार राजनीतिक विचारकी सभी अवस्थाग्राम पाया जाता है। यह हमका अनुभव किया जाना रहा है कि सरकारका कुछ न कुछ कल्याणकारी कार्य करने चाहिए। सरकारें भी समय-समय पर यह विचार करती रही हैं कि उन्हें मोह-कल्याणके कुछ कार्य करने चाहिए। आर्य समाज राम राज्यकी धारणा लोक-कल्याणकारी राज्यकी ही धारणा है। यह धारणा सा हजार वर्षों में भी अधिक पुरानी है। राम राज्यका अर्थ है राज्य (अथवा राजा) द्वारा सभी परिस्थितियोंका निमाण किया जाना जिनमें प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत स्वतंत्र रूपसे सहयोगी विचार हो सके। इसका अर्थ है जनताका कल्याण या प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण। इसी प्रकार अर्थ देगोम भी वर्तमान कल्याणकारी राज्यके विचार की इतिहासीय पृष्ठभूमि मितनी है। पर अभी कुछ वर्षों में ही लोक-कल्याणके कार्यका अधिक स्पष्ट और व्यापक रूप लिया गया है। निम्न प्रति निम्न यह जनमंत्र दिया जा रहा है कि राज्यको करने कार्य-कारण विस्तार करना चाहिए। ऐसा जनमंत्र दिये जानेके मुख्य कारण मौलानीय आलोचना विचार और समाजवाद समाजिक औद्योगिक विचार है। मौलाना और औद्योगिक जर्मनको राष्ट्रियता सामाजिक सुधारकी आवश्यकता और आलोचना का जन्म मिला। धीरे-धीरे यह विचार दृढ़ होना गया कि राज्यको लोक-कल्याणके कार्य करने चाहिए। सामाजिक राज्य जन्म लेना राज्यका रूप ग्रहण करना गया। इस प्रकार कल्याणकारी राज्यके विचारने एक निश्चित रूप धारण किया।

कल्याणकारी राज्यके अर्थको नीचे प्रकार समझनेके लिए यह आवश्यक है कि पहले लोक-कल्याणका अर्थ ठीक प्रकार समझा जाय। लोक-कल्याणकी व्याख्या आर० डब्ल्यू० कैमो^१ ने इस प्रकार की है सामाजिक मेहनत का फल सांसारिक

^१ आर० डब्ल्यू० कैमो (R. W. Kellie) लोक-कल्याण विचार (The Science of Public Welfare)।

व्यक्तियों और साथ ही अन्य व्यक्तियों को विचार करने और कार्य करनेकी उच्चतम स्वतंत्रता देता है। इसी प्रकार एच डब्ल्यू ओडम^१ ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है। लोकतन्त्रीय सरकारकी वह निश्चित सेवा जो अममान स्थानोंमें लोकतन्त्रीकी प्रवाहपूर्ण बनानेके लिए संगठन बना बिना न और साधनाकी व्यवस्था करती है। यह कहा जा सकता है कि एक राज्य सभी कल्याणकारी राज्य होता है जब वह लोक कल्याणके एक विस्तृत कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करता है।

साथ ही हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि राज्यके प्रायः हर कार्यको लोक कल्याणकारी कार्य कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ नागरिकोंके जीवन स्वतंत्रता और सम्पत्तिकी सुरक्षाके कार्यको भी सावजनिक कल्याणके क्षेत्रमें शामिल किया जा सकता है और इस कार्यको एक कल्याणकारी राज्यका कार्य माना जा सकता है। पर यह कार्य एक कल्याणकारी राज्यकी विशेषता नहीं है। यद्यपि हर कल्याणकारी राज्य हमेशा लोगोंके जीवन और उनकी स्वतंत्रता तथा सम्पत्तिकी रक्षा करेगा। इसलिए कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जो राज्य द्वारा किये जानेवाले साधारण कार्योंके अतिरिक्त लोक-कल्याणके निम्ननिर्माण कार्य करता है। सावजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य बीमा योजनाएँ, बेकारी दूर करना, बुढ़ापेकी पेंशन और सुरक्षा तथा अन्य सहायता कार्य।

दूसरे शब्दोंमें कल्याणकारी राज्यका अर्थ है राज्यके कार्य-क्षेत्रका विस्तार ताकि (यदि समूची जनताका नहीं तो) अधिक से अधिक लोगोंका कल्याण अवश्य ही हो सके। राज्यके कार्य-क्षेत्रके विस्तारका अर्थ प्रायः यह होता है कि व्यक्तिके निजी कार्य-क्षेत्र पर भी बाधन लागू जाता है। पर कल्याणकारी राज्यका सत्य होता है राज्यके कार्य-क्षेत्रका इस प्रकार विस्तार करना कि व्यक्तिकी स्वतंत्रता पर कोई विशेष बाधन न लगे। व्यक्तिका अपना कार्य-क्षेत्र हो जिसमें काम करने या कोई निर्णय करनेकी उसे पूरी स्वतंत्रता हो।

साम्यवादी या अधिनायकवादी राज्यमें सभी कार्य राज्य द्वारा ही आरम्भ किये जाते हैं। व्यक्तिगत नागरिकोंकी राज्यमें सभी कार्य राज्य द्वारा ही आरम्भ होती। उसे राज्यद्वारा आरम्भ किए गये कार्य-क्षेत्रमें योग देना पड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य लोगोंको काममें लगाने का रास्ता या कृषि आदि जीवनके सभी क्षेत्रोंकी विस्तृत रूपरेखा राज्य द्वारा निश्चित की जाती है और व्यक्तिको उसीके अनुकूल काम करना पड़ता है। सभी क्षेत्रोंके सभी अधिकार राज्यमें ही निहित रहते हैं अतः राज्य जनताके कल्याण करनेका साधन होनेका दावा करता है। व्यक्तिगत पहलबंदी और निजी उद्योगका कोई स्थान नहीं रहता।

^१ एच. डब्ल्यू. ओडम (H W Odum) और डी. डब्ल्यू. विलार्ड (D W Willard) लोक-कल्याणकी प्रणालियाँ (Systems of Public Welfare)।

दूमरी और व्यक्तिवाद पर आधारित राज्यका काय भय 'यूननम' होता है। अधिकांश बार इसी व्यक्तिवाद का स्वतन्त्रता रहती है। फलतः 'रि' प्राग और सायनगन सोव दूमरी पर आश्रित रहते हैं और उनसे व्यक्तिवाद विनाश हो जाता है। इस राज्यम कल्याणकारी काय निजी समूहों अथवा व्यक्तिवाद द्वारा विद्यमान है। फलतः कल्याणकारी काय गरीबों के प्रति अमीरों की कृपा और उन्नता समझ जाते हैं। व्यक्तिवाद या निजी समूहों द्वारा विद्यमान कल्याणकारी कार्य इनसे व्यापक और विस्तृत नहीं होने कि व समा मागस्विकारी आवश्यकताओं का पूरा कर सकें।

व्यक्तिवादी राज्य और कल्याणकारी राज्यमें अंतर, कल्याणकारी राज्यम परिस्थितिया साम्यवादी और व्यक्तिवादी दोनों का आधार भिन्न होती है। कल्याणकारी राज्यम कल्याणकारी काय राज्य द्वारा विद्यमान है। इन कार्यों में दया या शान की भावना नहीं रहती है। जनताको जो लाभ पहुँचाया जाता है वह उसका अधिकार होता है। इसका बारे में कोई अनिश्चितता नहीं होती। कल्याणकारी राज्यम से लाभ उठाने का दावा समा कर सकते हैं। उदाहरणार्थ 'डिन्सम राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना' (National Health Scheme) के नाम समा व्यक्तिवाद प्राप्त है। व अधिकार की भाति प्राप्त है। दान स्वरूप नहीं। लाभ उठानेवाला परिणाम की भावना नहीं होती। व्यक्ति की क्षमताओं को दूर हो जाती है। उसकी अक्षमता (disability) का देगभान की जाती है परन्तु उसे जिस उम्र अपनी स्वतन्त्रता का बनिष्कन नहीं करना पड़ता।

राज्य व्यक्तिवाद और साम्यवादके मध्यमे बीच समझौता है। पर यह समझौता अभी बहुत ही अस्पष्ट है। कुछ ने 'साम्यवाद' के नाम पर व्यक्तिवादके तत्त्वों का विगम मूल्य हो सकता है। पर फिर भी इतना तो है ही कि दोनों व्यापकी कुछ कुछ बातों को लेकर राजनीतिक क्षेत्र में नयी दिशा की बार एक माग प्रगट किया गया है।

कल्याणकारी राज्य की विशेषताएँ यद्यपि कल्याणकारी राज्य का नया प्रयोग विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ही है फिर भी इसकी कुछ बिगड़ताएँ बतलायी जा सकती हैं।

(१) पहली बिगड़ता है स्वतंत्र उद्योगका अस्तित्व समाप्त किये बिना सभी व्यक्तिगतों के लिए न्यूनतम जीवनस्तर की गारण्टी। हरेक व्यक्ति को ऐसा काम करने का अवसर मिलना चाहिए जिससे वह अच्छा जीवन बिता सके। यह न्यूनतम जीवन स्तर इतना तो होना ही चाहिए कि एक परिवार अच्छी प्रकार रह सके। पर सबके लिए 'न्यूनतम जीवन स्तर' की गारण्टी से व्यक्तिगत उद्योग और पहलकदमी में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। व्यक्तिगत पहलकदमी तथा स्वतंत्रता के लिए पर्याप्त अवसर रहना चाहिए। यही कल्याणकारी राज्य और साम्यवादी प्रणालियों में मुख्य अन्तर है। साम्यवादी प्रणालियों में 'न्यूनतम स्तर' की गारण्टी तो रहती है पर व्यक्तिगत पहलकदमी और चरण (selection) की मुआवजा नहीं होती। कल्याणकारी राज्य और प्रजासत्ताकी प्रणालियों में यह अन्तर होता है कि प्रजासत्ताकी प्रणाली में व्यक्तिगत और निजी पहलकदमी के लिए पूरा अवसर रहता है पर न्यूनतम जीवन स्तर की गारण्टी नहीं होती।

(२) कल्याणकारी राज्य की दूसरी बिगड़ता यह है कि आय के सीमित पुनर्वितरण के लिए ऐसे ऊँचे कर लगाये जाते हैं जो आय के साथ बढ़ते जाते हैं। इस तरह प्रणाली से निजी उद्योगों की आमदनियाँ के अन्तर कम हो जाते हैं। इससे आमदनी में अन्तर तो हट जाने से ऐसी अधिक समानता कायम हो जाती है जिससे आमदनी में अन्तर कायम रहता है पर यह अन्तर कम और सीमित हो जाता है।

(३) कल्याणकारी राज्य की एक महत्वपूर्ण बिगड़ता है सभी जरूरतमन्द लोगों को सहायता का आवासन। युद्ध लोग ऐसे लोग जो काम करने लायक नहीं रह जाते बीमार बूढ़ा माधनहीन विधवाएँ एते लोग जो प्राकृतिक सन्तान और दुपटनाओं के शिकार हो जाते हैं तथा इसी प्रकार के अन्य लोगों को राज्य आवश्यक सहायता देता है। पर यह सहायता दान के रूप में नहीं होती। यह तो अधिकार की नीति में जानी है।

(४) सावजनिक निगा कल्याणकारी राज्य में आधारभूत आवश्यकता है। सभी नागरिकों को निगा एक निश्चित स्तर तक निगा की व्यवस्था राज्य को करनी होती है। कल्याणकारी राज्य की निगा प्रणाली साम्यवादी राज्य की निगा प्रणाली से भिन्न होती है। कल्याणकारी राज्य की निगा प्रणाली उदार होती है। जिसमें व्यक्तिगतों

बाध्य नही किया जाता और उन्हें अपना मनचाहा पान प्राप्त करनेका बहुत अवसर रहता है।

(२) सावजनिक स्वास्थ्य योजना भी अनिवार्य है। स्वास्थ्यकारी राज्यमें राज्यको सभी नागरिकोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करनी पड़ती है। राज्यकी आत्म सावजनिक सम्मान मान जान है। राज्य नियन्त्रित किए जान है और बाधाराका दबाव भी जानी है। सभी नागरिकोंके स्वास्थ्य और पौष्टिक भावनकी देखभाल करना राज्यका कर्तव्य है जाना है।

(३) स्वास्थ्यकारी राज्यका एक दूसरी विपत्ती है अकारोंका काम लगाना। जो लोग काम करनेसे बाध्य हान हैं मजिन उन्हें काम नही मिलता ऐसे लोगोंका काम में लगाना की व्यवस्था राज्यको करनी पड़ती है। कामकी इस व्यवस्थाम और यदि नायकवादी राज्यकी उस व्यवस्थापन बड़ा अन्तर है जिसमें लोगोंका काम करनेके लिए मजबूर किया जाता है। राज्यकी आत्म सबका काम करनेका अवसर है या जाना है और एक व्यक्तिका इस बाधना मोक्ष रहता है कि वह जाना मनचाहा काम करना कर न।

(४) सब व्यक्तियोंके लिए कामका व्यवस्था एक और अनिवार्य विपत्ती है। हर व्यक्तिको सम्मानपूर्ण दुपन्नाओंके बजानकी व्यवस्था जानी चाहिए। किसी भी समय मजबूर होना है या बाध भी व्यक्ति काम करनेके अभाव है मचना है। सभी नागरिकोंके लिए राज्यकी आत्म बीमारी व्यवस्था जाना है।

(५) अनिवार्य बच्चाकी देखभाल करना स्वास्थ्यकारी राज्यकी एक और विपत्ती है। हर राज्य ऐसे बहुतसे उपनिष्ठ बच्चे होते हैं जो या तो अनाथ करने लगते हैं या अनिवार्य देखभाल और निगाके अभावके कारण दिव्य जान है। एक बच्चाकी देखभाल करना उनका पालन-पोषण करना और फिर उन्हें काममें लगाना राज्यका कर्तव्य होता है।

आधार घम ६२ राजनीतिक चेतना
 ६३ राज्य निर्माणके ६० वश
 सम्बन्ध ६०
 आन्द्रे-मोरो सोवतंत्रको परिस्थितियों
 के अनुकूल बनाना आवश्यक ३७८
 व्यक्तिगत नतुत्व ३८२
 आपगर एस० एस० एक विधायक
 द्वारा दो बारसे अधिक जनताका
 प्रतिनिधित्व अनुचित २८२
 द्विसदनवाद एक जीर्ण-दोर्ण
 सिद्धान्त २७६ मतदाताओंकी
 चिन्ता सम्बन्धी योग्यता आवश्यक
 २८७ विधायकका वेतन २८३
 ऑस्टिन जॉन सम्प्रभुता सम्बन्धी
 सिद्धान्त २४२ आलोचना
 २४३

इच्छा ब्यावहारिक और वास्तविक
 इच्छाओं के अन्तर ९२ ९४
 इतिहासीय या विकासवादी सिद्धांत
 ५९
 इमर्सन राजनीति-शास्त्र ५९
 इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ४०२
 इलियट राज्यके जीवनका मौलिक
 सिद्धान्त ३७

ईसाई, धर्म-संग ७०

उत्पत्ति इतिहासीय या विकासवादी
 सिद्धान्त ५९ देवी उत्पत्ति
 सिद्धान्त ४५ पितृसत्ताक एवं
 मातृसत्ताक सिद्धान्त ५९
 प्रारम्भिक या प्रागैतिहासीय ४४
 बल-सिद्धान्त ५४ राज्यकी, ४४
 सामाजिक संविदा सिद्धान्त, ४८
 उद्देश्य सांस्कृतिक और अन्तिम
 उद्देश्य अन्तर ११२ न्याय
 ११६ राज्यका उद्देश्य ११२
 ११९ राज्यका उद्देश्य-सार्वजनिक
 मुक्त, ११४ व्यवस्था बनाये रखना

११५ साध्य या साधन ११६
 सामाजिक सेवा ११५

एकवादनस आत्म-हत्या १८३ राज्य
 का उद्देश्य ११४
 एस्मीन अध्यक्षारमक सरकारके दोष
 ३१३ एकसे अधिक वोट देने
 की प्रणालीका विरोध २९२
 महिला मताधिकारका समर्थन
 २९१ लिखित संविधान २६३

एंग्रिस्स राज्य शक्ति का मूलिमान
 स्वरूप, ०४ समाजवाद का
 सबहारा आन्दोलनका रूप १५५
 एक्टन साइ दूसरा सदन आवश्यक
 २७५ राजनीति-शास्त्र और
 आधार-शास्त्र या नीतिशास्त्र ११
 ऐसन सी० के० प्रजा को राज्य के
 विरुद्ध प्रतिकार ३३९

ओडम० एच० डब्ल्यू० साकबल्यान
 की व्याख्या ४०८
 ओपेनहीमर राज्य एक बग-ध्वजस्था
 २९

औचित्य, अराजकतावादी दृष्टिकोण,
 १०० १०३ आदर्शवादी दृष्टि
 कोण ११० १११ आलोचना,
 १११ ११२ उपमोक्षितावादी
 दृष्टिकोण १०७ १०८
 आलोचना १०८ १०९ पामिक,
 दृष्टिकोण १०३ आलोचना,
 १०४ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे
 आलोचना १०९ ११० राज्यका
 औचित्य १०० ११२ शक्ति
 सिद्धान्त १४ आलोचना
 १०४ संगठनकी आवश्यकता
 १०९ आलोचना १०९ संविदा
 सिद्धान्तका दृष्टिकोण, १०९
 आलोचना १०६ १०७

कर्तव्य हत्या न करनेका १८४ १८५
कल्पयिष्यम शासन-कृता १

काय नैतिक स्वतन्त्रता १९६
सामाजिक सविनया सिद्धान्त
४८

कारणान्तर अन्य सिद्धान्त १४० १४१
आत्मवाणी सिद्धान्त १३२ १ ६
आत्मचर्या १३६ आधिकृतक
१२३ गांधीवाणी अर्पणीति १३७-
१४० नैतिक तर्क १२२ राज्यका
उचित कार्य-कार १२० वृत्तान्त
तर्क १२२ व्यक्तिवाणी और समाज
वाणी सिद्धान्तानामु-पावन १३१
व्यक्तिवाणी सिद्धान्त १२१
व्यावहारिक कारण १२४
आत्मचर्या १२४ समाजवाणी
सिद्धान्त १२९ सावजनिक
कल्याण १४०

कायपालिका अंगी कायपालिकाकी
कमी ३२० अध्ययनात्मक
कार्यपालिका ३१२ गुण ३१२
दाय ३१३ एकलमक तथा
बहुल कार्यपालिका ३१३
कायपालिकाकी उन्मुखित ३२०
कायपालिकाकी कार्यक्षमि १४
राजिन और कार्य ३१५ आममान
की कार्यपालिका ३० ३०६
प्रणामकीय-मवा ३२१ ३२६
प्रणामन-मन्त्रणा अधिकार ३१७
व्यापिक अधिकार-राजिन ३१८
विद्यादनी-राजिन ३१८ नैतिक
अधिकार राजिन ३१७ मनिय-
मीन संशय अथवा उत्तरदायी
कायपालिका ३१० मंत्रिमन्त्रीय
वाचनानिकाकी विचारणाए ३१०
गुण ३११ दाय ३११ राज
मीनिक कार्यपालिका ३०६ ३१
राजनयिक या कूटनीतिक राजिन
३१५

कारण एवम् सावजनिक ३८७

केन्द्रीय सभ्यभुताकी अविभाग्यता
२३३

कटतिन राजनीति शास्त्र और आधार
या नाति-शास्त्र १२ राजनीति
शास्त्र और मनाविज्ञान १३

कत्सा आर० डब्ल्यू सावजनिक
की व्याख्या ४०७

काल राज्य स्वाभाविक ९८ सावजनिक
एक सञ्चार सिद्धान्तके रूपम १२

कोटिन् (बाणधर) शासन कला १
कॉम्बेस अतिशय प्रयत्न बारबार्ड
का सिद्धान्त ३५७

प्रोस अधिकार बाहरी परिस्थितियों
१७७

क्रिज सर एन्ड्रय सावजनिक विधि
तत्त्व ३८३ साधनोंका विवरण
३८३

क्रेनबर्ग राजनीति-शास्त्र और समाज
शास्त्र १० सम्प्रभुताकी परिभाषा
२३० सामाजिक सविनय-सिद्धान्त
की आलोचना ४६

क्रोतार्किन अराजकतावादी दृष्टि
को १ १

गांधी महोदय गांधीवाणी अर्पणीति
१३७-१४० राज्य समुदाय ३३

राजनीतिशास्त्राध्यायीकरण १२
गर्नर अग्रगण्ये दो सामान्य विचार

३६१ अग्रगण्ये प्रकार ३१०
अग्रगण्ये महत्त्व २६६ काय

वर्तिकाकी रक्षिका विचारन
३१५ अग्रगण्ये के काय

३६० पूर्वोक्त ३३७ राज्य
का उद्देश्य १३९ राज्य और

सर्वभूमि मित्र ३५ राज्यका
कार्य-कार १६१ राज्यकी

परिभाषा २३ लोकहितसम्मान
२३६ लोकहितकी महत्त्वके

विषय अनिवार्य करने ३८१
महात्मक राज्य ७६५

गिडिगन राजनीति शास्त्र और समाज
शास्त्र ९ सम्प्रभुताका परिभाषा
२३०

गिन्सबग मॉरिस लोकमत सामाजिक
तत्त्व ३८९

गिन्सक्राइट जीवनका अधिकार
१८३ राजनीति शास्त्र और
समाज शास्त्र १० राजनीतिक
सम्प्रभुताकी परिभाषा २३७
राज्यका वर्गीकरण २५१ २५५
राष्ट्रकी परिभाषा २८ लोकप्रिय
सम्प्रभुता २३७ सम्प्रभुताकी
सावभौमिकता २३२ हॉब्स और
लॉक के राजनीतिक और धार्मिक
सम्प्रभुतामें अन्तर ९१

गुडनाऊ राजनीति-शास्त्रके भाग ६
गैटल अपरिवर्तनीय विधि २३१

जैविक सिद्धान्तका महत्त्व और
सीमाएँ ४२ राजनीति-शास्त्रकी
व्याख्या १ राजनीतिक विस्तार
५ राजनीतिक सम्प्रभुता २५५
राज्यके विकासके अध्ययनसे
निष्कर्ष ७५ राष्ट्र और जातिमें
अन्तर २८ लोकप्रिय सम्प्रभुता
२३७ सम्प्रभुताकी अविभाज्यता
२३२ सम्प्रभुताकी स्थिति, २४
२४१

गैसेट लोकमत ही शासनका आधार,
३८७-३८८

ग्राम पंचायत ४०३

ग्रोन टी० एच० इण्ड दनेका
प्रतिरोधामक सिद्धान्त, २१५
निरोधामक सिद्धान्त २१६
नैतिकता और राजनीतिक अधीनता
का मोत एक ही ११० प्रतिरोध
का कर्तव्य, १७२ बहुपलीत्व
२१९ मुद्राका कारण १८६
राज्य और नैतिकता, ३५ राज्य
का कार्य-सत्र १५६ राज्यका
आधार इच्छा २९ राज्यका

प्रतिरोध करनेका अधिकार
२१३ २१४ शक्ति-सिद्धांतकी
आलोचना १०५ सम्प्रभुता
सम्बन्धी सिद्धांत २४२
सामाजिक सविन्य सिद्धान्तकी
आलोचना, ५२ ५५ स्वतन्त्रता
और विधि, १९८

ग्रे जॉन विपरीत सम्प्रभुता २६४
ग्रीसिमस राज्य एक कल्पनाकारी
व्यवस्था ३० सम्प्रभुताकी
परिभाषा २२९

बैजो प्रा० अविकारोंका निश्चय हिता
के सन्तुलनसे १७५

छावनी बोर्ड ४०३

जनसंख्या राज्यके भूत तत्त्वके
रूपमें ३६

जिलाबोर्ड ४ ३

जैक्स आधुनिक राज्यका वर्गीकरण
२५६ वित्तपूजा ६२ मातृमत्ताक
सिद्धान्तका समर्थन ५७

जनेट, पॉल राजनीति शास्त्र समाज
विज्ञानका जग ३

जेमीसन पापाधीन लिखित
सविधान २६३

जेम्स प्रथम राजाका दली अधिकार
सिद्धान्त ४६

जैसिनेक राष्ट्रावली, २

जैविक सिद्धान्त महत्त्व और सीमाएँ
४२ राज्यका ३८ सिद्धान्तमें
समाधा ८०

टॉएवी एन्विमो २२

टॉनी आर्थिक स्वतन्त्रता १९५

टॉल्सटॉय अराजकतावाद। दृष्टि
कोण, १०१

टलीमंड लोकतन्त्र दुष्ट सोपाना
कुनीतन्त्र ३६८

पोलर स्वतन्त्रता और समानता १९९

२००

पासीवियस राज्योंका वर्गीकरण २५३

प्लेटो, आत्मा राज्यमें रहनेवालों की संख्या ३६ जनताकी सेवा स्वतः पुरस्कार २२४ राजनीति शास्त्र और आचार या नीति शास्त्र ११ राज्यकी तुलना बड़े डील डील बाने मनुष्य से ३८ राज्य एक अणु विश्व ११२ राज्याका वर्गीकरण २४

प्रभावना २५७

प्रसंगान २६८

प्रोविडेंस करार ४९

प्रोटोस्टेंट रिकॉन्सेशन इकी उत्पत्ति सिद्धान्त ४५

पाइनर, कार्यपालिकाके अधिकार

३०३ जनताकी सुरक्षा, ३२९

जमनीकी प्रशासन-सेवा ३२८

जमनीके प्रशासन अधिकारियों के कर्तव्य ३३४ क्रिस्तनवाद का समर्थन २७६

प्रशासन सेवाकी परिभाषा ३२१

प्रशासन-सेवाकी क्षमता और

उद्योगशीलता ३३३ ब्रिटेनके

मन्त्रिमण्डलकी महत्ता ३०७

शक्तियोंका पुनर्करण ३५४

शक्तियोंका विभाजन ३५६

क्रॉन हाउस सामाजिक सविदा

सिद्धान्तकी आलोचना ५३

फ्रॉनट कुमारी एम० पी० आत्मा

का निवास राज्य ३१ राज्य

की अन्तिमता ३४

फिल्ले व्यक्ति और समाज एक दूसरे

पर आधारित ३९

क्रिगिस मध्य युगमें वध राज्य सत्ताके

स्थान पर ७१

क्रिलमोर, राज्यकी परिभाषा, २३

फ्रयवे लोकतन्त्र आयोगिताकी उपासना

३६० लोकतन्त्र जीय विधानकी

दृष्टिसे अनुपपन्न ३७०

फर्माबर्ट लोकमत एक धिंग ३९०

पी मेसस २३१

बकल टॉमस राजनीति-शास्त्र और

भूगोल १४ १५

बटसर सीमूलत सम्भाव्यता मान १६

बन्दरगाह ट्रस्ट ४०३

बक एडमण्ड अधिकारोंका इतिहास

सीम सिद्धांत १७४ राजनीतिक

दलकी परिभाषा २९७ सामाजिक

सविदा सिद्धान्तकी आलोचना

५१

बॉस इतिहासीय या विकासवादी

सिद्धान्त ५९ राज्यकी परिभाषा

२३ सम्प्रभुताकी परिभाषा २२९

२३०

बन्नी प्रत्यक्षीकरण ३२९

बर्नस सी डी प्रतिनिधि समझा

जान योग्य हो ३७६ लोकतन्त्रका

व्यापक अर्थ ३६२ लोकतन्त्रकी

सम्यता निम्नकोटिकी ३७०

लोकतन्त्रको छोड़ना मूर्खता ३७४

लोकतन्त्र सर्वोत्तम शासन १६५

व्यक्तिवाद १२९ व्यक्तिवाद और

समाजवादका मूल्यार्कन १३१

बस-सिद्धान्त ५४

बहुलवाणी दृष्टिकोण ३२

बाकुनिन अराजकतावाद १०१

बार्बर अर्नेस्ट मनोवैज्ञानिक तरीक

की सामिया १३ राजनीति-शास्त्र

और मनोविज्ञान १२ राज्य और

समाज २५, २६ राज्यका जविक

सिद्धान्त ४० राज्यकी परिभाषा

२४

बार्गीट बार्न सविधान पी

परिभाषा २५८

बॉवर, बिस्लेम, शुद्ध लोकमत और

जनतामें अभिव्यक्ति मूलम अन्तर
३८८
भूविषय, संविधान की परिभाषा २५८
बचन 'यायायोया' की स्वतन्त्रता
३३६
बगदाद सम्राट के अधिक अधिकार
३०४
बन सर अनेक राजनीति की
परिभाषा ३
बचम राज्य एक कुराई ३१
राज्य का उद्देश्य अधिक से अधिक
लाभा का अधिक ॥ मुग ११४
बैकीतान बन्तान ७१
बाग राजनीति शास्त्र और भूगोल
१४ राज्या का वर्गीकरण २५४
सम्प्रभता की परिभाषा २२९
राजिनी का वर्णन ३४९
बाबाके अधिकारों का अधिक और
नैतिक दाता पक्ष १७३ दण्ड
देने का प्रतिपाद्यमक सिद्धान्त
२१४ २१५ सामूहिक दण्डा राजि
पर आधारित गताक रूप १३३
साक्ष्यमन्त्रिकी परिभाषा ७४
सन्निह स्वीकृति १९८ संस्थाएँ,
१९८ १९९ सुधारमूलक सिद्धान्त
२१७
संस्था भारतीय प्रशासन अधिकारी
३१०
संस्थानी राज्य की परिभाषा २३
राज्य का अधिक सिद्धान्त ३९
राज्य साध्य और साधन दोनों
११७ राज्य का उद्देश्य ११८
राज्य गणनीयमान महा २४७
राज्या का वर्गीकरण २५३
बचम मन्त्राधिकार का विशेष
२९०
शासन मार्ग अध्यात्मिक सरकारके
द्वारा ११३ अतिरिक्त अधिकार
२९२ आर्थिक राज्यों का
वर्गीकरण २५६ मन्त्राधिकारों

मायिकाकी प्रतिष्ठापन बुद्धि ६४
यथवत्तण पद्धति १९ राजनीति
शास्त्र और इतिहास ८ निर्मित
संविधान २६० लोकतन्त्र के गुण
दोषों का विवेचन ३८४ लोकतन्त्र
प्रचलित बराह्मा ३७२ लोकतन्त्र
सरकारके प्रकार ३६१ लोकतन्त्र
सरकारका एक प्रकार ३५९ वास्तव
में सभी सरकारें कुलीनतन्त्रीय
३६१ सभ राज्य के गुण २६८
बाउन माइवर राजनीति-शास्त्र
और अर्थ-शास्त्र ९
बाउन मन्त्र राज्य पारितोषिक
जनताका अधिक प्रतिनिधित्व ३७७
भू-राज्य राज्यों के मूल तत्त्वों के रूप
में ३७
मन्त्राधिकार निराचर-अन्त २८४
२८९ मन्त्राधिकार सिद्धान्त
२८९ बचम मन्त्राधिकार २९०
२९१ एक अधिक भग्न देशों की
प्रणाली २९१ आपत्तियाँ २९२
बहुमन्त्र मन्त्राधिकार २९३
अन्तर्गत प्रतिक्रिया २९३
आनुवांशिक प्रतिनिधित्व २९३
२९६ सीमित मन्त्र २९३
मन्त्रों के दण्ड ० की राजनीति
दण्डों की आवश्यकता २९६
महात्मा मन्त्र ७१
मार्क्सवार्म आपत्तिक समारोहों के
यथवत्तण १३३ राज्य मन्त्रों के
गोपनीयता साधन २९ राज्य मन्त्र
का प्रतिमानत्व १४
आनुवांशिक-सिद्धान्त ५८ आभाषना
३९
मायिका राज्योका वर्गीकरण २५३
राज्यों का वर्णन १४०
मामदेरी बार ४ शासन की
परिभाषा, २१०

मार्सीलियो ऑफ़ प्रदुभा लोकप्रिय
सम्प्रभुता २३६

मिल एकसे अधिक मत देनेका समर्थन
२९२ कार्य-स्वातन्त्र्य २०७ दूसरे
सदनकी आवश्यकता २७५ महिला
मताधिकारका समर्थन २९१
लाकतत्रसे उच्च कोटिके चरित्रका
विकास ३६५ विचार भाषण
और निष्कर्षकी स्वतन्त्रता पर
विचार २०३ व्यक्तिगत कार्य पर
विचार, २०७ स्वतन्त्रता पर विचार
१९१

मकियावेल्ली राजनीति-शास्त्र और
आचार या नीति-शास्त्र ११ राज्य
एक शक्ति व्यवस्था २९

मेन सर, हेनरी दूसरा सदन आवश्यक
२७५ पितृसत्ताक सिद्धांत ५६
वयस्क मताधिकार २९०
आस्टिन के निर्दिष्ट उच्चतर मनुष्य
की आलोचना २४३

मेसपील्ड लाड ग्रिनमे प्रेसकी
स्वतन्त्रता २०६

मेपनावर कगार ४९

मेरियट जे० ए० मार० आपुनिक
राज्या का वर्गीकरण २५६
संविधानका वर्गीकरण २५८

मकडूगल समाजम काम करनेवाली
प्रवृत्तियां १३

मकफर्सन डॉ संस्थाओं और पद्धतियों
का परीक्षण २०

मकार्कर मातृसत्ताक सिद्धान्त ३८
राम एष सप ३८ राज्यका
कार्य-मात्र १४१ १४५ राज्यकी
परिभाषा २४ राज्य सम्बन्धी
प्रवृत्ति विचारका संकलन २९
रामम नागरिक और राजनीतिक
अधिकार में भेद ६८

मैकार्पोवा २५५

मकास लॉर्ड वयस्क मताधिकारका
परिणाम व्यापक सट २९०

मैकसी गोरीजातियां धृष्ट नहीं ३७५
लोकतन्त्रका अर्थ ३६० लोकतन्त्र
बड़ी आसानीसे कुटिल राजनीति
का शिकार, ३६८

मन्ना वाटा १७४

मजिनी लोकतन्त्रम सबके माध्यमसे
सबकी उन्नति ३७८

महिसन सम्प्रभुताकी स्थिति २४०

मेरियट प्रशासकीय विभागोंको सीमे
मये प्रदत्त विधानकी बढती हुई
माना ३३१

म्योर रैमंडे अंग्रेजी और अमेरिकी
शासन पद्धतियोंकी तुलना २५४

मुद्र गुलाबके ७२ सतयपीम ७२
सामाजिक ६८

मुनियन बोर्ड ४०३

रक्तहीन राज्यक्रान्ति ८२

रनेल बर्टेण्ड स्वनात्मक प्रेरणा १५९
व्यक्तिगत स्वतन्त्रता १९३

रसेन डोनेल्ड एक अमेरिकाम
सम्प्रभुताकी स्थिति २४१

सम्प्रभुताकी धारणा २३०

राउसक सम्प्रभुताकी धारणा २३०

राजनीति आपुनिक प्रयोग ३

पारिभाषिक शब्दावली १

राजनीति-शास्त्र ४ राजनीतिक

चिन्तनका महत्त्व ५ राजनीति

शास्त्रके अध्ययनकी उपयोगिता

६ विस्तार और अल्प शास्त्रोंसे

सम्बन्ध ६ अर्थ-शास्त्र ८

इतिहास ७ समाज शास्त्र ९

आचार शास्त्र या नीति-शास्त्र

११ मनोविज्ञान १० भूगोल

१४ विधि १३ राजनीति-शास्त्र

की पद्धतियां १५ विचार धारा

का आरम्भ १ विभाजन २

व्यवहारिक राजनीति, २ सैद्धा

न्तिक राजनीति, ३

राज्य राज्यमिदाल ५ स्वयं
२२ राज्यकी परिभाषा २२
राज्य और समाज, २४ राज्य और
सरकार २६ राज्यका अस्तित्व
समाप्त होनेके तरीका २७ राज्य
राष्ट्र और राष्ट्रीयता २७ राज्य
के सम्बन्धमें एकतरफा या आमत
विकार २९ राज्य एक कानूनपर
बुलाई १ राज्य एक निम्न २
राज्यकी स्थिति पर्याप्त व्यवस्था २३
राज्यकी प्राथमिकता ३ राज्य
हृदय और धड़ि-रूपम ३ राज्य
के रूपमें वर्णित ३६ राज्यकी
अस्थिरता ३४ राज्य मानव
सम्बन्धोंका व्यवस्थापक ४ राज्य
और सार्वभौम ३५ राज्य
और नैतिकता ३५ राज्यके मूल
तत्व ३६ राज्यका जड़ मिडाल
३८ जैविक मिडालमें मरणा
४ महत्त्व और सीमा ४०
राज्यकी उत्पत्ति ४४ राज्य
निम्न आधारी ६ राज्यका
नैतिकीय विभाग ६७ भाषित
मनुष्य राष्ट्रीय राज्य ७७ उद्भव
और मौखिक १० ११० विभाग
की सामान्य रूप का ७५ राज्य
का उचित कार्य-भाग १२० १४७
राज्य और युद्ध १४४ एकात्म
तया मरणात्मक राज्य २६३
एकात्मक राज्य २६ मूल
२६४ राज्य २६४ प्रमाणित
२६८ मरणात्मक राज्य २६४
मरण राज्यकी आकाशवाणी २६४
मरण राज्यका २६७ राज्य २६८
मौखिक भाषावादी राज्य ४ ७
४१०

राज्य समाजशास्त्र के अन्तर्गत ११४
लिपी की भी नलि जैविक
की परिभाषा १७३ राज्यिक
अधिकार १६६ राज्यिक भाषा

करनेका अधिकार २०८ स्वा
मानता और विधि १७७
स्वतंत्र अमरिका में सम्प्रभुताकी स्थिति
२४ सामान्य ३८८ सामान्य
निम्न वर्ण ३८
स्वायत्त पाकिस्तान और व्यवहार
की स्थिति १ २११ नागरिक और
प्रधानमन्त्री २६ ७ राज्यमिडाल
पर धन ४५ राजनीति राज्य और
भूगोल १६ राज्यका जैविक
स्वयं ९ राज्यमें रहने वालों की
मर्यादा ६ राज्य और सरकारके
प्रकार ८४ ८७ राज्य मनुष्यके
मर्यादामें स्वयं उद्भवमें अति
अति ११४ लोकशास्त्र १६
वर्णित-मिडालकी आकाशवाणी १ ४
सम्प्रभुताकी अधिकारिता २३०
सामाजिक मर्यादा मिडाल ७८
९८ स्वतंत्रता १०३ स्वायत्तता
और विधि १०८

देशन विभाग-वर्णन ०४
११ राज्यिक भाषा ३
१११ राज्य स्वयं प्रमाणित
मिडाल ११६
रोम धर्म-आकाशवाणी ७२ रोम शासक
के पत्रोंके कारण ६९ विधि
शासक ६७

भाव राज्य और सरकारके प्रकार
८४ ८७ राज्यका उद्भव ११४
राज्य का कार्य-भाग १२ मरण
मरणा की विधि और राज्यिक रूप
वर्णन ३८१ १०० राज्यिक
का पदवर्णन ३४० राज्यिक
मर्यादा मिडाल १ ४८ ७८ ९८

मौखिक अधिकार और भाषा ११४
१७३ राज्यिक भाषा ३
मरणिक भाषा ३४० मरणिक
मर्यादा मिडाल १ ४८ ७८ ९८

१६९ राज्य का स्वरूप ३४
 व्यक्तिस्व नागरिकता से अधिक
 १७२ सम्प्रभुता की अविभाज्यता
 २४५
 लॉरियर शादी करनेका अधिकार
 १८७
 लॉवण ए एन० अमेरिकी लोकतन्त्र
 की सबसे बड़ी विफलता बड़े नगरो
 का कदासन ३७३ राजनीतिक
 दल का काम विचारो की दलासी
 २९८ लोकतन्त्र शासन के क्षेत्र में
 केवल एक प्रयोग ३५९ लोकतन्त्र
 का समर्थन ३६४ लोकतन्त्र की
 परत ३७५ लोकतन्त्र के लिए
 आवश्यक बातें ८१ सम्प्रभुता
 की अविभाज्यता २३३
 लास्की अधिकार के तीन अनिवार्य
 स्वरूप १७९ आधिक स्वतन्त्रता
 १९५ काम पाने का अधिकार
 १८० १९० व्यक्तिगत सम्पत्ति
 २२४ सम्पत्तिकी वर्तमान व्यवस्था
 २२५ सम्पत्ति का समपन २२३
 सत्पा-संगठनका अधिकार २०९
 सरकार की आलोचना करने का
 अधिकार २०५ स्वतन्त्रता का अर्थ
 १९१ स्वतन्त्रता और समानता
 २०० सार्वधानिक स्वतन्त्रता १९४
 हड़ताल करनेका अधिकार २१०
 असीमित और अनन्त सम्प्रभुताके
 सिद्धान्तकी आलोचना २४८
 डॉस्टिन का सम्प्रभु २४५
 उपयोगितावाद अधिकारों की
 कसौटी १७६ प्रतिरोध का
 अधिकार १७२ राज्य की
 परिभाषा २४ राज्य और
 सार्वभौमहित १५ राज्य की
 शक्ति का औचित्य १०८ लोक
 का स्वीर्ज्ञा सिद्धान्त ९१ विध
 संस्था समपन ७४ अधिक
 अधिकार सिद्धान्त, १७२, व्यक्ति

वाणी सिद्धान्तके विरुद्ध तर्क १२८
 धार्मिक सिद्धान्त की आलोचना
 १०५ शक्तियों का पुनश्चरण
 ३५३ सम्प्रभुता १७
 लिण्डसे ए० धर्म-सम २११ ३६५
 लोकतन्त्र ३७५ लोकतन्त्र का
 व्यापक अर्थ ३६२ लोकतन्त्रीय
 समाज ३७८
 लिबन लोकतन्त्रकी परिभाषा ३५९
 लिपमैन वास्टर अनता ३९०
 लीकॉन पितृसत्ताक और मातृसत्ताक
 सिद्धान्त ५९ राजनीतिक
 सम्प्रभुता २३५ राज्यों का
 सर्गीकरण २५५ संघ राज्य के
 दोष २६८ स्थानीय शासन और
 केन्द्रीय शासन में अन्तर ३९७
 लुइस सम्प्रभुता ३७-३८ सविधानकी
 परिभाषा २५८
 लुकर सम्प्रभुताकी परिभाषा २३०
 लुबो राजनीति-शास्त्र और मनो
 विज्ञान १२
 लुबोले एमिस वयस्क मताधिकारका
 विरोध २९०
 लुपर मार्टिन राज्यका औचित्य
 १०१
 लेकी लोकतन्त्र स्वतन्त्रताके विरुद्ध
 ३६७ वयस्क मताधिकारका
 विरोध २९०
 मैक्नेय लोकतन्त्रसे देश प्रेमकी वृद्धि
 ३६६
 लोक आदेश २३७
 लोक-कल्याणकारी राज्य ४०७
 ४१२ कल्याणकारी राज्यका
 अर्थ ४०७-४०९ कल्याणकारी
 राज्यकी विशेषताएँ, ४१० ४१२
 भारत और कल्याणकारी राज्यकी
 धारणा ४१२ व्यक्तिवाद और
 साम्यवादी में समझौता ४०९
 व्यक्तिवादी राज्य और कल्याण
 कारी राज्यमें अन्तर, ४०९

साम्यवादी राज्य और स्वायत्तता
 राज्यमन्त्र ४०९
 साम्यवाद टिप्पणी ३८३ ३९१
 मूल्यमन्त्र ३९१ ३९४ स्वयं
 साम्यवाद के निमापके लिए आवश्यक
 कार्य ३९४
 साम्यवाद आलापनाओं का मूल्यमन्त्र
 ४७४ ३७९ उपचार और निष्पत्ति
 ४७९ ३८६ प्रकार ४६१ प्रयोग
 और प्रतिनिधि मूल्यमन्त्र ६
 ३६१ रुपा द्वारा प्रयोग लोकतन्त्र
 का समयमन्त्र ८३ लोकतन्त्र ३४७
 ३९४ लोकतन्त्र का अर्थ ३४९
 ३६० लोकतन्त्र का व्यापक अर्थ
 ३६२ लोकतन्त्र का समयमन्त्र तथा
 ३६३ पूर्वावधान मन्त्र ३६३
 मन्त्रवादी ३६४ नतिज
 ३६५ व्यावहारिक ३६६ शिक्षा
 सम्बन्धी ३६४ लोकतन्त्र के विरुद्ध
 तर्क ३६७ ३७३ लोकतन्त्र की
 समयता के लिए आवश्यक कार्य
 ३८४ ३८७ लोकतन्त्र पर पुन
 विचार ३४७ ४९
 लोक निर्माण ३३७
 लोकसम्मति सिद्धान्त १२ १४
 आत्मिकता १६ १७ नतीजमन्त्र है
 १४ परिभाषा १४ विमर्शमन्त्र
 ११ सिद्धान्तमन्त्र साधना १७-१८
 साम्यवाद मर्ति अधिनायकता
 अस्पष्टता ही ३७४ लोकतन्त्र की
 सुधारने के लिए मन्त्र ३८२
 लोकतन्त्र प्रतीक पत्र साधना पत्र १८
 सुहोविनी लोकतन्त्र के प्रति बलमान
 पीड़ा का अन्तर्गत ३४७
 वर्गीकरण अस्पष्टता का ३४३
 आवश्यक कार्य १४३ एकामर्श
 तथा मन्त्रात्मक राज्य १६३
 एकामर्श राज्यमन्त्र १४ साधना
 १४, आधुनिक राज्य ३४३

प्लेटा और अस्पष्टता द्वारा वर्गीकरण
 २४० अस्पष्टता द्वारा २४२
 राज्यवाद वर्गीकरण १६५ राज्य
 तथा विधानात्मक वर्गीकरण २४०
 २६९ मन्त्रात्मक २४ २४७
 वर्गीकरण का १४६ संपादक
 राज्य ६३ विधानात्मक स्वयं
 तथा परिभाषा २४७
 वाइड एन तक-मन्त्र स्वायत्तता
 का दावा १७७-१७८ राज्य
 अधिकारों का दावा १७१
 विधानात्मक वर्गीकरण मन्त्र आवश्यक है
 २७४ ७७ निमापक-मन्त्र
 २८४ ९६ राज्यनीतिक दावा
 २९६ ३ १ राज्यनीतिक दावा
 समयता के लिए आवश्यक कार्य
 ३ १ ३ ३ विधानात्मक
 समयमन्त्र २७३ विधानात्मक
 अधिकार और मन्त्र ३७३ २७९
 विधानात्मक कार्य प्रमाण ७
 २८१ समिति प्रमाण २८१
 विधानात्मक दावा ८
 विधानात्मक विधानात्मक २८३
 विधानात्मक और वास्तविकता के
 पारस्परिक सम्बन्ध ८४ तर्क
 की अवधि ८१ ८२ सरकार
 का अर्थ २७
 विधि अमरिकाय का दावा की
 विधि ३३९ मन्त्र द्वारा
 विधि निमाप ७१ निमाप
 विधि ३३७ प्रमाणित ७८ कानून
 प्रमाणित विधि ७२ विधि
 की सामान्य विधि ७०७ विधि
 और नीतिज्ञता १४२ विधि अर्थ
 मन्त्र १४३ विधि और प्रमाण
 १४३ विधि और प्रमाण १८३
 विधि और मन्त्र १४४ विधि
 मन्त्र ३३८ मन्त्रात्मक
 प्रमाणित विधि मन्त्र का
 मन्त्र विधि १७१ मन्त्रात्मक

स्वतन्त्रता २०८ संवैधानिक
स्वतन्त्रता १९४ स्वतन्त्रता का
अधिकार १९० २२ स्वतन्त्रता के
विभेद १९२ स्वतन्त्रता और सत्ता
१९६ स्वतन्त्रता और समानता
१९९ स्वतन्त्रता का राजकीय
नियमन, २ १ आत्म रक्षा २०१
विचार भाषण और लिखने की
स्वतन्त्रता २०२ सीमाएं २०४
स्वाधीनता और विधि १९७

हर्नशा प्रत्यक्ष कारंबाई के समर्थन में
तर्क ३५८ लोकतन्त्र की सफलता
के लिए नैतिक सुधार आवश्यक
३८ लोकतन्त्र में मित्रा की
आवश्यकता ३६६ लोकतन्त्र में
नेताओं की हालत ३९९

हॉकिंग लोकतन्त्र का समर्थन ३६३
लोकतन्त्र चेतन और अचेतन मन की
एकता ३६४ विचार स्वातन्त्र्य
२ ४ विधिके वास्तविक और
आदर्श स्वरूप में अन्तर १७१
घबित की लालसा या आत्म
अभिभ्यक्ति १५९ सम्पत्तिका
अधिकार, २२१ सम्पत्तिका
वितरण २२५ स्वतन्त्रता और
सत्ता १९७

हॉब्स जोफ राज्य के व्यावहारिक एवं
आदर्श उद्देश्यों के बीच भेद ११८

सत्यावली २

हॉब्स हावस सम्पत्तिका अधिकार २२१

हॉब्स आत्म रक्षा का अधिकार १७०

राज्य का वैयक्तिक सिद्धान्त ३९

राज्य का उद्देश्य ११४ राज्य

और सरकार के प्रकार ८५ ८७

राज्य का वर्गीकरण २५४

सविदा सिद्धान्त ७८ ९८

हारकाँ सर विलियम समाजवाद,

१९१

हॉसैण्ड राज्य की परिभाषा २३

वैयक्तिक दृष्टिकोण से अधिकार की

परिभाषा १७३

हीगा अपराधी को दण्ड देने का

अधिकार ३४ मद्र १८६ राज्य

की परिभाषा २४ राज्य आत्मा

का संसार ३१ राज्य स्वयं

साध्य ११७

हेडरिंगटन एवं म्योरहेड राज्य का

उद्देश्य-न्याय ११६

हेमिल्टन सम्प्रभुता की स्थिति २४०

हैलोवेस जे एच० राजनीति-दर्शन

४ राजनीति शास्त्र और विधि

१४ सामाजिक शास्त्र और तर्क

संगत सिद्धांत पर आधारित

विश्वास २० शक्ति सिद्धान्त की

आलोचना ३ हॉब्स की पद्धति

७९

हैलडन समिति ३३२

